Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वि०-२५५

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

सत्यमेव जयते

विधि साहित्य प्रकाशन

Red 27/7/85

प्रधान संपादक	नवम्बर, 1983	संपादक
जगत नारायण	[पृष्ठ 387—723]	पूरन सिंह कनंवाल
	(1)—(30) मुद्दे	

[1983] 4 उच्च० नि० प०

विधि साहित्य प्रकाशन

विधि और न्याय मंत्रालय (विधायी विभाग), भारत सरकार

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

निर्णय-सूची

[1983] 4 उम० नि० प०

पृष्ठ संख्या

एच० एम० कमालुद्दीन अंसारी एण्ड कम्पनी (मैसर्स) बनाम भारत संघ और अन्य
(M/s. H. M. Kamaluddin Ansari and Company *v.* Union of India and Others). 481

एस० के० भाटिया और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य
(S. K. Bhatia and Others *v.* State of Uttar-Pradesh and Others). 474

दीना उर्फ़ दीन दयाल और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य
(Deena *alias* Deen Dayal and Others *v.* Union of India and Others). 638

पी० ग्रोवर (श्रीमती) बनाम हरियाणा राज्य और एक अन्य
(Smt. P. Grover *v.* State of Haryana and Another). 545

बी० ए० जयराम और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य
(B. A. Jayram and Others *v.* Union of India and Others). 503

बी० वेंकट रेड्डी और अन्य बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य और अन्य
(B. Venkata Reddy and Others *v.* State of Andhra Pradesh and Others). 397

बेगुल्ला बापी राजू और अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य
(Begulla Bapi Raju and Others *v.* State of Andhra Pradesh). 611

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भारत के संविधान के अनुच्छेद 317 (1) के अधीन निर्देश के संबंध में
[Reference under Article 317 (1) of the Constitution of India]. 522

रवीन्द्र ईश्वरदास सेठना और एक अन्य बनाम शासकीय समापक, उच्च न्यायालय, मुम्बई और एक अन्य
(Ravindra Ishwardas Sethna and Another *v.* Official Liquidator, High Court, Bombay and Another). 549

राम नारायण अग्रवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य
(Ram Narayan Agarwal *v.* State of Uttar-Pradesh and Others). 588

रुदुल साह बनाम बिहार राज्य और एक अन्य
(Rudul Sah *v.* State of Bihar and Another). 387

वीरभान सिंह और एक अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य
(Virbhan Singh and Another *v.* State of Uttar Pradesh). 465

वेद गुप्त बनाम मैसर्स अप्सरा थियेटर्स, जम्मू और एक अन्य
(Ved Gupta *v.* M/s. Apsara Theatres, Jammu and Another). 437

वैल्कम होटल और अन्य बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य और अन्य
(Welcome Hotel and Others *v.* State of Andhra Pradesh and Others). 563

शिवाजी नारायण बाछव बनाम महाराष्ट्र राज्य
(Shivaji Narayan Bachhav *v.* State of Maharashtra). 539

स्वरूप वेजिटेबल्स प्रोडक्ट्स इंडस्ट्रीज (मैसर्स) और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य
(M/s.) [Swaroop Vegetables Products Industries and Others *v.* State of Uttar Pradesh and Others]. 576

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विषय-सूची

[1983] 4 उम० नि० प०

पृष्ठ संख्या

आन्ध्र प्रदेश लैण्ड रिफार्म्स (सीलिंग आन एग्रीकल्चरल होल्डिंग्स ऐक्ट, 1973

—धारा 3 (i) स्पष्टीकरण, 3 (च), 4, 5 और 7 (सपठित संविधान, 1950 का अनुच्छेद 14)—"कौटुम्बिक एकक"—"कौटुम्बिक एकक" की परिधि के भीतर विभक्त अवयस्क पुत्र भी शामिल है—वास्तव में उसमें विभक्त अवयस्क पुत्र कौटुम्बिक एकक का उसी प्रकार अंग होता है, जैसे कि पिता से अविभक्त पुत्र—चूंकि भूमि सुधार संबंधी विधि इस दृष्टि से अधिनियमित की गई है जिससे धनी और निर्धन व्यक्तियों के बीच की असमानता कम की जा सके, इसलिए इससे संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन नहीं होता।

बेगुल्ला बापी राजू और अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य 611

—धारा 3 (झ)—जोत—एक ही भूमि, अन्तरक और अन्तरिती, दोनों की ही हो सकती है।

बेगुल्ला बापी राजू और अन्य बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य 611

आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 (1955 का 10)

—धारा 2 (क)—"खाद्य पदार्थ" पद के अन्तर्गत "पकाया हुआ भोजन" भी है।

वेलकम होटल और अन्य बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य और अन्य 563

—धारा 3—आन्ध्र प्रदेश कैटरिंग एस्टैब्लिशमेंट्स (फिक्सेशन एण्ड डिस्प्ले आफ प्राइसिज आफ फूड-स्टफ्स) आर्डर, 1978—खण्ड 3—खाद्य पदार्थों की कीमत—कितपय खाद्य पदार्थों

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

की अधिकतम कीमत नियत की जानी—अधिकतम कीमत नियत किए जाने में मनमानेपन का दोष नहीं है ।

वैल्कम होटल और अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य 563

उत्तर प्रदेश इलैक्ट्रिसिटी (ड्यूटी) अधिनियम, 1952 (1952 का 33)

—धारा 3 (1) और 4 (1)—शुल्क दायित्व—धारा 4 (1) (ग) के साथ पठित धारा 3 (1) (ग) के अधीन विद्युत जनन के अपने निजी स्रोत से किसी व्यक्ति द्वारा उपभुक्त ऊर्जा पर विद्युत शुल्क देने के दायित्व से इस आधार पर छूट नहीं दी जा सकती कि वह व्यक्ति धारा 4 (1) (क) के साथ पठित धारा 3 (1) (क) में इंगित स्रोतों से भी ऊर्जा खरीदता है ।

स्वरूप वेजिटेबल्स प्रोडक्ट्स इंडस्ट्रीज (मैसर्स) और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 576

उत्तर प्रदेश बिक्री कर अधिनियम, 1958

—धारा 8—(सपठित उत्तर प्रदेश जमीदारी विनाश—और भूमि व्यवस्था अधिनियम, 1950 और तदधीन बनाए गए नियमों का नियम 251)—अपीलार्थी के विरुद्ध शोध्य कर का बकाया होना—बकाया का संदाय न करने पर अपीलार्थी की गिरफ्तारी का वारण्ट जारी किया जाना—इस प्रकार की गिरफ्तारी से संविधान के अनुच्छेद 14, 19 (1) (घ) और 21 का अतिक्रमण नहीं होता है किन्तु ऐसी गिरफ्तारी से व्यतिक्रमी बकाया का संदाय करने के लिए बाध्य होना चाहिए ।

राम नारायण अग्रवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 588

कम्पनी अधिनियम, 1956 (1956 का 1)

—धारा 457 (1) [सपठित बाम्बे रेण्ट्स, होटल एण्ड लॉजिंग हाउस रेट्स कंट्रोल एक्ट, 1948 (1947 में

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यथा-संशोधित) की धारा 13 और 15]—परिसमापन—कम्पनी के परिसमापन के लिए समापक को नियुक्त किया जाना—कम्पनी न्यायाधीश के निदेश से समापक द्वारा कम्पनी के अधिभोगाधीन परिसर का कब्जा अभिरक्षक करार के अधीन अन्य व्यक्ति को दिया जाना—कम्पनी न्यायाधीश समापक को अभिरक्षक करार करने के लिए प्राधिकृत नहीं कर सकता—समापक ऐसा तभी कर सकता है, यदि प्रश्नगत परिसर कम्पनी के फायदाप्रद परिसमापन के लिए कम्पनी का कारबार चलाने के लिए दिया गया हो।

रवीन्द्र ईश्वरदास सेठना और एक अन्य बनाम शासकीय समापक, उच्च न्यायालय, मुम्बई और एक अन्य 549

जम्मू एण्ड कश्मीर (सिनेमाटोग्राफ) ऐक्ट, 1989 (संवत्) (संवत् 1989 का 24)

—धारा 3, 6एफ और 7 (सपठित तद्धीन विरचित नियमों का नियम 7)—अपीलार्थी को सिनेमा-हाल सन्निर्मित करने की अनुज्ञा दिया जाना—अपीलार्थी का तत्पश्चात् कुछ अन्य व्यक्तियों के साथ भागीदारी की संविदा करना—सिनेमा थियेटर के सन्निर्माण के पश्चात् सिनेमाटोग्राफ फिल्मों के सार्वजनिक प्रदर्शन के लिए अपीलार्थी को उसकी व्यष्टिक हैसियत में अनुज्ञप्ति अनुदत्त किया जाना—भागीदारों के बीच संविवाद उठने पर फर्म के नाम में अनुज्ञप्ति जारी किए जाने के आवेदन को जिला मजिस्ट्रेट द्वारा नामंजूर किया जाना और उस आदेश का अन्तिम हो जाना—तत्पश्चात् भागीदारों द्वारा थियेटर को फर्म की सम्मति के रूप में घोषित किए जाने के लिए वाद फाइल किया जाना तथा वादियों के कब्जे और थियेटर चलाने में हस्तक्षेप करने में अपीलार्थी के विरुद्ध प्रतिषेधात्मक व्यादेश का जारी किया जाना—पुलिस अधीक्षक की रिपोर्ट पर अनुज्ञप्तिधारी से भिन्न अन्य व्यक्तियों द्वारा फिल्म के प्रदर्शन को जिला मजिस्ट्रेट द्वारा निलम्बित किया जाना—जिला मजिस्ट्रेट ऐसा आदेश करने में न्यायोचित था और उक्त आदेश को नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का अतिक्रामी भी नहीं कहा जा सकता।

वेद गुप्त बनाम मैसर्स अप्सरा थियेटर्स, जम्मू और एक अन्य 437

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2)

—धारा 354 (5) (सपठित संविधान, 1950, अनुच्छेद 14 और 21)—मृत्यु का दण्डादेश—ऐसे दण्डादेश का निष्पादन—गर्दन में फांसी लगाने की पद्धति—उक्त धारा के इस उपबंध से कि ऐसे व्यक्ति को जिसे मृत्यु का दण्डादेश दिया गया है, गर्दन में फांसी लगाकर तब तक लटकाए रखा जाए जब तक कि उसकी मृत्यु न हो जाए, अनुच्छेद 21 के उपबंध का अतिक्रमण नहीं होता।

दीना उर्फ दीनदयाल और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य 638

—धारा 354 (5) (सपठित संविधान, 1950 अनुच्छेद 32)—मृत्यु के दण्डादेश का निष्पादन—उसकी विधिमान्यता विनिश्चित करने की अधिकारिता जबकि विधानमण्डल का कृत्य मृत्यु के दण्डादेश के निष्पादन की पद्धति विहित करना है, न्यायालय की अधिकारिता विधानमण्डल द्वारा विहित पद्धति की सांविधानिकता के प्रश्न को विनिश्चित करना है।

दीना उर्फ दीनदयाल और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य 638

—धारा 354 (5) (सपठित संविधान, 1950, अनुच्छेद 14, 19 और 21)—आक्षेपित विधि पर लगाए गये निर्बन्धन की युक्तियुक्तता साबित करने का भार राज्य पर होना—धारा 354 (5) की विधिमान्यता—एक ओर अनुच्छेद 14 के आधार पर और दूसरी ओर अनुच्छेद 19 और 21 के आधार पर दी गई चुनौतियों में प्रभेद की विद्यमानता—जब किसी विधि को दी गई चुनौती अनुच्छेद 19 और 21 के अतिक्रमण पर आधारित होती है, तो पिटीशनर को यह अभिवचन करना होता है कि उसे अमुक मूल अधिकार से वंचित किया गया है और जैसे ही वह यह बात दर्शित कर देता है तो वैसे ही यह साबित करने का भार राज्य पर हो जाता है कि आक्षेपित विधि पर लगाया गया निर्बन्धन युक्तियुक्त है और उसे अनुच्छेद 19 (2) की संरक्षा प्राप्त है या

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यह कि विधि द्वारा स्थापित न्यायसंगत और युक्तियुक्त प्रक्रिया द्वारा ही उसके प्राण या दैहिक स्वाधीनता से उसे वंचित किया गया है ।

दीना उर्फ दीनदयाल और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य 638

—धारा 384 और 374—अपील का संक्षेपतः खारिज किया जाना—वैधता—हत्या के लिए दोषसिद्धि और आजीवन कारावास के दण्ड के विरुद्ध अपील की जानी—अपील को संक्षेपतः "खारिज की गई" शब्दों के साथ खारिज नहीं किया जा सकता ।

शिवाजी नारायण बाछव बनाम महाराष्ट्र राज्य 539

नजीरें

—न्यायिक नजीरें—संविधान के अनुच्छेद 14 के संबंध में प्रतिपादित सिद्धान्त उन मामलों को लागू नहीं होते, जो अनुच्छेद 19 और 21 के अधीन उद्भूत होते हैं।

दीना उर्फ दीनदयाल और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य 63

—न्यायिक नजीरें—यदि न्यायपीठ का अल्पमत कोई ऐसा मत व्यक्त करता है जो सामाजिक रूप से संवेदनशील है, तो ऐसे मत की उपेक्षा नहीं की जा सकती ।

दीना उर्फ दीनदयाल और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य 638

भारतीय दण्ड संहिता, 1860 (1860 का 45)

—धारा 302—हत्या—मृतक पत्नी को अभागिन घोषित करके उससे छुटकारा पाने और दूसरा विवाह करने का आशय—पति और घर वालों द्वारा मृतक की पिटाई करके फांसी लगाना—चिकित्सा साक्ष्य के अनुसार आत्महत्या के लक्षण न पाए जाने—परिस्थितिजन्य साक्ष्य से यही निष्कर्ष निकलता है कि अभियुक्त ने मृतक की हत्या की है ।

वीरभान सिंह और एक अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 465

माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 (1940 का 10)

—धारा 20, 33 और 41 (ख) (सपठित संविदा से संलग्न सामान्य शर्तों का खण्ड 18)—पक्षकारों के बीच करार में

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

माध्यस्थम् खण्ड के विद्यमान होते हुए संविदा का अन्तिम माना जाना—ऐसा होने पर भारत संघ द्वारा ठेकेदारों (अपीलार्थियों) के अन्य संविदाओं में बकाया बिलों की रकम का समायोजन करके संदाय रोकने का प्रश्न उत्पन्न होना—अपीलार्थियों धारा 41 के अधीन, भारत संघ को संदाय रोकने से प्रतिबंधित करने के लिए न्यायालय से व्यादेश जारी करने की याचना करना—ऐसा व्यादेश धारा 41 के अधीन जारी नहीं किया जा सकता। यद्यपि माध्यस्थम कार्यवाहियों के लम्बित रहते हुए नुकसानी के दावों की रकम रोकने से तो प्रतिबन्धित किया जा सकता है किंतु भारत संघ अन्य संविदाओं में बकाया बिलों की रकम को रोक सकता है।

एच० एम० कमालुद्दीन अंसारी एण्ड कम्पनी (मैसर्स) बनाम भारत संघ और अन्य 481

मोटर यान अधिनियम, 1939 (1939 का 4)

—धारा 51(2) (भ) [सपठित यू० पी० मोटर व्हिकल्स (स्पेशल प्रोवीजन्स) ऐक्ट, 1976 (1976 का 27) धारा 4]—बसों के परमिट—मिनी बस चलाने के लिए परमिट में शर्त विहित किए जाने से किसी संवैधानिक अधिकार का उल्लंघन नहीं होता—ठेका गाड़ियों और मिनी बसों की तुलना नहीं की जा सकती—शर्त अधिरोपित करने का स्रोत धारा 51 (2)(भ) है धारा 4 नहीं।

एस० के० भाटिया और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 474

—धारा 63 (7) दूसरे राज्यों में रजिस्ट्रीकृत और अखिल भारतीय परमिटों पर परिचालित वाहनों का कर्नाटक राज्य से गुजरना—राज्य द्वारा ऐसे यानों पर राज्य कर से छूट को, जो पहले अनुदत्त की गई थी, वापस लेना—ऐसी छूट का वापस लेना संविधान के अनुच्छेद 14 या 301 का अतिक्रामी नहीं है।

बी० ए० जयराम और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य 503

संविधान, 1950

—अनुच्छेद 14 [सपठित उत्तर प्रदेश इलेक्ट्रिसिटी (ड्यूटी) अधिनियम, 1952, धारा 3 (4) तथा उसके अधीन निकाली

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गई अधिसूचना तारीख 17.3.1973]—अधिसूसचना की विधि-मान्यता—प्रोत्साहन की कसौटी के रूप में तारीख नियत की जानी—बिजली की कमी की दृष्टि से तथा औद्योगिक उत्पादन बढ़ाने के लिए नियत एक तारीख के बाद लगाये गए बिजली जनन के अपने निजी स्रोत से बिजली का उपयोग करने वाले लोगों को विद्युत शुल्क से छूट दी जानी—उस तारीख के पहले से बिजली जनन के अपने स्रोत से बिजली का उपयोग करने वाले लोगों को यह छूट न दी जानी—राज्य की ऐसी कार्रवाई से छूट देने के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए अनुच्छेद 14 का उल्लंघन नहीं होता, फलतः प्रश्नगत अधिसूचना विधिमान्य है।

स्वरूप वेजिटेबल्स प्रोडक्ट्स इंडस्ट्रीज (मैसर्स) और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 576

—अनुच्छेद 14, 16 और 309—(सपठित कनिष्ठ प्राख्यातओं को लागू होने वाले आन्ध्र प्रदेश ऐडहाक रूल्स, 1974, नियम 6)—कनिष्ठ प्राख्याता की कनिष्ठ वर्ग के महाविद्यालय के प्राचार्य के रूप में प्रोन्नति की जाना—पात्रता की सूची में से तृतीय श्रेणी के स्नातकोत्तर अध्यापकों को अपवर्जित कर दिया जाना विभेदात्मक नहीं है।

बी० वेंकट रेड्डी और अन्य बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य और अन्य 397

—अनुच्छेद 14, 16, 309 और 311—(सपठित आन्ध्र प्रदेश ऐडहाक रूल्स, 1973, नियम 3 और 13 तथा आन्ध्र प्रदेश ऐडहाक रूल्स, 1974, नियम 6)—कनिष्ठ प्राख्याताओं की ज्येष्ठता का अवधारण—तृतीय श्रेणी के स्नातकोत्तर प्राख्याताओं पर प्रथम और द्वितीय श्रेणी के स्नातकोत्तर कनिष्ठ प्राख्याताओं को अधिमान दिया जाना—प्रत्यर्थियों के पास चूंकि केवल तृतीय श्रेणी की स्नातकोत्तर उपाधियां थीं, फिर भी उन्हें पिटीशनरों से वरिष्ठ मान दिया गया था, जो कि अवैध है।

बी० वेंकट रेड्डी और अन्य बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य और अन्य 397

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

—अनुच्छेद 21 और 32—उच्चतम न्यायालय की रिट अधिकारित—बन्दी-प्रत्यक्षीकरण—विचारण न्यायालय द्वारा पिटीशनर को दोषसुक्त कर दिया जाना किन्तु उसे कारागार में अवैध रूप से निरुद्ध रखा जाना—उच्चतम न्यायालय को यह शक्ति प्राप्त है कि वह अभियुक्त के संबंध में रिहाई और प्रतिकर की बाबत आदेश पारित कर सके ।

रुदुल साह बनाम बिहार राज्य और एक अन्य 387

—अनुच्छेद 32—आनुकल्पिक उपचार का उपलब्ध होना—मूल अधिकार का उल्लंघन दर्शित न किया जाना—ऐसा रिट पिटीशन कायम नहीं रखा जा सकता ।

एस० के० भाटिया और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 474

—अनुच्छेद 32—उक्त अनुच्छेद के अधीन पिटीशन फाइल किया जाना—सारभूत तथ्यों को छिपाते हुए पिटीशनरों द्वारा स्थगन आदेश की मांग की जाना—न्यायालय द्वारा इस पर विचार नहीं किया जाना चाहिए ।

वैल्कम होटल और अन्य बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य और अन्य 563

—अनुच्छेद 32 और 21 [सपठित दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2)]—धारा 354 (5)—मृत्यु का दण्डादेश—ऐसे दण्डादेश का निष्पादन—दोषसिद्ध व्यक्ति को दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 354 (5) के अधीन यथा-उपबंधित रूप में गर्दन में रस्सी से फांसी लगाकर तब तक लटकाए रखने की पद्धति पर आक्षेप किया जाना, जब तक कि उसकी मृत्यु न हो जाए—संहिता की धारा 354 (5) की सांविधानिक विधिमान्यता को इस आधार पर दी गई चुनौती का प्रश्न कि किसी सिद्धदोष को रस्सी से फांसी पर लटकाना मृत्यु के दण्डादेश के निष्पादन की क्रूर और बर्बर पद्धति है और उससे अनुच्छेद 21 का अतिक्रमण होता है, तत्सम्बन्धी मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए अद्यतन निर्णय के बावजूद भी, अनुत्तरित और अनिर्णीत है और इसी कारण ये पिटीशन ग्रहण किए जाने के लायक हैं ।

दीना उर्फ दीनदयाल और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य 638

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

—अनुच्छेद 301—व्यापार, वाणिज्य और समागम की स्वतन्त्रता—क्षेत्र-कर्नाटक राज्य द्वारा दूसरे राज्यों में रजिस्ट्रीकृत यानों के सम्बन्ध में, जो अखिल भारतीय परमिटों पर परिचालित थे, कर से छूट देना—कुछ समय पश्चात् उस छूट को वापस लेना—राज्य के मोटर यान कराधान अधिनियम अनुच्छेद 301 के विस्तार के बाहर विनियमात्मक और प्रतिकरात्मक विधान है।

बी० ए० जयराम और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य 503

—अनुच्छेद 309 और 311—[सपठित आन्ध्र प्रदेश स्टेट एण्ड सबार्डिनेट सर्विस रूल्स, नियम 33 (सी)]—कनिष्ठ प्राख्याताओं की ज्येष्ठता का अवधारण—नियम 33 (सी) आन्ध्र प्रदेश ऐडहाक रूल्स, 1973 के नियम 1 और 2 के अधीन नियुक्तियों को लागू नहीं होता है।

बी० वेंकट रेड्डी और अन्य बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य और अन्य 397

—अनुच्छेद 317 (1)—लोक सेवा आयोग के किसी सदस्य को हटाया जाना—लोक सेवा आयोग के एक सदस्य द्वारा आयोग की अध्यक्ष के साथ कदाचार किए जाने का अभिकथन किया जाना—राष्ट्रपति द्वारा उच्चतम न्यायालय को जांच के लिए निर्देश किया जाना—कदाचार के आधार पर लोक सेवा आयोग के किसी सदस्य को हटाने के लिए राष्ट्रपति द्वारा उच्चतम न्यायालय को जांच का निर्देश करने के लिए यह कोई पूर्ववर्ती शर्त नहीं है कि वे पहले उस मामले के तथ्यों की जांच किसी अन्य निकाय या प्राधिकारी से करावाएं, स्वयं उच्चतम न्यायालय कदाचार के अभिकथन सम्बन्धी तथ्यों की जांच कर सकता है।

भारत के संविधान के अनुच्छेद 317 (1) के अधीन निर्देश के संबंध में 522

—अनुच्छेद 317 (1) और 145 [सपठित सुप्रीम कोर्ट रूल्स, 1966, आदेश 38; 47 नियम 6]—लोक सेवा आयोग की सदस्यता से हटाया जाना—लोक सेवा आयोग के सदस्य को कदाचार के आधार पर हटाए जाने की प्रक्रिया—

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ऐसे मामले में उच्चतम न्यायालय सुप्रीम कोर्ट रूल्स, 1966 के आदेश 38 के नियम 2 के अनुसार जांच करने तथा साक्षियों को समन करने, उनकी परीक्षा करने और उनके साक्ष्य के अभिलेख मंगवाने के लिए सशक्त है ।

भारत के संविधान के अनुच्छेद 317 (1) के अधीन निर्देश के सम्बन्ध में 522

सिविल सेवा

—स्थानापन्न आधार पर प्रोन्नति—यदि किसी सिविल सेवक को स्थानापन्न आधार पर उच्चतर पद पर प्रोन्नत किया जाता है, तो उसे उस पद का वेतन प्राप्त करने से तब तक वंचित नहीं किया जा सकता जब तक कि वंचित करने की बात को न्यायोचित ठहराने वाला नियम न हो, जिसकी विधिमान्यता को भी चुनौती दी जा सकेगी ।

पी० ग्रोवर (श्रीमती) बनाम हरियाणा राज्य और एक अन्य 545

———

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

नवम्बर, 1983

तुलनात्मक सारणी

क्रम सं०	निर्णय तथा दिनांक	ए० आई० आर०	एस० सी० आर०	एस० सी० सी०	एस० सी० जे०
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)
1.	रुदुल साह बनाम बिहार राज्य और अन्य (1.8.1983)	नवम्बर, 1983, 1086	—	(1983) 4 अक्तूबर 141	—
2.	वी० वेंकट रेड्डी और अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य (8.8.1983)	नवम्बर, 1983, 1108	—	—	—

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)
13.	स्वरूप वेजिटेबल्स प्रोडक्ट्स इण्डस्ट्रीज (मैसर्स) और अन्य **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (19.8.1983)	जनवरी, 1984, 20	—	(1983) 4 अक्तूबर 24	—
14.	राम नारायण अग्रवाल **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (23.8.1983)	—	—	(1983) 4 नवम्बर 276	—
15.	बेगुल्ला बापी राजू और अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य (23.8.1983)	नवम्बर, 1983, 1073	—	—	—
16.	दीना उर्फ दीनदयाल और अन्य **बनाम** भारत संघ और अन्य (23.9.1983)	नवम्बर, 1983, 1155	—	(1983) 4 दिसम्बर 645	—

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh
Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उच्चतम न्यायालय के कतिपय (प्रकाशनीय और अप्रकाशनीय) निर्णयों के महत्वपूर्ण मुद्दे *

5 नवम्बर, 1983 को समाप्त सप्ताह :

प्रशासनिक विधि :

1. सरकारी अधिकारी द्वारा किसी कानून का अर्थान्वयन—क्या यह उसके उपबंधों के निर्वचन के लिए नजीर का काम कर सकता है ?

अभिनिर्धारित—सरकारी अधिकारी द्वारा व्यक्त किया गया विधि या विधिक उपबन्ध का दृष्टिकोण किसी विधान के अर्थान्वयन का आधार नहीं बन सकता और न ही उसके अर्थान्वयन में मार्गदर्शन प्रदान कर सकता है। विधान का अर्थान्वयन करना न्यायालय का काम है और कानूनी उपबन्ध के सही अर्थ पर पहुंचने के लिए कार्यपालिका की राय सुसंगत नहीं है। साथ ही न्यायालय अपने कृत्य का परित्याग करके ऐसी राय के अनुसार कार्यवाही नहीं कर सकता।

बाबाजी कोन्डजी गरड़ बनाम नासिक मर्चेन्ट्स कोआपरेटिव बैंक लिमिटेड : विशेष इजाजत पिटीशन (सिविल) सं० 7732/83 जिसका विनिश्चय 31-10-1983 को किया गया।

न्यायाधिपति डी० ए० देसाई, ओ० चिन्नप्पा रेड्डी और वरदराजन।

2. क्या उपविधि कानूनी विधि के समतुल्य हो सकती है—उपविधि की स्थिति।

अभिनिर्धारित—किसी अधिनियम के अधीन बनाई गई सहकारी सोसाइटी की उपविधियों का स्वरूप कानूनी नहीं होता और न ही कानूनी रंग होता है जिससे कि उसे विधि की स्थिति प्राप्त हो सके। यदि कानून और अधीनस्थ विधान में मतभेद है तो वह कानून अधीनस्थ विधान पर अभिभावी रहेगा और यदि वह उपविधि कानून के अनुरूप नहीं है तो उसकी उपेक्षा करनी होगी।

बाबाजी कोन्डजी गरड़ बनाम नासिक मर्चेन्ट्स कोआपरेटिव बैंक लिमिटेड : विशेष इजाजत पिटीशन (सिविल) सं० 7732/83 जिसका विनिश्चय 31-10-1983 को किया गया।

माध्यस्थम् अधिनियम :

3. धारा 17—पंचाट के अनुसार निर्णय—उचित तारीख कौन-सी है ?

---

*उच्चतम न्यायालय की अनुज्ञा से प्रकाशित।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अभिनिर्धारित—मध्यस्थों या निर्णायक द्वारा दिए गए पंचाट और न्यायालय की डिक्री में कोई अन्तर नहीं हो सकता। मध्यस्थों को या निर्णायक को पंचाट में विनिमय दर देनी चाहिए जिसके हिसाब से विदेशी मुद्रा में दिलवाई गई राशि संपरिवर्तित की जानी है। यदि ऐसा नहीं किया जाता है तो पंचाट को अवैध मानकर यह अपने आप अपर्याप्त नहीं होगा। न्यायालय या तो संपरिवर्तन की तारीख नियत करने के लिए धारा 16 के अनुसार पंचाट दे सकता है या संपरिवर्तन की तारीख को अपना निर्णय मानकर या निकटतम तारीख या उस तारीख से पहले की बहुत निकट की तारीख मानकर ऐसा कर सकता है।

फोरासल बनाम तेल एवं प्राकृतिक गैस आयोग : रिट पिटीशन सं० 6 28/81 जिसका विनिश्चय 25-10-1983 को किया गया।

न्यायाधिपति मदान और सव्यसाची मुखर्जी।

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 :

4. आदेश 9, नियम 9—व्यतिक्रम के कारण निर्वाचन-अर्जी खारिज की जानी—क्या निर्वाचन अर्जीदार से भिन्न किसी व्यक्ति के निवेदन पर उसे पुनः स्थापित किया जा सकता है ?

अभिनिर्धारित—निर्वाचन अर्जी सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9 या आदेश 17 के अन्तर्गत आने वाली परिस्थितियों में व्यतिक्रम के कारण खारिज की जा सकती है और उसके पुनः स्थापन के लिए आवेदन आदेश 9; नियम 9 के अनुसार अर्जीदार ही कर सकता है।

डाक्टर पी० नल्ला थम्पी थेरा बनाम बी० एल० शंकर : सिविल अपील सं० 2922/81 जिसका विनिश्चय 28.10.1983 को किया गया।

न्यायाधिपति पी० एन० भगवती, ए० एन० सेन और रंगनाथ मिश्र।

संविदा :

5. विदेशी पार्टी और भारत सरकार के बीच संविदा—भारतीय रुपए और विदेशी मुद्रा में विनिमय दर संविदा या मध्यस्थ के पंचाट द्वारा नियत न की जानी—सुसंगत तारीख कौन-सी है ?

अभिनिर्धारित—न्यायालय को तारीख का चुनाव करना होगा जिससे वादी उसी स्थिति में आ जाए जिसमें वह होता यदि प्रतिवादी अपनी बाध्यता का

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

निर्वहन कर देता जब उसे यह ध्यान रखते हुए निर्वहन करना चाहिए था, और विनिमय दर बराबर एक सी नहीं रहती बल्कि समय-समय पर उतरती चढ़ती रहती है। उन सब बातों को ध्यान में रखते हुए डिक्री की तारीख विदेशी मुद्रा में भारतीय रुपए के संपरिवर्तन की तारीख मानी जाए।

फोरासल बनाम तेल एवं प्राकृतिक गैस आयोग : सिविल अपील सं० 628/81 जिसका विनिश्चय 25-10-1983 को किया गया।

न्यायाधिपति मदान और सव्यसाची मुखर्जी।

साक्ष्य :

6. धारा 155—साक्षी का चरित्र—भ्रष्ट व्यक्ति का इकबाली साक्षी बन जाना—उसके परिसाक्ष्य का साक्ष्यीय महत्व ?

अभिनिर्धारित—ऐसे साक्षी का परिसाक्ष्य जिसने यह संस्वीकार कर लिया है कि उसने एक निर्दोष महिला को भ्रष्ट तरीके से कपट-वंचित किया था, बारीकी से जांचा-परखा जाना चाहिए और सम्पुष्टि के अभाव में न्यायालय उस अभियुक्त का परिसाक्ष्य स्वीकार करने के लिए अनिच्छुक होना चाहिए जो घटना के 20 मास बाद इकबाली साक्षी बन गया है और जिसने अपने इकबाली साक्षी बनने के बाद अपीलार्थियों को अपराध में फंसाया है।

लालचन्द बनाम हरियाणा राज्य : दाण्डिक अपील सं० 82-84/77 जिनका विनिश्चय 25-10-1983 को किया गया। (अप्रकाशनीय)

न्यायाधिपति एस० मुर्तजा फजल अली और ठक्कर।

निर्वचन :

7. किसी कानून का अर्थान्वयन—क्या उस कानून की साम्या का सहारा लिया जा सकता है ?

अभिनिर्धारित—कानून की साम्या नाम से ज्ञात अर्थान्वयन अब प्रचलन में नहीं रहा है। पूर्वतर कानूनों की बाबत इसका बहुत प्रचलन था। हालांकि अब इसका प्रचलन नहीं रहा है, फिर भी कुछ उसी रूप में अभी तक प्रचलित है क्योंकि यदि यह प्रकट हो जाए कि न्याय के सिद्धांतों के अनुसार कुछ होना आवश्यक है जो किसी अधिनियम में अभिव्यक्त रूप से उपबंधित नहीं है तो न्यायालय शब्दों के अलावा अधिनियम की भावना और अर्थ को ध्यान में रखेगा।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बाबाजी कोन्डजी गरड़ बनाम नासिक मर्चेन्ट्स कोआपरेटिव बैंक लिमिटेड : विशेष इजाजत पिटीशन (सिविल) सं० 7732/83 जिसका विनिश्चय 31-10-1983 को किया गया।

न्यायाधिपति डी० ए० देसाई, ओ० चिन्नप्पा रेड्डी और ए० वरदराजन।

महाराष्ट्र सहकारी सोसाइटी अधिनियम, 1960 :

8. धारा 73-ख—परिधि—सहकारी सोसाइटी के निदेशक बोर्ड में निर्वाचन—दो स्थान अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति और कमजोर वर्गों के लिए आरक्षित—यदि आरक्षित स्थान पर कोई व्यक्ति निर्वाचित नहीं होता है तो संयुक्त विकल्प द्वारा स्थान भरे जायेंगे—आरक्षित स्थानों के बारे में अधिसूचना में कोई उल्लेख न किया जाना—क्या आरक्षित स्थान निर्वाचन द्वारा ही भरे जा सकते हैं—क्या संयुक्त विकल्प से अथवा नामनिर्देशन से कानूनी उपबंध की अपेक्षाएं पूरी हो जायेंगी ?

अभिनिर्धारित—"यदि ऐसे व्यक्ति निर्वाचित नहीं होते हैं" पद से यह पता चलता है कि प्रधानतः आरक्षित स्थान निर्वाचन द्वारा भरे जाने चाहिएं। संयुक्त विकल्प की पद्धति सदस्यों को निर्वाचित करने की निर्वाचन क्षेत्र की शक्ति को छीन लेती है और निदेशक बोर्ड जैसे एक छोटे से निकाय द्वारा हड़प ली जायेगी। स्थानों पर व्यक्तियों के निर्वाचित न होने की दशा में ही नियुक्ति का संयुक्त विकल्प का मार्ग अपनाया जा सकता है।

बाबाजी कोन्डजी गरड़ बनाम नासिक मर्चेन्ट्स कोआपरेटिव बैंक लिमिटेड : विशेष इजाजत पिटीशन (सिविल) सं० 7732/83 जिसका विनिश्चय 31-10-1983 को किया गया।

न्यायाधिपति डी० ए० देसाई, ओ० चिन्नप्पा रेड्डी और ए० वरदराजन।

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1951 :

9. धारा 5 (1) (क) और धारा 5(2) और धारा 161, दण्ड संहिता—दण्डादेश—उच्च न्यायालय द्वारा अभियुक्त को दोषमुक्त किया जाना—क्या उच्चतम न्यायालय दोषमुक्ति को उलट सकता है ?

अभिनिर्धारित—यदि यह न्यायालय दोषमुक्ति के आदेश में हस्तक्षेप नहीं करता है तो असाधारण स्थिति में ही यह न्यायालय अपना कर्तव्य पूरा करने में असफल रहेगा। उच्च न्यायालय के निर्णय में विधि की

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गम्भीर और सारवान गलतियां हैं। अभियुक्त के विरुद्ध लगाए गए आरोप स्पष्टत: साबित कर दिए गए हैं और उसकी दोषमुक्ति विधि और तथ्य दोनों के अनुसार त्रुटिपूर्ण है।

महाराष्ट्र राज्य बनाम नरसिंह राव गंगाराम पिम्पल: दाण्डिक अपील सं० 127/77 जिसका विनिश्चय 27-10-1983 को किया गया।

न्यायाधिपति एस० मुर्तजा फजल अली और ठक्कर।

प्रक्रिया :

10. पुलिस द्वारा लेखबद्ध इकबाली साक्षी के कथनों की प्रतिलिपियों पर अभियोजन-पक्ष द्वारा निर्भर न किया जाना—क्या ऐसी प्रतिलिपियां प्रतिरक्षा-पक्ष को दी जानी चाहिएं ?

अभिनिर्धारित—पुलिस द्वारा लेखबद्ध कथनों की प्रतिलिपियां इस अभिवाक् पर न दी जानी कि अभियोजन-पक्ष ने उनपर निर्भर करने की मांग नहीं की है, विचारण दूषित हो गया। प्रतिरक्षा-पक्ष को बहुत ही मूल्यवान अधिकार से, गलत रूप से, वंचित किया गया है।

लालचन्द बनाम हरियाणा राज्य: दाण्डिक अपील सं० 82-84/77 जिसका विनिश्चय 25-10-1983 को किया गया। (अप्रकाशनीय)

न्यायाधिपति एस० मुर्तजा फजल अली और ठक्कर।

लोकहित मुकदमा :

11. परमादेश रिट—क्या ऐसे रिट द्वारा रेलवे को यह निदेश दिया जा सकता है कि वह यात्रा करने वाली जनता के जान-माल की सुरक्षा सुनिश्चित करे और अकुशलता एवं भ्रष्टाचार का निराकरण करे ?

अभिनिर्धारित—इस प्रकार के मामले में निदेश देने में जिसमें कि संसाधनों की उपलभ्यता का तात्विक प्रभाव पड़ता है, पूर्विकता संबंधी नीति अन्तर्ग्रस्त होती है, बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं है। किन्तु साथ ही जबकि एक ओर संघ सरकार तथा रेल प्रशासन को रेल अधिनियम द्वारा उन पर डाली गई बाध्यताओं का अनुपालन करना चाहिए, दूसरी ओर नागरिकों को भी अपने कर्तव्यों से परिचित होना चाहिए तथा अपने अधिकारों को लागू करने की मांग करने से पहले उन्हें स्वेच्छया अपनी बाध्यताओं का पालन करना चाहिए। दुर्भाग्यवश, हमारे देश में व्यष्टिक अधिकारों पर अत्यधिक बल

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दिया जाता है जबकि तत्समान सामाजिक बाध्यताओं और उत्तरदायित्वों पर उचित बल नहीं दिया जाता ।

डा० पी० नल्ला थम्पी थेरा बनाम **भारत संघ** : रिट पिटीशन सं० 8911/81 जिसका विनिश्चय 28·10·83 को किया गया ।

न्यायाधिपति पी० एन० भगवती, ए० एन० सेन० और रंगनाथ मिश्र ।

लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 :

12. धारा 109 (1)—निर्वाचन अर्जी में से एक प्रार्थना का लोप—क्या निर्वाचन अर्जी वापस लेने के समान है ?

अभिनिर्धारित—निर्वाचन अर्जी में से एक प्रार्थना का लोप पूर्णतः निर्वाचन अर्जी वापस लेने के समान नहीं होगा । कोई कारण नहीं है कि किसी अनुतोष विशेष के लोप के बाद भी यदि निर्वाचन अर्जी कायम रहती है तो वह लोप निर्वाचन अर्जी वापस लेने के समान क्यों समझा जाए ।

डा० पी० नल्ला थम्पी थेरा बनाम **बी० एल० शंकर** : सिविल अपील सं० 2922/81 जिसका विनिश्चय 28.10.1983 को किया गया ।

न्यायाधिपति पी० एन० भगवती, ए० एन० सेन० और रंगनाथ मिश्र ।

13. अर्जीदार का निर्वाचन अर्जी में पैरवी करने में असफल रहना—क्या वह अर्जी खारिज की जा सकती है—क्या निर्वाचन अर्जीदार से भिन्न कोई व्यक्ति खारिज की गई अर्जी के पुनः स्थापन के लिए आवेदन कर सकता है ?

अभिनिर्धारित—अर्जी की पैरवी न करना या उसे छोड़ देना वापस लेना नहीं है । वापस लेना एक निश्चिततात्मक और स्वैच्छिक कार्य है जबकि पैरवी न करना या परित्याग करना जरूरी नहीं है कि स्वेच्छा का कार्य हो । उपेक्षा, उदासीनता, अकृत्यता आदि से ऐसा हो सकता है ।

अधिनियम एक स्वयं पूरित संहिता है, किन्तु धारा 87 के अनुसार यह अनुज्ञात है कि यदि अधिनियम में इसके प्रतिकूल कोई उपबन्ध नहीं है तो सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबन्ध लागू होंगे । अतः निर्वाचन अर्जी के निपटान में संहिता तभी लागू होती है जब अर्जीदार पेश नहीं होता या पैरवी

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के लिए कदम नहीं उठाता । किन्तु पुनः स्थापन का आवेदन केवल निर्वाचन अर्जीदार द्वारा फाइल किया जा सकता है, न कि प्रत्यर्थी द्वारा ।

डाक्टर पी० नल्ला थम्पी थेरा बनाम बी० एल० शंकर : सिविल अपील सं० 2922/81 जिसका विनिश्चय 28·10 1983 को किया गया ।

न्यायाधिपति पी० एन० भगवती, ए० एन० सेन और रंगनाथ मिश्र ।

इस भाग में प्रकाशित मामले

	मद सं०
1. बाबाजी कोन्डजी गरड़ बनाम नासिक मर्चेन्ट्स कोआपरेटिव बैंक लिमिटेड, नासिक	1,2, और 8 (प्रका०)
2. फोरासल बनाम तेल एवं प्राकृतिक गैस आयोग	3 और 5 (प्रका०)
3. लालचन्द बनाम हरियाणा राज्य	6 और 10 (अप्रका०)
4. नल्ला थम्पी थेरा डा० पी० बनाम शंकर बी० एल०	4,12 और 13 (प्रका०)
5. नल्ला थम्पी थेरा डा० पी० बनाम भारत संघ	11 (प्रका०)
6. महाराष्ट्र राज्य बनाम नरसिंहराव गंगाराम पिम्पल	9 (प्रका०)

---

12 नवम्बर 1983 को समाप्त सप्ताह :

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 :

1. धारा 100—पुनर्विलोकन—निचले न्यायालय में तथ्य और विधि का मुद्दा न उठाया जाना और न ही उसपर विचार किया जाना—क्या पुनर्विलोकन अर्जी में उस पर विचार किया जा सकता है ?

अभिनिर्धारित—अर्जी में उच्च न्यायालय विधि और तथ्य की त्रुटियों पर निचले न्यायालयों के निर्णयों को पहली बार पुनर्विलोकन में अपास्त नहीं कर सकता । उसे अभिवचनों के अनुसार ही उत्पन्न अतिरिक्त विवाद्यक विरचित

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

करने चाहिएं और अधिक साम्यापूर्ण और न्यायसंगत पद्धति अपनानी चाहिए तथा उन विवाद्यकों पर विचारण न्यायालय से निष्कर्ष अपेक्षित करने चाहिएं ।

सुन्दरराज बनाम देवसहायम : सिविल अपील सं० 10083/83 जिसका विनिश्चय 24·10·1983 को किया गया ।
न्यायाधिपति ए० पी० सेन और ए० वरदराजन ।

संविधान, 1950 :

2. अनुच्छेद 39 (ख) और (ग)—परिधि ?

अभिनिर्धारित—यदि राज्य अनुच्छेद 39 (ख) और (ग) में वर्णित प्रयोजनों के लिए कतिपय वस्तुओं या सम्पत्तियों में व्यापार का एकाधिकार प्राप्त करना चाहता है तो अनुच्छेद 31 (2) अपवर्जित हो जाएगा । अर्जित सम्पत्ति का प्रतिकर पर्याप्त है या नहीं, इसे न्यायालय द्वारा प्रश्नगत नहीं किया जा सकता जब तक कि उपबंधित प्रतिकर युक्तियुक्त है और भ्रामक नहीं है ।

तमिलनाडु राज्य बनाम अबू कबूर बाई : सिविल अपील सं० 957-966 (एन)/73 जिनका विनिश्चय 31·10·1983 को किया गया ।
मुख्य न्यायाधिपति वाई० वी० चन्द्रचूड़, न्यायाधिपति एस० मुर्तजा फजल अली, वी० डी० तुलजापुरकर, ओ० चिन्नप्पा रेड्डी और ए० वरदराजन ।

औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 :

3. धारा 2 (णण)—छंटनी—परिवीक्षाकाल में सेवा-समाप्ति—क्या यह "छंटनी" की कोटि में आती है ?

अभिनिर्धारित—इस धारा में दी गई परिभाषा के अनुसार छंटनी के अन्तर्गत इसमें वर्णित प्रवर्गों के सिवाए सेवा-समाप्ति का प्रत्येक मामला आता है । किसी परिवीक्षाधीन की सेवा-समाप्ति छंटनी के समान होगी । अतः धारा 25 च की अपेक्षाओं का अनुपालन किया जाना चाहिए । सुन्दर मोनी वाले मामले [(1976) 3 एस० सी० आर० 163] में इस न्यायालय का विनिश्चय, जिसका अनुसरण अनेक विनिश्चयों में किया गया है, सर्व-सम्मति से स्वीकार किया गया है, अतः विपरीत व्यवस्था देने की कोई गुंजाइश नहीं है ।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कर्नाटक राज्य सड़क परिवहन निगम का **प्रबन्ध-मण्डल** बनाम **बोर्या एम० :** सिविल अपील सं० 3085/81 जिसका विनिश्चय 1·11·1983 को किया गया।

न्यायाधिपति ए० एन० सेन और रंगनाथ मिश्र।

निर्वचन :

4. उद्योग का राष्ट्रीयकरण—आजीविका से वंचित करना—क्या यह सम्पत्ति के अधिहरण की कोटि में आता है।

अभिनिर्धारित—जब एक बार राष्ट्रीयकरण विधिमान्य अभिनिर्धारित कर दिया जाए तो उसका कोई भी परिणाम ध्यान में नहीं रखा जा सकता अन्यथा कोई भी सामाजिक उद्धार करना संभव नहीं होगा। राष्ट्रीयकरण की सब स्कीमें जनकल्याण के लिए हैं, अतः समष्टिगत कल्याण के लिए व्यष्टिगत हितों का बलिदान करना होगा।

तमिलनाडु राज्य बनाम **अबू कबूर बाई :** सिविल अपील सं० 957-966 (एन)/73 जिनका विनिश्चय 31·10·1983 को किया गया।

मुख्य न्यायाधिपति वाई० वी० चन्द्रचूड, न्यायाधिपति एस० मुर्तजा फजल अली, वी० डी० तुलजापुरकर, ओ० चिन्नप्पा रेड्डी और ए० वरदराजन।

दण्ड संहिता :

5. धारा 408—आपराधिक न्यास-भंग—क्या अभियुक्त को प्रतिनिधायी रूप से जिम्मेदार ठहराया जा सकता है?

अभिनिर्धारित—कोई व्यक्ति दूसरे अभियुक्त द्वारा किए गए किन्हीं कार्यों के लिए या दुर्विनियोजन के लिए प्रतिनिधायी अर्थ में आपराधिक रूप से जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता। वित्तीय कार्यों में उसके द्वारा ध्यान-पूर्वक और सतर्कता से कार्य न करना इस बात का सबूत नहीं है कि उसका आशय आपराधिक न्यास-भंग का अपराध करना था। प्रस्तुत मामले में, षडयंत्र का आरोप सिद्ध नहीं हो सका, इसलिए यह साबित करने का भार अभियोजनपक्ष पर है कि अभियुक्त लोप और कृत्य दोनों से प्रत्यक्षतः या व्यक्तिगत रूप से संसक्त था। अभियुक्त को अपराध से जोड़ने वाला कोई प्रत्यक्ष साक्ष्य पेश नहीं किया गया।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जैतसुर सुरंगभाई बनाम गुजरात राज्य : दाण्डिक अपील सं० 260/72 जिसका विनिश्चय 9·11·1983 को किया गया।

न्यायाधिपति एस० मुर्तजा फजल अली, आर० बी० मिश्र और ठक्कर।

रेल अधिनियम, 1890 :

6. धारा 27 क रेल द्वारा माल परिवहन के लिए निदेश देने के लिए केन्द्रीय सरकार को सशक्त करती है—धारा 28 किसी व्यक्ति या निकाय विशेष को अयुक्तियुक्त अधिमानता देने पर प्रतिषेध लगाती है—धारा 27 क के अधीन अधिमान यातायात अनुसूची जारी की जानी—उसके द्वारा केन्द्रीय सरकार को विनिर्दिष्ट माल और परेषण की बाबत लोकहित में अधिमान व्यवहार देने के लिए सशक्त करना—क्या अधिमान यातायात अनुसूची मनमानी है और धारा 27 क का उल्लंघन करती है—क्या रास्ते के स्टेशनों से कोयले की आगे बुकिंग वर्जित करना मूल अधिकारों पर अयुक्तियुक्त निर्बन्धन लगाना है ?

अभिनिर्धारित—नियोजित आधार पर माल लाने-ले जाने को युक्तिसंगत बनाने के लिए बनाई गई अधिमान यातायात अनुसूची मनमानी और धारा 27 क के उल्लंघनकारी नहीं कही जा सकती। पिटीशनर छोटे कोयला व्यापारी हैं। वे वैसी स्थिति में नहीं हैं जैसे केन्द्रीय या राज्य सरकारों या प्रायोजित और सिफारिश प्राप्त परिवहन मालिक जिन्हें इसलिए पूर्विकता दी जाती है कि वे देश के व्यापक हित में सेवा करेंगे और न ही ये आदेश कोयला बेचने के पिटीशनरों के व्यापार पर पूर्ण वर्जन लगाते हैं। अतः लोकहित में अधिरोपित निर्बन्धन युक्तियुक्त हैं। रास्ते के कुछ स्टेशनों से कोयले की आगे बुकिंग अनेक बातों को ध्यान में रखकर वर्जित की गई थी। यदि इस प्रक्रिया में कुछ लोगों को नुकसान पहुंचा है तो यह नहीं कहा जा सकता कि यह संविधान के अनुच्छेद 14 या 19 (1) (छ) का उल्लंघन करती है।

विक्लद कोल मर्चेन्ट, पटियाला बनाम भारत संघ : रिट पिटीशन सं० 6822/82 जिसका विनिश्चय 28.10.1983 को किया गया।

न्यायाधिपति डी० ए० देसाई और ओ० चिन्नपा रेड्डी।

लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 :

7. धारा 97—निर्वाचन अर्जी में विजयी अभ्यर्थी के निर्वाचन को आक्षेपित किया जाना– मतगणना में त्रुटि से संबंधित प्रत्यारोप लगाने वाली

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अर्जी अपीलार्थी द्वारा फाइल की जानी—सहमत पक्षकारों का पुनः मतगणन के परिणाम से आबद्ध होना—पुनः गणना करने पर प्रत्यर्थी को निर्वाचित घोषित किया जाना—क्या निर्वाचन की घोषणा विधिमान्य है ?

अभिनिर्धारित—जवर सिंह बनाम गेंदालाल (1964) 6 एस० सी० आर० 54 प्रभेद्य है, क्योंकि उस मामले में विजयी अभ्यर्थी ने धारा 97 के उपबंधों के अनुसार प्रत्यारोप नहीं लगाया था, किन्तु प्रस्तुत मामले में अपीलार्थी ने स्वीकृत रूप से प्रत्यारोप किया था और उसने एक आधार यह भी अपनाया था कि प्रत्यर्थी की मतगणना के समय त्रुटि की गई है। दूसरे, अपीलार्थी अभ्यर्थियों द्वारा प्राप्त मतों की पुनः गणना के लिए सहमत था, अतः पुनः गणना के परिणाम से आबद्ध है ।

अजमत खान बनाम खिलान सिंह : सिविल अपील सं० 236/83 जिसका विनिश्चय 8.11.1983 को किया गया ।

न्यायाधिपति एस० मुर्तजा फजल अली और ई० एस० वैंकटरामय्या ।

मोटरयान अधिनियम 1939 :

8. तमिलनाडु स्टेज केरेजिस एण्ड कंट्रेक्ट केरेजिस (एक्विजिशन) ऐक्ट, 1973—राज्य परिवहन और कुछ आस्तियों का राष्ट्रीयकरण—क्या ऐसा विधान अधिहरणात्मक विधान है ?

अभिनिर्धारित—जब संविधान के अनुच्छेद 39 (ख) और (ग) में दिए गए निदेशक सिद्धांतों के अनुसार किसी उद्योग का लोकहित में राष्ट्रीयकरण किया जाता है तो आमतौर पर न्यायालय विधायी नीति से परे नहीं जाएगा और जब एक बार राष्ट्रीयकरण की नीति विधिमान्य अभिनिर्धारित कर दी जाए तो उसके किन्हीं परिणामों पर विचार नहीं किया जाना चाहिए । जहां अनुच्छेद 39 (ख) और (ग) के अधीन सम्पत्ति का अर्जन लोकहित में किया जाए, वहां अनुच्छेद 31 (ग) की दृष्टि से अनुच्छेद 31 (2) अपवर्जित हो जाएगा । न्यायालय तब तक प्रतिकर की पर्याप्तता को प्रश्नगत नहीं करेंगे जब तक कि उपबंधित प्रतिकर भ्रामक न दर्शित कर दिया जाए । अधिनियम के विभिन्न उपबंधों और उद्देशिका से साफ पता चलता है कि यह एक प्रगतिशील विधान है और इसका उद्देश्य बस प्रचालकों की सम्पत्ति का अधिहरण करना नहीं है । अधिनियम में उपबंधित प्रतिकार के सिद्धांत इतने व्यापक हैं कि बस प्रचालकों को निष्पक्ष रूप से युक्तियुक्त प्रतिकार का संदाय सुनिश्चित है ।

तमिलनाडु राज्य बनाम अबू कबूर वाई

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

शब्द और पद :

9. संविधान का अनुच्छेद 39 (ख)—"बांटना" शब्द का अर्थ ?

अभिनिर्धारित—"बांटना" शब्द का यह विशुद्ध शाब्दिक अर्थ नहीं किया जा सकता कि इससे किसी विशेष प्रकार की सम्पत्ति या विशिष्ट वस्तुओं का विभाजन ही अभिप्रेत है (जैसे उदाहरण के लिए बड़े-बड़े जमींदारों की अतिरिक्त भूमि का भूमिहीन लोगों में बांटना)। राज्य के दूर-दूर क्षेत्रों में परिवहन सुविधा सुलभ कराने के लिए सड़क परिवहन का राष्ट्रीयकरण अनुच्छेद 39 (ख) के अर्थ में जनसाधारण की भलाई के लिए बांटना है। यह शब्द इतना व्यापक है कि इसमें प्रभाजन, आबंटन, विभाजन, वर्गीकरण आदि आदि भी शामिल हैं।

तमिलनाडु राज्य बनाम अबू कबूर बाई : सिविल अपील सं० 957-966 (एन)/73 जिनका विनिश्चय 31.10.1983 को किया गया।

मुख्य न्यायाधिपति वाई० वी० चन्द्रचूड़, न्यायाधिपति एस० मुर्तजा फजल अली, वी० डी० तुलजापुरकर, ओ० चिन्नप्पा रेड्डी और ए० वरदराजन।

10. "समुदाय के भौतिक संसाधन"—अर्थ ?

अभिनिर्धारित—संविधान के अनुच्छेद 39(ख) में आए हुए "समुदाय के भौतिक संसधान" पद इतना व्यापक है कि इसके अन्तर्गत केवल नैसर्गिक या भौतिक सम्पदा ही नहीं आती बल्कि जंगम और स्थावर सम्पत्तियां भी आती हैं।

तमिलनाडु राज्य बनाम अबू कबूर बाई : सिविल अपील सं० 957-966 (एन)/73 जिनका विनिश्चय 31.10.1983 को किया गया।

मुख्य न्यायाधिपति वाई० वी० चन्द्रचूड़, न्यायाधिपति एस० मुर्तजा फजल अली, वी० डी० तुलजापुरकर, ओ० चिन्नप्पा रेड्डी और ए० वरदराजन।

———————

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इस भाग में प्रकाशित मामले

	मद सं०	
1. अजमत खान बनाम खिलान सिंह	(7)	(प्रका०)
2. जैतपुर सुरंगभाई बनाम गुजरात राज्य	(5)	(प्रका०)
3. कर्नाटक राज्य सड़क परिवहन निगम का प्रबन्ध-तंत्र बनाम बोरैया एम०	(3)	(प्रका०)
4. सुन्दरराजन बनाम देवसहायम	(1)	(प्रका०)
5. तमिलनाडु राज्य बनाम अबू कवूर बाई	(2,4,8, 9 और 10)	(प्रका०)
6. विक्लद कोल मर्चेन्ट, पटियाला बनाम भारत संघ	(6)	(प्रका०)

---

19 नवम्बर, 1983 को समाप्त सप्ताह :

प्रशासनिक विधि :

1. प्रशासनिक अधिकरण—क्या उसके आदेशों के कारण दिए जाने चाहिए ?

अभिनिर्धारित—प्रशासनिक अधिकरणों में लोगों की आस्था तभी रह सकती है जब अधिकरण निष्पक्ष होकर कार्य करें और अपने समक्ष वाले मामले का निपटारा अच्छी तरह सोच-विचार कर दिए गए आदेशों द्वारा करें। आक्षेप कर्ता को सुसंगत सामग्री देने से इन्कार करना आवेदक के पक्ष-कथन का जवाब देने के लिए उन्हें युक्तियुक्त अवसर देने से वंचित करने के समान हो सकता है और दूसरे के पक्षकथन का उत्तर देने के लिए युक्ति-युक्त अवसर से वंचित करना नैसर्गिक न्याय से वंचित करना है।

बाम्बे आयल इंडस्ट्रीज (प्राइवेट) लिमिटेड बनाम भारत संघ : सिविल अपील सं० 3191/83 आदि जिनका विनिश्चय 14.11.1983 को किया गया।

मुख्य न्यायाधिपति वाई० वी० चन्द्रचूड़, न्यायाधिपति ई० एस० वेंकटरामय्या और आर० बी० मिश्र।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

2. मुख्यमंत्री और मंत्री—क्या किसी कानूनी प्राधिकरण के कृत्यों को बलपूर्वक छीन सकते हैं ?

अभिनिर्धारित—हमारी शासन-प्रणाली में मुख्यमंत्री, संबंधित मंत्री से कोई भी जानकारी मांग सकता है और राज्य के सामान्य प्रशासन के लिए निदेश जारी कर सकता है किन्तु स्वयं किसी कानूनी प्राधिकरण के कृत्य नहीं कर सकता। कार्यपालिका संविधान के या किसी विधि के उपबंधों के प्रतिकूल नहीं जा सकती। सहकारी बैंक के निदेशकों की पदावधि बढ़ाते हुए जोकि उपविधियों के अनुसार अनिवार्यतः रजिस्ट्रार का काम है, मुख्यमंत्री की शक्ति में नहीं था। ऐसी कार्यवाही उपविधियों के उल्लंघन में की गई। इसी प्रकार मंत्री भी किसी अधिनियम के अधीन गठित प्राधिकरण के कानूनी कृत्यों को स्वयं अपने हाथ में नहीं ले सकता।

चन्द्रिका झा बनाम बिहार राज्य : सिविल अपील सं० 10296/83 जिसका विनिश्चय 27.10.1983 को किया गया।

न्यायाधिपति ए० पी० सेन और ई० एस० वेंकटरामय्या।

बिहार और उड़ीसा सहकारी समितियां अधिनियम, 1975 :

3. धारा 65-क—उपविधि 29—सहकारी बैंक का प्रथम निदेशक बोर्ड रजिस्ट्रार द्वारा नाम-निर्देशित किया जाना—अवधि समाप्त होने पर मुख्यमंत्री द्वारा समय-समय पर निदेशकों की पदावधि बढ़ा दी गई—संबंधित मंत्री द्वारा नामों की सूचियां इन निदेशों के अनुसार भेजी जानी कि उनमें से निदेशकों की नियुक्ति की जाए—विधिमान्यता ?

अभिनिर्धारित—उपविधि 29 के अनुसार बैंक के निदेशक के नाम-निर्देशन की शक्ति का प्रयोग रजिस्ट्रार करेगा। मुख्यमंत्री या संबंधित मंत्री को समय-समय पर निदेशकों की पदावधि बढ़ाने के लिए इस उपविधि के अधीन रजिस्ट्रार के कानूनी कृत्यों को अपने हाथ में लेने की शक्ति नहीं थी। मंत्री ने उस रीति का निदेश देकर जिसमें निदेशक बोर्ड का गठन उसके द्वारा नामनिर्देशित नामों की सूची में किया जाना था, अपने प्राधिकार के बाहर कार्य किया है। साथ ही यह धारा 65क के अधीन राज्य सरकार की पुनरीक्षण शक्तियों के प्रयोग का मामला भी नहीं है क्योंकि रजिस्ट्रार के समक्ष कोई लम्बित कार्यवाही नहीं थी और न ही रजिस्ट्रार ने इस धारा में विनिर्दिष्ट किसी विषय पर कोई आदेश पारित किया है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

चन्द्रिका झा बनाम बिहार राज्य : सिविल अपील सं० 10296/83 जिसका विनिश्चय 27.10.1983 को किया गया ।

न्यायाधिपति ए० पी० सेन और ई० एस० वेंकटरामय्या ।

संविधान 1950 :

4. अनुच्छेद 39 (च)—बालक अधिनियम (पश्चिमी बंगाल), 1959—किशोर अपचारी की आयु से संबंधित प्रश्न निचले न्यायालयों में न उठाया जाना—पहली बार उच्चतम न्यायालय में उठाया जाना—क्या उच्चतम न्यायालय में यह दलील अनुज्ञात की जानी चाहिए ?

अभिनिर्धारित—संविधान के अनुच्छद 39 (च) के साथ पठित अधिनियम के कल्याणकारी उपबंधों में अन्तर्निहित आशय की दृष्टि से यह तकनीकी दलील कि अभियुक्त की आयु से संबंधित प्रश्न विचारण न्यायालय में नहीं उठाया गया, इसलिए इस न्यायालय में पहली बार नहीं उठाया जा सकता, अनुज्ञात नहीं की जा सकती क्योंकि इससे अधिनियम के उपबंधों का फायदा अभियुक्त को नहीं मिल पाएगा जिसके लिए वह अन्यथा हकदार है ।

गोपीनाथ घोष बनाम पश्चिमी बंगाल राज्य : दाण्डिक अपील सं० 623/83 जिसका विनिश्चय 11.11.1983 को किया गया ।

न्यायाधिपति डी० ए० देसाई और ए० एन० सेन ।

बालक अधिनियम, 1959 (पश्चिमी बंगाल अधिनियम) :

5. अभियुक्त एक 18 वर्षीय लड़का—आयु के प्रश्न पर विचारण के समय विचार नहीं किया गया—क्या विचारण दूषित है—धारा 25—व्याप्ति ?

अभिनिर्धारित—अधिनियम की धारा 25 किशोर अपचारी के विचारण पर निषेध लगाती है । किशोर अपराधी की दशा में न्यायालय केवल अधिनियम की धारा 25 में यथाउपबंधित संबद्ध मामलों के विचारण के लिए दण्ड प्रक्रिया संहिता के उपबंधों के अनुसार जांच करा सकता है । अतः अभियुक्त का विचारण, भारतीय दण्ड संहिता की धारा 302 के अधीन उसकी दोषसिद्धि और इस मामले में आजीवन कारावास का दण्ड देना अधिकारिता से बाहर और दूषित है ।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गोपीनाथ घोष बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य** : दाण्डिक अपील सं० 623/83 जिसका विनिश्चय 11.11.1983 को किया गया।

न्यायाधिपति डी० ए० देसाई और ए० एन० सेन।

सिविल सेवा :

6. पदच्युति—अवचार—यह अभिकथन किया जाना कि अपीलार्थी ने एक रुपया प्रति मामले का विहित शुल्क लिए बिना अभिलेखों का निरीक्षण अनुज्ञात कर दिया—क्या पदच्युति न्यायोचित है ?

अभिनिर्धारित—दण्ड अवचार की गम्भीरता के अनुपात में और अवचार द्वारा की गई हानि की मात्रा में होना चाहिए। यदि अपीलार्थी अवचार का दोषी पाया गया है तो उसे दण्ड दिया जाना चाहिए। किन्तु राजकोष को जो नुकसान हुआ, वह बहुत नगण्य था, इसलिए पदच्युति का दण्ड अपेक्षाकृत अनुपात में भारी है। (पदच्युति अपास्त कर दी गई और अपीलार्थी को सेवा में लगातार बनाए रखकर बहाल किए जाने और पिछला 50 प्रतिशत वेतन देने का निदेश दिया गया। किन्तु साथ ही भविष्य में तीन वेतन वृद्धियां रोकने का निदेश भी दिया गया)।

धर्म चन्द बनाम **पंजाब-हरियाणा उच्च न्यायालय** : सिविल अपील सं० /83 जिसका विनिश्चय 19.9.1983 को किया गया। (अप्रकाशनीय)

न्यायाधिपति डी० ए० देसाई और ए० एन० सेन।

किशोर अपचारी :

7. किशोर की आयु का अवधारण—विचारण न्यायालयों द्वारा अपनाई जानी वाली प्रक्रिया के बारे में निदेशक-तत्व ?

अभिनिर्धारित—जब मजिस्ट्रेट को अपने समक्ष प्रस्तुत अभियुक्त किशोर प्रतीत हो तो उसे सबसे पहले घटना की तारीख को उसकी आयु के बारे में जांच करनी चाहिए। यदि आवश्यक हो तो उस अपचारी को उसकी आयु के बारे में साक्ष्य लेने के लिए चिकित्सा बोर्ड के पास भेजा जा सकता है और अभियुक्त को भी साक्ष्य देने के लिए बुलाया जा सकता है। इससे पहली बार इस न्यायालय में आयु का प्रश्न उठाने की नौबत नहीं आयेगी।

गोपीनाथ घोष बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य** : दाण्डिक अपील सं० 623/83 जिसका विनिश्चय 11.11.1983 को किया गया।

न्यायाधिपति डी० ए० देसाई और ए० एन० सेन।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नैसर्गिक न्याय :

8. प्रशासनिक अधिकरण—आदेश के कारण न देना—क्या नैसर्गिक न्याय से वंचित करने के समान है ?

अभिनिर्धारित—अधिकरणों के आदेश के कारण न देना दूसरे पक्ष के कथन का उत्तर देने के लिए सम्बंधित पक्ष को युक्तियुक्त अवसर से वंचित करने के समान हो सकता है । दूसरे पक्ष के कथन का उत्तर देने के लिए युक्तियुक्त अवसर न देना नैसर्गिक न्याय से वंचित करना है ।

बाम्बे आयल इन्डस्ट्रीज (प्राइवेट) लिमिटेड बनाम भारत संघ : सिविल अपील सं० 3191/82 जिसका विनिश्चय 14.11.1983 को किया गया ।

मुख्य न्यायाधिपति वाई० वी० चन्द्रचूड़ और न्यायाधिपति ई० एस० वेंकटरामय्या और आर० बी० मिश्र ।

प्रक्रिया :

9. भूमि के बारे में विवाद—हत्या—अभियुक्त को सेशन न्यायाधीश द्वारा सिद्धदोष ठहराया जाना—सिविल विवाद समझौते द्वारा तय किया जाना—क्या अभियुक्त को आपराधिक मामले में, साक्ष्य को ध्यान में रखे बिना, दोषमुक्त किया जा सकता है ?

अभिनिर्धारित—उच्च न्यायालय ने दाण्डिक अपील का निपटारा असाधारण ढंग से किया । यह देखकर कि हत्या का अपराध उपशमित नहीं किया जा सकता, उच्च न्यायालय ने अभियुक्त को दोषमुक्त करने का सुगम मार्ग अपनाया । उच्च न्यायालय के ऐसे निर्णय को कायम रहने देना न्यायसगत नहीं होगा ।

जय सिंह बनाम स्वर्ण सिंह : दाण्डिक अपील सं० 562/83 जिसका विनिश्चय 14.11.1983 को किया गया ।

मुख्य न्यायाधिपति वाई० वी० चन्द्रचूड़ और न्यायाधिपति ई० एस० वेंकटरामय्या ।

10. निर्वाचन अर्जी—उच्च न्यायालय द्वारा दो पैरे निकाल दिए जाने—उच्च न्यायालय का आदेश उलट दिया गया—मामला उच्च न्यायालय में वापस भेजा जाना—उच्च न्यायालय द्वारा पुनः उन पैरों की उपेक्षा करना—औचित्य ?

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अभिनिर्धारित—जब इस न्यायालय ने उच्च न्यायालय का विनिश्चय अपास्त कर दिया तो वह देश की विधि बन गया और आदेश का पालन करना न कि उसकी अवेहलना करने की कोशिश करना उच्च न्यायालय समेत प्रत्येक का कर्तव्य है। साथ ही उच्च न्यायालय इस न्यायालय के आदेश में कोई कमी नहीं निकाल सकता है ?

नरेन्द्र सिंह बनाम सुरजीत सिंह : सिविल अपील सं० 3174/81 जिसका विनिश्चय 26.10.1983 को किया गया। (अप्रकाशनीय)

न्यायाधिपति एस० मुर्तजा फजल अली, आर० बी० मिश्र और ठक्कर।

11. कल्याणकारी विधान—तकनीकी प्रश्न—क्या ऐसे प्रश्न ऐसे विधान के क्रियान्वयन को दबाने के लिए अनुज्ञात किए जा सकते हैं ?

अभिनिर्धारित—जबकि आमतौर पर यह न्यायालय पहली बार अपने समक्ष किए गए तथ्य सम्बन्धी प्रकथनों पर आधारित दलील स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होगा, वह मात्र तकनीकी मुद्दे का सहारा लेकर अत्यन्त सामाजिक प्रगतिशील कानून के कल्याणकारी उपबन्धों में अन्तर्निहित आशय की अपेक्षा करने के लिए भी अनिच्छुक होगा।

गोपीनाथ घोष बनाम पश्चिमी बंगाल राज्य : दाण्डिक अपील सं० 623/83 जिसका विनिश्चय 11.11.1983 को किया गया।

न्यायाधिपति डी० ए० देसाई और ए० एन० सेन।

कराधान :

12. आयकर अधिनियम, 1961—धारा 132 (8), (10) और (12)—व्याप्ति—आयकार अधिकारी द्वारा निर्धारिती की लेखा पुस्तिकाएं अभिगृहीत किया जाना और 180 दिन के बाद रखे रखना—क्या राजस्व विभाग इस बात के लिए बाध्य है कि वह उन लेखा-पुस्तकों को रखने के आयुक्त के अनुमोदन और उसके कारणों से या समय-समय पर बढ़ाई गई अवधि निर्धारिती को संसूचित करे ?

अभिनिर्धारित—राजस्व विभाग यथा शीघ्र सम्बन्धित व्यक्ति को न कि मात्र अभिगृहीत पुस्तकों को रखने के लिए आयुक्त के अनुमोदन को बल्कि उन लेखबद्ध कारणों को भी, जिनके आधार पर वे अभिगृहीत की गई थीं, संसूचित करने के लिए कानूनी तौर पर बाध्य है। ऐसी संसूचना के बिना

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

और आगे लेखा-पुस्तकें रखना अविधिमान्य और विधिविरुद्ध होगा। ऐसी बाध्यता समय-समय पर दिए गए प्रत्येक अनुमोदन के बारे में है।

आयकर आयुक्त बनाम ओरियण्टल रबड़ वर्क्स : सिविल अपील सं० 1652/73 जिसका विनिश्चय 15.11.1983 को किया गया।

न्यायाधिपति बी० डी० तुलजापुरकर, बालकृष्ण एराडी और मदान।

13. विवादग्रस्त कर—अपील के लम्बन के दौरान बैंक गारन्टी देना—क्या यह उचित पद्धति है ?

अभिनिर्धारित—जब किसी विवादग्रस्त कर की बाबत अपील इस न्यायालय के समक्ष लम्बित होती है तो निर्धारित कर के लिए बैंक गारन्टी देने से न तो राजस्व को मदद मिलती है और न ही निर्धारिती को। इससे केवल बैंकों को ही फायदा होता है।

(निर्धारिती को निदेश दिया गया था कि शुल्क की विवादग्रस्त रकम का 50 प्रतिशत 6 मास के भीतर संदत्त कर दिया जाए और अपील के अन्तिम निपटारे तक उसे कायम रखते हुए अतिशेष के लिए बैंक गारन्टी दे। यदि निर्धारिती सफल हो जाता है तो उसे 18 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज सहित प्रतिप्रेषण मिलना चाहिए, यदि वह असफल रहता है तो उसे विनिश्चय की तारीख से दो मास के भीतर 18 प्रतिशत प्रतिवर्ष ब्याज सहित शुल्क का संदाय करना चाहिए।)

जैन शुद्ध वनस्पति लिमिटेड बनाम भारत संघ : सिविल अपील सं०/83 जिसका विनिश्चय 30.9.1983 को किया गया। (अप्रकाशनीय)

न्यायाधिपति डी० ए० देसाई और ए० एन० सेन।

इस भाग में प्रकाशित मामले

	मद सं०	
1. बाम्बे आयल इन्डस्ट्रीज (प्राइवेट) लिमिटेड बनाम भारत संघ	(1 और 8)	(प्रका०)
2. चन्द्रिका झा बनाम बिहार राज्य	(2 और 3)	(प्रका०)
3. आयकर आयुक्त, पश्चिमी बंगाल बनाम ओरियण्टल रबड़ वर्क्स	(12)	(प्रका०)

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

4. धर्म चन्द बनाम पंजाब-हरियाणा उच्च न्यायालय (6) (अप्रका०)
5. गोपीनाथ घोष बनाम पश्चिमी बंगाल राज्य (4,5, 7 और 11) (प्रका०)
6. जय सिंह बनाम स्वर्ण सिंह (9) (प्रका०)
7. जैन शुद्ध वनस्पति लिमिटेड बनाम भारत संघ (13) (अप्रका०)
8. नरेन्द्र सिंह बनाम सुरजीत सिंह (10) (अप्रका०)

---

26 नवम्बर 1983 को समाप्त सप्ताह :

सिविल सेवा :

1. प्रोन्नतों और सीधे भर्ती वालों की परस्पर ज्येष्ठता—नियोजक को एक पक्षकार के रूप में शामिल किया जाना—क्या विनिश्चय से प्रतिकूल रूप से प्रभावित होने वाले व्यक्तियों को अनिवार्य पक्षकार के रूप में शामिल किया जाना चाहिए ?

अभिनिर्धारित—सेवा विधि [ए० आई० आर० (1983) एस० सी० 769-(1983) 2 एस० सी० सी० 235] में यह स्थिर सिद्धांत है कि यदि विवाद किसी ज्ञापन या नियम के निर्वचन के बारे में है, जिसके द्वारा परस्पर ज्येष्ठता-सूची तैयार की गई है और किसी एक व्यक्ति के उन अन्य विनिर्दिष्ट व्यक्तियों के विरुद्ध व्यष्टिक दावे से संबंधित नहीं है तो उन व्यक्तियों को जिन पर नियमों के निर्वचन से प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है, पक्षकार के रूप में शामिल करना आवश्यक नहीं है। प्रस्तुत मामले में विवाद था कि उस ज्ञापन को जिसके आधार पर नियोजक ने आक्षेपित ज्येष्ठता-सूची तैयार की थी, भूतलक्षी प्रभाव देने में कोई विधिक गलती थी और यह ज्येष्ठता-सूची वह सूची नहीं है, जिसमें कोई प्रोन्नत विशेष किसी सीधे भर्ती वाले पर ज्येष्ठता का दावा करे।

राम लाल मलिक बनाम दिल्ली नगर निगम : सिविल अपील सं० 8632-8633/83 जिनका विनिश्चय 17·11·1983 को किया गया। (अप्रकाशनीय)

न्यायाधिपति डी० ए० देसाई, आर० बी० मिश्र और रंगनाथ मिश्र।

संविधान, 1950 :

2. अनुच्छेद 191 (1) (क)—"लाभ का पद"—अवधारण की कसौटियां ?

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अभिनिर्धारित—लाभ का पद अवधारित करने की सही कसौटी उस पद पर सरकारी नियंत्रण की मात्रा, सरकार पर अपनी वित्तीय आवश्यकताओं के लिए उसकी निर्भरता की मात्रा और कार्य संबंधी पहलुओं पर अर्थात् क्या वह निकाय कोई महत्वपूर्ण सरकारी कृत्य कर रहा है, आदि बातों पर निर्भर करती है।

बिहारीलाल डोबरे बनाम रोशन लाल डोबरे : सिविल अपील सं० 1101/82 जिसका विनिश्चय 23.11.1983 को किया गया।

न्यायाधिपति एस० मुर्तजा फजल अली और ई० एस० वेंकटरामय्या।

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 :

3. धारा 60 (1) (गगग) परन्तुक—यह परन्तुक किसी न्यायालय की डिक्री के निष्पादन में निवास गृह को कुर्की और विक्रय से छूट प्रदान करता है—शराब विक्रेता द्वारा लाइसेंस फीस न दी जानी—क्या निवास गृह की कुर्की और नीलामी की जा सकती है—भू-राजस्व अधिनियम के अनुसार वसूली की जानी—क्या सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 60 लागू होती है ?

अभिनिर्धारित—किसी सिविल न्यायालय की डिक्री के निष्पादन से भिन्न किसी कार्यवाही में कुर्की और विक्रय के संबंध में सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 60 लागू नहीं होती जब तक कि कानून विशेष में वह धारा अभिव्यक्त रूप से लागू न की गई हो। शराब विक्रेता द्वारा लाइसेंस फीस न देने पर उसके निवास गृह की कुर्की और विक्रय सिविल न्यायालय की डिक्री के निष्पादन में नहीं होती बल्कि भू-राजस्व की वसूली के लिए भू-राजस्व अधिनियम के अधीन कार्यवाही करने के लिए प्राधिकृत अधिकारी के आदेश के अनुसरण में होती है।

भागीरथ सिंह सपुत्र महिपत सिंह जुडेजा बनाम गुजरात राज्य : विशेष इजाजत पिटीशन (दाण्डिक) सं० 2719/83 जिसका विनिश्चय 21.11.1983 को किया गया।

न्यायाधिपति डी० ए० देसाई और आर० बी० मिश्र।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 :

4. जमानत—सेशन न्यायाधीश द्वारा जमानत मंजूर की जानी—क्या उच्च न्यायालय इसे रद्द करने के आवेदन पर जमानत को अपास्त कर सकता है ?

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अभिनिर्धारित—यह सुस्थिर विधि है कि जमानत मंजूर करने की शक्ति का प्रयोग इस प्रकार नहीं किया जाएगा मानो विचारण से पहले दण्ड दिया जा रहा हो। जमानत मंजूर करने में तात्विक बातें ये हैं कि क्या अभियुक्त विचारण के लिए तुरन्त सुलभ होगा और क्या यह संभव है कि वह साक्ष्य में फेर-बदल करके अपने पक्ष में प्रयुक्त किए गए, विवेकाधिकार का दुरुपयोग करेगा। जमानत रद्द करने का निदेश देकर उच्च न्यायालय ने सेशन न्यायाधीश के विवेकिक आदेश में हस्तक्षेप किया है। जमानत रद्द करने वाले आदेश के लिए अत्यन्त अकाट्य और प्रबल परिस्थितियां आवश्यक हैं।

भागीरथ सिंह सपुत्र महिपत सिंह जुडेजा बनाम गुजरात राज्य: विशेष इजाज़त पिटीशन (दाण्डिक) सं० 2719/83 जिसका विनिश्चय 21·11·1983 को किया गया।

न्यायाधिपति डी० ए० देसाई और आर० बी० मिश्र।

उत्पाद-शुल्क अधिनियम (पंजाब):

5. शराब बेचने की अनुज्ञप्ति—विक्रेता द्वारा लाइसेंस फीस का एक हिस्सा न दे पाना—क्या निवास गृह की कुर्की की जा सकती है—सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 60 (1) (गगग)—क्या परन्तुक लागू होगा ?

अभिनिर्धारित—सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 60 (1) (गगग) के परन्तुक में आए हुए "ऐसे कुर्की या विक्रय" पद किसी न्यायालय की डिक्री के निष्पादन में कुर्की या विक्रय के प्रति निर्देश करता है। ये उपबन्ध किसी अन्य कानून के अधीन कुर्की या विक्रय को लागू नहीं होते जब तक कि वह कानून धारा 60 को अभिव्यक्त रूप से लागू न करता हो। पंजाब भू-राजस्व अधिनियम के अधीन जोकि भू-राजस्व की बकाया की वसूली के लिए ढंग और मशीनरी का उपबन्ध करने वाली स्वयं पूरित संहिता है, खण्ड (गगग) के तत्स्थानी कोई उपबंध नहीं है। अतः विक्रेता की सम्पत्ति का आधा हिस्सा राजस्व वसूली की कार्यवाहियों में कुर्की और विक्रय से छूट प्राप्त नहीं था।

पंजाब राज्य बनाम दीना नाथ : सिविल अपील सं० 7494/83 जिसका विनिश्चय 21·11·1983 को किया गया।

न्यायाधिपति ए० पी० सेन० और **भदान**।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

केरल डेट रिलीफ ऐक्ट, 1977 :

6. ऋण की वसूली के लिए सिविल न्यायालय की अधिकारिता पर वर्जन—धारा 2 (3) (च)—खरीदे गए माल की कीमत को ऋण की परिभाषा में से निकाला जाना—प्रत्यर्थी द्वारा अपीलार्थी को गाय-बछड़ा बेचा जाना—अपीलार्थी की यह शिकायत की गाय प्रत्यर्थी के वर्णन की नहीं है—प्रत्यर्थी का उसी कीमत में गाय बछड़े को वापस लेने के लिए सहमत होना—कीमत में संदाय न किया जाना—क्या प्रत्यर्थी ऋणी है—सिविल न्यायालय की अधिकारिता क्या वर्जित है ?

अभिनिर्धारित—माल का प्रति-विक्रय चाहे वह मूल विक्रेता के लिए विक्रय हो और ऐसे प्रति-विक्रय के लिए धन का प्रतिफल पुनः बेचे गए माल की कीमत होगी। प्रस्तुत मामला मूल क्रेता द्वारा माल वापस लेने और मूल प्रतिफल का प्रतिसंदाय करने के लिए सहमत होने का मामला नहीं है, जैसा कि उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है अपितु मूल क्रेता द्वारा मूल विक्रेता को वापस बेचने का मामला है। प्रत्यर्थी द्वारा अपीलार्थी को देय रकम ऋण थी जो खरीदे गए माल की कीमत थी और अधिनियम की धारा 2 (3) के अपवाद (च) के फलस्वरूप ऋण की परिभाषा में से अपवर्जित थी। अतः सिविल न्यायालय को प्रत्यर्थी के विरुद्ध अपीलार्थी का वाद ग्रहण करने की अधिकारिता थी।

गोपालकृष्ण पिल्ले बनाम के० एम० मानी : सिविल अपील सं० 6767/83 जिसका विनिश्चय 21.11.1983 को किया गया। (अप्रकाशित)

न्यायाधिपति ए० पी० सेन और मदान।

भूमि सुधार अधिनियम, 1955 (पश्चिमी बंगाल) :

7. एक रैयत द्वारा धारित भूमि के अधिकतम क्षेत्रफल को कम किया जाना—क्या यह भूमि के अधिहरण के समान है—रैयत का अधिकांश वर्षों से अपने गांव में रहने की शर्त—क्या यह शर्त मनमानी है ?

अभिनिर्धारित—चूंकि संशोधन असंख्य जमीन जोतने वालों को खेती की भूमि बांटने के लिए किए गए थे, इसलिए वे अनुच्छेद 39 (ख) की परिधि के अन्तर्गत माने जा सकते हैं। जब एक बार यह साबित कर दिया जाए तो चुनौती का कोई अन्य आधार कायम नहीं रहेगा। यह उपबंध कि भूस्वामी को गांव में निवास करना चाहिए, एक आज्ञापक उपबंध है क्योंकि जो रैयत

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अपनी स्वयं की भूमि पर खेती करना चाहता है, उसे भूमि पर अपना सम्पूर्ण ध्यान देना चाहिए न कि वह गांव छोड़कर चला जाए और अन्यत्र अन्य कोई उपव्यवसाय करने लगे।

मधुसूदन सिंह बनाम भारत संघ : रिट पिटीशन सं० 5545/80 जिसका विनिश्चय 22.11.1983 को किया गया।

न्यायाधिपति **एस० मुर्तजा फजल अली** और **ठक्कर**।

भू-राजस्व वसूली अधिनियम (पंजाब) :

धारा 60 (1) (गगग)—सिविल प्रक्रिया संहिता—परन्तुक 8 डिक्री के निष्पादन में निवास गृह की कुर्की या विक्रय को छूट देता है—क्या कलक्टर राजस्व वसूली अधिनियम के अधीन निवास-गृह की कुर्की का आदेश नहीं कर सकता?

अभिनिर्धारित—सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 60 (1) (गगग) के उपबन्ध किसी न्यायालय की डिक्री के निष्पादन में कुर्की या विक्रय को ही लागू होते हैं, वे अन्य कानूनों के अधीन कुर्की या विक्रय को लागू नहीं होते जब तक कि उस कानून में इस धारा को उस अधिनियम के अधीन की वसूली के सम्बन्ध में अभिव्यक्त रूप से लागू न किया गया हो।

पंजाब राज्य बनाम दीना नाथ : सिविल अपील सं० 7494/83 जिसका विनिश्चय 21.11.1983 को किया गया।

न्यायाधिपति **ए० पी० सेन** और **मदान**।

बोनस संदाय अधिनियम, 1965 :

9. परिचर्या का बोनस 1965 के अधिनियम से पहले संदत्त किया जाना—क्या कर्मकार 1965 के अधिनियम के अधीन संदेय लाभ बोनस के अलावा परिचर्या बोनस के लिए हकदार हैं?

अभिनिर्धारित—यह सुस्थिर विधि है [घेवर चन्द्र, (1969) 1 एस० सी० आर० 366 और मुम्बई कामगार सभा (1976) 3 एस० सी० आर० 591] कि बोनस अधिनियम बोनस के सभी पहलुओं से सम्बन्धित निःशेषी अधिनियम नहीं है, अपितु इसमें रूढ़िक बोनस को बिल्कुल भी नहीं छुआ गया है जोकि अधिनियम के प्रवृत्त होने से पहले दिया जाता था। परिचर्या बोनस अधिनियम की परिधि से बाहर है, इसलिए कर्मकार अधिनियम के अधीन संदेय बोनस के अलावा उसके लिए हकदार हैं।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन मजदूर संघ बनाम वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन मजदूर संघ का प्रबन्ध-मंडल : सिविल अपील सं० 1851/74 जिसका विनिश्चय 24.11.1983 को किया गया ।

न्यायाधिपति डी० ए० देसाई, आर० बी० मिश्र और रंगनाथ मिश्र ।

प्रक्रिया और पद्धति :

10. रिट पिटीशन में उचित पक्षकार—सेवा संबंधी मामला—परस्पर ज्येष्ठता नियत करने वाले ज्ञापन को आक्षेपित किया जाना—क्या प्रभावित होने के लिए संभाव्य व्यक्तियों को आवश्यक पक्षकार के रूप में शामिल किया जाना चाहिए ?

अभिनिर्धारित—सेवा विधि में यह सुस्थिर सिद्धांत है [ए० आई० आर० (1983) एस० सी० 769 और (1983) 2 एस० सी० सी० 235] कि यदि विवाद किसी ज्ञापन या नियम के निर्वचन के बारे में है, जिसके बारे में परस्पर ज्येष्ठता सूची बनाई गई है किन्तु विनिर्दिष्ट अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध एक व्यक्ति के अकेले दावे से संबंधित नहीं है तो उन व्यक्तियों को जिन पर नियमों के निर्वचन से प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है, पक्षकार के रूप में शामिल करना आवश्यक नहीं है ?

राम लाल मलिक बनाम दिल्ली नगर निगम : सिविल अपील सं० 8632-8633/83 जिनका विनिश्चय 17-11-1983 को किया गया । (अप्रकाशनीय)

न्यायाधिपति डी० ए० देसाई, आर० बी० मिश्र और रंगनाथ मिश्र ।

लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 ।

11. बेसिक प्राथमिक पाठशाला में अध्यापक—वह पाठशाला एक कानून के अधीन गठित बेसिक शिक्षा बोर्ड द्वारा चलाई जानी—क्या वह संविधान के अनुच्छेद 19 (1)(क) के अर्थ में "लाभ के पद का धारक" है ?

अभिनिर्धारित—विनिश्चित मामलों में "लाभ का पद" अभिव्यक्ति को अवधारित करने की अनेक कसौटियां अपनाई गई हैं—किन्तु कोई निश्चायक कसौटी अधिकथित नहीं की गई है । संविधान के अनुच्छेद 45 में दिए गए निदेशक तत्व को कार्यरूप देने के लिए एक बेसिक शिक्षा अधिनियम पाठशालाओं का प्रबन्ध ग्रहण करने के लिए पारित किया गया । शिक्षक के कार्य राज्य के कार्यों के संबंध में हैं । उसका व्यय राज्य सरकार द्वारा की गई निधियों

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

में से किया जाता है। शिक्षकों की नियुक्ति सरकार के अधिकारियों द्वारा की जाती है और अनुशासनिक कार्यवाहियां राज्य सरकार के अन्तिम विनिश्चय के अधीन होती हैं हालांकि बोर्ड एक कानूनी निकाय है और सरकार से स्वतंत्र है तथा सभी व्यावहारिक प्रयोजनों के लिए अशासकीय सदस्य होते हैं, फिर भी यह सरकार का विभाग है और इसकी स्वायत्तता नगण्य हैं। अतः शिक्षक राज्य सरकार के अधीन 'लाभ का पद' धारण किए हुए थे और उसका नामनिर्देशन ठीक ही नामंजूर किया गया।

बिहारी लाल डोबरे बनाम रोशन लाल डोबरे : सिविल अपील सं० 1101/82 जिसका विनिश्चय 23-11-1983 को किया गया।

न्यायाधिपति एस० मुर्तजा फजल अली और ई० एस० वैंकटरामय्या।

12. निर्वाचन के लिए अभ्यर्थी—सरकारी ठेकेदार—नाम-निर्देशन पत्र फाइल करने से पहले उसने विभाग को संविदा समाप्त करने के लिए पत्र लिखा—क्या संविदा समाप्त हो गई—क्या विभाग द्वारा समाप्ति की स्वीकृति आवश्यक थी ?

अभिनिर्धारित—उस पत्र का प्रभाव यह हुआ कि उसने एकपक्षीय तौर पर संविदा समाप्त कर दी। भंग से संविदा समाप्त हुई। प्राधिकारियों द्वारा उसकी स्वीकृति आवश्यक नहीं है। संविदा-भंग से नुकसानी के लिए वाद हेतुक पैदा हो सकता है।

असलहींग उर्फ ल्हींगजनंग (श्रीमती) बनाम एल० एस० जान : सिविल अपील सं० 1189/82 जिसका विनिश्चय 22-11-1983 को किया गया।

न्यायाधिपति एस० मुर्तजा फजल अली, ओ० चिन्नप्पा रेड्डी और ई० एस० वेंकटरामय्या।

माल विक्रय अधिनियम, 1930 :

13. क्रेता द्वारा विक्रेता से एक गाय-बछड़ा खरीदा जाना—विक्रेता का उतनी ही कीमत में गाय-बछड़े को पुनः खरीदने के लिए सहमत होना—संव्यवहार की प्रकृति—क्या यह प्रतिविक्रय है अथवा मूल विक्रेता द्वारा मूल प्रतिफल प्रतिसंदत्त करके गाय-बछड़े को वापस लेने के लिए सहमत होने का मामला है ?

अभिनिर्धारित—माल का प्रतिविक्रय चाहे वह मूल विक्रेता को ही हो, विक्रय है और ऐसे प्रतिविक्रय के लिए धन का प्रतिफल ऐसे प्रतिविक्रय के लिए संदेय

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कीमत है। प्रस्तुत मामले में मूल विक्रेता उसी कीमत पर गाय को वापस खरीदने के लिए सहमत था किन्तु वह कीमत देने में असफल रहा। जैसा कि उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है, यह मूल विक्रेता द्वारा माल वापस लेने का और प्रतिफल को प्रतिसंदत्त के लिए सहमत होने का मामला नहीं था। यह वारन्टी भंग का मामला नहीं था। यदि ऐसा होता तो वह धारा 59 के अधीन नुकसानी के लिए ही वाद चला सकता था।

गोपाल कृष्ण पिल्लै बनाम के० एम० मानी : सिविल अपील सं० 6767/83 जिसका विनिश्चय 21-11-1983 को किया गया। (अप्रकाशनीय)

न्यायाधिपति ए० पी० सैन और अवान।

कराधान :

14. उड़ीसा टैक्सेशन (आन गुड्स कैरिड बाई रोड एण्ड इनलैंड वाटरवेज़) ऐक्ट, 1959—धारा 2 (5)—व्यापारी—कोई व्यक्ति जो मोटरयान आदि द्वारा लिए जाने से पहले या बाद में विनिर्दिष्ट माल का भण्डारकरण करता है "और इसके अन्तर्गत उसका अभिकर्ता भी है"—स्पष्टीकरण—अनिवासी व्यापारी का प्रबन्धक या अभिकर्ता और जो ऐसा माल भण्डार में रखता है, वह व्यापारी समझा जाता है—अपीलार्थी कम्पनी द्वारा आन्ध्र प्रदेश में कारखानों में और कलकत्ता में अपने मुख्यालय में दो पटसन मिलों के प्रबंध अभिकर्ता नियुक्त किया जाना—अपीलार्थी द्वारा कोई कारबार न किया जाना—बल्कि उड़ीसा में एक स्थान पर गोदाम में अपने मालिक के माल के भण्डारकरण की देखभाल करना—मालिकों और व्यापारियों के रूप में रजिस्ट्रीकृत किया जाना और उड़ीसा अधिनियम के अधीन उन पर कर लगाया जाना—क्या अभिकर्ता व्यापारी नहीं माना जा सकता—क्या मालिक अनिवासी व्यापारी है—कम्पनी के निवास-स्थान के अवधारण की कसौटियां ?

अभिनिर्धारित—अपीलार्थी स्पष्टीकरण के साथ पठित धारा 2(5) के अर्थ में "कम्पनियों के अभिकर्ता के रूप में" व्यापारी था। उस उपबन्ध के अनुसार यह अपेक्षित नहीं है कि अनिवासी का प्रबन्धक या अभिकर्ता का निवास-स्थान या कारबार का स्थान राज्य के भीतर होना चाहिए। यह नहीं कहा जा सकता कि जहां-जहां कम्पनी का कुछ कारबार चलता है, वहां हर स्थान पर उसका अपना निवास-स्थान है। मालिक उड़ीसा राज्य में अनिवासी व्यापारी है। कलकत्ता में उनका रजिस्टर्ड कार्यालय था, कलकत्ता में अपना

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कारबार करता था और मुख्य प्रबन्ध और नियन्त्रण वहां से किया जाता था हालांकि मालिकों के पास उड़ीसा में भाण्डागारण उपकरण और गोदाम था, फिर भी वे स्थान कारबार के केवल अतिरिक्त स्थान हैं।

मैकलियड एण्ड कम्पनी लिमिटेड बनाम उड़ीसा राज्य : सिविल अपील सं० 40 (एन० डी०)/72 जिसका विनिश्चय 23-11-1983 को किया गया।

न्यायाधिपति **वी० डी० तुलजापुरकर**, आर० एस० पाठक और सव्यसाची मुखर्जी।

शब्द और पद :

15. "लाभ का पद"—अर्थ ?

अभिनिर्धारित—हालांकि "लाभ का पद" अभिव्यक्ति [संविधान के अनुच्छेद 191 (1) (क)] निश्चायक नहीं है, फिर भी यह पद "सरकार के अधीन धारित पद" से अधिक व्यापक अर्थ देता है। सरकार के लाभ का पद धारण करने के लिए सरकार की सेवा में होना और मालिक-नौकर का सम्बन्ध होना आवश्यक नहीं है।

बिहारी लाल डोबरे बनाम **रोशन लाल डोबरे** : सिविल अपील सं० 1101/82 जिसका विनिश्चय 23.11.1983 को किया गया।

न्यायाधिपति एस० मुर्तजा फजल अली और ई० एस० वेंकटरामय्या।

इस भाग में प्रकाशित मामले

	मद सं०
1. असलहींग उर्फ ल्हींगजनंग (श्रीमती) बनाम एल० एस० जॉन	(12) (प्रका०)
2. वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन मजदूर संघ बनाम श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लिमिटेड का प्रबन्ध-मंडल	(9) (प्रका०)
3. भागीरथसिंह पुत्र महिपत सिंह जुडेजा बनाम गुजरात राज्य	(4) (प्रका०)
4. बिहारीलाल डोबरे बनाम रोशनलाल डोबरे	(2,11 और 15) (प्रका०)

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

5. गोपालकृष्ण पिल्ले बनाम के० एम० मणि (13 और 6) (अप्रका०)

6. मधुसूदन सिंह बनाम भारत संघ (7) (प्रका०)

7. मैकलियड एण्ड कम्पनी लिमिटेड बनाम उड़ीसा राज्य (14) (प्रका०)

8. रामलाल मलिक बनाम दिल्ली नगर निगम (1 और 10) (अप्रका०)

9. पंजाब राज्य बनाम दीना नाथ (3 और 8) (प्रका०)

———

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रुदुल साह

बनाम

बिहार राज्य और एक अन्य

(Rudul Sah

v.

State of Bihar and Another)

(1 अगस्त, 1983)

(मुख्य न्यायाधिपति वाई० वी० चन्द्रचूड़, न्यायाधिपति अमरेन्द्र नाथ सेन और रंगनाथ मिश्र)

संविधान, 1950—अनुच्छेद 21 और 32—उच्चतम न्यायालय की रिट अधिकारिता—बन्दी-प्रत्यक्षीकरण—विचारण न्यायालय द्वारा पिटीशनर को दोषमुक्त कर दिया जाना किन्तु उसे कारागार में अवैध रूप से निरुद्ध रखा जाना—उच्चतम न्यायालय को यह शक्ति प्राप्त है कि वह अभियुक्त के सम्बन्ध में रिहाई और प्रतिकर की बाबत आदेश पारित कर सके।

वर्तमान मामले में पिटीशनर को उसके विचारण के दौरान दोषमुक्त किए जाने के पश्चात् भी 14 वर्ष से अधिक समय के लिए अवैध रूप से कारागार में निरुद्ध रखा गया। अभियुक्त ने उच्चतम न्यायालय में पूर्वोक्त अवैध निरोध से अपनी रिहाई के लिए बन्दी-प्रत्यक्षीकरण का पिटीशन दायर किया। उसे उक्त अनुतोष प्रदान कर दिया गया क्योंकि विचारण न्यायालय द्वारा ही यह स्वीकार कर लिया गया था कि चूंकि वह दोषमुक्त किए जाने का हकदार है इसलिए कारागार में उसे निरुद्ध रखा जाना अवैध है। इसके अतिरिक्त, उसने यह दलील दी कि वह अवैध अवरोध के संबंध में प्रतिकर प्राप्त करने का हकदार है और उच्चतम न्यायालय को चाहिए कि वह स्वयं बन्दी-प्रत्यक्षीकरण पिटीशन में प्रतिकर के संदाय के लिए समुचित आदेश पारित कर दे। बिहार राज्य द्वारा पिटीशनर को जो नुकसान उठाना पड़ा था, उसे उच्चतम न्यायालय द्वारा स्वीकार करते हुए और प्रतिकर प्रदान करते हुए, और रिट पिटीशन मंजूर करते हुए,

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अभिनिर्धारित—विचारार्थ मुख्य प्रश्न यह है कि क्या संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन निचले न्यायालय की अधिकारिता के प्रयोग में यह न्यायालय ऐसी दशा में धन के संदाय के लिए आदेश पारित कर सकता है जिसमें कि ऐसा आदेश किसी मूल अधिकार के प्रवंचन के परिणामस्वरूप प्रतिकर की प्रकृति में हो। प्रस्तुत मामला ऐसे मामलों का एक दृष्टांत स्वरूप है। यहां पिटीशनर को, अवैध रूप से पूर्ण विचारण में उसकी दोषमुक्ति के पश्चात् 14 वर्ष का समय बीत जाने के बाद भी कारागार में निरुद्ध रखा गया था। उसने इस न्यायालय में अवैध निरोध से अपनी रिहाई के लिए बन्दी प्रत्यक्षीकरण पिटीशन फाइल किया। उसे वह अनुतोष अभिप्राप्त हो गया क्योंकि इस न्यायालय का यह निष्कर्ष था कि उसकी दोषमुक्ति के पश्चात् कारागार में उसका निरोध सर्वथा अन्यायोचित था। उसने यह दलील दी है कि वह अपने अवैध निरोध के लिए प्रतिकर प्राप्त करने का हकदार है और इस न्यायालय को चाहिए कि वह स्वयं इस बन्दी प्रत्यक्षीकरण पिटीशन में प्रतिकर के संदाय के लिए समुचित आदेश पारित करे। (पैरा 9)

अनुच्छेद 21, जो कि प्राण और स्वतंत्रता के अधिकार की गारण्टी प्रदान करता है, ऐसी दशा में अपनी महत्वपूर्ण अन्तर्विष्टि से विहीन हो जाएगा जिसमें कि इस न्यायालय की शक्ति अवैध निरोध से रिहाई के आदेश पारित करने मात्र तक सीमित हो। उन प्रभावशील उपायों में से जिनमें कि उस अधिकार के उल्लंघन को युक्तियुक्त रूप से और अनुच्छेद 21 के समादेश के सम्यक् पालन को निवारित किया जा सकता है, जो कि धन सम्बन्धी प्रतिकर के संदाय के लिए एक प्रशासनिक कठोरता है जो मूल अधिकारों के घोर अतिलंघन में परिणत होती है, और नगरपालिका में विद्यमान किसी अन्य पद्धति से त्रुटिविहीन नहीं की जा सकती जिसे नगरपालिका अपना सके। प्रतिकर संबंधी अधिकार उन अभिकरणों के विधिविरुद्ध कार्यों के लिए किंचित उपशमन के रूप में हैं जो कि लोक हित के नाम से कृत्यशील होते हैं और जो रक्षा के रूप में राज्य की शक्तियों को उनके संरक्षण के लिए प्रस्तुत करता है। यदि इस देश में सभ्यता का विनाश नहीं हो जाना है, जैसा कि कुछ अन्य देशों में यह सुविदित रूप से हो चुका है, तो यह आवश्यक है कि हम अपने आपको यह स्वीकार करने के लिए सशक्त बनाएं कि व्यक्तियों के अधिकारों हेतु समादर गणतन्त्र का सही बुर्ज है। इसलिए, राज्य के लिए यह आवश्यक है कि पिटीशनर के अधिकारों को राज्य के अधिकारियों द्वारा जो नुकसान पहुंचाया गया है, उसका उपचार

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

किया जाए। यह उन अधिकारियों के विरुद्ध समाश्रय का रूप धारण कर सकता है। (पैरा 10)

बिहार राज्य द्वारा पिटीशनर को जो महान हानि पहुंचाई गई है उस पर विचार करते हुए अन्तरिम अध्युपाय के रूप में राज्य के लिए यह आवश्यक है कि वह पिटीशनर को पहले से संदत्त 5,000 रुपए के अलावा 30,000 रुपए की अतिरिक्त राशि संदत्त करे। यह आदेश पिटीशनर को इस बात से प्रवारित नहीं करेगा कि वह राज्य से तथा उसके उन अधिकारियों से जिन्होंने गलती की है, समुचित नुकसानी का प्रत्युद्धरण करने हेतु वाद फाइल करे। (पैरा 11 और 12)

मूल अधिकारिता : 1982 का रिट पिटीशन (दाण्डिक) सं० 1387.

भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन पिटीशन।

पिटीशनर की ओर से	श्रीमती के० हिंगोरानी
प्रत्यर्थी की ओर से	श्री डी० गोवर्धन

न्यायालय का निर्णय मुख्य न्यायाधिपति वाई० वी० चन्द्रचूड़ ने दिया।

मुख्य न्यायाधिपति चन्द्रचूड़—

इस रिट पिटीशन से अधम तथा विक्षोभकारी कार्यवाही प्रकट होती है। हालांकि पिटीशनर को सेशन न्यायाधीश, मुजफरनगर, बिहार ने 3 जून, 1968 को दोषमुक्त कर दिया था, उसे 14 वर्ष से भी अधिक बाद, अर्थात् 16 अक्तूबर, 1982 को कारागार से रिहा किया गया। इस बन्दी-प्रत्यक्षीकरण पिटीशन द्वारा पिटीशनर ने इस आधार पर अपनी रिहाई की मांग की है कि कारागार में उसका निरोध अवैध है। उसने साथ-ही-साथ कतिपय आनुषंगिक अनुतोषों की मांग की है जैसे कि पुनर्वास, उसे खर्चे की प्रतिपूर्ति जो कि उसने डाक्टरी इलाज पर खर्च किया है। उसने अवैध कैद के के लिए कतिपय प्रतिकर की भी मांग की है।

2. यह पिटीशन 22 नवम्बर, 1982 को हमारे समक्ष आया था जब कि हमें बिहार राज्य के काउन्तेल श्री गोवर्धन द्वारा यह सूचित किया गया था कि पिटीशनर को पहले ही कारागार से रिहा किया जा चुका है। इस प्रकार, पिटीशनर ने अपनी रिहाई के लिए जिस अनुतोष की मांग की थी वह निष्फल हो गया था किन्तु इसके बावजूद, हमने यह निदेश दिया कि पिटीशनर की प्रार्थना सं० 2, 3 और 4 की बाबत बिहार राज्य के नाम

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वाद-हेतुक की सूचना जारी की जाए। प्रार्थना सं० 2 द्वारा पिटीशनर ने सरकारी खर्च पर डाक्टरी इलाज की मांग की। प्रार्थना सं० 3 द्वारा उसने अपने पुनर्वास के लिए अनुग्रहपूर्वक संदाय की मांग की थी, जब कि प्रार्थना सं० 4 द्वारा उसने 14 वर्ष से भी अधिक समय पर्यन्त कारावार में अपने अवैध निरोध के लिए प्रतिकर हेतु मांग की थी।

3. हमारी यह प्रत्याशा थी कि कम-से-कम इस विलम्बपूर्ण प्रक्रम पर भी बिहार राज्य उसे जारी की गई हेतु दर्शित करने की सूचना का तुरन्त उत्तर देगा, किन्तु राज्य ने चार मास से भी अधिक तक कोई स्पष्टीकरण नहीं पेश किया। रिट पिटीशन को हमारे समक्ष 31 मार्च, 1983 को उस समय सूचीबद्ध किया गया जब श्री गोवर्धन ने यह पुनः कथन किया कि पिटीशनर को पहले ही कारागार से रिहा किया जा चुका है। हमने उसी तारीख को इस आशय का एक विनिर्दिष्ट आदेश पारित किया कि पिटीशनर की रिहाई मामले को समाप्त नहीं कर देती और हमने बिहार राज्य से यह अपेक्षा की, कि वह एक लिखित स्पष्टीकरण प्रस्तुत करे जिसमें शपथपत्र के रूप में ये आधार दिए गए हों कि भला पिटीशनर को उसकी दोषमुक्ति के पश्चात 14 वर्ष से भी अधिक समय तक कारागार में क्यों रखा गया था। 16 अप्रैल, 1983 को श्री अलख देव सिंह, जेलर, मुजफरनगर, केन्द्रीय कारागार ने उस आदेश के अनुसरण में एक शपथपत्र फाइल किया। औपचारिक परिवर्णनों से विहीन यह शपथपत्र इस प्रकार है—

> "2. कि पिटीशनर को 25 मार्च, 1967 को हजारी बाग केन्द्रीय कारागार से लाया गया था और उसे नियमित रूप से अपर सेशन न्यायाधीश के समक्ष पेश किया जा रहा था और 30 अगस्त, 1968 को विद्वान न्यायाधीश ने निम्नलिखित आदेश पारित किया था—
>
> > "अभियुक्त को दोषमुक्त किया जाता है, किन्तु उसे राज्य सरकार तथा महानिरीक्षक (बन्दीगृह), बिहार द्वारा, आगे आदेश होने तक, कारागार में निरुद्ध रखा जाना चाहिए ;"
>
> (उक्त आदेश की सत्य प्रतिलिपि उपाबंध 1 के रूप में संलग्न है)
>
> 3. कि अभियुक्त रुदुल साह उपर्युक्त आदेश के पारित किए जाने के समय विकृत-चित्त था। यह जानकारी जिला मजिस्ट्रेट,

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मुजफरनगर की मार्फत अधीक्षक, केन्द्रीय कारागार, मुजफरनगर के तारीख 10-5-1974 वाले पत्र सं० 1838 में विधि विभाग को भेज दी गई थी।

4. कि मुख्य चिकित्सक, मुजफरनगर ने 18 फरवरी, 1977 को यह रिपोर्ट दी कि अभियुक्त रुदुल साह स्वस्थ-चित्त है और यह जानकारी 21 फरवरी, 1977 को विधि विभाग को संसूचित कर कर दी गई थी।

5. कि पिटीशनर रुदुल साह के साथ कारागार मैनुअल बिहार के प्रति उसकी निरोध कालावधि के दौरान नियमों के अनुकूल अच्छा बर्ताव किया गया था।

6. कि पिटीशनर को विधि विभाग के तारीख 14-10-82 के पत्र सं० 11637 का पालन करते हुए 16 अक्तूबर, 1982 को रिहा कर दिया गया था।"

4. 26 अप्रैल, 1983 को रिट पिटीशन हमारे समक्ष सुनवाई के लिए आया जब कि हमने उसे अगस्त, 1983 के प्रथम सप्ताह पर्यन्त मुल्तवी कर दिया क्योंकि यह बात न तो जेलर द्वारा फाइल किए गए उस आदेश द्वारा, जो कि शपथपत्र के उपाबंध के साथ संलग्न है, स्पष्ट थी कि शपथपत्र में इस कथन का क्या आधार था कि पिटीशनर विकृत-चित्त था अथवा इस बात का कारण क्या था कि भला विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश ने राज्य सरकार तथा महानिरीक्षक (बन्दी गृह) द्वारा आगे आदेश दिए जाने पर्यन्त कारागार में पिटीशनर के निरोध के संबंध में निदेश दिया था।

5. अब यह रिट पिटीशन हमारे समक्ष आज पुनः सुनवाई के लिए पेश किया गया है। यदि भूतपूर्व अनुभव कोई मार्गदर्शन प्रदान करता है, तो इस बात की कोई संभाव्यता नहीं है कि यह आशय रखते हुए पिटीशन को मुल्तवी करके उसकी तामील की जाए कि राज्य प्राधिकारी हमारे समक्ष पिटीशनर की दोषमुक्ति के पश्चात् कारागार में उसके निरोध को बनाए रखने का स्पष्टीकरण देने के लिए कोई समाधानप्रद सामग्री पेश करेंगे। इसमें इस बारे में आशंका है कि वर्तमान स्थिति को देखते हुए जिसमें कि हम यह अनुमान मात्र लगा सकते हैं कि क्या पिटीशनर को मात्र इस अनुग्रहपूर्वक कारणवश कारागार से रिहा नहीं किया गया था कि वह पागल था अथवा उसके निकट भविष्य में ठीक हो जाने की कोई संभाव्यता नहीं थी।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

6. जेलर द्वारा प्रस्तुत किए गए शपथपत्र में कई त्रुटियां हैं। उसने बड़ी स्पष्टवादिता से इस बारे में वर्णन किया है कि कुख्यात क्या है, उदाहरणार्थ, यह कि पिटीशनर को उसकी दोषमुक्ति के पश्चात् भी कारागार से रिहा क्यों नहीं किया गया था और यह कि इसके बारे में यह प्रतिपादन किया गया था कि वह पागल था ? किन्तु इससे ऐसी कोई दत्त-सामग्री प्रकट नहीं होती जिसके आधार पर उसे पागल निर्णीत किया गया था और न ही ऐसे कोई विनिर्दिष्ट अध्युपाय दर्शित किए गए हैं जो कि उसके इस रोग का उपचार करने के लिए किए गए थे तथा इससे महत्वपूर्ण बात यह है कि भला उसके मानसिक असंतुलन को सही करने में 14 वर्ष क्योंकर लग गए। रोग के निदान के समर्थन में कोई डाक्टरी राय इस बारे में नहीं पेश की गई है कि वह पागल था और न ही कारागार के किसी अभिलेख में यह दर्शित करने के लिए कोई सामग्री प्रस्तुत की गई है कि उसके लिए किस प्रकार का उपचार विहित किया गया था और उस पर उस उपचार का प्रयोग किया गया था और ऐसा कितने समय के लिए किया गया था। तारीख 10 मई, 1974 वाला पत्र (सं० 1838) जो कि शपथपत्र के पैरा 3 के अनुसार केन्द्रीय कारागार, मुजफरनगर के अधीक्षक द्वारा विधि विभाग को भेजा गया था, हमारे समक्ष पेश नहीं किया गया है। यह दर्शित करने के लिए कुछ भी नहीं किया गया कि पिटीशनर उसकी दोषमुक्ति की तारीख को ही पागल पाया गया था और यदि वह उस समय पागल था जब कि उसे दोषसिद्ध ही किया जा सकता था जिसका सीधा-सा कारण यह है कि पागल व्यक्ति अपनी प्रतिरक्षा पेश नहीं कर सकता। दण्ड प्रक्रिया संहिता के अधीन पागल व्यक्तियों के, उनके विचारण को लागू होने वाली प्रक्रिया के बारे में किंचित कानूनी अधिकार होते हैं। शपथ-पत्र के पैरा 4 के अनुसार; मुख्य चिकित्सक, मुजफरनगर ने 18 फरवरी, 1977 को यह रिपोर्ट दी कि पिटीशनर प्रसामान्य अवस्था में है और यह संसूचना 21 फरवरी; 1977 को विधि विभाग को भेज दी गई थी। ऐसी दशा में भला पिटीशनर को तत्पश्चात् साढ़े पांच वर्ष से भी अधिक समय बीत जाने पर रिहा क्यों नहीं किया गया था। 14 अक्तूबर, 1982 को बिहार सरकार के विधि विभाग द्वारा यह निदेश दिया गया कि पिटीशनर रिहा कर दिया जाना चाहिए। भला विधि विभाग न्याय के प्रति इतना असंवेदनशील क्यों बना रहा। हम यह विश्वास करना उचित समझते हैं कि पिटीशनर पागलपन का वृतांत बाद में सूझी हुई घटना है और उसे अत्यधिक बढ़ा-चढ़ा कर कहा गया है। यदि वह वस्तुतः पागल था तो कम-से-कम यह दर्शित करने के लिए कि

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पागलपन के लिए उसका उपचार किया जा रहा है डाक्टरी चिकित्सा का थोड़ा-सा ढांचा तो पेश किया ही जा सकता था। ऐसी परिस्थितियों में हम इस बात के लिए आबद्ध हैं कि हम यह निष्कर्ष निकालें कि यदि पिटीशनर समय के किसी प्रक्रम पर पागल पाया गया था, निश्चित रूप से यह पागलपन कारागार में उसके विधिविरुद्ध निरोध के परिणामस्वरूप उद्भूत हुआ होगा। निःसहाय होने की अवस्था तथा कुंठा की भावना विषाद की प्रवृत्ति रखते हैं और निरन्तर विषाद के परिणामस्वरूप एक प्रकार का मानसिक असंतुलन उद्भूत हो जाता है।

7. सरकार का सम्बद्ध विभाग इस न्यायालय के प्रति किंचित अधिक शिष्टाचार दर्शित कर सकता था और इस मामले के विद्यमान निष्ठुरता को स्पष्ट करने हेतु शपथ-पत्र फाइल करने के लिए अपने वरिष्ठ अधिकारियों में से किसी एक से शपथ-पत्र फाइल करने की मांग करके अपने उत्तरदायित्व के बारे में अधिक जागरूकता प्रदर्शित कर सकता था। दूसरी ओर जेलर को बलि का बकरा बनाया गया है और उसने प्रतिनिहित रूप से उच्च अधिकारियों की ओर से कर्तव्यच्युति दर्शित की है और यह कहा गया है कि उन्हें बेहतर जानकारी होनी चाहिए थी। यह मामला अपने ढंग का कोई अकेला मामला नहीं है और हम इससे अपने आप को समबद्ध महसूस करते हैं कि बिहार राज्य के कारागार प्रशासन से सभी ओर बन्दीगृहों में प्रशासन सम्बन्धी अन्धकार छाया हुआ है। भागलपुर में जो कैदियों को अन्धा बनाया गया था, उससे राज्य के कारागार प्रशासन की आंखें खुल जानी चाहिएं थीं। किन्तु उस अनोखे वृत्तांत से कोई सबक नहीं मिला है और इस गन्दे अस्तबल में उस मामले में कोई प्रतिक्रिया देखने में नहीं आई है। संभवतः हमें किसी ऐसे हर्क्युलीज की खोज करनी होगी जो कि दो नदियों को (जो कि पवित्र गंगा से भिन्न हों) उनमें से बहाकर उन दोनों गन्दे अस्बतलों को पूर्णतः साफ करेगा। हम ऐसा करते हैं (और प्रार्थना भी) कि राज्य के उच्चतर पदाधिकारी इस बात के लिए समय निकालेंगे कि वे राज्य में कारागार सम्बन्धी प्रशासन के विध्वंस ढंग के प्रति अपना ध्यान आकृष्ट करें और उस गम्भीर अन्याय को दूर करें जो कि निःसहाय व्यक्तियों के प्रति किया जा रहा है। उच्च न्यायालय को चाहिए कि वह स्वयं घटना की इस मामले की जांच करे और राज्य के कारागार में विधिविरुद्ध निरोध के प्रश्न पर बिहार की सरकार के गृह विभाग से सांख्यिकीय कारागृह से तालिका के रूप में विवरण की मांग की जानी चाहिए जिससे कि यह प्रकट हो सके कि भला कितने दोषसिद्ध व्यक्ति 10 वर्ष;

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

12 वर्ष, 14 वर्ष तथा 16 वर्ष से अधिक समय से कारागार में पड़े हुए हैं। ऐसी अवस्था में उच्च न्यायालय उस स्थिति पर पहुंच सकेगा कि वह उन बन्दियों को रिहा कर सके जो कि कारागृहों में विधिविरुद्ध निरोध में पड़े हुए हैं तथा राज्य सरकार से यह मांग कर सके कि वे, जहां कहीं आवश्यक पर्याप्त प्रतिकर का संदाय करके उनके पुनर्वास के लिए कदम उठा सकें।

8. इससे हम इस प्रश्न पर पहुंचते हैं कि पिटीशनर पर जो गम्भीर अन्याय किया गया है, उस त्रुटि को भला कैसे दूर किया जा सकता है जहां कि वह संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन हमारी रिट अधिकारिता के प्रयोग में कार्यान्वित करने हेतु हमारी शक्ति के अन्तर्गत निहित है। उक्त अनुच्छेद उच्चतम न्यायालय को यह शक्ति प्रदान करता है कि वह भाग 3 द्वारा प्रदत्त अधिकारों में से किसी भी अधिकारी को प्रवर्तित करने के लिए यथास्थिति बन्दी-प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, निषेध, अधिकार पृच्छा, उत्प्रेषण अथवा निदेशों या आदेशों को जारी कर सकता है। भाग 3 द्वारा प्रदत्त अधिकारों के प्रवर्तन के लिए समुचित कार्यवाहियों द्वारा उच्चतम न्यायालय को समावेदित करने का अधिकार गारण्टीकृत है, अर्थात् संविधान के भाग 3 द्वारा प्रदत्त अधिकारों में से किसी भी अधिकार को प्रवर्तित करने के लिए अनुच्छेद 32 के अधीन उच्चतम न्यायालय को समावेदित करने सम्बन्धी अधिकार अपने आप में मूल अधिकार है।

9. यह सही है कि अनुच्छेद 32 का उपयोग ऐसे अधिकारों व बाध्यताओं को प्रवर्तित करने हेतु प्रतिस्थापित नहीं किया जा सकता जिन्हें न्यायालयों की सामान्य आदेशिकाओं, चाहे वे सिविल हों यह दाण्डिक की मार्फत प्रभावी रूप से लागू किया जा सकता है। इसलिए, धन संबंधी किसी दावे पर बहस की जा सकती है और उसे किसी ऐसे वाद में न्यायनिर्णीत किया जा सकता है जो कि उसका विचारण करने के लिए सक्षम न्यूनतम दर्जे के न्यायालय में संस्थित किया गया हो। किन्तु हमारे विचारार्थ मुख्य प्रश्न यह है कि क्या अनुच्छेद 32 के अधीन उसकी अधिकारिता के प्रयोग में यह न्यायालय ऐसी दशा में धन के संदाय के लिए आदेश पारित कर सकती है जिसमें कि ऐसा आदेश किसी मूल अधिकार के प्रवंचन के परिणामस्वरूप प्रतिकर की प्रकृति में हो। प्रस्तुत मामला ऐसे मामलों का एक दृष्टांतस्वरूप है। यहां पिटीशनर को, अवैध रूप से, एक पूर्ण विचारण में उसकी दोषमुक्ति के पश्चात् 14 वर्ष का समय बीत जाने के बाद भी कारागार में अवैध रूप से निरुद्ध रखा गया था। उसने इस न्यायालय में अवैध निरोध से अपनी रिहाई के लिए बन्दी-प्रत्यक्षीकरण

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नामक पिटीशन फाइल किया। उसे वह अनुतोष अभिप्राप्त हो गया क्योंकि हमारा यह निष्कर्ष था कि उसकी दोषमुक्ति के पश्चात् कारागार में उसका निरोध सर्वथा अन्यायोचित था। उसने यह दलील दी है कि वह अपने अवैध निरोध के लिए प्रतिकर प्राप्त करने का हकदार है और हमें चाहिए कि हम स्वयं इस बन्दी प्रत्यक्षीकरण पिटीशन में प्रतिकर के संदाय के लिए समुचित आदेश पारित करें।

10. हम इस दलील को नजरअन्दाज नहीं कर सकते। हमें इस आक्षेप के सिवाय इसका कोई प्रभावशील उत्तर दिखाई नहीं देता जो कि घिसा-पिटा और निरर्थक मात्र है, अर्थात् यह कि पिटीशनर को यह परामर्श दिया जाए कि वह राज्य सरकार से नुकसानी का प्रत्युद्धरण ग्रहण करने के लिए वाद फाइल करे। सौभाग्य से, राज्य के काउन्सेल ने यह आक्षेप नहीं उठाया है कि पिटीशनर को ऐसी दशा में वाद के साधारण उपचार को प्राप्त करने के लिए बाध्य किया जा सकता था यदि उसका दावा संविदात्मक होता अर्थात् ऐसा होता कि किसी सिविल न्यायालय द्वारा उसके दावे को कायम रखा जाता या न रखा जाता। किन्तु उसमें इस बारे में कोई सन्देह नहीं है कि यदि पिटीशनर अपने अवैध निरोध के लिए नुकसानी का प्रत्युद्धरण करने हेतु वाद फाइल करता है तो उस वाद में निश्चित रूप से नुकसानी की क्षतिपूर्ति के लिए डिक्री पारित करने को कहा, हालांकि साक्ष्य के अभाव में यह तथ्य संलग्न करना संभव नहीं है कि वह सुनिश्चित रकम का होगा जो कि उसके पक्ष में डिक्री की जाएगी। ऐसी परिस्थितियों में, पिटीशनर के पक्ष में प्रतिकर संबंधी आदेश पारित करने हेतु इस न्यायालय का प्रत्याख्यान उसकी स्वाधीनता के मूल अधिकार के संबंध में दिखावा मात्र होगा जिसका उल्लंघन राज्य सरकार द्वारा गंभीर रूप से किया गया है। अनुच्छेद 21 जो कि जीवन तथा स्वाधीनता के अधिकार की गारण्टी प्रदान करता है, ऐसी दशा में अपनी महत्वपूर्ण अन्तर्दृष्टि से विहीन हो जाएगा जिसमें कि इस न्यायालय की शक्ति के अवैध निरोध से रिहाई के आदेश पारित करने मात्र तक सीमित हो। उन प्रभावशील उपायों में से जिनमें कि उस अधिकार के उल्लंघन को युक्तियुक्त रूप से और अनुच्छेद 21 के समादेश के सम्यक् पालन को नियारित किया जा सकता है जो कि घन सम्बन्धी प्रतिकर के संदाय की एक प्रशासनिक कठोरता जो कि मूल अधिकारों के घोर अतिलंघन में परिणत होती है, नगरपालिका में विद्यमान किसी अन्य पद्धति से त्रुटिविहीन नहीं की जा सकती जिसे नगरपालिका अपना सके। प्रतिकर संबंधी अधिकार उन अभिकरणों के विधिविरुद्ध कार्यों के

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

लिए किंचित उपशमन के रूप में है जो कि लोक हित के नाम से कृत्यशील होते हैं और जो रक्षा के रूप में राज्य की शक्तियों को उनके संरक्षण के लिए प्रस्तुत करता है। यदि इस देश में सभ्यता का विनाश नहीं हो जाना है, जैसे कि कुछ अन्य देशों में यह सुविदित रूप से हो चुका है, तो यह आवश्यक है कि हम अपने आप को यह स्वीकार करने के लिए सशक्त बनाएं कि व्यक्तियों के अधिकारों हेतु समादर गणतंत्र का सही बुर्ज है। इसलिए राज्य के लिए यह आवश्यक है कि पिटीशर के अधिकारों को राज्य के अधिकारियों द्वारा जो नुकसान पहुंचाया गया है, उसका उपचार किया जाए। यह उन अधिकारियों के विरुद्ध समाश्रय का रूप धारण कर सकता है।

11. बिहार राज्य द्वारा पिटीशनर को जो महान हानि पहुंचाई गई है उस पर विचार करते हुए हमारी यह राय है कि अन्तरिम अध्युपाय के रूप में राज्य के लिए यह आवश्यक है कि वह पिटीशनर को पहले से संदत्त 5,000 रुपये (पांच हजार रुपये) के अलावा 30,000 रुपये (तीस हजार रुपये) की अतिरिक्त राशि संदत्त करे। इस रकम का संदाय आज से लेकर दो सप्ताह के भीतर किया जाएगा। बिहार सरकार इस बारे में सहमत है कि वह ऐसा संदाय करेगी। हालांकि, हम इस बात को स्पष्ट कर दें कि हमारा यह आदेश उनकी सहमति पर निर्भर नहीं करता।

12. यह आदेश पिटीशनर को इस बात से प्रवारित नहीं करेगा कि वह राज्य से तथा उसके उन अधिकारियों से जिन्होंने गलती की है, समुचित नुकसानी का प्रत्युद्धरण करने हेतु वाद फाइल करे। जैसा कि हमने ऊपर कहा है, हमारे द्वारा जो प्रतिकर सम्बन्धी आदेश पारित किया गया है वह उपशमन की प्रकृति का है। हम पिटीशनर को तब तक अकिंचन नहीं छोड़ सकते जब तक कि उसका वाद, अनेक अपीलें तथा कार्यवाहियों का निष्पादन समाप्त नहीं हो जाता। तथ्य तथा विधि संबंधी सक्षम मुद्दों पर पूर्णरूपेण विचार-विमर्श, जो कि प्रतिकर सम्बन्धी वादों में मंद मंथर गति से चला करता है, उसे निर्धन रुदुल साह द्वारा ऐसा वाद फाइल किए जाने की प्रतीक्षा करनी होगी। तिमंगल (शक्तिमान व्यक्ति) को इस बात की स्वाधीनता होगी कि वह इस वाद में उन मुद्दों को उठाए। हम आशा करते हैं कि ऐसे समय तक बिहार राज्य में अथवा अन्यत्र रुदुल साह जैसे अन्य व्यक्तियों पहुंची स्थिति का लोप हो जाएगा।

रिट पिटीशन मंजूर किया गया।

भू०

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बी० वेंकट रेड्डी और अन्य

बनाम

आन्ध्र प्रदेश राज्य और अन्य

(B. Venkata Reddy and Others

v.

State of Andhra Pradesh and Others)

एम० वी० एल० नरसिंह राव और अन्य

बनाम

आन्ध्र प्रदेश राज्य और अन्य

(M. V. L. Narasingh Rao and Others

v.

State of Andhra Pradesh and Others)

तथा

गोरले अप्पाला नायडू और अन्य

बनाम

आन्ध्र प्रदेश सरकार और अन्य

(Gorle Appala Naidu and Others

v.

Government of Andhra Pradesh and Others)

(8 अगस्त, 1983)

(मुख्य न्यायाधिपति वाई० वी० चन्द्रचूड़, न्यायाधिपति ए० वरदराजन् और अमरेन्द्र नाथ सेन)

संविधान, 1950—अनुच्छेद 14, 16, 309 और 311—सपठित आन्ध्र प्रदेश ऐडहॉक रूल्स, 1973, नियम 3 और 13

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तथा आन्ध्र प्रदेश ऐडहॉक रूल्स, 1974, नियम 6)—कनिष्ठ प्राख्याताओं की ज्येष्ठता का अवधारण—तृतीय श्रेणी के स्नातकोत्तर प्राख्याताओं पर प्रथम और द्वितीय श्रेणी के स्नातकोत्तर कनिष्ठ प्राख्याताओं को अधिमान दिया जाना—प्रत्यर्थियों के पास चूंकि केवल तृतीय श्रेणी की स्नातकोत्तर उपाधियां थीं, फिर भी उन्हें पिटीशनरों से वरिष्ठ मान दिया गया था, जो कि अवैध है।

संविधान, 1950—अनुच्छेद 309 और 311—[सपठित आन्ध्र प्रदेश स्टेट एण्ड सबार्डिनेट सर्विस रूल्स, नियम 33 (सी)] कनिष्ठ प्राख्याताओं की ज्येष्ठता का अवधारण—नियम 33 (सी) आन्ध्र प्रदेश ऐडहॉक रूल्स, 1973 के नियम 1 और 2 के अधीन नियुक्तियों को लागू नहीं होता है।

संविधान, 1950—अनुच्छेद 14, 16 और 309—(सपठित कनिष्ठ प्राख्याताओं को लागू होने वाले आन्ध्र प्रदेश ऐडहॉक रूल्स, 1974 नियम 6)—कनिष्ठ प्राख्याता की कनिष्ठ वर्ग के महाविद्यालय के प्राचार्य के रूप में प्रोन्नति की जाना—पात्रता की सूची में से तृतीय श्रेणी के स्नातकोत्तर अध्यापकों को अपवर्जित कर दिया जाना विभेदात्मक नहीं है।

इस मामले में पिटीशनर, जिनकी संख्या सात है, स्नातकोत्तर सहायकों के रूप में अथवा जिला परिषद् उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में मुख्याध्यापकों के तौर पर विभिन्न स्थानों पर कार्य कर रहे थे। उन्हें 1969 में कनिष्ठ प्राख्याताओं के रूप में नियुक्त कर दिया गया क्योंकि वे सभी स्नातकोत्तर थे और उन्होंने प्रथम अथवा द्वितीय श्रेणी में 50% से अधिक अंक ग्रहण करते हुए स्नातकोत्तर परीक्षा पास की थी। द्वितीय प्रत्यर्थी ने एक ज्येष्ठता सूची तैयार की जिसमें उसने उन सातों पिटीशनरों को क्रमशः सं० 17, 15, 20, 21, 23, 40 और 41 पर रखा। इस वरिष्ठता सूची के आधार पर कनिष्ठ प्राख्याताओं को 40 की संख्या पर्यन्त उस सूची में से विभिन्न कनिष्ठ महाविद्यालयों के प्राचार्य के रूप में प्रोन्नत कर दिया गया। इस पर पिटीशनरों ने अभ्यावेदन पिटीशन फाइल किए। उन्होंने यह प्रार्थना की कि पुनरीक्षित वरिष्ठता सूची रद्द कर दी जाए क्योंकि ऐडहॉक रूल्स, 1973 का नियम 13(1) संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का उल्लंघन करता है। अन्त में मामला उच्चतम न्यायालय के समक्ष आया। उच्चतम न्यायालय द्वारा सिविल अपील सं० 1652/78

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

से 1659/78 तक मंजूर करते हुए और अपील सं० 415/1979 को खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित—जैसी कि 1978 की सिविल अपील सं० 1652 से 1659 तक में अपीलार्थियों ने दलील दी है, आन्ध्र प्रदेश ऐडहॉक रूल्स, 1973 के नियम 3(1) और (2) तथा नियम 13(1) को एक साथ पढ़ा जाना है। तभी उन नियमों के बीच समन्वय हो सकेगा। यदि नियम 13(1) को नियम 3(1) और (2) के संदर्भ के बिना पढ़ा जाएगा तो इसका परिणाम समन्वय करना नहीं होगा और प्रथम और द्वितीय श्रेणी के कनिष्ठ प्राध्यापक, जिन्हें ऊपर उल्लिखित अन्य उपबंधों द्वारा तृतीय श्रेणी के स्नातकोत्तर कनिष्ठ प्राध्यापकों के ऊपर वरीयता दी गई है, केवल ज्येष्ठता के विषय में तृतीय श्रेणी के स्नातकोत्तर कनिष्ठ प्राध्यापक की तुलना में कम लाभ वाली और निम्नतर स्थिति में आ जाएंगे जिससे उनको ऐडहॉक रूल्स, 1974 के नियम 6 को देखते हुए कनिष्ठ महाविद्यालयों के प्रधानाचार्यों के रूप में प्रोन्नति के मामले में कोई भी सहायता नहीं मिलेगी जब तक वे प्रथम या द्वितीय श्रेणी की स्नातकोत्तर डिग्री प्राप्त करके अपनी शैक्षिक योग्यता नहीं सुधारते। तदर्थ नियमों के प्रत्येक नियम को पूर्ण, स्वाभाविक और विधिक प्रभाव दिया जाना चाहिए। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि नियम 13(1) को कलाविहीन रूप से शब्दबद्ध किया गया है यद्यपि जब इसको नियम 3(1) और (2) के साथ पढ़ा जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि इसमें अधिकथित सिद्धान्त को नियम 3(1) और (2) में उल्लिखित कनिष्ठ प्राध्यापक के तीनों प्रवर्गों में से प्रत्येक के प्रति पृथक् रूप से लागू किया जाना है, अर्थात् (1) प्रथम और द्वितीय श्रेणी के स्नातकोत्तर, (2) स्नातकोत्तर स्कूल सहायकों के रूप में कार्य करने वाले ऐसे तृतीय श्रेणी के स्नातकोत्तर जिन्होंने कम-से-कम पांच वर्ष सेवा पूरी कर ली है, (3) स्नातकोत्तर स्कूल सहायकों के रूप में कार्य करने वाले ऐसे तृतीय श्रेणी के स्नातकोत्तर जिनकी सेवा पांच वर्ष से कम है, ऐसे क्रम में जिसमें उनको कनिष्ठ प्राध्यापक के रूप में नियुक्ति के लिए चुना जाना है। इन तीनों प्रवर्गों में से प्रत्येक सुभिन्न और पृथक् प्रवर्ग है। पहले प्रवर्ग में प्रथम और द्वितीय श्रेणी के स्नातकोत्तर हैं और कनिष्ठ प्राध्यापकों के रूप में उनकी नियुक्ति पर उनकी परस्पर ज्येष्ठता नियम 13(1) के अधीन स्नातकोत्तर स्कूल सहायकोंके रूप में उनकी मूल नियुक्ति की तारीख के संदर्भ में निश्चित की जानी है। जब स्नातकोत्तर स्कूल सहायकों के रूप में कार्य करने वाले ऐसे स्नातकोत्तरों को जिन्होंने कम-से-कम पांच वर्ष सेवा पूरी

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कर ली है, कनिष्ठ प्राध्यापकों के रूप में नियुक्त किया जाता है तो उनकी परस्पर ज्येष्ठता नियम 13(1) के अधीन स्नातकोत्तर स्कूल सहायकों के रूप में उनकी मूल नियुक्ति की तारीख के आधार पर निश्चित की जानी है। इसी प्रकार से जब स्नातकोत्तर सहायकों के रूप में कार्य करने वाले ऐसे स्नातकोत्तरों की, जिनकी सेवा पांच वर्ष से कम है, कनिष्ठ प्राध्यापकों के रूप में नियुक्त किया जाता है तो उनकी परस्पर ज्येष्ठता स्नातकोत्तर स्कूल सहायकों के रूप में उनकी मूल नियुक्ति की तारीख के आधार पर निश्चित की जानी है। यदि नियम 13(1) का इस रीति में निर्वचन किया जाता है, तो सभी तदर्थ नियमों को लागू करने के परिणामस्वरूप कोई असंगति नहीं होगी। नियम 13(1) के केवल इस रीति में अर्थ लगाने पर सरकार ने प्रथम और द्वितीय श्रेणी वाले स्नातकोत्तर कनिष्ठ प्राध्यापकों को तृतीय श्रेणी वाले स्नातकोत्तर कनिष्ठ प्राध्यापकों पर, जो कि उनसे ज्येष्ठ थे, जब वे सब कनिष्ठ प्राध्यापक के रूप में नियुक्त किए जाने से पूर्व स्नातकोत्तर स्कूल सहायकों के रूप में कार्य कर रहे थे, ज्येष्ठता प्रदान करके ऐडहॉक रूल्स, 1973 बनाने के शीघ्र बाद 1974 की ज्येष्ठता सूची तैयार की। (पैरा 30)

इसके पश्चात्, 1977 के अभ्यावेदन पिटीशन सं० 595 में प्राइवेट प्रत्यर्थियों द्वारा अधिकरण के समक्ष यह दलील दी गई कि वे स्नातकोत्तर स्कूल सहायकों के रूप में उस पिटीशन में पिटीशनरों से पहले नियुक्त किए गए थे और वे कनिष्ठ प्राध्यापकों के रूप में नियुक्ति के लिए तब अर्हित थे जब उस पिटीशन में पिटीशनर उस रूप में नियुक्त किए गए थे किन्तु तैनात किए जाने के लिए वे उपलब्ध नहीं थे और यह कि आन्ध्र प्रदेश स्टेट एण्ड सबार्डिनेट सर्विस रूल्स के नियम 33(ग) के अधीन वे ज्येष्ठता के हकदार हैं। वह नियम उन व्यक्तियों को लागू होता है जो सेवा के उस वर्ग या प्रवर्ग से उसी सेवा के किसी अन्य वर्ग या प्रवर्ग को स्थानान्तरित किए गए थे और वर्तमान मामले के तथ्यों को वहां लागू नहीं होंगे जहां कनिष्ठ प्राध्यापकों को तदर्थ नियमों के नियम 3(1) और (2) में दर्शित रीति में स्नातकोत्तर स्कूल सहायकों में से चयन द्वारा नियुक्त किया गया है और कनिष्ठ प्राध्यापकों के रूप में स्नातकोत्तर स्कूल सहायकों के स्थानान्तरण का कोई प्रश्न नहीं है। अतः 1977 के अभ्यावेदन पिटीशन सं० 595 में प्राईवेट प्रत्यर्थियों की ओर से प्रस्तुत की गई दूसरी दलील में भी कोई गुणागुण नहीं है। (पैरा 32)

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आन्ध्र प्रदेश ऐडहॉक रूल्स, 1973 के नियम 13(1) का निर्वचन ऊपर दर्शित रीति में किया जाना है और तदनुसार ज्येष्ठता निश्चित की जानी है और उस नियम को अभिखंडित करने की कोई आवश्यकता नहीं है और यह कि 1976 की आक्षेपकृत ज्येष्ठता सूची को अभिलिखित किया जाना है और 1974 की ज्येष्ठता सूची को पुनः स्थापित किया जाना है। इसका अर्थ यह होगा कि तृतीय श्रेणी वाले स्नातकोत्तर कनिष्ठ प्राध्यापकों द्वारा ज्येष्ठता निश्चित करने के बारे में 1979 की सिविल अपील सं० 415 में की गई पहली प्रार्थना को रद्द करना होगा। (पैरा 34)

किसी शिक्षा संस्था के प्रधान के लिए प्रथम या द्वितीय श्रेणी की स्नातकोत्तर डिग्री विहित करने और प्राप्त की जाने वाली ज्येष्ठता के उद्देश्य से सीधा संबंध है और इसे विभेदात्मक नहीं कहा जा सकता। अतः ऐडहॉक रूल्स, 1974 का नियम 6 विभेदात्मक और अवैध होने के कारण अभिखंडित किया जाना चाहिए। (पैरा 35)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[1976]	ए० आई० आर० 1976 एस० सी० 2345 : **रिज़र्व बैंक आफ इण्डिया बनाम एन० सी० पालीवाल** (Reserve Bank of India *v.* N. C, Paliwal);	33
[1972]	ए० आई० आर० 1972 एस० सी० 252 : **एस० एम० पण्डित बनाम गुजरात राज्य** (S. M. Pandit *v.* State of Gujarat).	35

सिविल अपीली अधिकारिता : **1978 की सिविल अपील सं० 1652 से 1657 और 1658 तथा 1659 और 1979 की सिविल अपील सं० 415.**

1977 के अभ्यावेदन पिटीशन सं० 595 और 985 तथा 1978 के अभ्यावेदन पिटीशन सं० 340, 289, 466 और 533 में आन्ध्र प्रदेश प्रशासनिक अधिकरण के तारीख 31 अगस्त, 1978 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध विशेष इजाज़त लेकर फाइल की गई अपीलें।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

और

1978 की सिविल अपील सं० 415.

1976 के अन्तरण रिट पिटीशन सं० 941 में आन्ध्र प्रदेश प्रशासनिक अधिकरण के तारीख 31 अगस्त, 1978 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील।

अपीलार्थियों की ओर से (1978 की सिविल अपील सं० 1652 से 1659 में)	सर्वश्री एम० एन० फड़के, एम० आर० के० चौधरी, बी० कांताराव और कुमारी नलिनी
अपीलार्थियों की ओर से (1979 की सिविल अपील सं० 415 में)	सर्वश्री एस० एन० कवकड़ और बी० पार्थसारथी
प्रत्यर्थी सं० 3, 5, 8 और 9 की ओर से (1979 की सिविल अपील सं० 1652-59 में)	सर्वश्री टी० एस० कृष्णमूर्ति अय्यर, के० रामकुमार और श्रीमती जे० रामचन्द्रन
प्रत्यर्थी सं० 1 और 2 की ओर से (1979 की सिविल अपील सं० 1652-59 और 415 में)	सर्वश्री पी० राम रेड्डी और जी० नारायण राव

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति ए० वरदराजन ने दिया।

न्यायाधिपति वरदराजन—

विशेष इजाज़त लेकर ये अपीलें 1977 के अभ्यावेदन पिटीशन सं० 595 इत्यादि तथा 1976 के अन्तरित रिट पिटीशन सं० 941 में आन्ध्र प्रदेश प्रशासनिक, अधिकरण हैदराबाद के निर्णयों के विरुद्ध फाइल की गई हैं। 1978 की सिविल अपील सं० 1652 से 1659, 1977 के अभ्यावेदन पिटीशन सं० 595 इत्यादि में तारीख 31 अगस्त, 1978 के एकल निर्णय के विरुद्ध फाइल की गई है जिसमें एक ही विवाद्यक पर विचार किया जाना था, जब कि 1979 की सिविल अपील सं० 415, 1976 के अन्तरित रिट पिटीशन सं० 941 में तारीख 31 अगस्त, 1978 प्रथम निर्णय के विरुद्ध फाइल की गई है। अधिकरण के समक्ष पिटीशनरों द्वारा फाइल की गई सभी अपीलें इस न्यायालय में एक साथ सुनी गई थीं और इन्हें एक ही निर्णय द्वारा निपटाया जाएगा।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

2. 1977 के अभ्यावेदन पिटीशन सं० 515 इत्यादि में अधिकरण का मुख्य निर्णय 1977 के अभ्यावेदन पिटीशन सं० 595 में है जिसके अनुसरण में समूह के अन्य अभ्यावेदन पिटीशन को निपटाया गया है जैसा कि इस निर्णय में अन्यत्र उल्लेख किया गया है। 1977 का अभ्यावेदन पिटीशन सं० 595 सात पिटीशनरों द्वारा फाइल किया गया था जिनमें वे पिटीशनर सं० 1 से 6 विभिन्न स्थानों पर जूनियर महाविद्यालय के प्रधानाचार्यों के रूप में कार्य कर रहे थे जब कि सातवां पिटीशनर आन्ध्र प्रदेश में गवर्नमेंट कालेज श्रीकाकुलुम में कनिष्ठ प्राध्यापक के रूप में कार्य कर रहा था और कनिष्ठ प्राध्यापकों के बीच अपनी मूल ज्येष्ठता के आधार पर जूनियर महाविद्यालय में प्रधानाचार्य के रूप में प्रोन्नति के लिए परिपक्व होने का दावा किया। हम सुविधा की दृष्टि से, इन अपीलों में पक्षकारों को उसी रूप में निर्दिष्ट करेंगे जिसमें कि अधिकरण के समक्ष संकेत किया गया है।

3. 1977 के अभ्यावेदन पिटीशन सं० 595 में सात पिटीशनर, जो कि विभिन्न स्थानों पर जिला परिषद् उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के स्नातकोत्तर सहायक अध्यापक या प्रधान अध्यापक के पद पर कार्य कर रहे थे 1969 कनिष्ठ प्राख्याता के रूप में नियुक्त किए गए थे क्योंकि ये सभी 50 प्रतिशत या उससे अधिक अंकों सहित प्रथम या द्वितीय श्रेणी में स्नातकोत्तर परीक्षा में थे उत्तीर्ण और कनिष्ठ प्राध्यापकों के रूप में नियुक्ति के लिए पूर्णतः पात्र थे। पिटीशनरों ने यह दलील दी है कि कनिष्ठ प्राख्याताओं को लागू होने वाले तदर्थ नियमों के अधीन चूंकि वे स्नातकोत्तर उपाधि धारण करते थे जो प्रथम या द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण हुए थे, ऐसे स्नातकोत्तर व्यक्तियों से ज्येष्ठता सूची में ऊपर रखे जाने चाहिएं जो कि तृतीय श्रेणी में स्नातकोत्तर परीक्षा उत्तीर्ण थे। द्वितीय प्रत्यर्थी आन्ध्र प्रदेश के उच्चतर शिक्षा के संयुक्त निदेशक ने 1974 में नियमों के अनुसार विषयानुसार ज्येष्ठता सूची तैयार की जिसमें 1977 के अभ्यावेदन पिटीशन सं० 595 में के सात पिटीशनरों को क्रमशः क्रम सं० 17, 15, 20, 21, 23, 40 और 41 पर रखा गया। उस ज्येष्ठता के आधार पर उस सूची में के 40 की पंक्ति तक के कनिष्ठ प्राख्याताओं को विभिन्न कनिष्ठ महाविद्यालयों के प्रधानाचार्य के रूप में प्रोन्नति की गई थी। प्रथम प्रत्यर्थी आन्ध्र प्रदेश राज्य ने 1974 के रिट पिटीशन सं० 4358 और 1975 की रिट अपील सं० 920 में आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के निदेशों के अनुसार पुनरीक्षित ज्येष्ठता सूची तैयार की। उस पुनरीक्षित ज्येष्ठता सूची में जो 1976 में जारी की गई थी, 1977 के अभ्यावेदन पिटीशन सं० 595 में पिटीशनरों

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

को क्रमशः सं० 380, 54, 390, 392, 406, 368 और 374 पर रखा गया। पिटीशनरों ने यह दलील दी थी कि तृतीय श्रेणी स्नातकोत्तर उपाधि धारकों को सर्वप्रथम 1970 और 1975 में कनिष्ठ प्राध्यापकों के रूप में नियुक्त किया गया था पिटीशनरों से वरिष्ठ रूप में उक्त पुनरीक्षित ज्येष्ठतम सूची में दर्शित किया गया था यद्यपि पिटीशनरों को 1969 में कनिष्ठ प्राख्याता के रूप में स्वतः पहले ही नियुक्त कर लिया गया था और नवम्बर, 1969 से भी पहले उनकी सेवाएं नियमित कर दी गई थीं और सरकार द्वारा विरचित तदर्थ नियम के अधीन प्रथम और द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण स्नातकोत्तर उपाधि धारकों सहित स्नातकोत्तर सहायक को एक ग्रुप में समझा जाना चाहिए तथा तृतीय श्रेणी में स्नातकोत्तर उपाधि धारण करने वाले ऐसे स्नातकोत्तर सहायकों से ज्येष्ठ समझा जाना चाहिए, जिन्हें अन्य ग्रुप के रूप में समझा जाना चाहिए। 1977 के अभ्यावेदन पिटीशन में के पिटीशनरों ने इन परिस्थितियों में 27 दिसम्बर, 1976 को आन्ध्र प्रदेश राज्य प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा जारी की गई पुनरीक्षित ज्येष्ठता सूची को वहां तक अभिखण्डित करने के लिए निवेदन किया था जहां तक इससे उनका सम्बन्ध है तथा 1974 की पूर्ववर्ती ज्येष्ठता सूची के अनुसार उनकी पुरानी ज्येष्ठता सूची के प्रत्यावर्तन के लिए या विकल्प के रूप में यह घोषित करने के लिए कि तदर्थ नियम 1973 (ऐडहॉक रूल्स, 1973) का नियम 13(1), जो कि कनिष्ठ प्राध्यापकों की ज्येष्ठता के बारे में है, संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का अतिक्रामक है।

4. संविधान के अनुच्छेद 309 के अधीन सरकार द्वारा विरचित तदर्थ नियमावली का नियम 13(1) और (2) का पाठ निम्न प्रकार है—

> *"नियम 13(i)—नियम 3 के उपनियम (1) के खण्ड (i) और (ii) के अधीन नियुक्त किए गए व्यक्ति की ज्येष्ठता स्नातकोत्तर सहायक के रूप में उसकी वास्तविक नियुक्ति की तारीख के प्रति निर्देश से या उस संभाव्य तारीख के प्रति निर्देश में जिस तारीख को उसे स्नातकोत्तर सहायक के रूप में नियुक्त किया होता, अवधारित की

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है —

> "Rule 13 (i)—The seniority of a person appointed under clauses (i) and (ii) of sub-rule (1) of Rule 3 shall be determined with the reference to the date of his actual appointment as a Post-Graduate Assistant or the probable date on which he would have been appointed

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जाएगी, यदि उसकी नियुक्ति या प्रोन्नति किसी उच्च पद पर नहीं हुई होती;

(ii) नियम 3 के उपनियम (1) के खण्ड (iii) के अधीन नियुक्त किए गए किसी व्यक्ति की ज्येष्ठता उसकी परिवीक्षा के प्रारम्भ होने की तारीख के प्रति निर्देश से अवधारित की जाएगी :

परन्तु यह कि ऐसा कोई भी व्यक्ति नियम 3 के उपनियम (1) के खण्ड (i) या (ii) के अधीन नियुक्त किए गए किसी व्यक्ति से ज्येष्ठ नहीं होगा;

परन्तु यह और कि नियम 3 के उपनियम (1) के उपखंड(ख), उपखण्ड (ग) या खण्ड (iii) के अधीन नियुक्त किया गया कोई व्यक्ति उस खण्ड के उपखण्ड (क) के अधीन नियुक्त किए गए किसी व्यक्ति से ज्येष्ठ नहीं होगा....."

5. तदर्थ नियम 1973 के नियम 3 का पाठ निम्न प्रकार है—

**"नियम 3—नियुक्ति : (1) इस वर्ग के लिए नियुक्ति निम्नलिखित रूप में की जाएगी....

(i) सर्वप्रथम वर्ग 2 के प्रवर्ग 1-क में स्नातकोत्तर सहायक की नियुक्ति करके और आन्ध्र प्रदेश शिक्षा अधीनस्थ सेवा में वर्ग 2 के प्रवर्ग 2 के ग्रेड I में प्रवरण ग्रेड सहायकों की नियुक्ति करके या

---

as Post-Graduate Assistant, but for his appointment or promotion to a higher post;-

(ii) The seniority of any person appointed under clause (iii) of sub-rule (1) of Rule 3 shall be determined with reference to the date of commencement of his probation :

Provided that no such person shall be senior to any person appointed under clause (i) or (ii) of sub-rule (1) of Rule 3 :

Provided further that no person appointed under sub-clause (b), sub-clause (c) or clause (iii) of sub-rule (1) of Rule 3 shall be senior to a person appointed under sub-clause (a) of that clause....."

**"Rule 3—Appointment : (1) Appointment to this class shall be made as follows :

(i) First by appointment of Post Graduate Assistants in Category I-A of Class II and Selection Grade Assistants in Grade I of Category 2 of Class II in the

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उच्च विद्यालयों के प्राध्यापकों की नियुक्ति करके और जिला परिषद् उच्च विद्यालयों में के स्नातकोत्तर सहायकों की और नगरपालिका के ऐसे विद्यालयों के जो जूनियर महाविद्यालयों में संपरिवर्तित कर दिए गए हैं, के प्राध्यापकों की नियुक्ति करके ;

(ii) दूसरे यदि खण्ड (i) के अधीन नियुक्त किए जाने के लिए कोई योग्य या अर्हित व्यक्ति नहीं हों तब इन नियमों के प्रवृत्त होने के तुरन्त पूर्व स्नातकोत्तर सहायकों के लिए अनुज्ञेय वेतनमान में शारीरिक विज्ञान में स्नातकोत्तर उपाधि धारण करने वाले प्रशिक्षित स्नातकों की नियुक्ति करके ;

(iii) तीसरे यदि खण्ड (1) और उपखण्ड (ii) के अधीन नियुक्ति के लिए कोई योग्य और अर्हित व्यक्ति उपलब्ध नहीं है, तो—

(क) ऐसे प्राइवेट प्रबन्धतंत्र या नगरपालिका के अधीन जो कनिष्ठ महाविद्यालयों में संपरिवर्तित नहीं किए गए हैं, मान्यताप्राप्त बहूद्देशीय या उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के

Andhra Pradesh Educational Sub-ordinate Service or Headmasters of High Schools and Post-Graduate Assistants in Zila Parishads High Schools and such of the Municipal Schools as are converted into Junior Colleges;

(ii) Secondly, if there are no suitable and qualified persons available for appointment under clause (i) then by appointment of Trained Graduates possessing Post-Graduate Diploma in Physical-Sciences in the scale of pay admissible to Post-Graduate Assistants immediately before the commencement of these rules;

(iii) Thirdly, if there are no suitable and qualified persons available for appointment under sub-clause (i) or sub-clause (ii)—

(a) by recruitment from among the Headmasters and Post-Graduate Assistants in recognised Multipurpose or Higer Secondary Schools under private management or under the manage-

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रधान अध्यापकों और स्नातकोत्तर सहायकों में से भर्ती द्वारा, या

(ख) आन्ध्र प्रदेश शिक्षा अधीनस्थ सेवा के ग्रेड II में या वर्ग II के प्रवर्ग 2 में के विद्यालय सहायकों, और वर्ग III के प्रवर्ग I के ग्रेड I के पण्डितों (जिनमें हिन्दी पण्डित सम्मिलित हैं), तथा मुन्शियों में से स्थानान्तरण या किसी अन्य सेवा से स्थानान्तरण द्वारा भर्ती करके; या

(ग) सीधी भर्ती द्वारा ।

(2) उपनियम (1) के खण्ड (iii) के खण्ड (i) या उपखण्ड (क) के अधीन की जाने वाली नियुक्ति को अधिमान दिया जाएगा :—(क) :

(क) सर्वप्रथम ऐसे व्यक्तियों को जो प्रथम या द्वितीय श्रेणी स्नातकोत्तर हैं ;

(ख) दूसरे ऐसे व्यक्तियों को जो तृतीय श्रेणी स्नातकोत्तर उपाधिधारक हैं, और जिनकी आन्ध्र प्रदेश शिक्षा अधीनस्थ सेवा में स्नातकोत्तर सहायक के रूप में या प्रवरण प्रवर्ग सहायक

---

ment of the Municipality which are not converted into Junior Colleges; or

(b) by transfer from School Assistants in Grade II or Category 2 in Class II and Pandits (including Hindi Pandits), Munshis Grade I in Category I of Class III of the Andhra Pradesh Educational Sub-ordinate Service or by recruitment by transfer from any other service; or

(c) by direct recruitment.

(2) Preference shall be given for appointment under clause (i) or sub-clause (a) of clause (iii) or Sub-rule (1)—(a) :

(a) Firstly to persons with first or second class Post-Graduate degree;

(b) Secondly to persons with a third class Post-Graduate degree with not less than five years of service as a Post-Graduate Assistantr or

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के रूप में या जिला परिषद् उच्च विद्यालय के प्रधान अध्यापक के रूप में या जिला परिषद् या नगरपालिका के प्रबंधतंत्र के अधीन किसी विद्यालय में स्नातकोत्तर के सहायक के रूप में 5 वर्ष से कम सेवा न हो ;

(ग) तीसरे, तृतीय श्रणी स्नातकोत्तर उपाधिधारक ऐसे व्यक्तियों को जो आन्ध्र प्रदेश शिक्षा अधीनस्थ सेवा में स्नातकोत्तर सहायक के रूप में या प्रवरण प्रवर्ग सहायक के रूप में या जिला परिषद् या नगरपालिका के प्रबन्धतंत्र के अधीन उच्च विद्यालय के किसी प्रधान अध्यापक के रूप में या किसी विद्यालय में स्नातकोत्तर सहायक के रूप में 5 वर्ष से कम सेवा कर चुके हों.....।"

6. आन्ध्र प्रदेश सरकार ने 1964 में यह विनिश्चय किया कि माध्यमिक विद्यालय शिक्षा 11 वर्ष के बजाय 10 वर्ष की अवधि की होनी चाहिए और यह कि इसके पश्चात् 1969-70 से प्रारम्भ होने वाली तत्कालीन विद्यमान उच्चतर माध्यमिक और बहूद्देशीय प्रणाली के स्थान पर 2 वर्ष की इन्टरमीडिएट कालेजिएट शिक्षा दी जानी चाहिए। तदनुसार सरकार ने दिनांक 25 अक्तूबर, 1968 के जी० ओ० एमएस० 1920 एजूकेशन में यह विनिश्चय किया कि विद्यमान महाविद्यालयों में एक वर्ष के प्री-यूनिवर्सिटी पाठ्यक्रम के स्थान पर 2 वर्ष का इन्टरमीडिएट पाठ्यक्रम पुरः स्थापित किया जाना चाहिए। दो वर्ष का इन्टरमीडिएट पाठ्यक्रम के

Selection Grade Assistant in the Andhra Pradesh Educational Subordinate Service or as a Headmaster of a Zila Parishad High School or a Post-Graduate Assistant in a school under the management of a Zila Parishad or a Municipality;

(c) Thirdly to persons with a third class Post-Graduate degree with less than five years' service as a Post-Graduate Assistant or Selection Grade Assistant in the Andhra Pradsh Educational Subordinate Service or as a Headmaster of a High School or Post-Graduate Assistant in a School under the management of a Zila Parishad or a Municipality....."

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

लिए प्रारम्भ किया गया। कनिष्ठ महाविद्यालयों में कर्मचारीवृन्द के स्टाफ पैटर्न और कर्मचारिवृन्द का वेतन-मान सरकार द्वारा तारीख 25 अगस्त, 1969 के जी० ओ० एमएस० 2063-एजूकेशन में अधिकथित किया गया था। तारीख 17 सितम्बर, 1969 का जी० ओ० एम० एस० 2186-एजूकेशन में सरकार ने कनिष्ठ महाविद्यालयों में स्नातकोत्तर अध्यापकों को आमेलित किए जाने से सम्बन्धित निम्नलिखित निदेश जारी किया—

"कनिष्ठ महाविद्यालयों में कनिष्ठ प्राध्यापकों के रूप में स्नातकोत्तर व्यक्तियों की नियुक्ति के सम्बन्ध में ऐसे व्यक्तियों को अधिमान दिया जाएगा जो कि 180-350 रुपए के वेतन-मान में हैं और जो योग्य हैं तथा ज्येष्ठता के अनुसार, जैसा कि नीचे उल्लेख किया गया है, आमेलित किए जाने के लिए इच्छुक हैं :

(क) स्नातकोत्तर सहायकों के रूप में कार्यरत प्रथम या द्वितीय श्रेणी के स्नातकोत्तर ;

(ख) तृतीय श्रेणी वाले स्नातकोत्तर जो स्नातकोत्तर सहायकों के रूप में कार्यरत हैं और जिनकी सेवा 5 वर्ष से कम नहीं है ;

(ग) तृतीय श्रेणी के ऐसे स्नातकोत्तर जो स्नातकोत्तर सहायक के रूप में कार्य कर रहे हैं और जिन की सेवा 5 वर्ष से कम है ; और

(घ) अन्ततः स्नातकोत्तर सहायकों के वेतन-मान में कार्यरत शारीरिक विज्ञान के स्नातकोत्तर उपाधि धारण करने वाले प्रशिक्षित स्नातक।"

7. उस सरकारी आदेश में यह उल्लेख किया गया था कि ऐसे सभी विद्यमान स्नातकोत्तर व्यक्तियों को जिन्हें कनिष्ठ महाविद्यालयों में कनिष्ठ प्राध्यापकों के रूप में आमेलित किया जाएगा, सम्यक् अनुक्रम में तदर्थ नियम का विरचित किया जाना लम्बित रहते हुए कनिष्ठ प्राध्यापकों के रूप में अस्थायी रूप से नियुक्त किया जाएगा। तारीख 4 जून, 1970 के जी० ओ० एमएस० 1147, एजूकेशन, में सरकार ने यह आदेश दिया कि सामान्य ज्येष्ठता सूची (कॉमन सीनियारिटी लिस्ट) में प्रथम पंक्ति पर केवल उन व्यक्तियों को रखा जाएगा जिन्होंने 50 प्रतिशत और उससे अधिक अंकों सहित प्रथम और द्वितीय श्रेणी में स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त की है। ये सभी सरकारी आदेश कार्यपालिका अनुदेश थे।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

8. इस बारे में कोई विवाद नहीं है कि प्रत्यर्थी प्रथम और द्वितीय श्रेणी स्नातकोत्तर उपाधि धारक हैं और यह कि 1977 के अभ्यावेदन पिटीशन 595 में के प्रत्यर्थी सं० 3 से 8, जिन्हें 1976 की आक्षेपित ज्येष्ठता सूची में उनको ज्येष्ठ के रूप में रखा गया है मात्र तृतीय श्रेणी में स्नातकोत्तर उपाधि धारण करने वाले हैं। पिटीशनरों ने तदर्थ नियम के उपर्युक्त नियम 3 का गंभीरतापूर्वक अवलम्ब लिया है, जिसके अनुसार प्रथम और द्वितीय श्रेणी में स्नातकोत्तर उपाधि धारण करने वाले व्यक्तियों को तृतीय श्रेणी में उपाधि धारण करने वाले स्नातकोत्तर व्यक्तियों की तुलना में अधिमान दिया जाना चाहिए और उन्होंने यह दलील दी कि इसलिए उन्हें कनिष्ठ महाविद्यालयों में कनिष्ठ प्राध्यापकों के संवर्ग में परस्पर ज्येष्ठता अवधारित करने के लिए तृतीय श्रेणी में स्नातकोत्तर उपाधि धारण करने वालों पर ज्येष्ठता दी जानी चाहिए जैसा कि 1974 में तैयार की गई ज्येष्ठता सूची में किया गया था।

9. प्रथम प्रत्यर्थी आन्ध्र प्रदेश राज्य की ओर से यह दलील दी गई थी कि संविधान के अनुच्छेद 309 के अधीन तदर्थ नियम का विरचित किया जाना लम्बित रहते हुए कनिष्ठ प्राध्यापकों की नियुक्ति से सम्बन्धित सरकारी आदेशों में दिए गए कार्यपालक निदेश प्रवर्तन में तब नहीं रह जाते जब एक बार यह तदर्थ नियम विरचित कर दिए गए और यह कि तदर्थ नियम 13 के अधीन प्रथम, द्वितीय और तृतीय श्रेणी सहित स्नातकोत्तर उपाधि और स्नातकोत्तर डिप्लोमा वाले पूर्ववर्ती उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों और बहूद्देशीय विद्यालयों के स्नातकोत्तर सहायकों की ज्येष्ठता स्नातकोत्तर सहायकों के रूप में उनकी नियुक्ति की वास्तविक तारीख के प्रति निर्देश से अवधारित करना होगा। सरकार ने इस बात से इनकार किया कि नियम 13 (1) संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का अतिक्रामक है और प्रतिशपथपत्र में यह दलील दी कि शिक्षा विभाग ने 1974 के रिट पिटीशन सं० 4358 में और 1975 की रिट अपील सं० 920 में आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के निर्णय का अनुसरण किया और 1974 की पूर्वतर ज्येष्ठता सूची को रद्द कर दिया और तदर्थ नियम के नियम 13 (1) के अनुसार 1976 की पुनरीक्षित ज्येष्ठता सूची विरचित की। इस प्रकार सरकार ने अभ्यावेदन पिटीशन का विरोध किया।

10. यह सही है कि अधिकरण ने अपने निर्णय के पैरा 9 में इस बात की ओर ध्यान दिलाया है कि पिटीशनर प्रथम और द्वितीय श्रेणी स्नातकोत्तर उपाधि धारक हैं जब कि प्रत्यर्थी सं० 3 से 8 मात्र तृतीय श्रेणी

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

स्नातकोत्तर उपाधि धारक है, किन्तु यह गलत मत व्यक्त किया गया है कि दोनों प्रवर्गों के स्नातकोत्तर सहायकों की नियुक्ति तारीख 19 सितम्बर, 1973 के जी० ओ० एमएस० 939, एजूकेशन में जारी किए गए तदर्थ नियम के नियम 3 (1) (i) के अधीन कनिष्ठ प्राध्यापकों के रूप में की गई है। हमारे समक्ष यह विवाद नहीं किया गया था कि चूंकि पिटीशनरों को 50 प्रतिशत और उससे अधिक अंकों सहित प्रथम और द्वितीय श्रेणी में स्नातकोत्तर होने के कारण 1969 में कनिष्ठ प्राध्यापकों के रूप में नियुक्त किया गया था और यह कि प्रत्यर्थी सं० 3 से 8, जो कि तृतीय श्रेणी स्नातकोत्तर थे, मात्र 1970 और 1975 में कनिष्ठ प्राध्यापकों के रूप में निष्युत किए गए थे। इसलिए पिटीशनर और कतिपय प्रत्यर्थी 3 से 8; 19 सितम्बर, 1973 को तदर्थ नियम विरचित किए जाने से पूर्व 1969 और 1970 में नियुक्त किए गए थे और मात्र कतिपय प्रत्यर्थी 3 से 8 तदर्थ नियमावली के नियम 3 (1) (i) के अधीन 1975 में नियुक्त किए गए थे। यह तथ्य कि पिटीशनर प्रत्यर्थियों से पहले कनिष्ठ प्राध्यापकों के रूप में नियुक्त किया गया था, अधिकरण के समक्ष श्री शिवशंकर सिंह द्वारा स्वीकार किया गया था, जैसा कि अधिकरण के निर्णय के पैरा 8 में दर्शित किया गया है। अधिकरण ने निम्नलिखित तथ्यों का भी उल्लेख किया—

(1) यह कि सरकार ने तारीख 25 अगस्त, 1969 के जी० ओ० एमएस० सं० 2063, एजूकेशन, में यह विनिश्चय किया था कि प्रथम और द्वितीय श्रेणी के स्नातकोत्तरों को 200-500 रुपये के वेतन मान में 260/- रुपये का उच्चतर प्रारम्भिक वेतन दिया जाएगा और यह कि तृतीय श्रेणी के स्नातकोत्तरों को उपर्यक्त वेतन-मान में कनिष्ठ प्राख्याताओं के रूप में उनकी नियुक्ति से पूर्व उनके द्वारा प्राप्त किया जाने वाला वेतन ही अनुज्ञात किया जाएगा;

(2) यह कि सरकार ने तारीख 4 जून, 1970 के जी० ओ० एमएस० एजूकेशन में यह मत व्यक्त किया कि सामान्य ज्येष्ठता सूची में प्रथम पंक्ति मात्र उन व्यक्तियों को दी जाएगी जिन्होंने 50% और उससे अधिक अंकों सहित प्रथम या द्वितीय श्रेणी प्राप्त की है जो कि कनिष्ठ प्राख्याताओं की सीधे भर्ती के लिए विहित अर्हता है; और

(3) यह कि 19 सितम्बर, 1973 को विरचित तदर्थ नियम के नियम 3 (1) (i) में यह अनुबंधित है कि कनिष्ठ प्राख्याताओं

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के प्रवर्ग में नियुक्ति के समय प्रथम या द्वितीय श्रेणी के स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त करने वाले व्यक्तियों को तृतीय श्रेणी में स्नातकोत्तर उपाधि धारण करने वाले व्यक्तियों पर अधिमान प्राप्त होगा।

11. किन्तु अधिकरण ने इस तथ्य का जोरदार अवलम्ब लिया था कि आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय ने 1975 की रिट अपील सं० 920 और 934 में यह निदेश दिया था कि ज्येष्ठता सूची तदर्थ नियम 3 के नियम 3ए के अनुसरण में तैयार की जानी चाहिए जिसे 1 अगस्त, 1969 से भूतलक्षी प्रभाव दिया गया है और यह अभिनिर्धारित किया कि तदर्थ नियम के नियम 13 के अनुसार विरचित आक्षेपित ज्येष्ठता सूची जिसे पूर्वतर कार्यपालक निदेश पर अग्रता प्राप्त है, विधिमान्य है और यह कि चूंकि पिटीशनर और प्रत्यर्थी 3 से 8 स्नातकोत्तर सहायकों के उसी प्रवर्ग वाले हैं इसलिए संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 के अतिक्रमण का कोई प्रश्न नहीं उठता क्योंकि तदर्थ नियम 13 (1) में यह बताया गया है कि कनिष्ठ प्राध्याताओं के रूप में नियुक्त स्नातकोत्तर सहायकों की ज्येष्ठता स्नातकोत्तर सहायकों के रूप में उनकी वास्तविक नियुक्ति की तारीख के प्रति निर्देश से या उस संभाव्य तारीख के प्रति निर्देश से अवधारित की जाएगी जिस तारीख को उनकी नियुक्ति स्नातकोत्तर सहायकों के रूप में की गई हो, यदि उनकी नियुक्ति या प्रोन्नति उच्चतर पदों पर न कर दी गई हो। अधिकरण ने यह मत व्यक्त किया कि यदि सरकार का आशय अन्यथा था, तो उसने उसमें तदनुसार विनिर्दिष्टतः उपबन्ध किए होते। इस बात को दृष्टि में रखते हुए अधिकरण ने 1974 में तैयार की गई पुरानी ज्येष्ठता सूची को प्रत्यावर्तित करने की पिटीशनरों की प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया जो उसकी राय में तदर्थ नियम के नियम 13(1) के प्रतिकूल है। तदनुसार अधिकरण ने 1977 का अभ्यावेदन पिटीशन 595 खारिज कर दिया और उस पिटीशन में अपने निर्णय को देखते हुए 1977 का अभ्यावेदन पिटीशन 985 और 1978 का अभ्यावेदन पिटीशन 289, 340 446 और 553 या तो नामंजूर या खारिज कर दिया। 1978 के अभ्यावेदन पिटीशन 273 में अधिकरण ने यह मत व्यक्त किया कि पिटीशनरों का यह अभिवाक् कि प्रथम और द्वितीय श्रेणी स्नातकोत्तर उपाधि धारकों को, कनिष्ठ प्राध्यापकों के रूप में ज्येष्ठता के विषय में तृतीय श्रेणी स्नातकोत्तर उपाधि धारकों की तुलना में अधिमान दिया जाना चाहिए, 1977 के अभ्यावेदन पिटीशन 595 में उसके निर्णय के अन्तर्गत है और चूंकि 1978 के अभ्यावेदन पिटीशन 273 में पिटीशनरों ने पहले ही बी०एड० की अर्हता प्राप्त कर ली थी जो कि स्नातकोत्तर सहायकों के रूप में नियमित

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नियुक्ति के लिए पूर्व अपेक्षा है। इसलिए स्नातकोत्तर सहायकों के पदों पर उन पिटीशनरों के नियमितीकरण के प्रश्न की परीक्षा नियमों के अनुसरण में की जानी चाहिए और उस प्रवर्ग में उनकी सेवाएं नियमित की जानी चाहिएं और इसके पश्चात् कनिष्ठ प्राध्यातओं के रूप में उनकी ज्येष्ठता तदर्थ नियम के नियम 13 (1) के अनुसरण में अवधारित का जानी चाहिए। 1976 के अंतरित रिट पिटीशन सं० 1246 में अधिकरण ने अपने निर्णय में यह उल्लेख किया है कि 1975 कि रिट अपील सं० 920 और 938 में उच्च न्यायालय के निर्णय में यह आदेश दिया गया है कि तदर्थ नियम के नियम 13 (1) के अनुसरण में एक नई ज्येष्ठता सूची तैयार की जानी चाहिए, यह कि उस रिट पिटीशन में 4 पिटीशनरों द्वारा प्रार्थित अनुतोष पहले ही दिया जा चुका है और यह कि तदनुसार रिट पिटीशन का निपटारा किया जाता है। अधिकरण ने यह आदेश दिया है कि 1976 का अन्तरित रिट पिटीशन 785 का भी विनिर्दिष्टतः यह संकेत किए बिना कि उस रिट पिटीशन को किस प्रकार निपटाया गया है, उसी रूप में निपटारा किया जाता है जैसा कि 1976 का आन्तरिक रिट पिटीशन सं० 1246 का किया गया है।

12. 1976 के अन्तरित रिट पिटीशन सं० 941 में, जिसमें से उस पिटीशन में उप-पिटीशनरों द्वारा फाइल की गई सिविल अपील सं० 415 उद्भूत हुई है, प्रार्थित अनुतोष निम्न प्रकार थे : (1) यह कि तदर्थ नियम 1973 के नियम 13 पर आधारित सही ज्येष्ठता सूची सभी कनिष्ठ प्राध्यापकों के बारे में जारी की जानी चाहिए, (2) यह कि तारीख 19 जून, 1974 के जी० ओ० एमएस० 502-एजूकेशन, में विरचित तदर्थ नियम का नियम 6, जिसके अधीन प्रथम या द्वितीय श्रेणी स्नातकोत्तर उपाधि कनिष्ठ महाविद्यालयों के प्रधानाचार्यों के पदों पर प्रोन्नति के लिए अर्हता के रूप में विहित की गई है, अवैध होने के कारण विखण्डित किया जाना चाहिए, और (3) द्वितीय प्रत्यर्थी-शिक्षा निदेशक, आन्ध्र प्रदेश द्वारा तारीख 14 मार्च, 1974 की कार्यवाहियों में कनिष्ठ महाविद्यालयों के प्रधानाचार्यों के रूप में 7 तृतीय श्रेणी के स्नातकोत्तर कनिष्ठ प्राध्यापकों की की गई नियुक्ति को अवैध घोषित किया जाना चाहिए। यहां भी हम सुविधा की दृष्टि से पक्षकारों को उसी रूप में निर्दिष्ट करेंगे जैसे कि इसके पूर्व अधिकरण के समक्ष उन्हें निर्दिष्ट किया गया है।

13. इस पिटीशन में के 34 पिटीशनर आन्ध्र प्रदेश में उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालयों में विद्यालय सहायकों के रूप में कार्यरत थे। तत्पश्चात्

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उनकी नियुक्ति तदर्थ नियम के नियम 3 के निबंधनों के अनुसरण में कनिष्ठ महाविद्यालयों में कनिष्ठ प्राध्यापकों के रूप में की गई थी जिसमें (तदर्थ नियम में) यह उल्लेख किया गया है कनिष्ठ महाविद्यालयों में कनिष्ठ प्राख्यातओं के रूप में नियुक्ति के लिए प्रथम अधिमान आन्ध्र प्रदेश शिक्षा अधीनस्थ सेवा में वर्ग II के प्रवर्ग I-क में स्नातकोत्तर सहायकों को और वर्ग II के प्रवर्ग 2 के श्रेणी I में चयन श्रेणी सहायकों को और हाई स्कूल के प्रधान अध्यापकों और जिला परिषद् हाई स्कूलों में स्नातकोत्तर सहायकों को और ऐसे नगरपालिक विद्यालयों को जो कनिष्ठ महाविद्यालयों में सम्परिवर्तित किए गए हैं, अधिमान प्राप्त होगा। इस नियम में यह भी उपबन्ध किया गया है कि अग्रता प्रथम या द्वितीय श्रेणी स्नातकोत्तर उपाधि धारण करने वालों को अधिमान प्राप्त होगा। तदर्थ नियम के नियम 3 में यह उपबन्ध किया गया है कि ज्येष्ठता का अवधारण स्नातकोत्तर सहायकों के रूप में उनकी नियुक्ति की वास्तविक तारीख के प्रति निर्देश या उस संभाव्य तारीख के प्रति निर्देश से किया जाएगा जिस तारीख को वे स्नातकोत्तर सहायकों के रूप में नियुक्त किए गए होते यदि उनकी नियुक्ति या प्रोन्नति किसी उच्चतर पद पर नहीं हुई होती। पिटीशनरों ने यह दलील दी कि कनिष्ठ प्राख्याताओं की ज्येष्ठता, जैसी कि विषयानुसार बनाए रखी गई है, एकीकृत किया जाना चाहिए और एक संयुक्त ज्येष्ठता सूची होनी चाहिए, न कि विषयानुसार सूची होनी चाहिए। तारीख 19 सितम्बर, 1973 के जी० ओ० एमएस० 939, एजूकेशन, में सरकार द्वारा विरचित तदर्थ नियम में कनिष्ठ महाविद्यालय के प्रधानाचार्य के पदों पर कनिष्ठ प्राख्याताओं की प्रोन्नति के संबंध में कोई नियम नहीं था। उस सम्बन्ध में तदर्थ नियम का विरचित किया जाना लम्बित रहते हुए द्वितीय प्रत्यर्थी-लोक शिक्षा निदेशक ने तारीख 14-3-1973 का आर० सी० सं० 775-सी० I/2/74 जारी किया जिसके द्वारा स्टेट एण्ड सबार्डीनेट सर्विस रूल्स के नियम 10 (क) (i) के अधीन 7 व्यक्तियों को कनिष्ठ महाविद्यालय के प्रधानाचार्य के रूप में प्रोन्नति की गई यद्यपि वे प्रथम श्रेणी या द्वितीय श्रेणी स्नातकोत्तर उपाधि धारक नहीं हैं। तत्पश्चात् संविधान के नियम 39 के परन्तुक के अधीन 1-8-1969 से भूतलक्षी रूप से तारीख 19 जून, 1974 के जी० ओ० एमएस० 502-एजूकेशन में सरकार द्वारा तदर्थ नियम विरचित किए गए थे जो कि कनिष्ठ महाविद्यालयों के प्रधानाचार्यों के पद पर प्रोन्नति से सम्बन्धित थे। इन नियमों के अधीन प्रथम या द्वितीय श्रेणी स्नातकोत्तर उपाधि धारण करने वाले ऐसे कनिष्ठ प्राख्याताओं जिन्होंने

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

शिक्षा अधीनस्थ सेवा में कनिष्ठ प्राध्यापकों के रूप में सेवा की थी, कनिष्ठ महाविद्यालयों के प्रधानाचार्यों के रूप में प्रोन्नति के पात्र हैं। किन्तु तदर्थ नियम 1974 का नियम 8, जो कि व्यावृत्ति खण्ड है, निम्न प्रकार है—

*"इन नियमों में अन्तर्विष्ट किसी अन्य बात के होते हुए भी, ऐसा व्यक्ति जो इन नियमों के जारी किए जाने से तुरन्त पूर्व कनिष्ठ महाविद्यालयों के प्रधानाचार्य के पद पर रहा है, प्रधानाचार्य बना रहेगा और उसे प्रधानाचार्य के पद पर बने रहने का या अपने मूल पद पर वापस जाने का विकल्प प्राप्त होगा।"

14. अधिकरण ने इस अन्तरित रिट पिटीशन (1977 के अभ्यावेदन पिटीशन 595) में अपने निर्णय की पुष्टि की है और यह मत व्यक्त किया है कि वह निर्णय तदर्थ नियम, 1973 के नियम 3 (1) (i) के अधीन कनिष्ठ प्राख्याताओं के रूप में नियुक्त किए गए स्नातकोत्तर विद्यालय सहायकों में परस्पर ज्येष्ठता नियत करने के विषय में नियम 13 के निर्वचन के संबंध में लागू होगा और वह ज्येष्ठता स्नातकोत्तर उपाधि की इस प्रकृति के प्रति निर्देश किए बिना कि वे प्रथम, द्वितीय या तृतीय श्रेणी उपाधि धारक हैं, स्नातकोत्तर विद्यालयों के सहायकों के रूप में नियुक्ति की तारीख के प्रति निर्देश से अवधारित की जानी चाहिए। अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित किया कि सम्पूर्ण ज्येष्ठता नियत करने से सम्बन्धित उस उपबन्ध के अधीन रहते हुए विषयानुसार ज्येष्ठता भी नियत की जा सकती है और यह कि प्रधानाचार्यों के पदों पर प्रोन्नति के प्रयोजनों के लिए तदर्थ नियम के नियम 13 के अनुसरण में नियत कनिष्ठ प्राध्यापकों के प्रवर्ग में सम्पूर्ण ज्येष्ठता का अनुसरण किया जाना चाहिए।

15. सरकार की ओर से अधिकरण के समक्ष यह निवेदन किया गया था कि प्रधानाचार्यों के कर्त्तव्यों की प्रकृति पर विचार करते हुए प्रथम

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

"Notwithstanding anything contained in these Rules a person who held a post of a Principal of Junior college immediately before the issue of these Rules shall be continued as Principal and be given option either to continue in the post of a Principal or to revert to his original post".

Agamnigam Digital Preservation Foundation

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

और द्वितीय श्रेणी स्नाकोत्तर विद्यालय सहायकों के और ऐसे सहायकों के जो मात्र तृतीय श्रेणी में स्नातकोत्तर उपाधि धारक हैं, बीच युक्तियुक्त वर्गीकरण किया गया है और कनिष्ठ महाविद्यालयों के प्रधानाचार्यों के रूप में कनिष्ठ प्राध्यापकों की प्रोन्नति के लिए प्रथम और द्वितीय श्रेणी स्नातकोत्तर उपाधि विहित करना संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का उल्लंघनकारी नहीं है और यह कि प्रथम तथा द्वितीय श्रेणी स्नातकोत्तर उपाधिधारकों और उन स्नातकोत्तर उपाधिधारकों के बीच जो मात्र तृतीय श्रेणी वाले है, स्पष्ट प्रभेद बनाए रखा गया है और पूर्ववर्ती स्नातकोत्तर उपाधिधारकों को कनिष्ठ प्राध्यापकों के रूप में उनकी नियुक्ति किए जाने पर उन्हें अग्रिम वेतन वृद्धि दी गई है जबकि पश्चात्कथित स्नातक उपाधि धारकों को मात्र वही वेतन दिया गया है, जो वे तब स्नातकोत्तर विद्यालय सहायकों के रूप में प्राप्त कर रहे थे जब उनकी नियुक्ति कनिष्ठ प्राध्यापकों के रूप में की गई थी। अधिकरण के समक्ष यह भी निवेदन किया गया था कि शैक्षिणिक अर्हता शिक्षा के क्षेत्र में संगत है और प्रधानाचार्य के पद के लिए अर्हता के आधार पर किए गए वर्गीकरण को विभेदकारी नहीं कहा जा सकता।

16. तारीख 19 सितम्बर, 1973 के जी० ओ० एमएस० 939-एजूकेशन का परिशीलन करने पर, जिसमें संविधान के अनुच्छेद 309 के परन्तुक के अधीन सरकार द्वारा तदर्थ नियम विरचित किया गया था, अधिकरण ने यह निष्कर्ष निकाला कि तृतीय श्रेणी स्नातकोत्तर उपाधि धारकों की तुलना में प्रथम और द्वितीय श्रेणी स्नातकोत्तर उपाधि धारकों को महत्व दिया जाना चाहिए। अधिकरण ने सरकार की इस दलील को स्वीकार किया कि शैक्षणिक संस्थाओं में शिक्षा के क्षेत्र में सर्वोत्तम उपलब्धि सुसंगत विचारणा है और यह कि शिक्षा के क्षेत्र में सर्वोत्तम उपलब्धि पर आधारित किसी भेदभाव का अध्यापन संस्था में सर्वोत्तम उपलब्धि के उद्देश्य के साथ प्रत्यक्ष संबंध है और इससे संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का उल्लंघन नहीं होता, विशेष रूप में ऐसी दशा में तो सर्वथा नहीं होता जब तृतीय श्रेणी स्नातकोत्तर उपाधि धारकों को कनिष्ठ महाविद्यालयों के प्रधानाचार्यों के पदों के लिए पात्र होने के लिए अपनी अर्हता के स्तर में सुधार करने से स्थायी रूप से विवर्जित नहीं किया गया है। इस प्रकार अधिकरण ने पिटीशनरों के दूसरे निवेदन को अस्वीकार कर दिया कि कनिष्ठ महाविद्यालयों के प्रधानाचार्यों के पदों पर प्रोन्नति के लिए योग्यता हेतु अर्हता के रूप में

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रथम और तृतीय श्रेणी स्नातकोत्तर उपाधि विहित करने से संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का उल्लंघन होता है।

17. अधिकरण ने ऊपर निर्दिष्ट तदर्थ नियम 1974 के नियम 8 में, जो कि ऐसे तृतीय श्रेणी स्नातकोत्तर उपाधि धारकों के अधिकारों को संरक्षण प्रदान करता है जिनकी ऐसे तदर्थ नियम का विरचित किया जाना लम्बित रहते हुए, जो वस्तुतः तत्पश्चात् 19 जून, 1974 को विरचित किया गया था, स्टेट सबार्डीनेट सर्विस रूल्स के नियम 10(क)(1) के अधीन प्रोन्नति की गई थी, कोई आपत्तिजनक बात नहीं पाई।

18. इन निष्कर्षों के आधार पर अधिकरण ने 1976 का अन्तरित रिट पिटीशन सं० 941 खारिज कर दिया।

19. 1964 में आन्ध्र प्रदेश सरकार द्वारा किए गए नीति सम्बन्धी उस विनिश्चय के अनुसरण में कि 1969-70 के शैक्षणिक वर्ष से प्रारम्भ होने वाले तत्कालीन विद्यमान (उच्चतर) माध्यमिक और बहूद्देशीय प्रणाली के बजाय माध्यमिक विद्यालय की अवधि 11 वर्ष के स्थान पर 10 वर्ष होनी चाहिए और तत्कालीन विद्यमान प्री-यूनिवर्सिटी कोर्स के स्थान पर 2 वर्ष का मध्यवर्ती इण्टरमीडिएट कोर्स होना चाहिए, सरकार ने तारीख 25 अक्तूबर, 1968 के जी० ओ० एमएस० 1920-एजूकेशन में यह विनिश्चय किया कि विद्यमान महाविद्यालयों में एक वर्ष के प्री-यूनिवर्सिटी कोर्स के स्थान पर 2 वर्ष का इण्टरमीडिएट कोर्स पुरःस्थापित किया जाना चाहिए और तारीख 25 अगस्त, 1969 के जी० ओ० एमएस० 2063-एजूकेशन में, 2 वर्ष के इण्टरमीडिएट कोर्स (पाठ्यक्रम) के लिए प्रारम्भ किए गए कनिष्ठ महाविद्यालयों में (के) कर्मचारिवृन्द के स्टाफ पैटर्न और वेतन-मान अधिकथित किया। इस स्कीम को लागू करने में विद्यालयों के कतिपय प्रवर्गों में के स्नातकोत्तर सहायकों की कनिष्ठ महाविद्यालयों में कनिष्ठ प्राख्याताओं के रूप में नियुक्ति की गई थी। 1977 के अभ्यावेदन पिटीशन सं० 595 इत्यादि में, जिनमें से 1978 की सिविल अपील सं० 1652 से 1659 उद्भूत हैं और 1976 के अन्तरित रिट पिटीशन 941 जिसमें से 1979 की सिविल अपील सं० 415 उद्भूत हुई है, में के पिटीशनर और कतिपय अन्य अभ्यावेदन पिटीशनों में के पिटीशनर तथा 1976 के अन्तरित रिट पिटीशन सं० 785 और 1246 में के पिटीशनरों को कनिष्ठ प्राध्यापक के रूप में नियुक्ति की गई थी। कनिष्ठ प्राध्यापकों के रूप में अपनी नियुक्ति किए जाने के पूर्व वे सभी विभिन्न विद्यालयों में स्नातकोत्तर विद्यालय सहायक या प्रधान अध्यापक

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

थे। 1977 के अभ्यावेदन पिटीशन सं० 595 और बैच में के प्रायवेट प्रत्यर्थी और 1976 के अन्तरित रिट पिटीशन सं० 941 के पिटीशनर 1977 में अभ्यावेदन पिटीशन 595 और बैच में के पिटीशनर 1976 के अन्तरित रिट पिटीशन 941 के प्रायवेट प्रत्यर्थी से स्नातकोत्तर विद्यालय सहायकों के रूप में ज्येष्ठ थे। उक्त सभी ज्येष्ठ स्नातकोत्तर सहायक सभी तृतीय श्रेणी स्नातकोत्तर उपाधि धारक हैं जब कि उक्त सभी कनिष्ठ स्नातकोत्तर विद्यालय सहायक प्रथम या द्वितीय श्रेणी स्नातकोत्तर उपाधि धारक थे। उनकी श्रेष्ठ शैक्षणिक अर्हता पर आधारित उन प्रथम और द्वितीय श्रेणी के स्नातकोत्तर विद्यालय सहायकों को अग्रता दी गई थी और 1974 में तैयार की गई ज्येष्ठता सूची में उक्त तृतीय श्रेणी के स्नातकोत्तर विद्यालय सहायकों से ज्येष्ठ समझा गया था जब उनकी नियुक्ति कनिष्ठ प्राध्यापकों के रूप में की गई थी। 1977 के अभ्यावेदन पिटीशन 959 इत्यादि में के पिटीशनर तथा 1976 के अन्तरित रिट पिटीशन सं० 941 में के पिटीशनरों की 1969, 1970 और 1975 में कनिष्ठ प्राध्यापकों के रूप में नियुक्ति की गई थी। 1975 की रिट अपील सं० 920 और 938 में आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय ने तारीख 19 सितम्बर, 1973 के जी० ओ० एमएस० 939-एजूकेशन में सरकार द्वारा विरचित तदर्थ नियम के नियम 13(1) के अनुसरण में कनिष्ठ प्राध्यापकों की एक ज्येष्ठता सूची तैयार करने के लिए निदेश दिया। उस निदेश के अनुसरण में कनिष्ठ प्राध्यापकों की एक पुनरीक्षित ज्येष्ठता सूची 27 दिसम्बर, 1976 को सरकार द्वारा जारी की की गई थी। 1974 की ज्येष्ठता सूची में 1977 के अभ्यावेदन पिटीशन 595 के पिटीशनरों को क्रमशः क्रम सं० 17, 15, 20, 21, 23, 40 और 41 पर रखा गया था और उस ज्येष्ठता के आधार पर उस सूची में 40 की पंक्ति तक के कनिष्ठ प्राध्यापकों को विभिन्न जूनियर महाविद्यालयों के प्रधानाचार्यों के रूप में प्रोन्नति की गई थी और 1977 के अभ्यावेदन पिटीशन 595 में 7वां पिटीशनर जिसे उस सूची में सं० 41 पर रखा गया था, अपनी प्रोन्नति की प्रतीक्षा में था। किन्तु 1976 की पुनरीक्षित ज्येष्ठता सूची में उन पिटीशनरों को क्रमशः सं० 380, 54, 390, 392, 406, 368 और 374 पर रखा गया था और उस अभ्यावेदन पिटीशन के सभी प्राइवेट प्रत्यर्थियों को उनके ज्येष्ठ के रूप में उनसे ऊपर रखा गया है। बैच में अन्य अभ्यावेदन पिटीशनों में के पिटीशनरों की ज्येष्ठता 1976 के पुनरीक्षित ज्येष्ठता सूची में भी विघ्न हुआ था और इससे उनका अहित हुआ था। इसलिए ये अभ्यावेदन पिटीशन 1976 में प्रथम प्रत्यर्थी आन्ध्र

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रदेश राज्य द्वारा जारी की गई पुनरीक्षित ज्येष्ठता सूची, जहां तक पिटीशनरों का सम्बन्ध है अभिखण्डित करने के लिए और 1974 की पूर्ववर्ती ज्येष्ठता सूची के अनुसार उनकी पुरानी ज्येष्ठता प्रत्यावर्तित करने या विकल्प के रूप में यह घोषित करने के लिए फाइल किए गए हैं कि तदर्थ नियम 1973 का नियम 13(3) जो कि कनिष्ठ प्राध्यापकों की ज्येष्ठता के बारे में है, संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का अतिक्रामक है। 1977 के अभ्यावेदन पिटीशन 595 और बैच में जिसमें से 1978 की सिविल अपील 1652 से 1659 उद्भूत हुई है, एक मात्र विचारार्थ प्रश्न उन पिटीशनों में (1978 की सिविल अपील सं० 1652 से 1659 में के अपीलार्थी) पिटीशनरों की ज्येष्ठता का प्रश्न है। यद्यपि 1976 का अन्तरित रिट पिटीशन में जिसमें से 1979 की सिविल अपील सं० 415 उद्भूत हुई है, इन अनुतोषों के लिए प्रार्थना की गई, थी, अर्थात् : (1) यह कि तदर्थ नियम 1973 के नियम 13 पर आधारित समाकलित ज्येष्ठता सूची सभी कनिष्ठ प्राध्यापकों के बारे में जारी की जानी चाहिए; (2) यह कि तारीख 19 जून, 1974 के जी० ओ० एमएस० 502 एजूकेशन में विरचित तदर्थ नियम का नियम 6 जिसके द्वारा प्रथम और द्वितीय श्रेणी स्नातकोत्तर उपाधि कनिष्ठ प्राध्यापकों को कनिष्ठ महाविद्यालयों के प्रधानाचार्य के रूप में प्रोन्नति के लिए विहित किया गया हैं, अवैध होने के कारण विखण्डित किया जाना चाहिए और (3) यह कि द्वितीय प्रत्यर्थी, शिक्षा निदेशक के तारीख 14 मार्च, 1974 की कार्यवाहियों में कनिष्ठ महाविद्यालयों के प्रधानाचार्यों के रूप में 7 तृतीय श्रेणी स्नातकोत्तर उपाधि धारकों की की गई तदर्थ नियुक्तियां अवैध घोषित की जानी चाहिएं। 1979 की सिविल अपील सं० 415 में अपीलार्थी की ओर से हाजिर श्री एस० एन० ककड़, ज्येष्ठ अधिवक्ता ने एक मात्र दूसरे निवेदन तक ही अपनी दलीलों को सीमित रखा है, अर्थात् तारीख 19 जून, 1974 के जी० ओ० एमएस० 502-एजूकेशन में विरचित तदर्थ नियम के नियम 6 तक जिसमें कनिष्ठ महाविद्यालयों के प्रधानाचार्यों के रूप में कनिष्ठ प्राचार्यों की प्रोन्नति के लिए प्रथम या द्वितीय श्रेणी स्नातकोत्तर उपाधि विहित की गई है, जिस पर अधिकरण ने 1976 के अन्तरित रिट पिटीशन 941 के अपने निर्णय के पैरा 6 में विचार किया है। हम इन दोनों प्रश्नों पर इसी सामान्य निर्णय में विचार करेंगे। हम 1976 की अन्तरित रिट पिटीशन 941 में की गई तीसरी प्रार्थना पर भी संक्षेप में विचार करेंगे जिसे अधिकरण ने अस्वीकार कर दिया है। हम यह बता दें कि 1976 का अन्तरित रिट पिटीशन 941,

Agamnigam Digital P

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

1978 की सिविल अपील सं० 1652 से 1659 में विचारण के लिए उद्भूत केवल एक मुद्दे पर हमारे निष्कर्ष के अन्तर्गत होगी।

20. 1978 की सिविल अपील सं० 1652 से 1659 तक में अपीलार्थियों की ओर से पेश होने वाले ज्येष्ठ अधिवक्ता, श्री एम० एन० फडके ने हमारा ध्यान विभिन्न सरकारी आदेशों के, जोकि तारीख 19-9-1973 को संविधान के अनुच्छेद 309 के परन्तुक के अधीन बनाए गए तदर्थ नियमों के बनाए जाने से पूर्व जारी किए गए कार्यपालक अनुदेश है, विशेष उपबन्धों और प्रथम और द्वितीय श्रेणी स्नातकोत्तर डिग्रियां धारण करने वाले स्नातकोत्तर स्कूल सहायकों के ऐसे सहायकों के ऊपर, जिनके पास कनिष्ठ महाविद्यालयों में कनिष्ठ प्राध्यापकों के रूप में नियुक्ति और कनिष्ठ महाविद्यालयों के प्रधानाचार्य के रूप में कनिष्ठ प्राध्यापकों की प्रोन्नति के मामले में तृतीय श्रेणी की स्नातकोत्तर डिग्रियां ही हैं, वरीयता और पूर्विकता दर्शित करने वाले उन तदर्थ नियमों में भी किए गए कुछ विशेष उपबन्धों की ओर आकर्षित किया और यह दलील दी कि एक ग्रुप के रूप में प्रथम और द्वितीय श्रेणी की स्नातकोत्तर डिग्रियां धारण करने वाले कनिष्ठ प्राध्यापकों तथा एक अन्य ग्रुप के रूप में तृतीय श्रेणी की डिग्रियां धारण करने वालों की स्नातकोत्तर स्कूल सहायकों के रूप में उनकी मूल नियुक्ति की तारीखों के आधार पर ज्येष्ठता निश्चित करना, मनमाना है, अतः, 1976 की आक्षेपकृत ज्येष्ठता सूची को अभिखण्डित किया जाना चाहिए और 1974 की सूची में निश्चित अभ्यावेदन पिटीशन में पिटीशनरों (1978 की सिविल अपील 1652 से 1659 तक में अपीलार्थी) की ज्येष्ठता को पुनःस्थापित किया जाना चाहिए। किन्तु 1978 की सिविल अपील सं० 1652 से 1659 तक में विरोधी प्राइवेट प्रत्यर्थी 3, 5, 8 और 9की ओर से पेश होने वाले ज्येष्ठ अधिवक्ता, श्री टी० एस० कृष्णमूर्ति अय्यर ने यह तर्क दिया कि कनिष्ठ प्राध्यापकों और स्नातकोत्तर सहायकों के रूप में प्रथम, द्वितीय और तृतीय श्रेणी की स्नातकोत्तर डिग्रियां धारण करने वाले अपनी नियुक्ति से पूर्व एक जैसा कार्य कर रहे थे और समान वेतन पा रहे थे। उसकी दलील यह थी कि यद्यपि जी० ओ० एम०एस० 2063, शिक्षा, तारीख 25-8-1969 में यह कथित था कि प्रथम और द्वितीय श्रेणी वाले स्नातकोत्तरों को 200-15-320-20-500 रुपए के वेतनमान में 200 रुपए की उच्चतर रियायत दी जाएगी और तृतीय श्रेणी वाले स्नातकोत्तरों को 200-500 रुपए के वेतन-मान में कनिष्ठ प्राध्यापकों के रूप में उनकी नियुक्ति से पूर्व उनके द्वारा प्राप्त किया जाने वाला वेतन ही अनुज्ञात किया जाएगा यदि कनिष्ठ प्राध्यापकों के रूप में

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उनकी नियुक्ति पर उनका वेतन नए वेतन-मान के न्यूनतम से अधिक है तो एड हॉक रूल्स, 1973 (तदर्थ नियम, 1973) में कुछ भी उल्लिखित नहीं है और इससे दर्शित होता है कि तदर्थ नियमों के अधीन कोई नई सेवा सृष्ट नहीं होती किन्तु कार्यपालक अनुदेशों द्वारा सृष्ट सेवा जारी मात्र रखी गई थी और यह कि पूर्ण निष्पक्षता और न्याय के हित में 1978 की सिविल अपील 1652 से 1659 तक में प्राइवेट प्रत्यर्थियों को, जिन्हें उन अपीलों में अपीलार्थियों से पूर्व स्नातकोत्तर स्कूल सहायकों के रूप में नियुक्त किया गया था, उनके ज्येष्ठ व्यक्तियों के रूप में माना जाना चाहिए जैसा कि 1975 की रिट अपील 920 और 938 के अपने निर्णय में आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निदेशों के अनुसार तैयार की गई 1976 की आक्षेपकृत ज्येष्ठता सूची में किया गया है। सभी सिविल अपीलों में शासकीय प्रत्यर्थियों की ओर से पेश होने वाले ज्येष्ठ अधिवक्ता, श्री पी० रामारेड्डी ने अधिकरण के आक्षेपकृत निर्णय का यह कहकर समर्थन किया कि प्रथम, द्वितीय और तृतीय श्रेणी के स्नातकोत्तर सहायक, कनिष्ठ प्राध्यापकों के रूप में नियुक्ति से पहले एक ही वर्ग से सम्बन्ध रखते थे और एक जैसा वेतन पाते थे तथा एक ही प्रकार का कार्य करते थे और यह कि कनिष्ठ प्राध्यापकों के रूप में उनकी नियुक्ति होने के पश्चात् उनकी ज्येष्ठता स्नातकोत्तर स्कूल सहायकों के रूप में उनकी मूल नियुक्ति की तारीखों के आधार पर निश्चित की जानी चाहिए, जैसा कि 1976 की आक्षेपकृत ज्येष्ठता-सूची में किया गया है।

21. जैसा कि ऊपर बताया गया है, जी० ओ० एम०एस० 2063, शिक्षा, तारीख 25-8-1969 में सरकार ने आदेश दिया था कि प्रथम और द्वितीय श्रेणी के स्नातकोत्तरों को, कनिष्ठ प्राध्यापकों के 200-15-320-20-500 रुपए के नए वेतन-मान में 260 रुपए की उच्चतर रियायत दी जाएगी और तृतीय श्रेणी के स्नातकोत्तरों को, यदि उनका वेतन नए वेतन-मान अर्थात् 200-15-320-20-500 रुपए के न्यूनतम से अधिक हो, तो 200-500 रुपए के वेतन-मान में कनिष्ठ प्राध्यापकों के रूप में उनकी नियुक्ति से पूर्व उनके द्वारा प्राप्त किया जाने वाला वेतन ही अनुज्ञात होगा। जी० ओ० एम०एस० 2186, शिक्षा, तारीख 17-9-1969 में सरकार ने विनिश्चय किया कि सभी विद्यमान स्नातकोत्तर अध्यापक, जिन्हें कनिष्ठ महाविद्यालयों में ले लिया जाएगा, सम्यक् अनुक्रम में तदर्थ नियमों के बनाए जाने तक कनिष्ठ प्राध्यापकों के रूप में अस्थायी रूप से नियुक्त किए जाएंगे और यह कि कनिष्ठ महाविद्यालयों में कनिष्ठ प्राध्यापकों के रूप में स्नातकोत्तरों की नियुक्ति के विषय में पूर्विकता उनको दी जाएगी जो 180-350 रुपए के

Agamnigam Digital Preservation Foundation

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वेतन-मान में हैं और नीचे दर्शित रूप में ज्येष्ठता के अनुसार लिए जाने के लिए योग्य और इच्छुक हैं—

(क) स्नातकोत्तर सहायकों के रूप में कार्य करने वाले प्रथम और द्वितीय श्रेणी के स्नातकोत्तर।

(ख) स्नातकोत्तर सहायकों के रूप में कार्य करने वाले ऐसे तृतीय श्रेणी वाले स्नातकोत्तर, जिन्होंने कम-से-कम 5 वर्ष सेवा पूरी कर ली है।

(ग) स्नातकोत्तर सहायकों के रूप में कार्य करने वाले ऐसे तृतीय श्रेणी वाले स्नातकोत्तर, जिन्होंने 5 वर्ष से कम सेवा की है।

(घ) अन्त में, स्नातकोत्तर सहायकों के वेतन-मान में कार्य करने वाले ऐसे प्रशिक्षित स्नातक जिनके पास भौतिक विज्ञान में स्नातकोत्तर डिप्लोमा है।

22. जी० ओ० एम० एस० 1147, शिक्षा, तारीख 4-6-1970 में सरकार ने उपकुलपतियों के सम्मेलन की सिफारिशों के आधार पर प्रथम और द्वितीय श्रेणी के स्नातकोत्तरों को तीसरी श्रेणी के स्नातकोत्तरों पर पूर्विकता के बारे में जी० ओ० एम० एस० 2186, शिक्षा, तारीख 17-9-1969 में लिए गए पूर्वोक्त विनिश्चय को दोहराया और यह कथन किया कि उनके विचार में सामान्य ज्येष्ठता-सूची में पहला रैंक उनको दिया जाना चाहिए, जिन्होंने प्रथम श्रेणी या 50 और इससे अधिक अंकों से द्वितीय श्रेणी प्राप्त की है तथा तृतीय श्रेणी वाले स्नातकोत्तरों का रैंक उनकी सेवाओं के संदर्भ में होना चाहिए, अर्थात् स्नातकोत्तर सहायकों के रूप में कार्यरत 5 वर्ष की सेवा वालों को स्नातकोत्तर सहायकों के रूप में कार्यरत प्रथम और द्वितीय श्रेणी वाले स्नातकोत्तरों के ठीक बाद रखा जाना चाहिए और उसके पश्चात् स्नातकोत्तर सहायकों के रूप में कार्यरत 5 वर्ष से कम की सेवा वालों को रखा जाना चाहिए। सरकार ने उस जी० ओ० में यह मत व्यक्त किया था कि ज्येष्ठता सृष्ट करने की यह रीति युक्तियुक्त है। ये सभी आदेश, निस्सदेह कार्यपालिक अनुदेशों की प्रकृति के हैं।

23. तदर्थ नियमों को, संविधान के अनुच्छेद 309 के परन्तुक के अधीन आन्ध्र प्रदेश में गवर्नमेंट डिग्री एण्ड जूनियर कालेज में कनिष्ठ प्राध्यापकों के अस्थायी पदों के लिए जी० ओ० एम० एम० 939, शिक्षा, तारीख 19-9-1973 में 1-8-1969 से भूतलक्षी प्रभाव देकर बनाया गया था। उन नियमों के नियम 3 के उपनियम (1) और (2) निम्नलिखित हैं—

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

*"3. नियुक्तियां :—(1) इस वर्ग की नियुक्तियां निम्नलिखित रूप में की जाएंगी—

(i) सबसे पहले वर्ग 2 के प्रवर्ग 1-क में स्नातकोत्तर सहायकों और आन्ध्र प्रदेश शैक्षणिक अधीनस्थ सेवा के वर्ग-II के प्रवर्ग 2 की श्रेणी 1 में चयन श्रेणी सहायकों या हाई स्कूलों के प्रधानाध्यापकों और जिला परिषद् हाई स्कूलों तथा ऐसे नगरपालिक स्कूलों में, जो ज्येष्ठ महाविद्यालयों में परिवर्तित हो गए हैं, स्नातकोत्तर सहायकों की नियुक्ति द्वारा।

(ii) दूसरे, यदि खण्ड (i) के अधीन नियुक्ति के लिए कोई योग्य या अर्हित व्यक्ति उपलभ्य न हों, तो ऐसे प्रशिक्षित स्नातकों की नियुक्ति द्वारा जिनके पास इन नियमों के प्रारम्भ से ठीक पूर्व स्नातकोत्तर सहायकों को अनुज्ञेय वेतन-मान में भौतिक विज्ञान में स्नातकोत्तर डिप्लोमा हो।

(iii) तीसरे, यदि उपखण्ड (i) या उपखण्ड (ii) के

---

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

"3. Appointments :—(1) Appointments to this class shall be made as follows—

(i) firstly by appointment of Post-Graduate Assistants in Category I-A of Clause II and Selection Grade Assistants in Grade I of Category 2 of Class II of the Andhra Pradesh Educational Subordinate Service, or Head Masters of High Schools and Post-Graduate Assistants in Zila Parishad High Schools and such of the Municipal Schools as are converted into Junior Colleges.

(ii) Secondly, if there are no suitable and qualified persons available for appointment under clause (i), than by appointment of trained Graduates possessing Post-Graduate Diploma in Physical Sciences in the scale of pay admissible to Post-Graduate Assistants immediately before the commencement of these rules.

(iii) Thirdly, if there are no suitable and

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अधीन नियुक्ति के लिए कोई योग्य या अर्हित व्यक्ति उपलभ्य न हों, तो—

(क) प्राइवेट प्रबन्ध के अधीन या किसी नगरपालिका के प्रबन्ध के अधीन मान्यता प्राप्त बहुमुखी या उच्चतर माध्यमिक स्कूलों में, जिन्हें कनिष्ठ महाविद्यालयों में परिवर्तित नहीं किया गया है, प्रधान अध्यापकों और स्नातकोत्तर सहायकों में से भर्ती द्वारा; या

(ख) वर्ग II में प्रवर्ग 2 की श्रेणी-2 में स्कूल सहायकों और आन्ध्र प्रदेश शैक्षणिक अधीनस्थ सेवा के वर्ग III के प्रवर्ग I में पंडित (जिसके अन्तर्गत हिन्दी पंडित भी हैं), मुन्शी, श्रेणी-I से अन्तरण द्वारा या किसी अन्य सेवा से अन्तरण करके भर्ती द्वारा ; या

(ग) सीधी भर्ती द्वारा।

(2) खण्ड (1) या उपखण्ड (1) के खण्ड (iii) के उपखण्ड (क) के अधीन नियुक्ति के लिए वरीयता निम्नलिखित को दी जाएगी—

---

qualified persons available for appointment under sub-clause (i) or sub-clause (ii)—

(a) By recruitment from among the Head Masters and Post-Graduate Assistants in recognised Multi-purpose or Higher Secondary Schools under private management or under the management of a Municipality which are not converted into Junior Colleges; or

(d) By transfer from School Assistants in Grade II of Category 2 in Class II and Pandits (including Hindi Pandits), Munshis Grade I in Category I of Class III of the Andhra Pradesh Educational Subordinate Service or by recruitment by transfer from any other service; or

(c) By direct recruitment.

(2) Preference shall be given for appointment under clause (1) or sub-clause (a) of Clause (iii) of sub-clause (1)—

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(क) सबसे पहले प्रथम या द्वितीय श्रेणी की स्नातकोत्तर डिग्री ;

(ख) दूसरे, वह व्यक्ति जिसके पास तृतीत श्रेणी की स्नातकोत्तर डिग्री है और जिसने आन्ध्र प्रदेश शैक्षणिक अधीनस्थ सेवा में स्नातकोत्तर सहायकों या चयन श्रेणी सहायकों के रूप में कम से कम पांच वर्ष की सेवा पूरी कर ली है अथवा जिलापरिषद् हाई स्कूल का प्रधान अध्यापक अथवा जिला परिषद् या किसी नगरपालिका के प्रबन्ध के अधीन किसी स्कूल में कोई स्नातकोत्तर सहायक ;

(ग) तीसरे, वह व्यक्ति जिसके पास तृतीय श्रेणी की स्नातकोत्तर डिग्री है और जिसने स्नातकोत्तर सहायक के रूप में पांच वर्ष से कम सेवा पूरी की है अथवा आन्ध्र प्रदेश शैक्षणिक अधीनस्थ सेवा में चयन श्रेणी सहायक अथवा किसी हाई स्कूल का प्रधान अध्यापक अथवा जिला परिषद् या किसी नगरपालिका के प्रबन्ध के अधीन किसी स्कूल में कोई स्नातकोत्तर सहायक ।

....."

(a) Firstly to persons with First and Second class Post-Graduate Degree;

(b) Secondly to persons with a tthird class Post-Graduate Degree with not less than five years of service as Post-Graduate Assistans or Selection Grade Assistants in the Andhra Pradesh Educational Subordinate Service or as a Head Master of a Zila Parishad High School or as a Post-Graduate Assistant in a School under the management of a Zila Parishad or a Municipality;

(c) Thirdly to persons with a third class Post-Graduate Degree with less than five years of service as a Post-Graduate Assistant or a Selection Grade Assistant in the Andhra Pradesh Educational Subordinate Service or as a Head Master of a High School or Post-Graduate Assistant i.e. a school under the management of a Zila Parishad or a Municipality.

....."

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

24. हमारे समक्ष इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि 1977 के अभ्यावेदन पिटीशन 595 में और बैच (1978 की सिविल अपील सं० 1652 से 1659 तक में अपीलार्थी) में पिटीशनर उपरोक्त वरीयता वाले खण्ड (क) के अन्तर्गत आते हैं और यह कि इन अपीलों में विरोधी प्राइवेट प्रत्यर्थी और 1979 की सिविल अपील 415 में अपीलार्थी उपरोक्त खण्ड (क) या खण्ड (ग) के अन्तर्गत आते हैं और वे कनिष्ठ प्राध्यापकों के रूप में नियुक्ति के लिए विचार हेतु उपरोक्त खण्ड (क) के अधीन आने वालों के पश्चात् ही आएंगे। इस प्रकार प्रथम और द्वितीय श्रेणी के स्नातकोत्तर सहायकों को जी० ओ० एम० एस० 2186-शिक्षा, तारीख 17-9-1969 में कनिष्ठ प्राध्यापकों के रूप में नियुक्ति के मामले में वरीयता को एड हॉक रूल्स, 1973 में भी बनाए रखा गया है।

25. जैसा कि श्री टी० एस० कृष्णमूर्ति अय्यर ने दलील दी है एड हॉक रूल्स, 1973 में एक ओर प्रथम और द्वितीय श्रेणी वाले स्नातकोत्तर सहायकों और दूसरी ओर स्नातकोत्तर स्कूल सहायकों के कनिष्ठ प्राध्यापकों के रूप में उनकी नियुक्ति पर वेतन के बारे में कोई उल्लेख नहीं है। अतः जी० ओ० एम० एस० 2063—शिक्षा, तारीख 25-8-1969, जिसके द्वारा प्रथम और द्वितीय श्रेणी वाले स्नातकोत्तरों को कनिष्ठ प्राध्यापकों के नये वेतन-मान 200-15-320-20-500 रु० में 260 रु० की उच्चतर रियायत दी गई है और तृतीय श्रेणी वाले स्नातकोत्तरों को यदि उनका वेतन 200-15-320-20-500 रुपए के नए वेतन-मान के न्यूनतम से अधिक था, तो उन्हें 200-500 रुपए के वेतन-मान में कनिष्ठ प्राध्यापकों के रूप में उनकी नियुक्ति से पूर्व उनके द्वारा प्राप्त किए जाने वाला वेतन ही दिया जाएगा, वेतन के मामले में अभी भी शासित करता है, इस स्थिति पर हमारे समक्ष कोई विवाद नहीं किया गया। इस प्रकार, वेतन के मामले में भी प्रथम और द्वितीय श्रेणी वाले स्नातकोत्तर सहायकों को, जिन्हें कनिष्ठ प्राध्यापकों के रूप में नियुक्त किया गया है, तृतीय श्रेणी वाले स्नातकोत्तर सहायकों से जिन्हें कनिष्ठ प्राध्यापकों के रूप में नियुक्त किया गया है, बेहतर और वरीयता वाली स्थिति में रखा गया है।

26. तारीख 19-9-1973 को तदर्थ नियमों के बनाए जाने के कुछ समय पश्चात् सरकार ने तारीख 1-8-1969 को भूतलक्षी रूप से आन्ध्र प्रदेश में कनिष्ठ महाविद्यालयों के प्रधानाचार्यों के अस्थायी पदों के लिए जी० ओ० एमएस० 502-शिक्षा तारीख 19-6-1974 में संविधान के अनुच्छेद 309 के परन्तुक के अधीन तदर्थ नियम बनाए। इन नियमों

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के अनुसार, कनिष्ठ महाविद्यालयों के प्रधानाचार्यों के पद आन्ध्र प्रदेश शिक्षा सेवा के प्रशासनिक अनुभाग में एक पृथक वर्ग के रूप में हैं और उस वर्ग में नियुक्ति इस प्रकार से की जानी चाहिए—

(क) आन्ध्र प्रदेश शिक्षा अधीनस्थ सेवा में ज्येष्ठतम प्राध्यापकों से, जिन्होंने कनिष्ठ प्राध्यापकों के रूप में बने रहना पसन्द किया, जिनका कनिष्ठ प्राध्यापकों के रूप में बने रहने के लिए पसन्द करना माना गया, स्थानान्तरण से भर्ती द्वारा ; या

(ख) श्रेणी-1 में स्कूल सहायकों के और आन्ध्र प्रदेश शिक्षा अधीनस्थ सेवा के खण्ड II के प्रवर्ग 2 स्कूल के उपनिरीक्षक, श्रेणी I; स्थानान्तरण से भर्ती द्वारा। उन नियमों के नियम 6 में यह कहा गया है कि इस वर्ग में नियुक्ति के लिए कोई व्यक्ति तब तक पात्र नहीं होगा जब तब कि उसके पास किसी केन्द्रीय अधिनियम या प्रान्तीय अधिनियम या राज्य अधिनियम द्वारा भारत में स्थापित या निगमित किसी विश्वविद्यालय या विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा मान्यताप्राप्त संस्थाओं की प्रथम या द्वितीय श्रेणी की एम० ए०; एम० एससी०, एम० काम०, बी० ए० (ऑनर्स), बी० एससी० (ऑनर्स) या बी० कॉम० (ऑनर्स) की स्नातकोत्तर डिग्री न हो। इस नियम में, जो कि 1979 की सिविल अपील सं० 415 में आक्षेपकृत है, कनिष्ठ महाविद्यालयों के प्रधानाचार्यों के पदों पर कनिष्ठ प्राध्यापकों की प्रोन्नति के लिए प्रथम या द्वितीय श्रेणी की स्नातकोत्तर डिग्री विहित है। इस नियम के अधीन तृतीय श्रेणी वाले स्नातकोत्तर कनिष्ठ प्राध्यापक कनिष्ठ महाविद्यालयों के प्रधानाचार्यों के रूप में प्रोन्नति के लिए पात्र नहीं है। इस प्रकार कनिष्ठ महाविद्यालयों के प्रधानाचार्यों के रूप में प्रोन्नति के मामले में भी प्रथम और द्वितीय श्रेणी वाले स्नातकोत्तर कनिष्ठ प्राध्यापकों को तृतीय श्रेणी वाले स्नातकोत्तर कनिष्ठ प्राध्यापकों पर, जो कि जब तक वे केवल तृतीय श्रेणी वाले स्नातकोत्तर रहते हैं, अपनी शैक्षिक योग्यताओं के कम होने के कारण प्रधानाचार्यों के रूप में प्रोन्नति के लिए सर्वथा पात्र नहीं है, पूर्विकता और वरीयता प्राप्त है।

27. अब, कनिष्ठ प्राध्यापकों की ज्येष्ठता से सम्बन्धित नियम 13 निम्नलिखित रूप में है—

"13. ज्येष्ठता : (1) किसी व्यक्ति की नियम 3 के उपनियम (i) के खण्ड (i) और (ii) के अधीन ज्येष्ठता स्नातकोत्तर

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सहायक के रूप में वास्तविक नियुक्ति की तारीख या ऐसी अधिसंभाव्य तारीख के संदर्भ में अवधारित की जायेगी जिसको वह किसी उच्चतर पद पर अपनी नियुक्ति या प्रोन्नति को छोड़कर स्नातकोत्तर सहायक के रूप में नियुक्त किया गया होता ;

(2) किसी व्यक्ति की नियम 3 के उपनियम (1) के खण्ड (ii) के अधीन ज्येष्ठता का अवधारण उसकी परिवीक्षा के प्रारम्भ की तारीख के संदर्भ में किया जाएगा ;

परन्तु कोई भी व्यक्ति नियम 3 के उपनियम (1) के खण्ड (i) या (ii) के अधीन नियुक्त किए गए किसी व्यक्ति से ज्येष्ठ नहीं होगा ;

परन्तु यह कि नियम 3 के उपनियम (1) के खण्ड (iii) के उपखण्ड (ख) या उपखण्ड (ग) के अधीन नियुक्त कोई व्यक्ति उस खण्ड के उपखण्ड (क) के अधीन नियुक्त व्यक्ति से ज्येष्ठ नहीं होगा।"

28. हमारे समक्ष यह दलील दी गई कि नियम 13 के उपनियम (2) के इन दो परन्तुकों को आन्ध्र प्रदेश प्रशासनिक अधिकरण ने अभिखण्डित कर दिया है।

29. विचारार्थ मुख्य प्रश्न यह है कि क्या कार्यपालक अनुदेशों में पूर्वोक्त उपबन्धों और तदर्थ नियमों, जिनमें कनिष्ठ प्राध्यापकों के रूप में नियुक्ति के मामले में प्रथम श्रेणी या द्वितीय श्रेणी वाले स्नातकोत्तर डिग्री धारकों को वरीयता वाले व्यवहार और स्थिति का उपबन्ध है, के होते हुए भी, उनका आरम्भिक वेतन और कनिष्ठ महाविद्यालयों के प्रधानाचार्यों के रूप में उनकी पश्चात्वर्ती प्रोन्नति, विशिष्टतया (1) जी० ओ० एम० एस० 1147 शिक्षा, तारीख 4-6-1970, जिसमें सरकार ने विचार किया और विनिश्चय किया कि सामान्य ज्येष्ठता-सूची में पहला रैंक उनको दिया जाना चाहिए जिन्होंने प्रथम श्रेणी या 50% और उससे अधिक अंकों से द्वितीय श्रेणी प्राप्त की है तथा स्नातकोत्तर सहायकों के रूप में कार्यरत कम से कम पांच वर्ष की सेवा वाले तृतीय श्रेणी वाले स्नातकोत्तर डिग्री धारकों का रैंक ठीक उनके बाद होना तथा स्नातकोत्तर सहायकों के रूप में कार्यरत पांच वर्ष से कम की सेवा वाले तृतीय श्रेणी के स्नातकोत्तर डिग्रीधारकों का रैंक उनके बाद होगा, और (2) एड हॉक रूल्स, 1973 के नियम 3 (1) (i) और (2), जिसके अनुसार कनिष्ठ प्राध्यापक की नियुक्ति करने में वरीयता सबसे पहले उन व्यक्तियों को दी जानी है जिनके पास प्रथम और

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

द्वितीय श्रेणी की स्नातकोत्तर डिग्री है, दूसरे ऐसे व्यक्ति जिनके पास तृतीय श्रेणी की स्नातकोत्तर डिग्री है और जिन्होंने स्नातकोत्तर सहायकों के रूप में कम-से-कम पांच वर्ष सेवा पूरी कर ली है और तीसरे ऐसे व्यक्ति जिनके पास तृतीय श्रेणी की स्नातकोत्तर डिग्री है और जिन्होंने स्नातकोत्तर सहायकों के रूप में पांच वर्ष से कम सेवा पूरी की है, तदर्थ नियमों का नियम 13 (1) तृतीय श्रेणी के स्नातकोत्तर कनिष्ठ प्राध्यापकों पर, स्नातकोत्तर सहायकों के रूप में उनकी पूर्वतर नियुक्ति पर आधारित प्रथम और द्वितीय श्रेणी वाले स्नातकोत्तर कनिष्ठ प्राध्यापकों से ऊपर ज्येष्ठता प्रदान करता है।

30. यह दर्शित करने के लिए अभिलेख पर कुछ भी नहीं है कि तदर्थ नियमों के नियम 13 (1) को बनाते समय, सरकार का कनिष्ठ प्राध्यापकों के रूप में नियुक्त प्रथम और द्वितीय श्रेणी वाले स्नातकोत्तर स्कूल सहायकों पर ज्येष्ठता प्रदत्त करने के बारे में जी० ओ० एमएस० 1147-शिक्षा, तारीख 4-6-1970 और तीसरी तृतीय श्रेणी वाले स्नातकोत्तर स्कूल सहायकों पर प्रथम और द्वितीय श्रेणी वाले स्नातकोत्तर स्कूल सहायकों को वरीयता देने के बारे में तदर्थ एड हॉक रूल्स, 1973 के नियम 3 (1) (i) और (2) में पहले से प्रतिपादित नीति से हटने का आशय था। इसके विपरीत, इस तथ्य से, कि तारीख 19-9-1973 को तदर्थ नियमों के बनाए जाने के शीघ्र बाद 1974 में तैयार की गई ज्येष्ठता-सूची में प्रथम और द्वितीय श्रेणी वाले स्नातकोत्तर कनिष्ठ प्राध्यापकों को तृतीय श्रेणी वाले स्नातकोत्तर कनिष्ठ प्राध्यापकों से उच्चतर स्थान दिए गए थे यद्यपि प्रथम और द्वितीय श्रेणी वाले स्नातकोत्तर कनिष्ठ प्राध्यापक तृतीय श्रेणी वाले स्नातकोत्तर कनिष्ठ प्राध्यापकों से तब कनिष्ठ थे जब वे सभी स्नातकोत्तर स्कूल सहायक थे, यह दर्शित होगा कि सरकार, जिसने तदर्थ नियम बनाए, ने स्वयं नियम 13 (1) का इस रीति में निर्वचन किया जैसा 1978 की सिविल अपील 1652 से 1659 तक में अपीलार्थियों ने हमसे करने को कहा है। इसमें सरकार ने तदर्थ नियमों के नियम 3 (1) और (2) में अधिकथित पूर्विकता को पूरी तरह से प्रभावी बनाया है जैसा कि जी० ओ० एम०एस० 1147-शिक्षा तारीख 4-6-1970 में उस बारे में अधिकथित नीति के अनुसार है। यह सच है कि हम अपना विनिश्चय अकेले इस तथ्य पर आधारित नहीं कर सकते, विशेष रूप से सरकार द्वारा हमारे और अधिकरण के समक्ष अब अपनाए गए आधार को देखते हुए नियम 13 (1) के निर्वचन के विषय में जिसे वे 1975 की रिट अपील सं० 920 से 938

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तक में आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निदेश को देखते हुए लेने के दायित्वाधीन है जो कि उन पर नई ज्येष्ठता सूची तैयार करने के लिए आबद्धकर है जैसा उन्होंने बाद में 1976 में किया है जो 1978 की सिविल अपील सं० 1652 से 1659 तक में आक्षेपकृत है। जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है यह दर्शित करने के लिए अभिलेख पर कोई सामग्री नहीं है कि सरकार के पास, जब उन्होंने एड हॉक रूल्स, 1973 बनाए तो जो कुछ उन्होंने जी० ओ० एमए०स० 1147, शिक्षा, तारीख 4-6-1970 में इस बात के बारे में कि ज्येष्ठता कैसे दी जाए, विनिश्चित किया था, उससे हटने का कोई कारण, नीति या अन्यथा कोई बात थी। इस बात के लिए कोई कारण नहीं दिखाई देता कि सरकार का तदर्थ नियमों के नियम 13 (1) द्वारा प्रथम और द्वितीय श्रेणी के स्नातकोत्तर कनिष्ठ इन्जीनियर से, कार्यपालक अनुदेशों, विशेष रूप से जी० ओ० एम०एस० 1147-शिक्षा तारीख 4-6-1970 में और एड हॉक रूल्स, 1973 में तृतीय श्रेणी के स्नातकोत्तर कनिष्ठ इन्जीनियर के ऊपर उनको दी गई वरीयता ले लेने का आशय था। जैसी कि 1978 की सिविल अपील 1652 से 1659 तक में अपीलार्थियों ने दलील दी है, नियम 3 (1) और (2) तथा नियम 13 (1) को एक साथ पढ़ा जाना है। तभी उन नियमों के बीच समन्वय हो सकेगा। यदि नियम 13 (1) नियम 3 (1) और (2) के संदर्भ के बिना पढ़ा जाएगा तो इस का परिणाम समन्वय करना नहीं होगा और प्रथम और द्वितीय श्रेणी के कनिष्ठ प्राध्यापक, जिन्हें ऊपर उल्लिखित अन्य उपबन्धों द्वारा तृतीय श्रेणी के स्नातकोत्तर कनिष्ठ प्राध्यापकों के ऊपर वरीयता दी गई है, केवल ज्येष्ठता के विषय में तृतीय श्रेणी के स्नातकोत्तर कनिष्ठ प्राध्यापक की तुलना में कम लाभ वाली और निम्नतर स्थिति में आ जाएंगे जिससे उनको एड हॉक रूल्स, 1974 के नियम 6 को देखते हुए कनिष्ठ महाविद्यालयों के प्रधानाचार्यों के रूप में प्रोन्नति के मामले में कोई भी सहायता नहीं मिलेगी जब तक वे प्रथम या द्वितीय श्रेणी की स्नातकोत्तर डिग्री प्राप्त करके अपनी शैक्षिक योग्यता नहीं सुधारते। तदर्थ नियमों के प्रत्येक नियम को पूर्ण, स्वाभाविक और विधिक प्रभाव दिया जाना चाहिए। इसमें कोई संदेह नहीं कि नियम 13 (1) को कलाविहीन रूप से शब्दबद्ध किया गया है यद्यपि जब इसको नियम 3 (1) और (2) के साथ पढ़ा जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि इसमें अधिकथित सिद्धांत को नियम 3 (1) और (2) में उल्लिखित कनिष्ठ प्राध्यापक के तीनों प्रवर्गों में से प्रत्येक के प्रति पृथक रूप से लागू किया जाना है, अर्थात् (1) प्रथम और द्वितीय श्रेणी के स्नातकोत्तर

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(2) स्नातकोत्तर स्कूल सहायकों के रूप में कार्य करने वाले ऐसे तृतीय श्रेणी के स्नातकोत्तर जिन्होंने कम-से-कम पांच वर्ष सेवा पूरी कर ली है, (3) स्नातकोत्तर स्कूल सहायकों के रूप में कार्य करने वाले ऐसे तृतीय श्रेणी के स्नातकोत्तर जिनकी सेवा पांच वर्ष से कम है, ऐसे क्रम में जिसमें उनको कनिष्ठ प्राध्यापक के रूप में नियुक्ति के लिए चुना जाना है। इन तीनों प्रवर्गों में से प्रत्येक सुभिन्न और पृथक् प्रवर्ग है। पहले प्रवर्ग में प्रथम और द्वितीय श्रेणी के स्नातकोत्तर हैं और कनिष्ठ प्राध्यापकों के रूप में उनकी नियुक्ति पर उनकी परस्पर ज्येष्ठता नियम 13 (1) के अधीन स्नातकोत्तर स्कूल सहायकों के रूप में उनकी मूल नियुक्ति की तारीख के संदर्भ में निश्चित की जानी है। जब स्नातकोत्तर स्कूल सहायकों के रूप कार्य करने वाले ऐसे स्नातकोत्तरों को जिन्होंने कम-से-कम 5 वर्ष सेवा पूरी कर ली है, कनिष्ठ प्राध्यापकों के रूप में नियुक्त किया जाता है तो उनकी परस्पर ज्येष्ठता नियम 13 (1) के अधीन स्नातकोत्तर स्कूल सहायकों के रूप में उनकी मूल नियुक्ति की तारीख के आधार पर निश्चित की जानी है। इसी प्रकार से जब स्नातकोत्तर सहायकों के रूप में कार्य करने वाले ऐसे स्नातकोत्तरों की, जिनकी सेवा 5 वर्ष से कम है, कनिष्ठ प्राध्यापकों के रूप में नियुक्त किया जाता है तो उनकी परस्पर ज्येष्ठता स्नातकोत्तर स्कूल सहायकों के रूप में उनकी मूल नियुक्ति की तारीख के आधार पर निश्चित की जानी है। यदि नियम 13 (1) का इस रीति में निर्वचन किया जाता है, सभी तदर्थ नियमों को लागू करने के परिणामस्वरूप कोई असंगति नहीं होगी। हमारा विचार है नियम 13 (1) के केवल इस रीति में अर्थ लगाने पर सरकार ने प्रथम और द्वितीय श्रेणी वाले स्नातकोत्तर कनिष्ठ प्राध्यापकों को तृतीय श्रेणी वाले स्नातकोत्तर कनिष्ठ प्राध्यापकों पर जो कि उनसे ज्येष्ठ थे, जब वे सब कनिष्ठ प्राध्यापक के रूप में नियुक्त किए जाने से पूर्व स्नातकोत्तर स्कूल सहायकों के रूप में कार्य कर रहे थे, ज्येष्ठता प्रदान करके एड हॉक रूल्स, 1973 बनाने के शीघ्र बाद 1974 की ज्येष्ठता सूची तैयार की।

31. जैसा कि पहले बताया जा चुका है, अधिकरण के समक्ष 1977 के अभ्यावेदन पिटीशन सं० 595 में प्राइवेट प्रत्यर्थी 3 से 8 की ओर से यह तर्क दिया गया था कि तदर्थ नियमों के नियम 13 (1) को अभिखंडित करने के लिए की गई प्रार्थना को 1974 की रिट पिटीशन 4358 में और 1975 की रिट अपील सं० 920 और 938 में उच्च न्यायालय के निर्णय को अस्वीकार किया जाना है और यह कि उस पिटीशन में पिटीशनरों की यह

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दलील नहीं है कि 1976 की आक्षेपकृत संशोधित ज्येष्ठता सूची उन निर्णयों में दिये गये निदेशों के प्रतिकूल है। नियम 13 (1) के निर्वचन के बारे में जो दृष्टिकोण हमने अपनाया है, उसमें उस नियम को अभिखण्डित करने की कोई आवश्यकता नहीं है। यह सच है कि 1977 के अभ्यावेदन पिटीशन 595 में पिटीशनरों ने यह दलील नहीं दी है कि 1976 की आक्षेपकृत ज्येष्ठता सूची रिट पिटीशन उन रिट अपीलों में उच्च न्यायालय के निर्णय में दिए गए निदेशों के अनुसार नहीं है। 1977 के अभ्यावेदन पिटीशन सं० 595 में पिटीशनरों ने दलील दी है कि वे निर्णय 1969 के बैच के सम्बन्ध में है और उनका सम्बन्ध 1960 के बैच से है तथा वे उनके द्वारा प्रभावित नहीं होंगे। इसका जो भी अर्थ निकले, यह बात ध्यान देने की है कि प्रत्यर्थियों ने 1968 की सिविल अपील सं० 1652 से 1659 तक में यह दलील नहीं दी है कि उन अपीलों में अपीलार्थी उन निर्णय के पक्षकार थे और वे पूर्व-न्याय के रूप में है और उन पर आबद्धकर हैं। अतः 1977 के अभ्यावेदन पिटीशन 595 में प्राइवेट प्रत्यर्थियों की इस दलील में कोई सार नहीं है।

32. इसके पश्चात् 1977 के अभ्यावेदन पिटीशन सं० 595 में प्राइवेट प्रत्यर्थियों द्वारा अधिकरण के समक्ष यह दलील दी गई कि वे स्नातकोत्तर स्कूल सहायकों के रूप में उस पिटीशन में पिटीशनरों से पहले नियुक्त किए गए थे और वे कनिष्ठ प्राध्यापकों के रूप में नियुक्ति के लिए तब अर्हित थे जब उस पिटीशन में पिटीशनर उस रूप में नियुक्त किए गए थे किन्तु तैनात किए जाने के लिए वे उपलब्ध नहीं थे और यह कि आन्ध्र प्रदेश स्टेट एण्ड सबोर्डिनेट सर्विस रूल्स के नियम 33(ग) के अधीन वे ज्येष्ठता के हकदार हैं। वह नियम उन व्यक्तियों को लागू होता है जो सेवा के उस वर्ग या प्रवर्ग से उसी सेवा के किसी अन्य वर्ग या प्रवर्ग को स्थानान्तरित किए गए थे और वर्तमान मामले के तथ्यों को वहां लागू नहीं होंगे जहां कनिष्ठ प्राध्यापकों को तदर्थ नियमों के नियम 3(1) और (2) में दर्शित रीति में स्नातकोत्तर स्कूल सहायकों में से चयन द्वारा नियुक्त किया गया है और कनिष्ठ प्राध्यापकों के रूप में स्नातकोत्तर स्कूल सहायकों के स्थानान्तरण का कोई प्रश्न नहीं है। अतः 1977 के अभ्यावेदन पिटीशन 595 में प्राइवेट प्रत्यर्थियों की ओर से प्रस्तुत की गई दूसरी दलील में भी कोई गुणागुण नहीं है।

33. यह न्यायालय के तदर्थ नियमों के नियम 13(1) को इस आधार पर अभिखण्डित नहीं कर सकता क्योंकि कोई अन्य नियम जो न्यायालय की राय में वह बेहतर या अधिक उपयुक्त होगा। अतः

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रिजर्व बैंक आफ इण्डिया बनाम एन० सी० पालीवाल[1] वाले मामले में दिए गए विनिश्चय, जिसका अधिकरण के समक्ष 1977 के अभ्यावेदन पिटीशन 595 में प्राइवेट प्रत्यर्थी 3 से 8 की ओर से अवलम्ब लिया गया है, सुसंगत नहीं है। यह केवल एड हॉक रूल्स, 1973 के नियम 3(1) और (2) के साथ पठित नियम 13(1) के निर्वचन का प्रश्न है।

34. इन परिस्थितियों में, हम अभिनिर्धारित करते हैं कि एड हॉक रूल्स, 1973 के नियम 13(1) का निर्वचन ऊपर दर्शित रीति में किया जाना है और तदनुसार ज्येष्ठता निश्चित की जानी है और उस नियम को अभिखण्डित करने की कोई आवश्यकता नहीं है और यह कि 1976 की आक्षेपकृत ज्येष्ठता सूची को अभिखण्डित किया जाना है और 1974 की ज्येष्ठता सूची को पुनःस्थापित किया जाना है। इसका अर्थ यह होगा कि तृतीय श्रेणी वाले स्नातकोत्तर कनिष्ठ प्राध्यापकों द्वारा ज्येष्ठता निश्चित करने के बारे में 1979 की सिविल अपील 415 में की गई पहली प्रार्थना को रद्द करना होगा और तदनुसार उसे रद्द किया जाता है।

35. अब एकमात्र इस मुद्दे की ओर आने पर, जिसका 1976 के अन्तरित रिट पिटीशन सं० 941 (1979 की सिविल अपील सं० 415) में पिटीशनरों की ओर से ज्येष्ठ अधिवक्ता, श्री एस० एन० ककड़ के इस तर्क से कि कनिष्ठ महाविद्यालय के प्रधानाचार्य के रूप में कनिष्ठ प्राध्यापकों की प्रोन्नति के लिए प्रथम या द्वितीय श्रेणी की स्नातकोत्तर डिग्री विहित करने वाले एड हॉक रूल्स, 1974 के नियम 6, जिससे प्रधानाचार्यों के रूप में प्रोन्नति के लिए पात्रता से तृतीय श्रेणी के स्नातकोत्तर कनिष्ठ प्राध्यापक निकल जाते हैं, हम आरम्भ में ही यह कहना चाहेंगे कि अधिकरण के समक्ष प्रस्तुत की गई यह दलील कि प्रधानाचार्यों के पद प्रशासनिक पद हैं और शिक्षण अनुभव की आवश्यकता नहीं है, गलत है। लोक अनुदेशों के निदेशक ने अपने कार्य-विवरण आर० सी० सं० 1068/आई० सी०-4/70 तारीख 16-1-1971 में यह कहा है कि कनिष्ठ महाविद्यालयों के प्रधानाचार्यों को हर सप्ताह यदि अधिक नहीं तो कम-से-कम छः पीरियड अवश्य लेने चाहिएं। अतः कनिष्ठ महाविद्यालयों के प्रधानाचार्यों को, अपने प्रशासनिक कर्तव्यों के अतिरिक्त, शासकीय कार्य भी करना होता है। वे कनिष्ठ महाविद्यालयों के प्रशासनिक प्रधान होते हैं, जहां पर प्रथम, द्वितीय और तृतीय श्रेणी वाले स्नातकोत्तर कनिष्ठ प्राध्यापकों के रूप में कार्य करते हैं। उन्हें प्रथम, द्वितीय

[1] ए० आई० आर० 1976 एस० सी० 2342.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

और तृतीय श्रेणी वाले स्नातकोत्तर कनिष्ठ प्राध्यापकों के ऊपर प्रशासनिक नियन्त्रण का प्रयोग करना होता है। अतः यह बहुत ही वांछनीय है कि प्रधानाचार्य प्रथम या द्वितीय श्रेणी के स्नातकोत्तर हों। कनिष्ठ महाविद्यालयों के प्रधानाचार्यों के पद राजपत्रित होते हैं जबकि उन कालेजों के कनिष्ठ प्राध्यापकों के पद राजपत्रित नहीं होते। जी० ओ० एम० एस० 2068, शिक्षा, तारीख 25-8-1969 के अनुसार कनिष्ठ महाविद्यालयों के प्रधानाचार्यों का दर्जा डिग्री महाविद्यालयों में ज्येष्ठ प्राध्यापकों का होता है। और उनका वेतनमान 400-800 रुपए है जबकि कनिष्ठ प्राध्यापकों का वेतन-मान 200-15-300-500 रुपए है। कनिष्ठ महाविद्यालयों जैसी शिक्षा संस्थाओं द्वारा श्रेष्ठता प्राप्त करने का उद्देश्य प्रशंसनीय है और ऐसी संस्थाओं के प्रधानों की शैक्षणिक योग्यता में श्रेष्ठता एक सुसंगत तथ्य है। प्रधानाचार्यों के रूप में कनिष्ठ प्राध्यापकों की प्रोन्नति उनकी शिक्षा—विशिष्टता द्वारा न्यायनिर्णीत गुणागुण पर ही आधारित है जिसे कि भेदभाव-पूर्ण नहीं कहा जा सकता। ऊपर निर्दिष्ट एस० एम० पंडित बनाम गुजरात राज्य[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चयाधार को वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं किया जा सकता। किसी शिक्षा संस्था के प्रधान के लिए प्रथम या द्वितीय श्रेणी की स्नातकोत्तर डिग्री विहित करने और प्राप्त की जाने वाली श्रेष्ठता के उद्देश्य से सीधा सम्बन्ध है और इसे भेदभावपूर्ण नहीं कहा जा सकता। अतः हम यह नहीं समझते कि एड हॉक रूल्स, 1974 का नियम 6 भेदभावपूर्ण और अवैध होने के कारण अभिखण्डित किया जाना चाहिए।

36. कनिष्ठ महाविद्यालयों के प्रधानाचार्यों के अस्थायी पदों के लिए तदर्थ नियमों के बनाए जाने तक लोक अनुदेशों के निदेशक ने आर० सी० 775-सी०1/2/74, तारीख 14-3-1974 में स्टेट एण्ड सबोर्डिनेट सर्विस रूल्स, के नियम 10(क)(i) के अधीन सात तृतीय श्रेणी के स्नातकोत्तर कनिष्ठ प्राध्यापकों की कनिष्ठ महाविद्यालयों के प्रधानाचार्यों के रूप में प्रोन्नति करके कार्य-विवरण जारी किए। 1976 की अन्तरित रिट पिटीशन 7146 में तीसरी प्रार्थना यह है कि उन नियुक्तियों को अवैध घोषित किया जाना चाहिए। एड हॉक रूल्स, 1974 के, जिन्हें जी० ओ० एम० एस० 502, शिक्षा, तारीख 19-6-1974 में बाद में बनाया गया, नियम 6(ii) के अधीन प्रथम और द्वितीय श्रेणी की स्नातकोत्तर डिग्री के अतिरिक्त कनिष्ठ

[1] ए० आई० आर० 1972 एस० सी० 252.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

महाविद्यालयों के प्रधानाचार्यों के रूप में कनिष्ठ प्राध्यापक की प्रोन्नति के लिए अर्हता के रूप में आन्ध्र प्रदेश एजूकेशनल सबोर्डिनेट सर्विस में तीन वर्ष सेवा विहित की गई है। यह पता नहीं है कि जब सात तृतीय श्रेणी वाले स्नातकोत्तर कनिष्ठ प्राध्यापकों की प्रधानाचार्यों के रूप में प्रोन्नति की गई थी तो क्या प्रोन्नति के लिए प्रथम या द्वितीय श्रेणी वाले स्नातकोत्तर कनिष्ठ प्राध्यापक उपलभ्य नहीं थे अथवा उसके बाद लगभग तीन मास के भीतर एड हॉक रूल्स, 1974 बनाए जाने के पश्चात् उन तृतीय श्रेणी वाले स्नातकोत्तर कनिष्ठ प्राध्यापकों को कनिष्ठ प्राध्यापक के रूप में प्रतिवर्तित क्यों नहीं कर दिया गया। उनकी प्रोन्नतियां इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए अनियमित थीं कि कनिष्ठ प्राध्यापक के रूप में नियुक्ति के लिए भी, प्रथम और द्वितीय श्रेणी वाले स्नातकोत्तर स्कूल सहायकों को वरीयता दी जानी होती है। इस अनियमितता के, एड हॉक रूल्स, 1974 के नियम 8 के रूप में व्यावृत्ति का उपबंध करके, नजरंदाज किए जाने की मांग की गई है जहां यह कहा गया है कि उन नियमों में किसी बात के होते हुए भी, कोई व्यक्ति जो उन नियमों के जारी किए जाने से ठीक पूर्व किसी कनिष्ठ महाविद्यालय के प्रधानाचार्य का पद धारण किए हुए था, और जिसे उन नियमों के अनुसार नियुक्त नहीं किया गया था, प्रधानाचार्य के रूप में बना रहेगा और यह विकल्प दिया गया है कि वह या तो प्रधानाचार्य के रूप में बना रहेगा या अपने मूल पद पर प्रतिवर्तित हो सकता है। हम नहीं समझते कि उन प्रोन्नतियों के लगभग तीन मास के भीतर एड हॉक रूल्स, 1974 के बनाए जाने के बाद भी की गई इन तदर्थ प्रोन्नतियों के जारी रखने में कोई विधिमान्य आवश्यकता हो सकती थी। हमारे विचार में उस नियम में विकल्प के लिए उपबन्ध करने का कोई अर्थ नहीं है क्योंकि ऐसी संभावना नहीं है कि कोई व्यक्ति जिसे 400-800 रुपये की श्रेणी में प्रधानाचार्य के रूप में प्रोन्नत किया गया है, स्वयं ही 200-15-320-20-500 रुपये की श्रेणी में कनिष्ठ प्राध्यापक के अपने मूल पद पर प्रतिवर्तित होने के लिए विकल्प करेगा। तथापि, लम्बे समय के बीत जाने को ध्यान में रखते हुए, हम उन नियुक्तियों को अवध घोषित करना वांछनीय नहीं समझते।

37. परिणामस्वरूप, 1978 की सिविल अपील सं० 1652 से 1659 को, जैसा कि ऊपर इंगित है, मंजूर किया जाता है और 1979 की सिविल अपील सं० 415 को खारिज किया जाता है। 1978 की सिविल अपील

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सं० 1652 से 1659 तक में विरोधी प्रत्यर्थी उन अपीलों में अपीलार्थियों के खर्चों का संदाय करेंगे। अधिवक्ता की फीसों का एक सेट होगा। 1979 की सिविल अपील सं० 415 में पक्षकार अपने-अपने खर्चे स्वयं वहन करेंगे।

1978 की सिविल अपील सं० 1652 से 1659 मंजूर की गई, 1979 की सिविल अपील सं० 415 खारिज की गई।

घई/प्र०/भू०

———

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वेद गुप्त

बनाम

मैसर्स अप्सरा थियेटर्स जम्मू और एक अन्य

(Ved Gupta

v.

M/s. Apsara Theatres, Jammu and another)

(11 अगस्त, 1983)

(न्यायाधिपति डी० ए० देसाई और वी० बालकृष्ण एराडी)

जम्मू एण्ड कश्मीर (सिनेमाटोग्राफ) ऐक्ट, 1989 (संवत्) (संवत 1989 का 24)—धारा 3, 6 एफ और 7(सपठित तद्धीन विरचित नियमों का नियम 7)—अपीलार्थी को सिनेमा हाल सन्निर्मित करने की अनुज्ञा दिया जाना—अपीलार्थी का तत्पश्चात् कुछ अन्य व्यक्तियों के साथ भागीदारी की संविदा करना—सिनेमा थियेटर के सन्निर्माण के पश्चात् सिनेमाटोग्राफ फिल्मों के सार्वजनिक प्रदर्शन के लिए अपीलार्थी को उसकी व्यष्टिक हैसियत में अनुज्ञप्ति अनुदत्त किया जाना—भागीदारों के बीच संविवाद उठने पर फर्म के नाम में अनुज्ञप्ति जारी किए जाने के आवेदन को जिला मजिस्ट्रेट द्वारा नामंजूर किया जाना और उस आदेश का अन्तिम हो जाना—तत्पश्चात् भागीदारों द्वारा थियेटर को फर्म की सम्पत्ति के रूप में घोषित किए जाने के लिए वाद फाइल किया जाना तथा वादियों के कब्जे और थियेटर चलाने में हस्तक्षेप करने में अपीलार्थी के विरुद्ध प्रतिषेधात्मक व्यादेश का जारी किया जाना—पुलिस अधीक्षक की रिपोर्ट पर अनुज्ञप्तिधारी से भिन्न अन्य व्यक्तियों द्वारा फिल्म के प्रदर्शन को जिला मजिस्ट्रेट द्वारा निलम्बित किया जाना—जिला मजिस्ट्रेट ऐसा आदेश करने में न्यायोचित था और उक्त आदेश को नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का अतिक्रामी भी नहीं कहा जा सकता।

अपीलार्थी को जम्मू एण्ड कश्मीर (सिनेमाटोग्राफ) ऐक्ट की धारा 3 के अधीन प्रस्तावित स्थान पर एक सिनेमा-हाल के सन्निर्माण करने की

Agamnigam Digital P...

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अनुज्ञा जिला मजिस्ट्रेट द्वारा अनुदत्त की गई। इसके पश्चात्, अपीलार्थी ने कुछ अन्य व्यक्तियों के साथ भागीदारी की संविदा की। सिनेमा थियेटर के सन्निर्माण के पश्चात् अपीलार्थी ने अपनी व्यष्टिक हैसियत में सिनेमा थियेटर को चलाने के लिए अपेक्षित अनुज्ञप्ति जारी करने का आवेदन किया और उसे जिला मजिस्ट्रेट ने थियेटर में सिनेमाटोग्राफ फिल्मों के सार्वजनिक प्रदर्शन की धारा 3 के अधीन अनुज्ञप्ति जारी कर दी। बाद में कुछ भागीदारों द्वारा एक आवेदन किया गया कि उनके नामों को भी अपीलार्थी को जारी की गई अनुज्ञप्ति में सम्मिलित कर लिया जाए। किन्तु जांच-पड़ताल करने पर, जिसमें दोनों पक्षकार सम्मिलित थे, जिला मजिस्ट्रेट ने उस आवेदन को नामंजूर कर दिया। अनुज्ञप्ति के नवीकरण के बारे में एक संविवाद पर जिला मजिस्ट्रेट ने अभिनिर्धारित किया कि अनुज्ञप्ति का नवीकरण मूल अनुज्ञप्तिधारी अर्थात् अपीलार्थी से भिन्न किसी अन्य पक्षकार के नाम में नहीं किया जाएगा और इस आदेश को राज्य सरकार ने अपील में पुष्ट कर दिया और इसे उच्च न्यायालय द्वारा रिट पिटीशन और विशेष इजाजत पिटीशनों की खारिजी के कारण पक्षकारों के बीच अन्तिमता प्राप्त हुई। बाद में, पक्षकारों में से कुछ पक्षकारों के द्वारा इस बात की घोषणा के लिए वाद फाइल किया गया कि अप्सरा थियेटर नामक भवन में सिनेमाटोग्राफ के प्रदर्शन के लिए जिला मजिस्ट्रेट द्वारा जारी की गई अनुज्ञप्ति अप्सरा थियेटर फिल्म की सम्पत्ति और इसके लिए एक प्रतिषेधात्मक व्यादेश जारी कर दिया जाए जिसमें अपीलार्थी और छह अन्य व्यक्तियों को, जो अपीलार्थी के साथ रह रहे हैं, वादियों द्वारा सिनेमा चलाने में हस्तक्षेप करने से रोक दिया जाए। इसके संस्थापन की तारीख को ही जिला न्यायाधीश ने प्रतिवादियों को वादियों द्वारा अप्सरा थियेटर को चलाने और उनके कब्जे में हस्तक्षेप करने से रोकते हुए एक अस्थायी व्यादेश जारी किया। व्यादेश के इस आदेश की तामील पर अपीलार्थी ने जिला मजिस्ट्रेट को यह लिखा कि उसके लिए सिनेमा अनुज्ञप्ति को प्रवृत्त करना असंभव हो गया है क्योंकि जिला न्यायालय ने एक व्यादेश जारी कर दिया है और चूंकि वह अनुज्ञप्तिधारी है, जो अधिनियम और नियमों के अधीन अनुज्ञप्ति की सभी शर्तों और निबन्धनों के सम्यक् अनुपालन के लिए सभी कार्यों और लोपों के लिए उत्तरदायी है, उसे उक्त परिसर में अन्य लोगों द्वारा किए गए अवैध कार्यों और अपराधों के सम्बन्ध में अप्सरा थियेटर की अनुज्ञप्तिधारी की हैसियत से विधि के अधीन अभियोजन या अन्य कार्यवाहियों से बचाया जाए। पुलिस अधीक्षक ने जिला मजिस्ट्रेट को यह सूचना दी कि इस प्रयोजन के लिए नियुक्त उप-

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उप-निरीक्षक द्वारा जांच-पड़ताल पर यह पता चला है कि सिनेमाटोग्राफ अनुज्ञप्तिधारी से भिन्न अन्य व्यक्तियों द्वारा अप्सरा थियेटर में सिनेमाटोग्राफ का प्रदर्शन किया जा रहा है और पुलिस ने अधिनियम की धारा 6 के अधीन अनुज्ञप्तिधारी का चालान कर दिया है। जिला मजिस्ट्रेट को उक्त पत्र के द्वारा यह अनुरोध किया गया कि थियेटर में सिनेमाटोग्राफ के प्रदर्शन को किसी भी पक्षकार के पक्ष में न्यायालय द्वारा दिए गए अन्तिम विनिश्चय तक निलम्बित कर दिया जाए। उक्त सामग्री पर कार्रवाई करते हुए जिला मजिस्ट्रेट ने आक्षेपित आदेश पारित किया जिसके द्वारा अप्सरा थियेटर में सिनेमाटोग्राफ फिल्मों के प्रदर्शन को अगले आदेशों तक निलम्बित रहने का निदेश दिया। इस निर्णय के विरुद्ध अपील को मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित—इस दृष्टिकोण को भी सहीं माना जा सकता कि जम्मू एण्ड कश्मीर (सिनेमाटोग्राफ) ऐक्ट के अधीन अनुज्ञप्ति चलचित्र यन्त्र के लिए, स्वामी/प्रबन्धक के नाम में चलचित्र प्रदर्शन के लिए स्थायी रूप से सामान से युक्त परिसर के लिए अनुदत्त की गई थी जो उस परिसर में प्रयोग किया जा रहा था और इसलिए आवश्यक रूप से यह पता चलता है कि जब कि उसमें प्रयुक्त चलचित्र यन्त्र सहित अनुज्ञप्ति-प्राप्त परिसर भागीदारी से सम्बन्धित थे और भागीदारों में से एक ने अपने पृथक् नाम में अनुज्ञप्ति अभिप्राप्त कर ली थी तो अन्य भागीदार स्वतः ही अनुज्ञप्ति में हित अर्जित कर लेते हैं और कि अनुज्ञप्ति प्राधिकारी द्वारा अनुदत्त विशेषाधिकार "आवश्यक रूप से ऐसे भवन और चलचित्र संयंस में हक का अनुसरण करते हैं।" अधिनियम और नियमों के सुसंगत उपबन्धों की परीक्षा सन्देह से परे यह दर्शाती है कि उनमें "स्थान के सम्बन्ध में किसी व्यक्तिगत अनुज्ञप्ति के अनुदत्त करने का अनुध्यान है जहां कि चलचित्र यंत्र लगाए हैं।" नियमों और अनुज्ञप्ति की शर्तों और निबन्धनों के अधीन उसका प्राप्तिकर्ता ऐसा व्यक्ति है जो बाध्यताओं और शर्तों के भंग के लिए अनुज्ञप्ति प्राधिकारी के लिए जवाबदेह है और वह अधिनियम ओर नियमों के उपबन्धों के उल्लंघन के लिए दण्डनीय भी है। अधिनियम और नियमों और स्वयं अनुज्ञप्ति में स्पष्ट शर्तों में अन्तर्विष्ट उपबन्धों के पठन पर अपीलाधीन निर्णय में अभिव्यक्त दृष्टिकोण को कायम रखना असंभव है कि अनुज्ञप्ति परिसर के लिए अनुदत्त की गई थी और परिसर से संलग्न हित गठित करती है। वास्तविक सम्पत्ति विधि के विषय में अनुज्ञप्ति के साथ विद्वान कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश द्वारा की गई समानता अधिनियम के अधीन अनुदत्त अनुज्ञप्ति के लिए व्यर्थ प्रयोग है और सभी तरह से एक पूर्णतः भिन्न धारणा है।

Agamnigam Digital Preservation

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इसलिए आक्षेपित निर्णय में अभिव्यक्त दृष्टिकोण को पुष्ट करना संभव नहीं है कि "अनुज्ञप्ति का प्रभाव यह है कि यह भवन को और उसमें प्रयुक्त चलचित्र यन्त्र को विशेषाधिकार देती है।" विद्वान् कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश द्वारा उसके द्वारा अभिव्यक्त उपरोक्त दृष्टिकोण का समर्थन देने के लिए धारा 6(च) का अवलम्ब लिया है। इस धारा को सतर्कतापूर्वक पढ़ने से यह दिखाई देता है कि विद्वान् कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण का समर्थन करने के अलावा यह उपबन्ध यह दर्शाता है कि अनुज्ञप्ति का धारक ऐसा व्यक्ति हो सकता है जो चलचित्र यन्त्र के स्वामी से भिन्न या चलचित्र-की का भागीदार हो सकता है। इस धारा का उद्देश्य और प्रयोजन स्पष्टतः अनुज्ञप्ति प्राधिकारी को अधिनियम की धारा 6 या धारा 6(ङ) के अधीन न केवल अनुज्ञप्तिधारी द्वारा अपितु ऐसे अन्य किसी व्यक्ति द्वारा जो चलचित्र यन्त्र का वास्तविक प्रभारी या चलचित्र यन्त्र का प्रबन्धतन्त्र हो, अपराध करने की दशा में प्रतिसंहृत करने के लिए सशक्त करती है। दूसरे शब्दों में, अनुज्ञप्ति न केवल उस समय प्रतिसंहृत की जा सकती है जब कि अनुज्ञप्तिधारी अधिनियम की धारा 6 या धारा 6(ङ) के अधीन किसी अपराध के लिए दोषसिद्ध किया जाता है अपितु किसी व्यक्ति के ऐसे अपराध की दोषसिद्धि की दशा में भी जो उसमें उपवर्णित अनुज्ञप्तिधारी से भिन्न अन्य व्यक्तियों की श्रेणी से सम्बन्धित हो। धारा के उपबन्धों में यह स्पष्ट उपदर्शन है कि अनुज्ञप्ति का धारक (अनुज्ञप्तिधारी) चलचित्र के स्वामी या प्रबन्धक या भागीदार से भिन्न हो अन्य व्यक्ति भी हो सकता है। (पैरा 17)

यह दृष्टिकोण कि अपीलार्थी ही एकमात्र अनुज्ञप्तिधारी था और कि फर्म का अनुज्ञप्ति में कोई हित नहीं है, पूर्णतः सही और उचित था और विद्वान् कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश द्वारा अपनाया गया प्रतिकूल दृष्टिकोण गलत है। (पैरा 18)

जिला मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश को अभिखंडित करने के लिए आक्षेपित निर्णय में कथित अगला आधार यह है कि उक्त आदेश नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का अतिक्रमण था जहां तक कि आदेश पारित करने से पूर्व भागीदारी फर्म को कोई नोटिस नहीं दिया गया था या सुनवाई नहीं की गई थी। यह निष्कर्ष यदि पूर्णतः नहीं तो, विस्तृत रूप से इस आधार-वाक्य पर आधारित है कि भागीदारों की फर्म, "अनुज्ञप्ति में अधिकार और हित" में प्राप्त करती है और कि "अनुज्ञप्ति के प्रतिसंहरण या निलम्बन ने मालिकाना और कारबारी हितों को गम्भीर रूप से प्रभावित किया है। कि अपीलार्थी

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

थियेटर के सम्बन्ध में एकमात्र अनुज्ञप्तिधारी था और कि भागीदार फर्म को या तो अनुज्ञप्तिधारी या ऐसा व्यक्ति नहीं माना जा सकता जिनका अनुज्ञप्ति में कोई हित हो। इसलिए यह बात स्पष्ट हो जाती है कि यह मूल आधार-वाक्य जिस पर कि विद्वान् कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश ने अपने तर्क को आधारित किया है, सही और उचित होने के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। जबकि फर्म और भागीदार कारबार के लाभों में हिस्सा लेने के अधिकारी हैं जो अपीलार्थी को जारी की गई अनुज्ञप्ति के बल पर थियेटर में हो, उन्हें अनुज्ञप्ति में कोई हक या हित प्राप्त नहीं है जो अपीलार्थी को उसकी व्यक्तिगत और व्यष्टिक हैसियत में अनुदत्त की गई थी। अपीलार्थी को (नियमों के अधीन विहित प्ररूप 'क' में) जारी की गई अनुज्ञप्ति का खण्ड II समान भाषा में नियम 88(v) में अन्तर्विष्ट ऊपर उल्लिखित उपबन्ध की शर्तों में से एक शर्त के रूप में निगमित है जिसके अधीन अनुज्ञप्ति अनुदत्त की गई थी। इस प्रकार से अनुज्ञप्ति प्राधिकारी की अनुज्ञा के बिना अनुज्ञप्ति को अन्तरित करने, हस्तांतरित करने, उप-पट्टे पर देने अथवा अन्यथा अन्तरित करने के बारे में अनुज्ञप्तिधारी के विरुद्ध स्पष्ट प्रतिषेध है तथा उसे किसी अन्य व्यक्ति को अनुज्ञप्ति प्राप्त स्थान में ऐसी अनुज्ञा प्राप्त किए बिना फिल्मों को प्रदर्शित करने के लिए अनुज्ञात करने के विरुद्ध भी प्रतिषेध है। इस प्रकार से थियेटर में चलचित्र फिल्मों का प्रदर्शन करने का अधिकार एकमात्र अनुज्ञप्तिधारी में विहित था। अब इस बात पर ध्यान देना सुसंगत है कि इस मामले में जो कुछ हुआ है वह यह है कि 11 अन्य व्यक्तियों के साथ कृष्ण कुमार द्वारा फाइल वाद में अपीलार्थी को वादियों द्वारा थियेटर को चलाने में किसी प्रकार से हस्तक्षेप करने से रोकते हुए 23 सितम्बर, 1980 को एक अस्थायी व्यादेश का आदेश जारी किया गया था। आदेश का प्रभाव यह हुआ कि अपीलार्थी के पास थियेटर परिसरों या चलचित्र यन्त्र उपस्कर पर जो उसमें अधिष्ठापित किए थे, इस तथ्य के बावजूद कोई कब्जा अथवा नियन्त्रण नहीं रहा था कि वह नियमों में अनुज्ञप्ति में संलग्न शर्तों में अन्तर्विष्ट बाध्यताओं के सम्यक् निर्वहन के लिए कानून के अधीन प्राधिकारियों के प्रति उत्तरदायी अनुज्ञप्तिधारी था। अब बोधगम्य रूप से अपीलार्थी ने अस्थायी व्यादेश के आदेश की प्राप्ति पर जिला मजिस्ट्रेट को 24 सितम्बर, 1980 के अपने पत्र के द्वारा यह सूचित किया कि अस्थायी व्यादेश के परिणामस्वरूप उसके लिए तत्समय उक्त पत्र की तारीख से सिनेमा अनुज्ञप्ति को प्रवृत्त करना असंभव हो गया है और उसे थियेटर के अनुज्ञप्तिधारी की हैसियत में उस दशा में जब कि सिनेमा परिसर में किसी

Agamnigam Digital P

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अन्य व्यक्ति द्वारा किए जाने वाले किसी अवैध कार्य या अपराध के किए जाने के कारण विधि में किसी अन्य कार्यवाही से या अभियोजन के लिए किसी दायित्व से उसे विमुक्त किया जाए। 26 दिसम्बर, 1980 को पुलिस अधीक्षक, जम्मू ने जिला मजिस्ट्रेट को यह सूचित किया कि अप्सरा थियेटर में सिनेमा का प्रदर्शन अनुज्ञप्तिधारी से भिन्न किन्हीं अन्य व्यक्तियों द्वारा किया जा रहा है और इसलिए अनुज्ञप्तिधारी का उसने अधिनियम की धारा 6 के अधीन चालान कर दिया है। जिला मजिस्ट्रेट को उक्त पत्र के द्वारा यह अनुरोध किया गया था कि पक्षकारों में से किसी के पक्ष में न्यायालय द्वारा किए गए अन्तिम विनिश्चय तक सिनेमा में फिल्मों के प्रदर्शन को लम्बित करने का आदेश पारित किया जाए। इन बातों के सम्बन्ध में जिला मजिस्ट्रेट ने 26 सितम्बर, 1980 का आक्षेपित आदेश पारित किया। जिला मजिस्ट्रेट के आदेश का मात्र पठन यह दर्शाने के लिए पर्याप्त है कि उसके अधीन जो कुछ किया गया था यह थियेटर के सम्बन्ध में अनुदत्त अनुज्ञप्ति को अस्थायी रूप से भी निलम्बित या प्रतिसंहृत करना नहीं था। जिला मजिस्ट्रेट द्वारा जो कुछ किया गया था वह केवल अप्सरा थियेटर में ऐसे व्यक्तियों द्वारा जो अनुज्ञप्तिधारी नहीं है और जिन्हें विधि में फिल्मों के प्रदर्शन को करने का कोई प्राधिकार नहीं था अप्सरा थियेटर में चलचित्र के प्रदर्शन को निलम्बित करना ही था। अपीलार्थी को थियेटर के सम्बन्ध में जारी की गई अनुज्ञप्ति का निलम्बन नहीं हुआ था, इसलिए विद्वान् कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश द्वारा की गई यह उपधारणा कि यह थियेटर के लिए जारी की गई अनुज्ञप्ति का अस्थायी रूप से निलम्बन था, स्पष्ट रूप से गलत है। भागीदारों की फर्म को अनुज्ञप्ति के बिना थियेटर में चलचित्र प्रदर्शित करने का किसी प्रकार का कोई अधिकार नहीं था। यदि अनुज्ञप्तिधारी-अपीलार्थी को भागीदारी से निकाल दिया गया था तो फर्म के द्वारा और इसके भागीदारों द्वारा अंगीकृत समुचित क्रम यह होता कि वे अनुज्ञप्ति अनुदत्त करने के लिए और ऐसी अनुज्ञप्ति प्राप्त करने के पश्चात् ही थियेटर को चलाने के लिए प्राधिकारियों तक पहुंच करते जहां तक कि उनके पास कोई अनुज्ञप्ति नहीं थी। अनुज्ञप्ति केवल अपीलार्थी को उसकी व्यष्टिक और व्यक्तिगत हैसियत में न कि फर्म के प्रतिनिधि के रूप में अनुदत्त की गई थी, इसलिए फर्म और भागीदार सिनेमा को चलाने का किसी प्रकार का विधिक अधिकार नहीं रखते थे। उनके द्वारा इस प्रकार का प्रवर्तन अधिनियम और नियमों के सुसंगत उपबन्धों में सन्निविष्ट विधि का स्पष्ट उल्लंघन होता। जिला मजिस्ट्रेट का यह स्पष्ट कर्तव्य था जैसे कि वे कानूनी प्राधिकारी थे

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

और अधिनियम के उपबन्धों को प्रवृत्त करने के लिए प्रभारित थे कि वे इस बात को सुनिश्चित करते कि फिल्मों का प्रदर्शन विधि के अतिक्रमण में अप्राधिकृत व्यक्तियों द्वारा थियेटर में न किया जाता। आक्षेपित आदेश स्पष्टतया ऐसा आदेश है जो उनके द्वारा उक्त कर्तव्य के निर्वहन में पारित किया गया था। फर्म या उसके भागीदारों का किसी प्रकार का कोई विधिक अधिकार या उचित प्रत्याशा जिला मजिस्ट्रेट द्वारा पारित उक्त आदेश द्वारा प्रभावित नहीं हुई थी। उसका एकमात्र कारण यह था कि किसी भी व्यक्ति को अनुज्ञप्तिधारी या उसके प्राधिकृत प्रतिनिधि से भिन्न किसी अन्य व्यक्ति द्वारा सार्वजनिक रूप से फिल्मों के प्रदर्शन को प्रतिषिद्ध करने वाले किसी कानून के उपबन्धों के उल्लंघन का अधिकार रखने की मान्यता नहीं दी जा सकती। ऐसी स्थिति में नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्त लागू नहीं होते और जिला मजिस्ट्रेट की ओर से फर्म या उसके भागीदारों को आक्षेपित आदेश पारित करने से पूर्व नोटिस या सुनवाई का अवसर देने की कोई बाध्यता नहीं थी। वस्तुतः यदि अनुज्ञप्तिधारी को नोटिस दिए बिना अनुज्ञप्ति का अस्थायी निलम्बन भी होता तो मामला बिल्कुल भिन्न होता। तथापि, यह अनुज्ञप्ति के निलम्बन का मामला नहीं है और न्यायालय के समक्ष परिवादी अनुज्ञप्तिधारी नहीं है उच्च न्यायालय के समक्ष पिटीशन फर्म के कुछ भागीदार थे जो अधिनियम और नियमों के उपबन्धों के उल्लंघन में अनुज्ञप्ति के बिना थियेटर को चलाना चाहते थे। जिला मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आक्षेपित आदेश के बारे में जिसमें थियेटर में सिनेमा-शो के निलम्बन का निदेश दिया गया था, यह नहीं कहा जा सकता कि उससे रिट पिटीशनरों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। उन्हें थियेटर में विधि के उल्लंघन में अनुज्ञप्ति के बिना कोई सिनेमा-शो चलाने का किसी प्रकार का कोई विधिक अधिकार नहीं था। रिट पिटीशनरों को इस प्रकार की कोई उचित प्रत्याशा भी नहीं थी कि उन्हें विधि के अतिक्रमण में अनुज्ञप्ति के बिना थियेटर को चलाने के लिए अनुज्ञात किया जाएगा। पिटीशनरों को किसी विधिक अधिकार या उचित प्रत्याशा के न होने की दशा में जिला मजिस्ट्रेट की ओर से ऐसी कोई बाध्यता नहीं थी कि वह आक्षेपित आदेश पारित करने से पूर्व उनकी सुनवाई करता। इसलिए उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए इस दृष्टिकोण को पुष्ट नहीं किया जा सकता कि आक्षेपित आदेश नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का अतिक्रामी था। (पैरा 19)

Agamnigam Digital P

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सिविल अपीली अधिकारिता : 1981 की सिविल अपील सं० 2611 और 2611-ए ।

1981 की लैटर्स पेटेंट अपील सं० 1 और 1981 की सिविल प्रकीर्ण पिटीशन सं० 454 में जम्मू-कश्मीर उच्च न्यायालय के तारीख 1 जुलाई, 1981 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध की गई अपीलें ।

अपीलार्थी की ओर से	सर्वश्री ए० के० सेन, जी० एल० सांघी, विनीत कुमार और देविन्द्र गुप्त
प्रत्यर्थी की ओर से (1981 की अपील सं० 2611 में)	सर्वश्री डी० डी० ठाकुर, एस० एन० कक्कड़ और आर० पी० भट्ट
प्रत्यर्थी की ओर से (1981 की अपील सं० 2611-ए में)	सर्वश्री सोली जे० सोराबजी, के० के० वेनुगोपाल और आर० पी० भट्ट
प्रत्यर्थी की ओर से (सिविल अपील सं० 2611 और 2611-ए में)	सर्वश्री ई० सी० अग्रवाल, एस० पी० गुप्त, आर० सतीश, वी० के० पंडित और आर० पी० सेठी
प्रत्यर्थी सं० 2 की ओर से	श्री एल० एन० सिन्हा, अटर्नी जनरल, श्री अलतक अहमद और श्री इकरान अहमद
मध्यक्षेपी की ओर से	सर्वश्री एस० घोष और ए० के० नाग

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति वी० बालकृष्ण एराडी ने दिया ।

न्यायाधिपति एराडी—

दोनों ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउन्सेल द्वारा दी गई विस्तृत दलीलों के पश्चात् जब 11 नवम्बर, 1982 को इन अपीलों पर विनिश्चय दिया गया तो हमने निम्नलिखित आदेश पारित करके अपील (1981 की सिविल अपील सं० 2611) को मंजूर करते हुए अपना विनिश्चय इस प्रकार घोषित किया—

"अपील मंजूर की जाती है ।

कार्यकारी विद्वान् मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा पीठासीन उच्च न्यायालय की खण्ड न्यायपीठ के निर्णय और आदेश को अपास्त किया जाता है और विद्वान् एकल न्यायाधीश डा० ए० एस० आनन्द

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के निर्णय को बहाल किया जाता है और परिणामस्वरूप जम्मू-कश्मीर उच्च न्यायालय में प्रत्यर्थियों द्वारा फाइल की गई 1980 की रिट पिटीशन सं० 436 खारिज होती है। इस न्यायालय में सुनवाई के खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं दिया जाता। इस आदेश के विधिक परिणाम 16 नवम्बर, 1982 से प्रभावी होंगे। इस न्यायालय द्वारा पारित सभी अन्तरिम आदेश 15 और 16 नवम्बर, 1982 के बीच की आधी रात से रद्द हो जाएंगे।

कारण बाद में दिए जाएंगे।"

अब हम इस निर्णय में अपने उपरोक्त विनिश्चय के समर्थन में कारण कथित करते है।

2. जुलाई, 1966 में अपीलार्थी वेद गुप्त ने भूमि के एक प्लाट पर जिसे उसने गांधी नगर जम्मू में पट्टे पर लेने का प्रस्ताव किया। दो अन्य व्यक्तियों अर्थात् टोडर मल और कृष्ण कुमार के सहयोग से एक वातानुकूलित सिनेमा सन्निर्मित और परिचालित करने का उद्यम प्रारम्भ करने का विनिश्चय किया। तदनुसार 22 जुलाई, 1966 को वेद गुप्त ने, जो जिसमें वह और भागीदारी की ओर से कार्य करने के लिए तात्पर्यित था ऊपर उल्लिखित दो व्यक्ति सम्मिलित थे। (वास्तव में उस तारीख तक कोई भी भागीदारी गठित नहीं की गई थी) जिला मजिस्ट्रेट जम्मू को जम्मू एण्ड कश्मीर (सिनेमाटोग्राफ) ऐक्ट, 1989(1983 ए० डी०) (जिसे इसमें इसके पश्चात् अधिनियम कहा गया है) की धारा 3 के अधीन प्रस्तावित स्थान पर एक आधुनिक सिनेमा हाल सन्निर्मित करने की अनुज्ञा के लिए आवेदन किया जिसका विस्तृत विवरण आवेदन के साथ संलग्न योजना-चित्र में दिया गया था। श्री वेद गुप्त को जिला मजिस्ट्रेट जम्मू ने अपने ज्ञापन (परिशिष्ट 'ख') के द्वारा यह सूचित किया था कि सरकार ने प्रस्तावित स्थान पर सिनेमा हाल को सन्निर्मित करने को अनुमोदित कर दिया है और उसके पक्ष में 11 सितम्बर, 1977 के पत्र के अनुसार, जो सरकार के सचिव सामान्य विभाग द्वारा जारी किया गया था, अपेक्षित अनुज्ञा अनुदत्त कर दी है। परिशिष्ट 'ख' से ऐसा दिखाई देता है कि इस प्रकार से अनुदत्त अनुज्ञा वेद गुप्त के पक्ष में उसकी व्यष्टिक हैसियत में थी और किसी फर्म के प्रतिनिधि के रूप में नहीं थी। इसी दौरान 7 दिसम्बर, 1966 के एक विलेख द्वारा, जिसे 14 दिसम्बर, 1966 को रजिस्ट्रीकृत कराया गया था, प्रश्नगत प्लाट को संयुक्त रूप से वेद गुप्त टोडर मल और कृष्ण कुमार द्वारा उसमें

Agamnigam Digital P

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उपवर्णित शर्तों और निबन्धनों पर 40 वर्षों की कालावधि के लिए पट्टे पर लिया गया था। इसके पश्चात् 15 जुलाई, 1969 के एक विलेख के अधीन उपरोक्त तीनों व्यक्तियों ने 11 अन्य व्यक्तियों के साथ सरकार द्वारा अनुदत्त अनुज्ञा के अधीन स्थान पर आधुनिक वातानुकूलित सिनेमा सन्निर्मित करने और उसे चलाने के लिए कारबार हेतु मैट्रो थियेटर्स नाम और शैली के अधीन एक भागीदारी गठित की। उक्त विलेख के खण्ड 15 में इस बात का उपबन्ध था कि सिनेमा के सन्निर्माण के लिए स्थान, जो वेद गुप्त, टोडर मल और कृष्ण कुमार द्वारा उनके अपने नामों में पट्टे पर अभिप्राप्त किया गया था, उनकी व्यक्तिगत संपत्ति नहीं होगी किन्तु भागीदारी की संपत्ति होगी और कि अनुज्ञा, जो वेद गुप्त ने उक्त प्लाट पर थियेटर सन्निर्मित करने के लिए सरकार से अभिप्राप्त की थी, भागीदारी की संपत्ति समझी जाएगी। एक पश्चात्वर्ती करार के द्वारा जो 22 नवम्बर, 1969 को 14 भागीदारों द्वारा निष्पादित किया गया था सिनेमा कारबार का नाम "मैट्रो थियेटर" से "अप्सरा थियेटर्स" में बदल दिया गया था।

3. ऐसा प्रतीत होता है कि सिनेमा थियेटर का सन्निर्माण जून, 1969 के मध्य तक पूरा हो गया था। 17 जून, 1969 को वेद गुप्त ने जिला मजिस्ट्रेट जम्मू को यह प्रार्थना करते हुए एक आवेदन पेश किया कि थियेटर का सन्निर्माण और चलचित्र संयंत्र और उपकरणों का अधिष्ठापन सभी सरकार द्वारा अनुदत्त अनुज्ञा के अनुसरण में पूरा हो चुका था और उसे सिनेमा थियेटर चलाने के लिए अधिनियम और नियमों के अधीन अपेक्षित अनुज्ञप्ति जारी कर दी जाए। परिशिष्ट "ग" उक्त आवेदन की एक प्रति है और यह दर्शित करता है कि वेद गुप्त द्वारा अपनी व्यक्तिगत हैसियत में उसमें भागीदारी का किसी प्रकार का उल्लेख किए बिना यह फाइल किया गया था। 22 जून, 1969 को जिला मजिस्ट्रेट द्वारा अधिनियम की धारा 3 के अधीन चलचित्र फिल्मों का गांधी नगर, जम्मू में स्थित अप्सरा थियेटर में सार्वजनिक प्रदर्शन करने के लिए वेद गुप्त को अनुज्ञप्ति जारी कर दी।

4. परिशिष्ट "घ" उक्त अनुज्ञप्ति की एक प्रति है और उस में स्पष्ट रूप से यह उपदर्शित किया गया है कि उक्त अनुज्ञप्ति श्री वेदगुप्त को अनुदत्त की गई है और कि यह 31 मार्च, 1979 तक प्रवृत्त रहेगी बशर्ते कि श्री वेदगुप्त या कोई अन्य व्यक्ति जिसको कि अनुज्ञप्ति प्राधिकारी की सहमति से अनुज्ञप्ति हस्तांतरित की जाती है उक्त अप्सरा थियेटर में प्रयुक्त चलचित्र यंत्र का प्रबन्ध करता है या उसे धारण करता है। अनुज्ञप्तिधारी

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पर विभिन्न कर्त्तव्य और बाध्याताएं अधिरोपित करते हुए शर्तों की एक अनुसूची भी उक्त अनुज्ञप्ति के साथ संलग्न है।

5. 31 मार्च, 1970 को टोडर मल और शाम कुमार दो भागीदार भागीदारी से निवृत्त हो गए। इसके परिणामस्वरूप फर्म का पुनर्गठन किया गया और शेष भागीदारों द्वारा नया भागीदारी विलेख 11 अप्रैल, 1970 को निष्पादित किया गया। उक्त दस्तावेज के खंड, 18 में निम्नलिखित परिवर्णन अन्तर्विष्ट है—

> "सिनेमा चलाने के लिए अनुज्ञप्ति, जिसके द्वारा अप्सरा थियेटर चलाया जा रहा है, नौवें पक्षकार श्री वेदगुप्त सुपुत्र शकूर दास के नाम में है। सिनेमा अनुज्ञप्ति को प्रवृत्त करने का अधिकार इस भागीदार की संपत्ति होगी और गठन में परिवर्तन से इस बारे में कोई अन्तर नहीं पाएगा।"

6. इसके तुरन्त बाद 3 दिसम्बर, 1975 को टोडर मल जो फर्म से निवृत्त हो गया था और कृष्ण कुमार जो भागीदार बना हुआ था, ने संयुक्त रूप से जिला मजिस्ट्रेट जम्मू को इस बात का दावा करते हुए एक नोटिस जारी किया कि अप्सरा थियेटर के बारे में वेदगुप्त को जारी की गई अनुज्ञप्ति में उनके नाम भी सम्मिलित कर दिए जाएं। बाद में 27 जनवरी, 1976 को कृष्ण कुमार ने जिला मजिस्ट्रेट को यह कहते हुए संसूचना भेजी कि वास्तव में उसने 3 दिसम्बर, 1975 को भेजे गए नोटिस पर हस्ताक्षर नहीं किए थे कि टोडर मल ने अप्राधिकृत रूप से उसके ज्ञान और सहमति के बिना उसकी ओर से नोटिस भेजने के बारे में कहा है। इसलिए उक्त नोटिस को मिथ्या समझा जाए। उक्त पत्र की एक प्रति कृष्ण कुमार द्वारा वेदगुप्त को को भी भेज दी गई थी। आश्चर्यजनक रूप से उसके लगभग दो वर्षों की समाप्ति के पश्चात् कृष्ण कुमार ने जिला मजिस्ट्रेट को यह अनुरोध करते हुए एक आवेदन भेजा कि उसका और टोडर मल का नाम भी अप्सरा थियेटर के लिए वेदगुप्त को जारी की गई अनुज्ञप्ति में अनुज्ञप्तिधारियों के रूप में सम्मिलित किया जाना चाहिए। जिला मजिस्ट्रेट द्वारा उक्त आवेदन का नोटिस वेदगुप्त को जारी किया गया और जिला मजिस्ट्रेट ने एक जांच की जिसमें दोनों पक्षकारों की उनके अधिवक्ताओं के माध्यम से सुनवाई की गई। पक्षकारों की ओर से हाजिर होने वाले काउन्सेल द्वारा उसके समक्ष दी गई दलीलों पर विचार करने के पश्चात् जिला मजिस्ट्रेट ने 29 दिसम्बर, 1972 को एक विस्तृत आदेश पारित किया जिसमें टोडर मल और

Agamnigam Digital P

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कृष्ण कुमार के अनुरोध को नामंजूर कर दिया और यह घोषणा की कि वेदगुप्त अप्सरा थियेटर को चलाने वाला एकमात्र प्राधिकृत अनुज्ञप्तिधारी है इस पर टोडर मल ने जिला मजिस्ट्रेट द्वारा पारित उक्त आदेश के विरुद्ध अपील की। कृष्ण कुमार को उस अपील में द्वितीय प्रत्यर्थी के रूप में पक्षकार बनाया गया। जम्मू-कश्मीर राज्य के वित्त और राजस्व के राज्य मंत्री ने दोनों ओर से काउन्सेल को सुना और अन्ततः एक विस्तृत आदेश के द्वारा टोडर मल की अपील को खारिज कर दिया जिसकी प्रति परिशिष्ट "छ" है। टोडर मल ने मामले को यहीं पर नहीं छोड़ा। उसने जम्मू-कश्मीर उच्च न्यायालय में जिला मजिस्ट्रेट और अपील प्राधिकारी अर्थात् राज्य सरकार द्वारा पारित आदेशों की विधिमान्यता और वैधता को चुनौती देते हुए एक रिट पिटीशन फाइल किया। कृष्ण कुमार को उक्त पिटीशन में प्रत्यर्थी पक्षकार बनाया गया। रिट पिटीशन को उच्च न्यायालय ने 29 अप्रैल, 1978 के आदेश द्वारा प्रारम्भ में ही खारिज कर दिया। उसके पश्चात् टोडर मल उच्च न्यायालय के उक्त विनिश्चय के विरुद्ध अपील के लिए विशेष इजाजत (1978 की विशेष इजाजत पिटीशन सिविल सं० 3410) अनुदत्त करने का अनुरोध करते हुए इस न्यायालय में आया। इस न्यायालय ने 13 नवम्बर, 1978 के आदेश के द्वारा उस विशेष इजाजत पिटीशन को नामंजूर कर दिया। कृष्ण कुमार विशेष इजाजत पिटीशन में भी प्रत्यर्थी पक्षकार था।

7. 17 अप्रैल, 1979 को कृष्ण कुमार ने जिला मजिस्ट्रेट को यह अनुरोध करते हुए एक पत्र भेजा कि अनुज्ञप्ति का नवीकरण "अब अप्सरा थियेटर परिसर" के नाम में अनुदत्त किया जाए। जिला मजिस्ट्रेट ने 21 अप्रैल, 1979 के एक विस्तृत आदेश (परिशिष्ट झ) के द्वारा इसे नामंजूर कर दिया। जिला मजिस्ट्रेट द्वारा पारित उक्त आदेश से पूर्व ऐसा प्रतीत होता है कि कृष्ण कुमार और वेदगुप्त की, जिनका प्रतिनिधित्व उनके अधिवक्ताओं ने किया था, विस्तार में सुनवाई कर ली थी। परिशिष्ट "झ" से ऐसा दिखाई देता है कि कृष्ण कुमार की ओर से जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष दी गई दलीलें यह थीं कि चाहे मूल रूप से अनुज्ञप्ति वेदगुप्त के नाम में जारी की गई थी अनुज्ञप्ति के प्रवर्तन का अधिकार भागीदारी विलेख के खंड 13 और 14 के कारण फर्म की सम्पत्ति बन चुकी थी और चूंकि वेदगुप्त को भागीदारी से निकाला जा चुका था और इसके द्वारा उसका फर्म से कोई सम्बन्ध नहीं रहा था उसके पास परिसरों का कब्जा नहीं रहा था और वह अनुज्ञप्ति के नवीकरण का दावा करने का हकदार नहीं था।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इन दलीलों का जिला मजिस्ट्रेट ने खण्डन किया जिसने यह अभिनिर्धारित किया कि अनुज्ञप्ति का नवीकरण मूल अनुज्ञप्तिधारी अर्थात् श्री वेदगुप्त से अन्य किसी पक्षकार के नाम में नहीं किया जा सकता जिसे 29 दिसम्बर, 1977 को उसके पूर्वाधिकारी की कार्यवाहियों द्वारा अप्सरा थियेटर के सम्बन्ध में एकमात्र अनुज्ञप्तिधारी घोषित कर दिया गया था जिसे राज्य सरकार ने अपील में पुष्ट कर दिया था और जिसको क्रमशः उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय द्वारा रिट पिटीशन और विशेष इजाज़त पिटीशन की खारिजी के कारण पक्षकारों के बीच अंतिमता अर्जित हो चुकी थी। मार्च, 1980 में थियेटर के लिए अनुज्ञप्ति को जिला मजिस्ट्रेट ने वेदगुप्त के नाम में नवीकृत कर दिया था।

8. 27 अप्रैल, 1979 को वेदगुप्त और सात अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध कृष्ण कुमार सहित सात भागीदारों ने इस घोषणा के लिए एक वाद संस्थित किया कि 22 जुलाई, 1969 की सिनेमा अनुज्ञप्ति जो जिला मजिस्ट्रेट, जम्मू (प्रतिवादी 8) द्वारा गांधीनगर जम्मू में अप्सरा थियेटर के नाम से ज्ञात बिल्डिंग में चलचित्र के प्रदर्शन हेतु जारी की थी, अप्सरा थियेटर फर्म की सम्पति है और प्रतिवादी 1 से 7 अर्थात् श्री वेदगुप्त और भागीदारों में से छह अन्य को जो उसके साथ रह रहे थे, वादियों द्वारा सिनेमा चलाने में हस्तक्षेप करने से रोकने का प्रतिबंधनात्मक अध्यादेश जारी करने हेतु और जिला मजिस्ट्रेट (प्रतिवादी 8) के विरुद्ध उसे किसी भी प्रकार से वादियों द्वारा अप्सरा थियेटर के परिसर में चलचित्र के प्रदर्शन में हस्तक्षेप करने से रोकते हुए प्रतिबन्धनात्मक व्यादेश जारी करने हेतु एक वाद संस्थित किया। स्वयं वाद के संस्थापना की तारीख को जिला मजिस्ट्रेट, जम्मू ने प्रतिवादी 1 से 7 को वादियों द्वारा अप्सरा थियेटर के कब्जे और उसे चलाने में हस्तक्षेप करने से रोकते हुए अस्थायी व्यादेश के आदेश जारी किए। व्यादेश के आदेश की तामील किए जाने पर वेदगुप्त ने 24 सितम्बर, 1980 को जिला मजिस्ट्रेट को यह लिखा कि उसके लिए जिला मजिस्ट्रेट द्वारा जारी किए गए अस्थायी व्यादेश को ध्यान में रखते हुए सिनेमा अनुज्ञप्ति को प्रवर्तित करना असंभव हो गया है और चूंकि केवल अनुज्ञप्तिधारी ही अधिनियमों और नियमों के अधीन अनुज्ञप्ति की सभी शर्तों और निबन्धनों के सम्यक् अनुपालन के लिए उत्तरदायी है और अनुज्ञप्ति प्राधिकारी को सिनेमा परिसर में सभी कार्य और लोपों के लिए जिम्मेदार ठहराया जाएगा, उसे उक्त परिसरों में अन्य व्यक्तियों द्वारा किए जाने वाले किसी अवैध कार्यों या अपराधों के सम्बन्ध

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

में अप्सरा थियेटर के अनुज्ञप्तिधारी की हैसियत में विधि के अधीन किसी अभियोजन या अन्य कार्यवाही से बचाया जाए। 28 सितम्बर, 1980 को पुलिस अधीक्षक जम्मू शहर ने जिला मजिस्ट्रेट को यह सूचना दी कि इस प्रयोजन के लिए नियुक्त उप-निरीक्षक द्वारा जांच पड़ताल पर पता चला है कि चलचित्र यंत्र अप्सरा थियेटर में अनुज्ञप्तिधारी से भिन्न अन्य व्यक्तियों द्वारा चलाया जा रहा है और पुलिस ने अधिनियम की धारा 6 के अधीन अनुज्ञप्तिधारी का चालान कर दिया जिला मजिस्ट्रेट ने उक्त पत्र के द्वारा यह अनुरोध किया था कि थियेटर में सिनेमा यंत्र के प्रदर्शन को पक्षकारों में से किसी के पक्ष में भी न्यायालय द्वारा अंतिम विनिश्चय दिए जाने तक निलम्बित कर दिया जाए। उसके ध्यान में लाई गई उक्त सामग्री पर कार्यवाही करते हुए जिला मजिस्ट्रेट ने 26 सितम्बर, 1980 को आदेश (परिशिष्ट ण) पारित किया जिसमें यह निदेश दिया कि अप्सरा थियेटर में सिनेमा यंत्र फिल्म का प्रदर्शन अगले आदेशों तक निलम्बित रहेगा। इन अपीलों में अवधारण के लिए उद्भूत एकमात्र प्रश्न जिला मजिस्ट्रेट द्वारा पारित उक्त आदेश की विधिमान्यता से सम्बन्धित है और इसलिए इस प्रक्रम पर आदेश के पूर्ण पाठ को उद्धृत करना सुविधाजनक होगा। यह इस प्रकार पठित है—

> "जब कि श्री वेदगुप्त, जो अप्सरा थियेटर के एकमात्र अनुज्ञप्तिधारी है, द्वारा मेरे ध्यान में यह बात लाई गई है कि जिला और सेशन न्यायाधीश, जम्मू ने ऊपर कथित थियेटर में उसके द्वारा फिल्मों के प्रदर्शन के विरुद्ध अस्थायी व्यादेश जारी किया है,
>
> जब कि शहर के पुलिस अधीक्षक द्वारा 16 सितम्बर, 1980 के उसके पत्र सं० 1 गोपनीय द्वारा यह सूचना दी है कि 25 सितम्बर, 1980 को अप्सरा थियेटर में अनुज्ञप्तिधारी से भिन्न अन्य व्यक्तियों द्वारा फिल्मों का प्रदर्शन किया गया था,
>
> और जब कि नियमों के साथ पठित सिनेमाटोग्राफ ऐक्ट के अधीन अनुज्ञप्तिधारी से भिन्न अन्य कोई व्यक्ति अनुज्ञप्ति प्राधिकारी की अनुज्ञा के चालू रहने के दौरान फिल्मों का प्रदर्शन करने के लिए अनुज्ञात नहीं है,
>
> इसलिए अब मैं सहस्रनमन, जिला मजिस्ट्रेट, जम्मू एतद्द्वारा यह आदेश देता हूं कि अप्सरा थियेटर में फिल्मों का प्रदर्शन अगले आदेशों तक निलम्बित रहेगा।
>
> यह आदेश तुरंत प्रवृत्त होगा।"

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

9. 29 सितम्बर, 1980 को एक रिट पिटीशन-1980 का रिट पिटीशन सं० 436-जम्मू-कश्मीर उच्च न्यायालय में मैसर्स अप्सरा थियेटर द्वारा जिला मजिस्ट्रेट द्वारा पारित उपरोक्त आदेश को अवैध, अधिकारातीत और शून्य होने के कारण अभिखण्डित करने के लिए फाइल किया गया। अन्य बातों के साथ-साथ पिटीशनर ने यह दलील दी कि जहां तक कि पिटीशनर फर्म और उसके भागीदारों को आक्षेपित आदेश पारित करने से पूर्व नोटिस या सुनवाई का अवसर न दिए जाने के कारण नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का घोर अतिक्रमण हुआ है। एक अन्य आधार जो पिटीशनर ने दिया है वह यह था कि जिला मजिस्ट्रेट को अधिनियम अथवा नियमों के किन्हीं भी उपबन्धों के अधीन अनुज्ञप्ति को निलम्बित करने की कोई शक्ति नहीं थी और कि अनुज्ञप्ति प्राधिकारी में जो शक्ति विहित थी वह यह थी कि वह अधिनियम की धारा 6 (च) के अधीन अनुज्ञप्ति को प्रतिसंहृत ही कर सकता था और वह भी यदि उक्त धारा में उल्लिखित पूर्व शर्तें अस्तित्व में पाई जाएं। उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश (डाक्टर आनंद) ने एक सुविचारित निर्णय के द्वारा पिटीशनरों की दलीलों को नामंजूर कर दिया और रिट पिटीशन को खारिज कर दिया। मैसर्स अप्सरा थियेटर ने जिसका प्रतिनिधित्व कृष्ण कुमार ने किया है, लैटर्स पेटेंट अपील (1981 की लैटर्स अपील सं० 1) विद्वान् एकल न्यायाधीश के निर्णय के विरुद्ध फाइल की। उस अपील की सुनवाई खण्ड न्यायापीठ द्वारा की गई जिसमें कार्यकारी मुख्य न्यायमूर्ति मुफती बहाउद्दीन कारुकी और न्यायमूर्ति मीर थे। तथापि, दो विद्वान् न्यायाधीशों वाली खंड न्यायापीठ विभिन्न निष्कर्षों पर पहुंची। न्यायमूर्ति मीर विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा अभिव्यक्त दृष्टिकोण से सहमत थे कि जिला मजिस्ट्रेट ने आक्षेपित आदेश पारित करने में पूर्णतया विधि के अनुसरण में कार्य किया और कि रिट पिटीशन गुणहीन थी। किन्तु कार्यकारी मुख्य न्यायमूर्ति का यह दृष्टिकोण था कि जब कि अनुज्ञप्ति प्राप्त परिसर जिसमें प्रयुक्त चलचित्र यन्त्र भी सम्मिलित थे, भागीदारी से सम्बन्धित थी और भागीदार में से एक ने अपने पृथक नाम में अनुज्ञप्ति अभिप्राप्त कर ली थी अन्य भागीदार स्वतः अनुज्ञप्ति में हित अर्जित कर चुके थे। आगे कार्यकारी मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अनुज्ञप्ति का प्रभाव यह था कि "यह उस में प्रयुक्त चलचित्र यन्त्र के भवन का विशेषाधिकार पैदा करता है और विशेषाधिकार आवश्यक रूप से ऐसे भवन में और चलचित्र यन्त्र में हक का अनुसरण करता है।" इस तर्क में उनके द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया था कि वादी फर्म को

Agamnigam Digital P

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अनुज्ञप्ति में विधिक अधिकार प्राप्त था जो उसे अधिनियम के अधीन अनुज्ञप्ति को निलम्बित करने से पूर्व नोटिस और सुनवाई का हकदार बनाता है और चूंकि उक्त प्रक्रिया का जिला मजिस्ट्रेट ने अनुसरण नहीं किया था आक्षेपित आदेश शून्य था और नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के अतिक्रमण में था। विद्वान् कार्यकारी मुख्य न्यायमूर्ति ने आगे यह दृष्टिकोण अभिव्यक्त किया कि अधिनियम की धारा 6 (च) में सन्निविष्ट प्रतिसंहरण की शक्ति के सिवाय ही और ऐसे प्रतिसंहरण के लिए कार्यवाहियों के लम्बित रहने के दौरान अनुज्ञप्ति के निलम्बन की विवक्षित शक्ति के सिवाय जिला मजिस्ट्रेट को किन्हीं भी परिस्थितियों के अधीन थियेटर की अनुज्ञप्ति को निलम्बित ने की अधिकारिता या शक्ति प्राप्त नहीं थी। इसलिए नैसर्गिक न्याय के प्रश्न से बिल्कुल भिन्न आक्षेपित आदेश कार्यकारी मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा इस आधार पर भी अधिकारिता के बिना पारित किया गया अभिनिर्धारित किया गया था।

10. दो विद्वान न्यायाधीशों के बीच मतांतर के दृष्टिकोण से लैटर्स पेटेंट अपील जम्मू एण्ड कश्मीर हाई कोर्ट रूल्स, 1975 के नियम 23(2) के अधीन न्यायाधीश कोतवाल को निर्दिष्ट की गई। इस प्रक्रम पर इस बात का उल्लेख किया जा सकता है कि उस समय उच्च न्यायालय केवल चार न्यायाधीशों की संख्या के साथ काम कर रहा था और उस में विद्वान न्यायाधीश, जिसने कि पिटीशन को सुना था और खण्ड न्यायपीठ के दो सदस्य—कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश और वह न्यायाधीश जो उस खण्ड न्यायपीठ में थे, जिन्होंने कि लैटर्स पेटेंट अपील सुनी थी, उस में सम्मिलित नहीं थे। न्यायाधीश कोतवाल उच्च न्यायालय में एकमात्र ऐसे न्यायाधीश थे जो उस समय उपलब्ध थे। दुर्भाग्य से न्यायाधीश कोतवाल ने इस आधार पर अपील को सुनने में अपनी असमर्थता अभिव्यक्त की कि एक प्रक्रम पर वह सारतः उसी मामले के सम्बन्ध में पक्षकारों के बीच पूर्व मुकदमेबाजी के क्रम में मैसर्स अप्सरा थियेटर की ओर से अधिवक्ता के रूप में हाजिर हुआ था। परिणामस्वरूप नियम 23(2) द्वारा यथा अनुध्यात मुख्य न्यायाधीश द्वारा पदनामित तृतीय न्यायाधीश द्वारा लैटर्स पेटेंट अपील की सुनवाई किया जाना असम्भव हो गया इसलिए मामले को खण्ड न्यायपीठ के समक्ष, जिसमें कार्यकारी मुख्य न्यायमूर्ति और न्यायाधीश मीर थे, इस प्रश्न पर विचार करने के लिए 1981 की सिविल प्रकीर्ण पिटीशन सं० 451 के रूप में रखा गया कि प्रक्रिया का कौन सा नियम लागू होता है। विद्वान न्यायाधीशों ने यह दृष्टिकोण अपनाया कि जम्मू एण्ड कश्मीर हाई कोर्ट रूल्स, 1975 का

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नियम 23 स्पष्टतया ऐसी स्थिति में लागू होता है जो उनके समक्ष पैदा हुई है। नियम 23 निम्नलिखित शब्दों में है—

"23 (1) न्यायालय की किसी न्यायपीठ में सम्मिलित न्यायाधीशों के मतभेद होने की दशा में न्यायाधीशों की बहुमत की राय के अनुसार विनिश्चय होगा।

(2) यदि न्यायपीठ में सम्मिलित न्यायाधीश किसी प्रश्न पर समान रूप से विभाजित हैं तो वे उस बात का कथन करेंगे जिस पर मतभेद है और तब उस प्रश्न पर मामला मुख्य न्यायाधीश द्वारा उस प्रयोजन के लिए पदनामित अन्य एक या अधिक न्यायाधीशों द्वारा सुना जाएगा और ऐसी बात का विनिश्चय न्यायाधीशों के बहुमत (यदि कोई हो) की राय के अनुसार होगा जिन्होंने (उन न्यायाधीशों सहित जिन्होंने पहले इसकी सुनवाई की थी) मामले को सुना था।

(3) यदि ऐसा कोई बहुमत नहीं है तो डिक्री से अपील के मामले को छोड़कर जहां कि ऐसी डिक्री पुष्ट की जाएगी विनिश्चय वरिष्ठ न्यायाधीश विनिश्चय के अनुसार होगा।"

खण्ड न्यायपीठ की राय में प्रस्तुत मामला नियम 23 के उपनियम (3) के

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

"23(1) In the event of a difference of opinion among the judges composing any bench of the court, the decision shall be in accordance with the opinion of the majority of the Judges.

(2) If the judges composing the bench are equally divided on any point, they shall state the point upon which they differ and the case shall then be heard upon that point by one or more of the other judges designated for the purpose by the Chief Justice and such point shall be decided according to the opinion of the majority (if any) of the judges who have heard the case (including those who first heard it),

(3) If there is no such majority, then the decision shall be in accordance with the decision of the senior Judge except in the case of any appeal from a decree where such decree shall be confirmed."

Agamnigam Digital P

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भीतर आता है और परिणामस्वरूप मामले में विनिश्चय को वरिष्ठ न्यायाधीश की राय के अनुसार करना होगा। तदनुसार खण्ड न्यायपीठ ने 1981 की सिविल प्रकीर्ण पिटीशन सं० 454 में आदेश पारित किया कि लैटर्स पेटेंट अपील कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश द्वारा उनके निर्णय में दिए गए दृष्टिकोण के अनुसार मंजूर की जाती है। इसके परिणामस्वरूप अत्यधिक असंगत स्थिति पैदा हो गई कि चूंकि समान रूप से उच्च न्यायालय के दो न्यायाधीश अर्थात् न्यायाधीश आनन्द और न्यायाधीश मीर द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण के विरुद्ध कार्यकारी मुख्य न्यायमूर्ति की राय जो वास्तव में बहुमत का दृष्टिकोण था इस कारण के आधार पर अभिभावी होने के लिए अनुज्ञात कर दी गई थी कि मामला नियम 23 के उपनियम (3) के भीतर आता है।

11. उच्च न्यायालय के विनिश्चय से व्यथित हो कर वेद गुप्त ने इस न्यायालय से विशेष इजाजत अभिप्राप्त करने के पश्चात् ये अपीलें फाइल की हैं। 1981 की सिविल अपील सं० 2611 विद्वान कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश के विनिश्चय के विरुद्ध निदिष्ट हैं जिसे लैटर्स पेटेंट अपील में अन्तिम निर्णय मान लिया गया है और 1981 की सिविल अपील सं० 2611ए 1981 की सिविल प्रकीर्ण पिटीशन सं० 454 के मामले में खण्ड न्यायपीठ द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध की गई है।

12. 1981 की सिविल प्रकीर्ण पिटीशन सं० 454 में उठाया गया एकमात्र प्रश्न ऊपर उपदर्शित प्रकार से लैटर्स पेटेंट अपील को अनुज्ञात करने में उच्च न्यायालय द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया की विधिमान्यता और सत्यता के बारे में है।

13. यद्यपि हमें प्रस्तुत मामले में नियम 23(3) के लागू होने के सम्बन्ध में उच्च न्यायालय की खण्ड न्यायपीठ द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण की सत्यता के बारे में गम्भीर सन्देह है हम यह नहीं समझते कि हमें गहराई से इस प्रश्न की परीक्षा करने के लिए कहा गया है या इस पर या इस मामले में मामले के गुणागुण पर हमारे द्वारा दिए गए इस निष्कर्ष के दृष्टिकोण से अपना निष्कर्ष घोषित करने के लिए कहा गया है कि इन बातों पर विद्वान कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश द्वारा अभिलिखित विनिश्चय जो लैटर्स पेटेंट अपील में विनिश्चय से उद्भूत हुआ है विधिमान्य रूप से प्रमाणित नहीं किया जा सकता और कि खण्ड न्यायपीठ द्वारा रिट पिटीशन को खारिज करते हुए विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय में हस्तक्षेप करने की कोई अधिकारिता नहीं है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

14. विद्वान कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश के निर्णय में उन्होंने इस प्रश्न पर विचार के सम्बन्ध में विस्तृत रूप से विचार करने के लिए मामले के गुणागुण पर चर्चा शुरू की कि क्या अप्सरा थियेटर के सम्बन्ध में अनुज्ञप्ति श्री वेद गुप्त को उसकी व्यष्टिक हैसियत में अनुदत्त की गई है या भागीदारी के प्रतिनिधि के रूप में। मामले पर यह दृष्टिकोण अपनाते हुए विद्वान कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश ने गलती से कुछ निर्णायक तथ्यों को छोड़ दिया जो विवाद्यक को स्थिर करते हैं। स्वीकृत रूप से, अप्सरा थियेटर के सम्बन्ध में अनुज्ञप्ति जिला मजिस्ट्रेट द्वारा श्री वेद गुप्त के एकमात्र नाम में अनुदत्त की थी और अनुज्ञप्ति के दस्तावेज के सुसंगत कालमों में वेद गुप्त को अनुज्ञप्तिधारी दर्शाया गया और फर्म या उसके भागीदारों का कोई उल्लेख नहीं है। इस घोषणा के लिए अनुज्ञप्ति फर्म की सम्पत्ति थी और उसके नाम को तथा टोडरमल के नाम को संयुक्त अनुज्ञप्तिधारियों के रूप में उक्त अनुज्ञप्ति में जोड दिया जाए श्री कृष्ण कुमार द्वारा फाइल आवेदन को जिला मजिस्ट्रेट द्वारा 29 दिसम्बर, 1977 के उसके आदेश द्वारा रद्द कर दिया गया था। उक्त आदेश में स्पष्ट रूप से यह घोषणा कर दी गई थी कि वेद गुप्त एकमात्र अनुज्ञप्तिधारी है और मात्र यह तथ्य कि भागीदारी सिनेमा कारबार को चलाने के लिए की गई थी उसका यह अर्थ नहीं है कि फर्म अनुज्ञप्तिधारी थी। जिला मजिस्ट्रेट के आदेश के विरुद्ध टोडर मल द्वारा की गई अपील 26 अप्रैल, 1978 को राज्य सरकार के सम्बन्धित मन्त्री द्वारा खारिज कर दी गई थी। कृष्ण कुमार को उस अपील में पक्षकार-प्रत्यर्थी के रूप में सहयोजित किया गया था। उक्त आदेशों की वैधता को जम्मू कश्मीर उच्च न्यायालय के समक्ष 1978 की रिट पिटीशन सं० 74, जो टोडर मल द्वारा फाइल की गई थी, चुनौती दी गई। जिला मजिस्ट्रेट और राज्य सरकार जिनके आदेशों को अभिखण्डित करने की मांग की गई थी इस रिट पिटीशन में मुख्य प्रत्यर्थी थे। उस रिट पिटीशन को 9 मई, 1978 को उच्च न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया था। 1978 की विशेष इजाजत पिटीशन सं० 3490 को जो उच्च न्यायालय के उसकी रिट पिटीशन को खारिज करने वाले आदेश के विरुद्ध टोडर मल द्वारा फाइल की गई थी इस न्यायालय ने 13 नवम्बर, 1978 को नामंजूर कर दिया था। कृष्ण कुमार उच्च न्यायालय में तथा इस न्यायालय में विशेष इजाजत पिटीशन में एक पक्षकार था। जिला मजिस्ट्रेट द्वारा की गई यह घोषणा कि वेद गुप्त एकमात्र अनुज्ञप्तिधारी था और कृष्ण कुमार या फर्म को थियेटर के अनुज्ञप्तिधारियों के रूप में नहीं माना जा सकता इस प्रकार से अन्तिम बन चुकी थी।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

15. विशेष इजाजत पिटीशन के इस न्यायालय द्वारा खारिज किए जाने के बाद कृष्ण कुमार ने 19 अप्रैल, 1979 को अप्सरा थियेटर फर्म के नाम अनुज्ञप्ति के नवीकरण के लिए जिला मजिस्ट्रेट को एक आवेदन दिया। उस आवेदन को जिला मजिस्ट्रेट ने अपने 21 अप्रैल, 1979 के आदेश के द्वारा खारिज कर दिया कि नवीकरण मूल अनुज्ञप्तिधारी से भिन्न किसी अन्य पक्षकार के नाम में नहीं किया जा सकता जब कि मूल अनुज्ञप्तिधारी द्वारा अनुज्ञप्ति प्राधिकारी की मंजूरी से किसी अन्य व्यक्ति के पक्ष में अन्तरण नहीं कर दिया जाता। कृष्ण कुमार द्वारा जिला मजिस्ट्रेट द्वारा पारित उक्त आदेश को चुनौती देने के लिए कोई कदम नहीं उठाए गए थे।

16. ऊपर वर्णित तथ्यों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि गलती से या सही रूप से अनुज्ञप्ति प्राधिकारी ने अप्सरा थियेटर के संबंध में अनुज्ञप्ति वेद गुप्त को उसे एकमात्र अनुज्ञप्तिधारी समझते हुए अनुदत्त कर दी थी। अनुज्ञप्ति प्राधिकारी के आदेश को राज्य सरकार द्वारा अपील में पुष्ट कर दिया गया था। जिला मजिस्ट्रेट द्वारा टोडर मल द्वारा अनुज्ञप्ति में उसके तथा कृष्ण कुमार के नामों को सम्मिलित करने की मनाही के विरुद्ध चुनौती को उच्च न्यायालय ने तथा इस न्यायालय ने रद्द कर दिया था। बाद में अनुज्ञप्ति का नवीकरण फर्म के नाम में नवीकरण अनुदत्त करने के लिए फर्म के प्रतिनिधि के रूप में कृष्ण कुमार के अनुरोध को नामंजूर करने के पश्चात् वेद गुप्त को अनुज्ञप्ति का नवीकरण कर दिया गया था। इसलिए तथ्यात्मक स्थिति यह थी कि जिला मजिस्ट्रेट द्वारा अप्सरा थियेटर के पक्ष में अनुदत्त अनुज्ञप्ति वेद गुप्त के पक्ष में उसकी व्यष्टिक हैसियत में थी और केवल वह ही अनुज्ञप्तिधारी था। मामला इस प्रकार से होने के कारण हम इस बात का अधिमूल्यन करने में असमर्थ हैं कि कार्यकारी विद्वान् मुख्य न्यायाधीश ने क्यों अपने निर्णय का काफी भाग उपरोक्त प्रश्न पर चर्चा में लगाया कि क्या अनुज्ञप्ति केवल वेद गुप्त से ही सम्बन्धित थी या क्या यह फर्म की संपत्ति थी। मामले के पूर्वगामी तथ्यात्मक इतिहास के दृष्टिकोण से विधि में फर्म की ओर से दी जा रही ऐसी किसी दलील का सामना करने के लिए कोई गुंजाइश नहीं थी कि वेद गुप्त ने अनुज्ञप्ति को अभिप्राप्त किया था और वह उसे भागीदारी के लिए और भागीदारी की ओर से धारण किए हुए था। ऐसी कार्यवाहियों में जिसमें कि अनुज्ञप्ति प्राधिकारी एक पक्षकार था उच्च न्यायालय तथा इस न्यायालय ने अपने आदेशों को यह अभिनिर्धारित करते हुए पुष्ट किया कि वेद गुप्त एकमात्र अनुज्ञप्तिधारी था और फर्म की ओर से पेश किया गया मामला नामंजूर कर दिया और फर्म और उसके भागीदार

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उस विनिश्चय से आवद्ध थे। इस दृष्टिकोण से हम अपने निष्कर्ष के समर्थन में विद्वान् कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश द्वारा दिए गए कारणों पर चर्चा करना पूर्णतया अनावश्यक समझते हैं कि अनुज्ञप्ति वेद गुप्त को भागीदारी का प्रतिनिधित्व करने के रूप में व्यक्तिगत हैसियत में दी गई थी। यह कहना काफी है कि यह कारण हमें सही और चलने योग्य नहीं लगते।

17. हम विद्वान् कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश द्वारा अभिव्यक्त इस दृष्टिकोण को भी सही मानने में असमर्थ हैं कि अधिनियम के अधीन अनुज्ञप्ति चलचित्र यन्त्र के लिए, स्वामी/प्रबन्धक के नाम में चलचित्र प्रदर्शन के लिए अस्थायी रूप से सामान से युक्त परिसर के लिए अनुदत्त की गई थी जो उस परिसर में प्रयोग किया जा रहा था और इसलिए आवश्यक रूप से यह पता चलता है कि जब कि उसमें प्रयुक्त चलचित्र यन्त्र सहित अनुज्ञप्ति प्राप्त परिसर भागीदारी से संबंधित थे और भागीदारों में से एक ने अपने पृथक् नाम में अनुज्ञप्ति अभिप्राप्त कर ली थी तो अन्य भागीदार स्वतः ही अनुज्ञप्ति में हित अर्जित कर लेते हैं और कि अनुज्ञप्ति प्राधिकारी द्वारा अनुदत्त विशेषाधिकार "आवश्यक रूप से ऐसे भवन और चलचित्र संयंत्र में हक का अनुसरण करते हैं।" अधिनियम और नियमों के सुसंगत उपबन्धों की परीक्षा संदेह से परे यह दर्शाती है कि उनमें "स्थान के सम्बन्ध में किसी व्यक्तिगत अनुज्ञप्ति के अनुदत्त करने का अनुध्यान है जहां कि चलचित्र यन्त्र लगाए हैं।" नियमों और अनुज्ञप्ति की शर्तों और निबन्धनों के अधीन उसका प्राप्तिकर्ता ऐसा व्यक्ति है जो बाध्यताओं और शर्तों के भंग के लिए अनुज्ञप्ति प्राधिकारी के लिए जवाबदेह है और वह अधिनियम और नियमों के उपबन्धों के उल्लंघन के लिए दंडनीय भी है। हमारी यह राय है कि अधिनियम और नियमों और स्वयं अनुज्ञप्ति में स्पष्ट शर्तों में अन्तर्विष्ट उपबन्धों के पठन पर अपीलाधीन निर्णय में अभिव्यक्त दृष्टिकोण को कायम रखना असंभव है कि अनुज्ञप्ति परिसर के लिए अनुदत्त की गई थी और परिसर से संलग्न हित गठित करती है। वास्तविक संपत्ति विधि के विषय में अनुज्ञप्ति के साथ विद्वान् कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश द्वारा की गई समानता अधिनियम के अधीन अनुदत्त अनुज्ञप्ति के लिए व्यर्थ प्रयोग है और सभी तरह से एक पूर्णतया भिन्न धारणा है। इसलिए आक्षेपित निर्णय में अभिव्यक्त दृष्टिकोण को पुष्ट करना संभव नहीं है कि "अनुज्ञप्ति का प्रभाव यह है कि यह भवन को और उसमें प्रयुक्त चलचित्र यन्त्र को विशेषाधिकार देती है।" विद्वान् कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश द्वारा उसके द्वारा अभिव्यक्त उपरोक्त दृष्टिकोण का समर्थन देने के लिए धारा 6(च) का अवलम्ब लिया है। वह धारा

Agamnigam Digital Preservation F

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

निम्नलिखित शब्दों में है—

*"6(च)—अनुज्ञप्ति प्रतिसंहृत करने की शक्ति—जहां कि किसी अनुज्ञप्ति का धारक या चलचित्र की का प्रभारी या उसका प्रबन्धतन्त्र या स्वामी या उसका भागीदार या उसका कोई कर्मचारी इस अधिनियम की धारा 6 या धारा 6(ङ) या जम्मू एण्ड कश्मीर एंटरटेनमेंट्स ड्यूटी ऐक्ट, 1959 की धारा 15 के अधीन किसी अपराध से दोषसिद्ध किया जाता है तो अनुज्ञप्ति प्राधिकारी द्वारा अनुज्ञप्ति प्रतिसंहृत की जा सकेगी।"

इस धारा को सतर्कतापूर्वक पढ़ने से यह दिखाई देता है कि विद्वान् कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण का समर्थन करने के अलावा यह उपबन्ध यह दर्शाता है कि अनुज्ञप्ति का धारक ऐसा व्यक्ति हो सकता है जो चलचित्र यन्त्र के स्वामी से भिन्न या चलचित्र की का भागीदार हो सकता है। इस धारा का उद्देश्य और प्रयोजन स्पष्टतया अनुज्ञप्ति प्राधिकारी को अधिनियम की धारा 6 या धारा 6(ङ) के अधीन न केवल अनुज्ञप्तिधारी द्वारा अपितु ऐसे अन्य किसी व्यक्ति द्वारा भी जो चलचित्र यंत्र का वास्तविक प्रभारी या चलचित्र यंत्र का प्रबन्धतंत्र हो, अपराध करने की दशा में प्रतिसंहृत करने के लिए सशक्त करती है। दूसरे शब्दों में अनुज्ञप्ति न केवल उस समय प्रतिसंहृत की जा सकती है जब कि अनुज्ञप्तिधारी अधिनियम की धारा 6 या धारा 6(ङ) के अधीन किसी अपराध के लिए दोषसिद्ध किया जाता है अपितु किसी व्यक्ति के ऐसे अपराध की दोषसिद्धि की दशा में भी जो उसमें उपवर्णित अनुज्ञप्तिधारी से भिन्न अन्य व्यक्तियों की श्रेणी से संबंधित हो। धारा के उपबन्धों में यह स्पष्ट उपदर्शन है कि अनुज्ञप्ति का धारक (अनुज्ञप्तिधारी) चलचित्र के स्वामी या प्रबन्धक या भागीदार से भिन्न कोई अन्य व्यक्ति भी हो सकता है।

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

"6F Power to revoke licence—Where the holder of a licence or a person in charge of a cinematography, or management thereof or an owner or partner thereof or an employee there of, has been convicted of an offence under Section 6 or Section 6-E of this Act or under Section 15 of the Jammu and Kashmir Entertainments Duty Act, 1959, the licence may be revoked by the licensing authority."

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

18. पूर्णगामी चर्चा के दृष्टिकोण से हमें यह अभिनिर्धारित करने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा अभिव्यक्त दृष्टिकोण से वेद गुप्त ही एकमात्र अनुज्ञप्तिधारी था और कि फर्म का अनुज्ञप्ति में कोई हित नहीं है पूर्णतया सही और उचित था और विद्वान् कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश द्वारा अपनाया गया प्रतिकूल दृष्टिकोण गलत है।

19. जिला मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश को अभिखंडित करने के लिए आक्षेपित निर्णय में कथित अगला आधार यह है कि उक्त आदेश नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का अतिक्रमण था जहां तक कि आदेश पारित करने से पूर्व भागीदारी फर्म को कोई नोटिस नहीं दिया गया था या सुनवाई नहीं की गई थी। यह निष्कर्ष यदि पूर्णतया नहीं तो विस्तृत रूप से इस आधार वाक्य पर आधारित है कि भागीदारों की फर्म, "अनुज्ञप्ति में अधिकार और हित" प्राप्त करती है और कि "अनुज्ञप्ति के प्रतिसंहरण या निलम्बन ने मालिकाना और कारबारी हितों को गम्भीर रूप से प्रभावित किया है।" हमने पहले ही अपना निष्कर्ष अभिलिखित कर दिया है कि वेद गुप्त थियेटर के सम्बन्ध में एकमात्र अनुज्ञप्तिधारी था और कि भागीदार फर्म को या तो अनुज्ञप्तिधारी या ऐसी व्यक्ति नहीं माना जा सकता जिनका अनुज्ञप्ति में कोई हित हो। इसलिए यह बात स्पष्ट हो जाती है कि यह मूल आधार-वाक्य जिस पर कि विद्वान् कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश ने अपने तर्क को आधारित किया है सही और उचित होने के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। जब कि फर्म और भागीदार कारबार के लाभों में हिस्सा लेने के अधिकारी हैं जो वेद गुप्त को जारी की गई अनुज्ञप्ति के बल पर थियेटर में हो, उन्हें अनुज्ञप्ति में कोई हक या हित प्राप्त नहीं है जो वेद गुप्त को उसकी व्यक्तिगत और व्यष्टिक हैसियत में अनुदत्त की गई थी। इस संबंध में नियम 88(v) निर्दिष्ट करना सुसंगत है। वह नियम इस प्रकार पठित है—

*"88 (V) अनुज्ञप्ति अनुज्ञप्ति प्राधिकारी की अनुज्ञा के बिना, अनुज्ञप्ति को या अनुज्ञप्ति के स्थान को या चलचित्र यन्त्र को हस्तांतरित नहीं कर सकेगा, उप-पट्टे पर नहीं देस केगा, न ही

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

"88(v) The licensee shall not, without the permission of the licensing authority, assign, sublet or otherwise transfer the licence or the lincesed place if the

Agamnigam Digital Preservation F

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अनुज्ञप्तिधारी यथा उपरोक्त अनुज्ञा के बिना किसी अन्य व्यक्ति को अनुज्ञप्ति के प्रचालन काल की कालावधि के दौरान अनुज्ञप्ति के स्थान में फिल्म को प्रदर्शित करने की इजाजत देगा।"

वेद गुप्त को (नियमों के अधीन विहित पुरुष "क" में) जारी की गई अनुज्ञप्ति का खंड 11 समान भाषा में नियम 88 (V) में अन्तर्विष्ट ऊपर उल्लिखित उपबन्ध को शर्तों में से एक शर्त के रूप में निगमित है जिसके अधीन अनुज्ञप्ति अनुदत्त की गई थी। इस प्रकार से अनुज्ञप्ति प्राधिकारी की अनुज्ञा के बिना अनुज्ञप्ति को अन्तरित करने, हस्तांरित करने, उप-पट्टे पर देने अथवा अन्यथा अंतरित करने के बारे में अनुज्ञप्तिधारी के विरुद्ध स्पष्ट प्रतिषेध है तथा उसे किसी अन्य व्यक्ति को अनुज्ञप्ति प्राप्त स्थान में ऐसी अनुज्ञा प्राप्त किए बिना फिल्मों को प्रदर्शित करने के अनुज्ञात करने के विरुद्ध भी प्रतिषेध है। इस प्रकार से थियेटर में चलचित्र फिल्मों का प्रदर्शन करने का अधिकार एकमात्र अनुज्ञप्तिधारी वेद गुप्त से विहित था। अब इस बात पर ध्यान देना सुसंगत है कि इस मामले में जो कुछ हुआ है वह यह है कि 11 अन्य व्यक्तियों के साथ कृष्ण कुमार द्वारा फाइल वाद में वेद गुप्त को वादियों द्वारा थियेटर को चलाने में किसी प्रकार से हस्तक्षेप करने से रोकते हुए 23 सितम्बर, 1980 को एक अस्थायी व्यादेश का आदेश जारी किया गया था। आदेश का प्रभाव यह हुआ कि वेद गुप्त के पास थियेटर परिसरों या चलचित्र यन्त्र उपस्कर पर जो उस में अधिष्ठापित किए थे, इस तथ्य के बावजूद कोई कब्जा अथवा नियन्त्रण नहीं रहा था कि वह नियमों में और अनुज्ञप्ति में संलग्न शर्तों में अन्तर्विष्ट बाध्यताओं के सम्यक् निर्वहन के लिए कानून के अधीन प्राधिकारियों के प्रति उत्तरदायी अनुज्ञप्तिधारी था। अब बोधगम्य रूप से वेद गुप्त ने अस्थायी व्यादेश के आदेश की प्राप्ति जिला मजिस्ट्रेट को 24 सितम्बर, 1980 के अपने पत्र के द्वारा यह सूचित किया कि अस्थायी व्यादेश के परिणामस्वरूप उसके लिए तत्समय उक्त पत्र की तारीख से सिनेमा अनुज्ञप्ति को प्रवृत्त करना असंभव हो गया है और उसे थियेटर के अनुज्ञप्तिधारी की हैसियत में उस दशा में जब कि सिनेमा परिसर में किसी अन्य व्यक्ति द्वारा किए जाने वाले किसी अवैध कार्य या अपराध के किए जाने के कारण विधि में किसी अन्य कार्यवाही से या अभियोजन के लिए किसी दायित्व से उसे विमुक्त किया जाए।

---

cinematograph nor shall the licencee, without permission as aforesaid, allow any other person during the period of currancy of the licence of the licence to exhibit the films in the licensed place."

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

26 दिसम्बर, 1980 को पुलिस अधीक्षक जम्मू ने जिला मजिस्ट्रेट को यह सूचित किया कि अप्सरा थियेटर में सिनेमा का प्रदर्शन अनुज्ञप्तिधारी से भिन्न किन्हीं अन्य व्यक्तियों द्वारा किया जा रहा है और इसलिए अनुज्ञप्ति-धारी का उसने अधिनियम की धारा 6 के अधीन चालान कर दिया है। जिला मजिस्ट्रेट को उक्त पत्र के द्वारा यह अनुरोध किया गया था कि पक्षकारों में से किसी के पक्ष में न्यायालय द्वारा किए गए अन्तिम विनिश्चय तक सिनेमा में फिल्मों के प्रदर्शन को लम्बित करने का आदेश पारित किया जाए। इन बातों के संदर्भ में जिला मजिस्ट्रेट ने 26 सितम्बर, 1980 का आक्षेपित आदेश पारित किया। जिला मजिस्ट्रेट के आदेश का मात्र पठन यह दर्शाने के लिए पर्याप्त है कि उसके अधीन जो कुछ किया गया था वह थियेटर के सम्बन्ध में अनुदत्त अनुज्ञप्ति को अस्थायी रूप से भी निलम्बित या प्रतिसंहृत करना नहीं था। जिला मजिस्ट्रेट द्वारा जो कुछ किया गया था वह केवल अप्सरा थियेटर में ऐसे व्यक्तियों द्वारा जो अनुज्ञप्तिधारी नहीं है और जिन्हें विधि में फिल्मों के प्रदर्शन को करने का कोई प्राधिकार नहीं था अप्सरा थियेटर में चलचित्र के प्रदर्शन को निलम्बित करना ही था। वेद गुप्त के थियेटर के सम्बन्ध में जारी की गई अनुज्ञप्ति का निलम्बन नहीं हुआ था, इसलिए विद्वान् कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश द्वारा की गई यह उपधारणा कि यह थियेटर के लिए जारी की गई अनुज्ञप्ति का अस्थायी रूप से निलम्बन था स्पष्ट रूप से गलत है। भागीदारों की फर्म को अनुज्ञप्ति के बिना थियेटर में चलचित्र प्रदर्शित करने का किसी प्रकार का कोई अधिकार नहीं था। यदि अनुज्ञप्तिधारी वेद गुप्त को भागीदारी से निकाल दिया गया था तो फर्म के द्वारा और इसके भागीदारों द्वारा अंगीकृत समुचित क्रम यह होता कि वे अनुज्ञप्ति अनुदत्त करने के लिए और ऐसी अनुज्ञप्ति प्राप्त करने के पश्चात् ही थियेटर को चलाने के लिए प्राधिकारियों तक पहुंच करते जहां तक कि उनके पास कोई अनुज्ञप्ति नहीं थी—हम पहले ही देख चुके हैं कि अनुज्ञप्ति केवल वेद गुप्त को उसकी व्यष्टिक और व्यक्तिगत हैसियत में न कि फर्म के प्रतिनिधि के रूप में अनुदत्त की गई थी—फर्म और भागीदार सिनेमा को चलाने का किसी प्रकार का विधिक अधिकार नहीं रखते थे। उनके द्वारा इस प्रकार का प्रवर्तन अधिनियम और नियमों के सुसंगत उपबन्धों में सन्निविष्ट विधि का स्पष्ट उल्लंघन होता। जिला मजिस्ट्रेट का यह स्पष्ट कर्त्तव्य था जैसे कि वे कानूनी प्राधिकारी थे और अधिनियम के उपबन्धों को प्रवृत्त करने के लिए प्रभारित थे कि वे इस बात को सुनिश्चित करते कि फिल्मों का प्रदर्शन विधि के अतिक्रमण में अप्राधिकृत व्यक्तियों द्वारा थियेटर में न किया जाता।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आक्षेपित आदेश स्पष्टतया ऐसा आदेश है जो उनके द्वारा उक्त कर्त्तव्य के निर्वहन में पारित किया गया था। फर्म या उसके भागीदारों का किसी प्रकार का कोई विधिक अधिकार या उचित प्रत्याशा जिला मजिस्ट्रेट द्वारा पारित उक्त आदेश द्वारा प्रभावित नहीं हुई थी। उसका एकमात्र कारण यह था कि किसी भी व्यक्ति को अनुज्ञप्तिधारी या उसके प्राधिकृत प्रतिनिधि से भिन्न किसी अन्य व्यक्ति द्वारा सार्वजनिक रूप से फिल्मों के प्रदर्शन को प्रतिषिद्ध करने वाले किसी कानून के उपबन्धों के उल्लंघन का अधिकार रखने की मान्यता नहीं दी जा सकती। ऐसी स्थिति में नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत लागू नहीं होते और जिला मजिस्ट्रेट की ओर से फर्म या उसके भागीदारों को आक्षेपित आदेश पारित करने से पूर्व नोटिस या सुनवाई का अवसर देने की कोई बाध्यता नहीं थी। वस्तुतः यदि अनुज्ञप्तिधारी को नोटिस दिए बिना अनुज्ञप्ति का अस्थायी निलम्बन भी होता तो मामला बिल्कुल भिन्न होता। तथापि, जैसा कि हम पहले स्पष्ट कर चुके हैं, यह अनुज्ञप्ति के निलम्बन का मामला नहीं है और न्यायालय के समक्ष परिवादी अनुज्ञप्तिधारी नहीं है उच्च न्यायालय के समक्ष पिटीशन फर्म के कुछ भागीदार थे जो अधिनियम और नियमों के उपबन्धों के उल्लंघन में अनुज्ञप्ति के बिना थियेटर को चलाना चाहते थे। जिला मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आक्षेपित आदेश के बारे में जिसमें थियेटर में सिनेमा शो के निलम्बन का निदेश दिया गया था यह नहीं कहा जा सकता कि उससे रिट पिटीशनरों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। उन्हें थियेटर में विधि के उल्लंघन में अनुज्ञप्ति के बिना कोई सिनेमा शो चलाने का किसी प्रकार का कोई विधिक अधिकार नहीं था। रिट पिटीशनरों को इस प्रकार की कोई उचित प्रत्याशा भी नहीं थी कि उन्हें विधि के अतिक्रमण में अनुज्ञप्ति के बिना थियेटर को चलाने के लिए अनुज्ञात किया जाएगा। पिटीशनरों को किसी विधिक अधिकार या उचित प्रत्याशा के न होने की दशा में जिला मजिस्ट्रेट की ओर से ऐसी कोई बाध्यता नहीं थी कि वह आक्षेपित आदेश पारित करने से पूर्व उनकी सुनवाई करता। इसलिए हम उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए इस दृष्टिकोण को पुष्ट करने में असमर्थ हैं कि आक्षेपित आदेश नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का अतिक्रामी था।

20. उच्च न्यायालय द्वारा जिला मजिस्ट्रेट के आदेश को अभिखंडित करने के लिए दिया गया एकमात्र अन्य कारण यह है कि जिला मजिस्ट्रेट को अधिनियम या नियमों के अधीन ऐसी कोई शक्ति प्राप्त नहीं थी कि वह ऐसा आदेश करता। यह निष्कर्ष भी फिर मिथ्या धारणा पर आधारित है

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कि जिला मजिस्ट्रेट द्वारा आक्षेपित आदेश के अधीन जो कुछ किया गया था वह अनुज्ञप्ति को निलम्बित करना था। उस आधारवाक्य पर कार्यवाही करते हुए विद्वान कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश ने यह कहा है कि अधिनियम के उपबन्धों के अधीन अनुज्ञप्ति को निलम्बित करने की शक्ति केवल अधिनियम की धारा 6च द्वारा प्रदत्त है जैसा कि प्रतिसहरण की विस्तृत शक्ति में स्पष्ट है और जब तक कि उक्त धारा में उल्लिखित पुरोभाव्य शर्तें न हों अनुज्ञप्ति प्राधिकारी को अनुज्ञप्ति को निलम्बित करने की कोई अधिकारिता नहीं है। जैसा कि हमने सही ही मत व्यक्त किया है आक्षेपित आदेश थियेटर के सम्बन्ध में जारी की गई अनुज्ञप्ति को निलम्बित करना नहीं है। उसके अधीन जो कुछ किया गया था वह अनुज्ञप्तिधारियों से भिन्न व्यक्तियों द्वारा थियेटर में सिनेमा फिल्मों के प्रदर्शन को निलम्बित किया गया था। अनुज्ञप्ति के अनुदान द्वारा चलचित्र के प्रदर्शन के नियत्रण की शक्ति और अधिनियम और नियमों के उपबन्धों को प्रवृत्त करने और प्रशासन करने की शक्ति में स्पष्ट रूप से इस बात को सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक सभी कदम उठाने की शक्ति भी सम्मिलित है कि कानून, नियमों और अनुज्ञप्ति की शर्तों के सभी निर्बन्धनों का पालन किया जाए अन्यथा जब तक कि सिनेमा फिल्म का सार्वजनिक रूप से अनुज्ञप्तिधारी से भिन्न अन्य व्यक्तियों द्वारा प्रदर्शन किया जाएगा अधिनियम के अधीन सक्षम प्राधिकारी निसहाय दर्शक बना रहेगा। आक्षेपित आदेश स्पष्ट रूप से ऐसा आदेश है जो जिला मजिस्ट्रेट द्वारा अधिनियम और नियमों के उपबन्धों को प्रशासित करने के अपने कर्त्तव्य के प्रयोग में और कानून को सही रूप से प्रवृत्त करने के लिए आवश्यक आनुषंगिक सभी कदमों को उठाने की उपरोक्त विवक्षित शक्ति के प्रयोग में जिला मजिस्ट्रेट द्वारा पारित किया गया था। हमें यह समझ में नहीं आता कि किस प्रकार से मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में यह कहा जा सकता है कि जिला मजिस्ट्रेट को आक्षेपित आदेश पारित करने की कोई अधिकारिता नहीं थी।

21. यह बात इस प्रकार से स्पष्ट हो जाती है कि उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा विद्वान् एकल न्यायाधीश के निर्णय को उलटने के लिए रिट पिटीशन को खारिज करने के लिए बताए गए सभी आधार गलत हैं और विधि में चलने योग्य नहीं है। इसलिए इसी कारण हमने 11 नवम्बर, 1982 का आदेश पारित किया जिसमें 1981 की सिविल अपील सं० 2611 को मंजूर किया और खण्ड न्यायपीठ के निर्णय को अपास्त कर दिया।

Agamnigam Digital Preservation F

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

22. 1981 की सिविल अपील सं० 2611क जो 1981 की सिविल प्रकीर्ण पिटीशन सं० 454 के मामले में पारित आदेश के विरुद्ध निदिष्ट थी, गुणागुण पर खण्ड न्यायपीठ के निर्णय को अपास्त किए जाने के कारण हमारे दृष्टिकोण से व्यर्थ होने के रूप में निपटाई जाती है।

23. हम इस बात को स्पष्ट करते हैं कि अप्सरा थियेटर के सम्बन्ध में एक ओर श्री वेद गुप्त के और दूसरी ओर फर्म और उसके भागीदारों के परस्पर अधिकार और दावे सिविल वाद में जिसके बारे में यह कहा गया है कि वे लम्बित हैं, विनिश्चित किए जाने के लिए छोड़ दिए गए हैं।

अपील मंजूर की गई।

स०/

———

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वीरभान सिंह और एक अन्य
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य

(Virbhan Singh and Another
v.
State of Uttar Pradesh)

(12 अगस्त, 1983)

(न्यायाधिपति ई० एस० वेंकटरामय्या और वी० बालकृष्ण एराडी)

भारतीय दण्ड संहिता, 1860 (1860 का 45)—धारा 302—हत्या—मृतक पत्नी को अभागिन घोषित करके उससे छुटकारा पाने और दूसरा विवाह करने का आशय—पति और घरवालों द्वारा मृतक की पिटाई करके फांसी लगाना—चिकित्सा साक्ष्य के अनुसार आत्महत्या के लक्षण न पाए जाने—परिस्थितिजन्य साक्ष्य से यही निष्कर्ष निकलता है कि अभियुक्त ने मृतक की हत्या की है।

वीरभान के साथ मृतक का विवाह घटना के समय से लगभग 9 वर्ष पूर्व हुआ था। विवाह के लगभग 5-6 वर्ष तक भी कोई बच्चा पैदा नहीं हुआ। अभियोजन-पक्ष के कथन के अनुसार, मृतक का पति और उसके माता-पिता उसे इस कारण तंग करते थे और पीटते थे तथा वे कहते थे कि वे वीरभान सिंह का दूसरा विवाह करवा लेंगे। विवाह के 7 वें वर्ष में या उसके लगभग मृतक ने एक लड़के को जन्म दिया किन्तु वह लड़का लगभग 9 या 10 मास ही जीवि तरहा। तत्पश्चात् ऐसा कहा गया कि पति और, उसके माता-पिता के साथ फिर दुर्व्यवहार करना शुरू कर दिया। घटना से कुछ मास पूर्व मृतक ने एक दूसरे लड़के को जन्म दिया किन्तु वह बच्चा भी 6-7 दिन के भीतर मर गया। इससे मामला और बढ़ गया और मृतक को एक अभागिन स्त्री बताया गया जिसे आगे परिवार में नहीं रखा जा सकता। मृतक की बहिन अपनी बहन से मिलने के आशय से उसके घर गई किन्तु पति वीरभान सिंह और उसकी मां ने उससे कहा कि मृतक कुछ

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दवाइयां लाने के लिए अपने ससुर के साथ गई है। अगले दिन अभियोजन साक्षी-1 को गांव में कुछ आम अफवाह सुनाई दी कि उसकी बहन मार दी गई है। इसपर उसने अपने पति के छोटे भाई को बुलाया और उसे लेकर अभियुक्त के मकान पर पुनः गई। वहां उसे वीरभान सिंह और उसकी मां श्रीमती ज्ञानी देवी मिली। उन्होंने उन लोगों से कहा कि मृतक का शव दिखाओ। पहले तो उन्होंने इन्कार कर दिया किन्तु उसके चिल्लाने-चीखने पर उन्होंने कमरे में पड़ा हुआ शव दिखा दिया जो फूला हुआ था और जिसमें से दुर्गन्ध आ रही थी। तारीख 15 अगस्त, 1968 को प्रातः लगभग 9.30 बजे स्लेटी सिंह ने थाना जसवन्त नगर में यह रिपोर्ट दर्ज कराई कि मृतक ने फांसी लगाकर आत्महत्या कर ली है। उप-निरीक्षक नेत्रपाल सिंह (अभियोजन साक्षी 11) घटनास्थल पर गया और उसने पंचों की सहायता से मृत्यु-समीक्षा की। स्लेटी सिंह, उसकी पत्नी, श्रीमती ज्ञानी और उसके पुत्र वीरभान सिंह पर इटावा के सेशन न्यायाधीश के समक्ष आरोप लगाया गया कि उन्होंने मृतक की पिटाई करके और फिर उसे एक रस्सी से लटकाकर उसकी साशय मृत्युकारित करके अपने सामान्य आशय की अभिवृद्धि की पूर्ति हेतु वीरभान सिंह की पत्नी श्रीमती ज्ञानी देवी की हत्या की है। सेशन न्यायाधीश इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि मृतक की मृत्यु अभियुक्तों द्वारा मृतक को गर्दन से लटकाए जाने से हुए श्वासावरोध के बाद अभियुक्तों द्वारा उसे पहुंचाई गई चोटों के फलस्वरूप हुई है। उन्होंने सभी अभियुक्तों को हत्या के अपराध का दोषी पाया। उन्हें भारतीय दण्ड संहिता की धारा 302 के अधीन सिद्धदोष ठहराया और उनमें से तीन को आजीवन कारावास भुगतने का दण्डादेश दिया। तीन अभियुक्तों द्वारा फाइल की गई अपील में उच्च न्यायालय ने इस निष्कर्ष की पुष्टि कर दी कि यह मामला आत्महत्या का नहीं बल्कि सुनियोजित हत्या का मामला है क्योंकि रस्सी से लटकाना हत्यारों द्वारा मृतक को मारे जाने की प्रक्रिया का अंग था। फिर भी उच्च न्यायालय का यह मत था कि अपराध करने के समय स्लेटी सिंह की उपस्थिति संदेह से परे साबित नहीं हुई, इसलिए उसने संदेह का लाभ देकर उसे दोषमुक्त कर दिया। उच्च न्यायालय ने भारतीय दण्ड संहिता की धारा 302 के अधीन वीर भान सिंह और उसकी मां की दोषसिद्धि पुष्ट कर दी। ऊपर वर्णित दोनों अभियुक्तों ने अपील फाइल की है। अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित—हमारे देश के अनेक भागों में हाल ही में दुर्भाग्यपूर्ण और दुखद स्थिति उत्पन्न हो गई है कि दुल्हनों को मारने के उदाहरणों में

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

चिन्ताजनक वृद्धि हुई है। समाज को इस बढ़ती हुई बुराई से छुटकारा दिलाने के लिए यह अनिवार्य है कि जब कभी इस प्रकार के निर्मम अपराध सामने आएं और अभियुक्त का अपराध सिद्ध हो जाए तो न्यायालय अपराधी के विरुद्ध कठोर कार्रवाई करें और उस पर भयोपरक दण्ड अधिरोपित करें। जबकि ऐसे अधिकांश मामलों में दुल्हन को तंग करने और मारने का कारण दहेज मांगने और लेने की घातक और बुरी प्रथा तथा पति के घरवालों की लालचपूर्ण मांगों को ठीक ढंग से पूरा करने में दुल्हन के मां-बाप की असफलता है, प्रस्तुत मामले में निर्दोष पत्नी की यातना और हत्या का कारण था कि उसे अभागिन समझा गया। इसका कारण यह था कि उसे विवाह के 4-5 वर्ष तक कोई बालक नहीं हुआ और हालांकि उसके बाद वह दो बार गर्भवती हुई और दोनों बार लड़के को जन्म दिया किन्तु वे दोनों लड़के कुछ ही सप्ताह या दिन जीवित रह सके। नवयुवती पत्नी को अभागिन बताकर उसके पति और उसकी माता-पिता की स्वार्थपूर्ण पाशविक प्रकृति इस धारणा के रूप में प्रकट हुई कि पति को अपनी वर्तमान पत्नी के रूप में विद्यमान अड़चन से छुटकारा पाकर दूसरी शादी कर लेनी चाहिए। इसी धारणा से प्रेरित होकर पति और उसकी मां ने नवयुवती पत्नी की अत्यन्त जघन्य तरीके से निर्मम हत्या की। (पैरा 1)

मृतक की मृत्युकारित करने और जिस ढंग से मृत्यु की गई, उसके बारे में सेशन न्यायाधीश और उच्च न्यायालय के निष्कर्ष ठीक हैं। इसलिए साक्ष्य ब्यौरों की पुनरावृत्ति से इस निर्णय को बोझिल करना आवश्यक नहीं है। निस्संदेह यह मामला विशुद्ध रूप से पारिस्थितिक साक्ष्य पर निर्भर करता है। किन्तु परिस्थितियां इतनी स्पष्ट हैं कि युक्तियुक्त रूप से केवल एक ही निष्कर्ष संभव है जो निचले न्यायालयों ने निकाला है कि मृतक ने फांसी लगाकर आत्महत्या नहीं की बल्कि उस पर निर्मम प्रहार करके और फिर गर्दन में रस्सी बांधकर लटका कर मृत्यु की गई। चिकित्सीय साक्ष्य से भी स्पष्ट रूप से यह सिद्ध हो जाता है कि मृतक को आमाशय और जिगर में मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट में वर्णित किस्म और प्रकार की गंभीर क्षतियां हो गई थी, इसलिए उसके लिए स्वयं फांसी लगाना संभव नहीं था। (पैरा 4)

दाण्डिक अपीली अधिकारिता : 1974 की दाण्डिक अपील सं० 154.

1969 की दाण्डिक अपील सं० 1809 में इलाहाबाद उच्च

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

न्यायालय के तारीख 25 सितम्बर, 1973 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से — सर्वश्री आर० के गर्ग, वी० जे० फ्रांसिस और निखिल चन्द्र

प्रत्यर्थी की ओर से — सर्वश्री दलवीर भण्डारी, एच० एम० सिंह और रनबीर सिंह यादव

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति वी० बालकृष्ण एराडी ने दिया।

न्यायाधिपति एराडी—

हमारें देश के अनेक भागों में हाल ही में दुर्भाग्यपूर्ण और दुखद स्थिति उत्पन्न हो गई है कि दुल्हनों को मारने के उदाहरणों में चिन्ताजनक वृद्धि हुई है। समाज को इस बढ़ती हुई बुराई से छुटकारा दिलाने के लिए यह अनिवार्य है कि जब कभी इस प्रकार के निर्मम अपराध सामने आएं और अभियुक्त का अपराध सिद्ध हो जाए तो न्यायालय अपराधी के विरुद्ध कठोर कार्रवाई करें और उस पर भयोपरक दण्ड अधिरोपित करें। हमारे समक्ष वाला मामला इसी प्रकार का है। जबकि ऐसे अधिकांश मामलों में दुल्हन को तंग करने और मारने का कारण दहेज मांगने और लेने की घातक और बुरी प्रथा तथा पति के घरवालों की लालचपूर्ण मांगों को ठीक ढंग से पूरा करने में दुल्हन के मां-बाप की असफलता है, प्रस्तुत मामले में निर्दोष पत्नी की यातना और हत्या का कारण था कि उसे अभागिन समझा गया। इसका कारण यह था कि उसे विवाह के 4-5 वर्ष तक कोई बालक नहीं हुआ और हालांकि उसके बाद वह दो बार गर्भवती हुई और दोनों बार लड़के को जन्म दिया किन्तु वे दोनों लड़के कुछ ही सप्ताह या दिन जीवित रह सके। नवयुवती पत्नी को अभागिन बताकर उसके पति और उसकी माता-पिता की स्वार्थपूर्ण पाशविक प्रकृति इस धारणा के रूप में प्रकट हुई कि पति को अपनी वर्तमान पत्नी के रूप में विद्यमान अड़चन से छुटकारा पाकर दूसरी शादी कर लेनी चाहिए। इसी धारणा से प्रेरित होकर पति और उसकी मां ने नवयुवती पत्नी की अत्यन्त जघन्य तरीके से निर्मम हत्या कर दी।

2. स्लेटी सिंह, उसकी पत्नी, श्रीमती ज्ञानी देवी और उनके पुत्र वीरभान सिंह पर इटावा के सेशन न्यायाधीश के समक्ष आरोप लगाया गया कि उन्होंने मृतक की पिटाई करके और फिर उसे एक रस्सी से लटकाकर उसकी साशय मृत्यु कारित करके अपने सामान्य आशय की अभिवृद्धि की

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पूर्ति हेतु वीरभान सिंह की पत्नी श्रीमती ज्ञानी की हत्या की है। वीरभान के साथ मृतक का विवाह घटना के समय से लगभग 9 वर्ष पूर्व हुआ था। विवाह के लगभग 5-6 वर्ष तक भी कोई बच्चा पैदा नहीं हुआ। अभियोजन-पक्ष के कथन के अनुसार, मृतक का पति और उसके माता-पिता उसे इस कारण तंग करते थे और पीटते थे तथा वे कहते थे कि वे वीरभान सिंह का दूसरा विवाह करवा लेंगे। विवाह के 7वें वर्ष में या उसके लगभग मृतक ने एक लड़के को जन्म दिया किन्तु वह लड़का लगभग 9 या 10 मास जीवित रहा। तत्पश्चात् ऐसा कहा गया कि पति और उसके माता-पिता ने मृतक के साथ फिर दुर्व्यवहार करना शुरू कर दिया। घटना से कुछ मास पूर्व मृतक ने एक दूसरे लड़के को जन्म दिया किन्तु वह बच्चा भी 6-7 दिन के भीतर मर गया। इससे मामला और बढ़ गया और मृतक को एक अभागिन स्त्री बताया गया, जिसे और आगे परिवार में नहीं रखा जा सकता। अभियोजन-पक्ष के अनुसार वह अभियुक्त द्वारा अत्यन्त परेशान करने के बारे में अपनी बहन श्रीमती रामकुमारी (अभियोजन साक्षी-1) से शिकायत करती थी। श्रीमती रामकुमारी का विवाह भी उसी गांव अर्थात् नागलाईंचा में एक व्यक्ति से हुआ था। तारीख 14 अगस्त, 1968 को शाम के लगभग 5 बजे श्रीमती रामकुमारी अपनी बहन से मिलने के आशय से उसके घर गई किन्तु पति वीरभान सिंह और उसकी मां ने उससे कहा कि मृतक कुछ दवाइयां लाने के लिए अपने ससुर के साथ गई है। अगले दिन अभियोजन साक्षी-1 को गांव में कुछ आम अफवाह सुनवाई दी कि उसकी बहन मार दी गई है। इसपर उसने अपने पति के छोटे भाई कृष्ण गोपाल (अभियोजन सं० 4) को बुलाया और उसे लेकर अभियुक्त के मकान पर पुनः गई। वहां उसे वीरभान सिंह और उसकी मां श्रीमती ज्ञानी देवी मिली। उन्होंने उन लोगों से कहा कि मृतक का शव दिखाओ। पहले तो उन्होंने इन्कार कर दिया किन्तु उसके चिल्लाने-चीखने पर उन्होंने कमरे में पड़ा हुआ शव दिखा दिया जो फूला हुआ था और जिसमें से दुर्गन्ध आ रही थी। तारीख 15 अगस्त, 1968 को प्रातः लगभग 9.30 बजे स्लेटी सिंह ने थाना जसवन्त नगर में यह रिपोर्ट दर्ज कराई कि मृतक ने फांसी लगाकर आत्महत्या कर ली है। उप-निरीक्षक नेत्रपाल सिंह (अभियोजन साक्षी-11) घटनास्थल पर गया और उसने पंचों की सहायता से मृत्यु समीक्षा की। बड़ी विचित्र बात है कि शव का काफी विघटन हो चुका था जिससे स्पष्ट पता चलता था कि मृत्यु स्लेटी सिंह द्वारा लिखाई गई रिपोर्ट से बहुत पहले हुई थी जिससे आमतौर पर रिपोर्टकर्ता द्वारा दिए गए आत्महत्या के वृतांत

Agamnigam Digital Preservation

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के बारे में किसी भी युक्तिवान व्यक्ति के मन में घोर संदेह उत्पन्न होना चाहिए था किन्तु उपनिरीक्षक और पंच चाहते थे कि हत्या का कारण फांसी लगाकर आत्महत्या लेखबद्ध कर दिया जाए और आगे कोई अन्वेषण किए बिना मामला बन्द कर दिया जाए। किन्तु रामकुमारी (अभियोजन साक्षी-1) और उसके देवर कृष्णगोपाल (अभियोजन साक्षी-4) ने इसका घोर विरोध किया और मांग की कि शव मरणोत्तर परीक्षा के लिए भेजा जाए तथा उनके बार-बार कहने पर उनकी प्रार्थना मान ली गई। मरणोत्तर परीक्षा डाक्टर लखोटिया ने 15-8-1968 को अपराह्न 5-30 बजे की। डाक्टर की राय में मृत्यु परीक्षा से पहले डेढ़ या दो दिन के बीच अर्थात् 13-8-68 को अपराह्न 5-30 और 14-8-68 को पूर्वाह्न 5-30 बजे हुई है। मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट से प्रकट होता है कि मृतक के शरीर पर निम्नलिखित मरणपूर्व क्षतियां थीं :—

1. स्वर-यन्त्र और ठोडी के बीच ऊपरी हिस्से में गर्दन पर, ठोडी के सामने और ठोडी के नीचे दोनों तरफ 8 "×1/2" बन्द चिह्न विच्छेदन करने पर उपांतों में रक्ताधिक्य पाया गया। यह निचले जबड़े से आड़ा ऊपर की ओर गया हुआ था और लगभग पीछे था। उसका आधार पीला, कड़ा और चमड़े जैसा था।

2. गर्दन के निचले भाग पर बाई तरफ 1 1/2"×1/2" खरोंच।

3. बाई आंख की ऊपरी समस्त पलक पर नील। नेत्रश्लेष्मला में रक्ताधिक्यता।

4. दायीं आंख की समस्त ऊपरी पलक पर नील 1 नेत्रश्लेष्मला में रक्ताधिक्यता।

5. जत्रुक के नीचे छाती पर बाईं तरफ ऊपरी हिस्से में 4"×4" नील।

बन्द चिह्न से नीचे दायीं तरफ कंठिका अस्थि का बड़ा वक्र टूटा हुआ था। गर्दन की बड़ी वाहिकाओं के आसपास रक्ताधिक्य था। मृतक की दायीं तरफ की आठवीं से लेकर दसवीं निचली पसलियां टूटी हुई पाई गईं। ऊपर आध्मान की स्थिति में था और भित्तियों और कोख में विवर्णता थी। पर्युदर्या में गहरा रक्ताधिक्य था। उदर-गुहा खून से भरी हुई थी जो लगभग 1½ पौंड था। आमाशय में 6" लम्बा एक बड़ा फटा हुआ

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

घाव था। उदरभित्तियों में रक्ताधिक्य था। जिगर के बायें खण्ड के सामने की तरफ 3" × 1½" का विदीर्ण घाव था। दोनों गुर्दों में रक्ताधिक्य था और विघटन था। उसके हृदय के दोनों तरफ खाली था। स्वर-यन्त्र में गहरा संकुलन था। दोनों फेफड़ों में बहुत गहरा रक्ताधिक्य था और बहुत अधिक विघटन था। बड़ी वाहिकाएं गर्दन के दोनों तरफ संकुलित थीं। डाक्टर की राय में मृत्यु जिगर और आमाशय की क्षति के फलस्वरूप एवं फांसी लगाने के कारण श्वासावरोध के परिणामस्वरूप आघात और रक्तस्राव के कारण हुई। जब साक्षी के रूप में परीक्षा की गई तो डाक्टर ने साफ-साफ कहा कि मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट में वर्णित क्षतियों को देखते हुए मृतक द्वारा स्वयं फांसी लगाए जाने की बिल्कुल भी संभावना नहीं है।

3. साक्ष्य पर ध्यानपूर्वक और विश्लेषणात्मक दृष्टि से विचार करने पर सेशन न्यायाधीश इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि मृतक की मृत्यु अभियुक्तों द्वारा मृतक को गर्दन से लटकाए जाने से हुए श्वासावरोध के बाद अभियुक्तों द्वारा उसे पहुंचाई गई चोटों के फलस्रूप हुई है। उन्होंने सभी अभियुक्तों को हत्या के अपराध का दोषी पाया। उन्हें भारतीय दण्ड संहिता की धारा 302 के अधीन सिद्धदोष ठहराया और उनमें से तीन को आजीवन कारावास भुगतने का दण्डादेश दिया। तीन अभियुक्तों द्वारा फाइल की गई अपील में उच्च न्यायालय ने इस निष्कर्ष की पुष्टि कर दी कि यह मामला आत्महत्या का नहीं बल्कि सुनियोजित हत्या का मामला है क्योंकि रस्सी से लटकाना हत्यारों द्वारा मृतक को मारे जाने की प्रक्रिया का अंग था। फिर भी उच्च न्यायालय का यह मत था कि अपराध करने के समय स्लेटी सिंह की उपस्थिति संदेह से परे साबित नहीं हुई, इसलिए उसने संदेह का लाभ देकर उसे दोषमुक्त कर दिया। उच्च न्यायालय ने भारतीय दण्ड संहिता की धारा 302 के अधीन वीरभान सिंह और उसकी मां श्रीमती ज्ञानी देवी की दोषसिद्धि पुष्ट कर दी। ऊपर वर्णित दोनों अभियुक्तों ने यह अपील फाइल की है।

4. अपील में हमें कोई भी सार दिखाई नहीं पड़ता। हम मृतक की मृत्यु कारित करने और जिस ढंग से मृत्यु की गई, उसके बारे में सेशन न्यायाधीश और उच्च न्यायालय के निष्कर्षों से पूरी तरह सहमत हैं। इसलिए साक्ष्य के ब्यौरों की पुनरावृत्ति से इस निर्णय को बोझिल करना आवश्यक नहीं है। निस्संदेह यह मामला विशुद्ध रूप से पारिस्थितिक साक्ष्य पर निर्भर करता है। किन्तु परिस्थितियां इतनी स्पष्ट हैं कि युक्तियुक्त रूप से केवल एक ही निष्कर्ष संभव है जो निचले न्यायालयों ने निकाला है कि मृतक ने

Agamnigam Digital Preservation F

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

फांसी लगाकर आत्महत्या नहीं की बल्कि उसपर निर्मम प्रहार करके और फिर गर्दन में रस्सी बांधकर से लटका कर मृत्यु की गई। चिकित्सा साक्ष्य से भी स्पष्ट रूप से यह सिद्ध हो जाता है कि मृतक को आमाशय और जिगर में मरणोत्तर परीक्षा रिपोट में वर्णित किस्म और प्रकार की गम्भीर क्षतियां हो गई थीं, इसलिए उसके लिए स्वयं फांसी लगाना संभव नहीं था। पति वीरभान सिंह और उसकी मां श्रीमती ज्ञानी देवी मकान में सर्वथा उपस्थित रहे और बाहर का कोई भी आदमी उस समय मकान में नहीं आया। डाक्टर की राय के अनुसार वह काल बिन्दु जिस समय मृतक की मृत्यु हो सकती है, 14-8-68 को प्रातः 5-30 बजे था बल्कि उस दिन शाम को भी जब मृतक की बहन श्रीमती रामकुमारी (अभियोजन साक्षी-1) उनके घर गई और उसने मृतक के बारे में पूछताछ की तो वीरभान सिंह और उसकी मां ने उसे बताया कि मृतक कुछ दवाई लाने के लिए ससुर के साथ बाहर गई है। अगले दिन (15 अगस्त, 1968) को गांव में खबर फैल गई कि मृतक को मार दिया गया है और तब अपने देवर (अभियोजन साक्षी-4) के साथ अभियोजन साक्षी-1 अभियुक्तों के घर गई और उसने शव दिखाने के लिए आग्रह किया, तभी उसकी बहन का शव उसे दिखाया गया जो उस समय विघटन की स्थिति में आ चुका था। उल्लेखनीय यह है कि इसके बाद ही स्लेटो सिंह पुलिस थाने गया और उसने यह रिपोर्ट दर्ज कराई कि मृतक ने फांसी लगाकर आत्महत्या कर ली है। अपीलार्थियों का आचरण उनके अपराध में शामिल होने के अनुरूप है। साक्ष्य से यह सिद्ध हो गया है कि 14 अगस्त, 1968 को शाम के लगभग $7\frac{1}{2}$ बजे या 8 बजे स्लेटी सिंह ने शव को वहां से गुप्त रूप से हटाने का प्रयास किया था, जिसके लिए वह एक ब्रह्मानन्द (अभियोजन साक्षी-3) ट्रक मालिक से मिला था किन्तु वह शव को ले जाने के लिए उसका ट्रक भाड़े पर लेने के प्रयास में असफल रहा।

5. साक्ष्य की संवीक्षा करने पर हमारा यह पूरी तरह से समाधान हो गया है कि विद्वान् सेशन न्यायाधीश और उच्च न्यायालय द्वारा लेखबद्ध निष्कर्ष पूरी तरह सही और उचित है कि अपीलार्थी अत्यन्त निर्मम और जघन्य तरीके से मृतक की हत्या करने के दोषी हैं। हम यह मत व्यक्त करना चाहेंगे कि उच्च न्यायालय ने स्लेटी सिंह को संदेह का लाभ देकर दोषमुक्त करने के लिए जो कारण दिए हैं, हमें वे उपयुक्त और समाधानप्रद नहीं जंचते किन्तु चूंकि राज्य ने उसके विरुद्ध कोई अपील नहीं की है; इसलिए उसकी दोषमुक्ति कायम रहेगी।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

6. परिणामस्वरूप वीरभान सिंह और श्रीमती ज्ञानी देवी की बाबत दोषसिद्धि और दण्डादेश की पुष्टि की जाती है तथा यह अपील खारिज की जाती है। अपीलार्थी तुरन्त अपनी जमानत का अभ्यर्पण करेंगे और उन्हें अपना दण्डादेश भुगतने के लिए अभिरक्षा में ले लिया जाएगा।

अपील खारिज की गई।

कृ०/

———

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

एस० के० भाटिया और अन्य

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

(S. K. Bhatia and Others

v.

State of U. P. and Others)

श्रीमती पद्मा सपरा और अन्य

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

(Smt. Padma Sapra and Others

v.

State of U. P. and Others)

महेन्द्र प्रताप सिंह हसीजा इत्यादि

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

(Mhendra Pratap Singh Hasija and Others)

v.

State of U. P. and Others etc.)

(12 अगस्त 1983)

(न्यायाधिपति डी० ए० देसाई और श्री० चिन्नप्पा रेड्डी)

मोटर यान अधिनियम, 1939 (1939 का 4)—धारा) 51(2)(x) [सपठित यू० पी० मोटर व्हीकल्स (स्पेशल प्रोविजन्स) ऐक्ट, 1976 (1976 का 27) धारा]—बसों के परमिट—मिनी बस चलाने के लिए परमिट में शर्तें विहित किए

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जाने से किसी संवैधानिक अधिकार का उल्लंघन नहीं होता—ठेका गाड़ियों और मिनी बसों की तुलना नहीं की जा सकती—शर्त अधिरोपित करने का स्रोत धारा 51(2)(x) है, धारा 4 नहीं।

संविधान, 1950—अनुच्छेद 32—आनुकल्पिक उपचार का उपलब्ध होना—मूल अधिकार का उल्लंघन दर्शित न किया जाना—ऐसा रिट पिटीशन कायम नहीं रखा जा सकता।

इन पिटीशनों में प्रादेशिक पिटीशनरों को मिनी बसों के रूप में ज्ञात ठेका गाड़ियों को चलाने के लिए परिवहन प्राधिकारियों द्वारा जारी किए गए परमिटों से संलग्न शर्त सं० 18 की शक्तिमत्ता से सम्बन्धित प्रश्न मिनी बसों के कतिपय स्वामियों द्वारा इस आधार पर उठाया गया था कि यह मोटर यान अधिनियम की धारा 51(2) के अधीन शक्ति के अधिकारातीत है। उत्तर प्रदेश मोटर व्हीकल्स (स्पेशल प्रोविज़न) ऐक्ट, 1976 की धारा 2 (घ) में मिनी बस को छोटी बसों के रूप में परिभाषित किया गया है जो चालक के अतिरिक्त 35 व्यक्तियों को लाने/ले जाने के लिए निर्मित की गई हैं। मोटर यान अधिनियम, 1939 (1939 का 4) की धारा 52(2) में प्रादेशिक परिवहन प्राधिकारी को उस उपबन्ध में प्रतिपादित शर्तों में से और एक या एक से अधिक शर्तें परमिट के साथ लगाना प्राधिकृत किया गया है। उच्च न्यायालय के निर्णय के खिलाफ दायर किए गए पिटीशन को खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित—मिनी बसों की दशा में यह शर्त है कि गाड़ी क उसके रजिस्ट्रीकरण की तारीख से 5 वर्ष के अवसान के पश्चात् बदल दिया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त बसें और मिनी बसें भिन्न वर्गों के अन्तर्गत आती हैं इसलिए इनकी तुलना नहीं की जा सकती। धारा 51(2)(x) के अधान वह शर्त अधिरोपित करने के लिए सशक्त प्राधिकारी प्रादेशिक परिवहन प्राधिकारी है। उत्तर प्रदेश मोटर व्हीकल्स (स्पेशल प्रोवीज़न) ऐक्ट की धारा 4 अनुमोदित स्कीम के अन्तर्गत विनिर्दिष्ट सीमाओं के भीतर मंजिली गाड़ी के रूप में प्राइवेट मिनी बसों का उपयोग प्राधिकृत करने के बारे में है और, जो भी हो, ठेका गाड़ियों के रूप में चलने वाली मिनी बसों पर शर्तें अधिरोपित करने के बारे में इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। शर्त सं० 18 का वास्तविक उद्देश्य यात्रियों को सुरक्षा प्रदान करना है न कि उस क्षेत्र से मिनी बसों को कम करना। (पैरा 2)

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[1981] 1 उम० नि० प० 421=[1980]2 एस० सी० आर० 1024 :

सुभाष चन्द्र और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

(Subhash Chandra and Others *v.* State of U. P. and Others). 1, 2

आरम्भिक रिट अधिकारिता : 1981 का रिट पिटीशन सं० 1124, 4908, 9069-70, 18-21, 4817, 9445-48 और 1982 का 1336, 2117-20, 6808 और 7219 और 1980 का 2928 और 1980 का 1698, 1698, 663 और 1981 का 1813, 1982 का 8334-37 और 4618.

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपतिओं चिन्नप्पा रेड्डी ने दिया ।

न्या० चिन्नप्पा रेड्डी—

इन रिट पिटीशनों में उत्तर प्रदेश राज्य के सम्बन्धित प्रादेशिक परिवहन प्राधिकारियों द्वारा पिटीशनरों को मिनी बसों के रूप में ज्ञात ठेका गाड़ियों को चलाने के लिए जारी किए गए परमिटों से संलग्न शर्त सं० 18 की शक्तिमत्ता से सम्बन्धित प्रश्न है । मिनी बस को उत्तर प्रदेश मोटर व्हीकल्स (स्पेशल प्रोवीजन) ऐक्ट, 1976 की धारा 2(घ) में ऐसी छोटी बसों के रूप में परिभाषित किया गया है जो चालक के अतिरिक्त 35 व्यक्तियों से कम व्यक्तियों को ले जाने के लिए रखी गई हैं या बनाई गई हैं । मोटर यान अधिनियम की धारा 51(2) प्रादेशिक परिवहन प्राधिकारी को उस उपबन्ध में प्रतिपादित शर्तों में से कोई एक या एक से अधिक शर्तें परमिट के साथ लगाने के लिए प्राधिकृत करती है । धारा 51(2) की मद (x) इस प्रकार है—"कोई अन्य शर्त जो विहित की जाए" । शर्त सं० 18 ऐसी शर्त है जो मिनी बस चलाने के लिए प्रत्येक परमिट में विहित और लगी रहती है । इस प्रकार, मूल रूप में वह शर्त निम्न प्रकार है—

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

*"परमिट के अन्तर्गत आने वाली वाहन गाड़ी परमिट की विधिमान्यता के दौरान किसी भी समय रजिस्ट्रीकरण की तारीख से गणना किए गए चार वर्ष से अधिक पुरानी नहीं होनी चाहिए।"

मूल रूप में अनुबन्धित चार वर्ष की कालावधि 28 सितम्बर, 1978 को बढ़ाकर "सात" कर दी गई थी और पुन: 21 दिसम्बर, 1981 को बढ़ाकर "नव" वर्ष कर दी गई। उसके पूर्व मिनी बसों के कतिपय स्वामियों द्वारा इस शर्त की शक्तिमत्ता को इस आधार पर प्रश्नगत किया गया था कि यह मोटरयान अधिनियम की धारा 51(2) के अधीन शक्ति के अधिकारातीत थी। किन्तु सुभाष चन्द्र और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि यह शर्त धारा 51(2) की मद (x) से सम्बन्धित उसके स्रोत का पता लगाने के लिए धारा 51(2) द्वारा प्रदत्त शक्ति की सीमाओं के भीतर थी। न्यायालय ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया—

"मोटर यान अधिनियम, 1939 की धारा 51(2) का आशय लोक सुरक्षा है तथा उसका उद्देश्य प्राइवेट अभिलाभ नहीं है। यह एक पुनीत कर्तव्य अधिरोपित करती है जो बसों में यात्रा करने वाले, सड़कों पर चलने वाले या फुटपाथों पर खड़े हुए भारतीय लोगों के सामाजिक न्याय के दबाव के सिवाय किसी दबाव से भयोपरत नहीं किया जा सकता ...."

"धारा 51(2)(x) यद्यपि ऐसी कोई शर्त अधिरोपित करने के लिए प्राधिकृत करती है जिसका कानूनी प्रयोजन से सम्बन्ध हो। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि मानव सुरक्षा ऐसा एक प्रयोजन है। लोक परिवहन की व्यवस्था करने के इस क्षेत्र में राज्य की उपेक्षा खेदजनक है, किन्तु जब वह कोई शर्त विहित करके ऐसा कोई कृत्य करता है तो न्यायालय को तुच्छ विधिवाद और

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

"The motor vehicle covered by the permit shall not be more than four years old counted from the date of registration to any time during the validity of the permit."

[1] [1981] 1 उम० नि० प० 421=[1980] 2 एस० सी० आर० 1024.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हानिकर निषेधवाद का अवलम्ब लेने के लिए विवश नहीं किया जा सकता। संक्षेप में, प्रश्न यह है कि क्या वह आदेश कि बस अधिकतम सात वर्ष पुराने मॉडल की होगी, वाहन की शर्त से सुसंगत है तथा उसके यात्री हमारे अव्यवस्थित राज मार्गों पर अपेक्षाकृत सुरक्षित और आराम में रहते हैं। स्पष्टतया स्थिति ऐसी ही है। जितना अधिक पुराना मॉडल होगा उतने ही वाहन में सुरक्षा के लिए बनाए गए आधुनिकतम उपायों के हाने की गुंजाइश होगी। प्रत्येक नए मॉडल में खतरे को कम करने और सुबिधाओं को बढ़ाने की नई युक्तियां सम्मिलित होती हैं। प्रत्येक नया मॉडल अपनी सेवा अवधि के कम होने, नवीन और मजबूत होने का आश्वासन देता है तथा उसके अचानक फेल हो जाने और खराब हो जाने तथा उसकी मरम्मत आदि कराने और टूट-फूट होने की बहुत ही कम सम्भावना होती है। जब हम कोई कार या कोई अन्य मशीन खरीदते हैं तब हम क्यों आधुनिकतम मॉडल की तलाश करते हैं। पुराने वाहन अद्भुत और शतवर्षीय प्रदर्शनी के लिए अच्छे होते हैं। किन्तु वे हमारे बदनाम उपेक्षित राजमार्गों पर चलते फिरते अभिशाप के रूप में होते हैं। हमें सड़क के उपयोग-कर्ताओं के मानवीय अधिकारों की दृष्टि से यह अभिनिर्धारित करने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि परमिट बस के मॉडल के सम्बन्ध में शर्त अधिकारिता के भीतर है तथा वह कानूनी कर्तव्य के त्याग के लिए ऐसा कोई सुरक्षात्मक खण्ड विहित नहीं करती।

.....

.....

"हमें यह बात स्पष्ट प्रतीत होती है कि पश्चात्वर्ती मॉडल एक अच्छा रक्षोपाय होता है और विषय से अधिक सुसंगत होता है तथा किसी मॉडल के 'मेक' का वर्ष और मॉडल के ब्यौरे वर्णन के भाग होते हैं।"

ऐसी दलील दी गई प्रतीत होती है कि मोटर यान अधिनियम की धारा 38 में प्रत्येक परिवहन यान योग्यता प्रमाण पत्र रखने के लिए मिनी बसों जैसी ठेके पर चलने वाली गाड़ियां सम्मिलित हैं और इसलिए शर्त सं० 18 अस्पष्ट थी और धारा 38 की अपेक्षाओं के असंगत थी। इस न्यायालय द्वारा इस तर्क को स्वीकार नहीं किया गया था और उसके द्वारा निम्नलिखित मत व्यक्त किया गया था—

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

"1975 के सिविल रिट सं० 7317 वाला अप्रतिवेदित विनिर्णय अधिनियम की धारा 38 का निर्वचन करता है और योग्यता प्रमाणपत्र इसलिए जारी नहीं किया गया था क्योंकि मॉडल उचित नहीं था। वाहन के 'मेक' के वर्ष पर ध्यान न देते हुए, वाहन 'योग्य' हो सकता है तथा योग्यता प्रमाणित करने से केवल इसलिए इनकार करना, क्योंकि वह पुराना है, सदैव ठीक नहीं होता है। किन्तु हम किसी वाहन के चलाने योग्य होने और अतिरिक्त अपेक्षा तथा सुरक्षात्मक तथ्य के रूप में मॉडल के वर्ष सम्बन्धी शर्त के बीच कोई विवाद नहीं देखते हैं। यह एक अतिरिक्त उपाय है तथा मशीन के खराब होने के विरुद्ध एक अतिरिक्त बीमा है तथा वह योग्यता के उपबन्ध का उल्लंघन नहीं कर सकता।

2. शर्त सं० 18 की शक्तिमत्ता को एक बार पुनः इन रिट पिटीशनों में चुनौती दी गई थी। किन्तु चुनौती के आधार अत्यधिक सारहीन हैं। इसमें यह बताया गया था कि बस की दशा में ऐसी कोई शर्त नहीं थी और इसलिए इससे संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिलंघन हुआ था। यह कहना गलत है कि बसों की दशा में ऐसी कोई शर्त नहीं थी। 1981 के रिट पिटीशन सं० 18-21 में फाइल किए गए प्रतिशपथपत्र के पैरा 5 में यह कथन किया गया है कि बसों की दशा में यह शर्त है कि यान को उसके रजिस्ट्रीकरण की तारीख से 5 वर्ष के अवसान के पश्चात् बदल दिया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त, बसें और मिनी बसें भिन्न वर्गों के अन्तर्गत आती हैं इसलिए इनकी तुलना नहीं की जा सकती। अन्य निवेदन यह किया गया था कि शर्त सं० 18 को पूरा करना असम्भव है क्योंकि मिनी बसों के चेसिस के विनिर्माताओं में से एक (टेलको) अब ऐसी चेसिस का विनिर्माण नहीं करता है। प्रतिशपथपत्र में इस बात से इनकार किया गया है और हम यह उपधारणा करते हैं कि देश में अन्य विनिर्माता हैं जो अपेक्षित चेसिस बनाते हैं या उनका उत्पादन करते हैं। किसी भी दशा में यह ऐसी स्थिति है जिसमें परिवहन प्राधिकारियों द्वारा सुधार किया जा सकता है। पिटीशनर मोटर यान अधिनियम के अधीन उन्हें दिए गए उपचारों का सदैव अपील और पुनरीक्षण के माध्यम से अवलम्ब ले सकते हैं। हमें यहां किसी संवैधानिक अधिकार का कोई अतिलंघन दिखाई नहीं दिया। अन्य निवेदन यह किया गया था कि शर्त अधिरोपित करने के लिए सक्षम प्राधिकारी प्रादेशिक परिवहन प्राधिकारी नहीं था, बल्कि उत्तर प्रदेश मोटर व्हीकल्स (स्पेशल प्रोवीजन्स) ऐक्ट की धारा 4 के अधीन सक्षम प्राधिकारी

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

था। हम पहले ही **सुभाष चन्द्र वाले मामले**[1] के प्रति निर्देश कर चुके हैं जहां यह अभिनिर्धारित किया गया है कि शर्त सं० 18 अधिरोपित करने की शक्ति का वह स्रोत मोटर यान अधिनियम की धारा 51(2)(x) है। धारा 51(2)(x) के अधीन ऐसी शर्त अधिरोपित करने के लिए सशक्त प्राधिकारी प्रादेशिक परिवहन प्राधिकारी है। उत्तर प्रदेश मोटर व्हीकल्स (स्पेशल प्रोवीजन) ऐक्ट की धारा 4 अनुमोदित स्कीम के अन्तर्गत विनिर्दिष्ट सीमाओं के भीतर मंजिली गाड़ी के रूप में प्राइवेट मिनी बसों का उपयोग प्राधिकृत करने के बारे में है और, जो भी हो, ठेका गाड़ियों के रूप में चलने वाली मिनी बसों पर शर्तें अधिरोपित करने में कुछ भी नहीं करना है; यह सुझाव दिया गया था कि शर्त सं० 18 का वास्तविक उद्देश्य यात्रियों की सुरक्षा नहीं है, जैसा कि **सुभाष चन्द्र वाले मामले** में समझा गया है, बल्कि उस क्षेत्र से मिनी बसों को कम करना है। यह निवेदन बिल्कुल निराधार है। जैसा कि हमने बताया है पिटीशनर द्वारा किए गए निवेदनों में से किसी भी निवेदन में कोई सार नहीं है। इसलिए सभी पिटीशन खर्चे सहित खारिज किए जाते हैं।

पिटीशन खारिज किए गए।

प्र०/भू०

---

[1] [1981] 1 उम० नि० प० 421 = [1980] 2 एस० सी० आर० 1024.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

एच० एम० कमालुद्दीन अंसारी एण्ड कम्पनी (मैसर्स)

बनाम

भारत संघ और अन्य

(M/s. H.M. Kamaluddin Ansari and Company

v.

Union of India and others)

तथा

शंकर विजय सा मिल्स

बनाम

भारत संघ और एक अन्य

(Shankar Vijay Saw Mills

v.

Union of India and another)

(12 अगस्त, 1983)

(न्यायाधिपति डी० ए० देसाई, वी० बालकृष्ण एराडी

और आर० बी० मिश्र)

माध्यस्थम् अधिनियम, 1940(1940 का 10)—धारा 20, 33 और 41 (ख) (सपठित संविदा से संलग्न सामान्य शर्तों का खण्ड 18)—पक्षकारों के बीच करार में माध्यस्थम् खण्ड के विद्यमान होते हुए संविदा का अन्तिम माना जाना—ऐसा होने पर भारत संघ द्वारा ठेकेदारों (अपीलार्थियों) के अन्य संविदाओं में बकाया बिलों की रकम का समायोजन करके संदाय रोकने का प्रश्न उत्पन्न होना—अपीलार्थियों द्वारा धारा 14 के अधीन, भारत संघ को संदाय रोकने से प्रतिबन्धित करने के लिए न्यायालय से व्यादेश जारी करने की याचना करना—ऐसा व्यादेश धारा 41 के अधीन जारी नहीं किया जा सकता। यद्यपि माध्यस्थम् कार्यवाहियों के लम्बित रहते हुए

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नुकसानी के दावों की रकम रोकने से तो प्रतिबन्धित किया जा सकता है किन्तु भारत संघ अन्य संविदाओं में बकाया बिलों की रकम को रोक सकता है।

इन अपीलों में पक्षकारों के बीच की गई संविदा के मानक प्रारूप में अन्तर्विष्ट संविदा की सामान्य शर्तों के खण्ड 18 के निर्वचन तथा माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 की धारा 41 की सीमा और विस्तार का एक समान प्रश्न उठाया गया है। तथ्य जिनके आधार पर ये अपीलें उद्भूत हुई हैं, समान प्रकृति के हैं और इसलिए इन अपीलों में उठाए गए मुद्दों पर विचार करने के लिए एक ही अपील के तथ्यों को अभिकथित कर देना ही पर्याप्त होगा। इस अपील में अपीलार्थी एक पंजीकृत फर्म है और वह इमारती लकड़ी के सन्निर्माण और विक्रय का कारबार करती है। आपूर्ति और व्ययन महानिदेशालय द्वारा प्रथम श्रेणी के बिजेसाल के लट्ठों की आपूर्ति के लिए निविदाएं आमंत्रित किए जाने पर अपीलार्थी-फर्म ने 669 रु० प्रति घन मीटर की समान दर पर 1,016 घन मीटर लकड़ी की आपूर्ति करने का प्रस्ताव रखा। आपूर्ति व्ययन और महानिदेशालय ने 24 दिसम्बर, 1973 को निविदा मंजूर कर ली। निविदा मंजूर किए जाने के अनुसरण में संविदा का मानक प्रारूप तैयार किया गया जिसमें विभिन्न खण्ड अन्तर्विष्ट किए गए। इनमें खण्ड 18 रकमों की वसूली और खण्ड 29 माध्यस्थम् से सम्बद्ध खण्ड थे। अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के बीच कुछ अन्य संविदाएं भी की गई थीं जिनके अधीन अपीलार्थी ने कुछ माल की आपूर्ति की थी और उसका संदाय बकाया बिलों के अधीन शोध्य था। अपीलार्थी-फर्म ने माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 33 के अधीन यह अभिकथन करते हुए न्यायालय में समावेदन किया कि पक्षकारों के बीच ऐसी कोई अन्तिम संविदा विद्यमान नहीं थी जिसमें कोई माध्यस्थम् खण्ड था और अन्य बातों के साथ-साथ यह याचना की कि अभिकथित माध्यस्थम् करार की विद्यमानता, वैधता और उसके प्रभाव का विनिश्चय किया जाए। इसके विपरीत भारत सरकार का यह कथन था कि पक्षकारों के बीच अन्तिम संविदा हो चुकी थी और अपीलार्थी-फर्म निविदा स्वीकार कर लिये जाने के कारण बाध्य थी। चूंकि भारत सरकार ने अन्य संविदाओं की बकाया बिलों के अधीन शोध्य 92,364 रुपए की रकम के संदाय को रोक लेने की धमकी दी है इसलिए अपीलार्थी-फर्म ने माध्यस्थम् अधिनियम तथा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 39, नियम 1 और 2 तथा धारा 151 के साथ पठित धारा 41 के अधीन व्यादेश जारी किए जाने की याचना की, जिसके जरिए प्रत्यर्थियों को किसी भी रीति में उसके अन्य बिलों के माध्यम

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Digitized by Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

से दावा की गई रकम को समायोजित करने, रोकने या वसूल करने से रोका जाए। उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश द्वारा प्रत्यर्थियों को ठेकेदारों के बकाया बिलों में से प्रत्यर्थी की रकम की वसूली, समायोजन, भुगतान रोक रखने से निर्बन्धित करते हुए व्यादेश जारी किए गए जिसके विरुद्ध विशेष इजाजत लेकर अपील फाइल किए जाने पर उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित—पक्षकारों के बीच माध्यस्थम् सहित कोई अन्तिम संविदा नहीं हुई थी इसलिए वर्तमान मामले में पारित व्यादेश माध्यस्थम् की कार्यवाहियों के प्रयोजन के लिए और उसके सम्बन्ध में किया गया आदेश नहीं है। (पैरा 17)

पक्षकारों के बीच माध्यस्थम् खण्ड सहित कोई अन्तिम संविदा नहीं हुई थी इसलिए यह कहना कठिन होगा कि अपीलार्थी द्वारा व्यादेश के लिए प्रस्तुत किया गया आवेदन-पत्र माध्यस्थम् कार्यवाहियों के प्रयोजन के लिए या उसके संबंध में किया गया था। बकाया बिलों के अधीन, अपीलार्थी को देय रकमें वर्तमान कार्यवाहियों की विषय-वस्तु नहीं थी और इसलिए प्रत्यर्थियों द्वारा अन्य ठेकों की बाबत बकाया बिलों द्वारा अपीलार्थी की शोध्य रकमों को रोकने के विरुद्ध प्रत्यर्थियों के विरुद्ध जारी किए गए व्यादेश के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि वह माध्यस्थम् कार्यवाहियों के प्रयोजन के लिए और उनकी बाबत किया गया था। न्यायालय को यह छूट नहीं थी कि वह अन्य संविदाओं की बाबत अपीलार्थी के बकाया बिलों की शोध्य रकम को रोक रखने पर प्रतिबन्ध लगाते हुए अन्तरिम व्यादेश पारित करता। (पैरा 20)

इस मामले में व्यादेश नकारात्मक प्रकृति का था। तथापि यदि कोई व्यादेश किसी पक्षकार को इस बात से रोकता है कि दूसरे पक्षकार की अन्य संविदाओं के बकाया बिलों की रकम न रोकी जाए, तो उस आदेश का निश्चित रूप से यही अर्थ होगा कि रकम का संदाय कर दिया जाए। यदि रकम रोक रखी जाती है, तो उससे व्यादेश की अवहेलना होगी और उस पक्षकार को व्यादेश का उल्लंघन करने के लिए फंसाया जा सकता है। यह कहना विरोधाभासपूर्ण होगा कि किसी पक्षकार को रकम रोक रखने से व्यादिष्ट किया गया है और इसके बावजूद भी वह साधिकार रकम को रोक सकता है। न्यायालय कोई आदेश इसलिए पारित नहीं करता, कि आदेश पारित करने में उसे आनन्द आता है। इसे इस प्रयोजन के लिए पारित किया जाता

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

है कि उसे पूरा किया जाए। जब एक बार न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंच गया कि द्वितीय अनुसूची के साथ पठित धारा 41 (ख) के अधीन न्यायालय को अन्तरिम व्यादेश जारी करने की शक्ति प्राप्त है, किन्तु ऐसा अन्तरिम व्यादेश केवल माध्यस्थम् कार्यवाहियों के प्रयोजन के लिए और उनकी बाबत ही पारित किया जा सकता है। अन्य संविदाओं के अधीन अपीलार्थी द्वारा प्रत्यर्थी को कोई रकम संदेय थी या नहीं, माध्यस्थम् कार्यवाही की विषय-वस्तु नहीं थी और इसलिए न्यायालय स्पष्टतः कोई अन्तरिम आदेश नहीं कर सकता भले ही कोई व्यादेश बाह्य रूप से और सारभूत रूप से अपीलार्थी के लिए ऐसे निर्देश की प्रकृति का क्यों न हो जिसके माध्यम से प्रत्यर्थी की अन्य संविदाओं की शोध्य रकम का संदाय किया जाना हो और ऐसा आदेश स्पष्टतः माध्यस्थम् कार्यवाहियों के सम्बन्ध में और उनके प्रयोजन के लिए नहीं माना जाएगा। (पैरा 22)

यह मत अब सुस्थापित हो चुका है कि किसी धारा या धारासमूह से पूर्व संलग्न शीर्ष या शीर्षक को संदिग्ध पदों का अर्थ अवधारित करने के लिए निर्दिष्ट किया जा सकता है। यह सत्य है कि न्यायालय संदिग्ध शब्दों के बारे में सन्देह का समाधान करने के लिए संसद् के आधार पर उस शीर्ष पर विचार करने का हकदार है। इस विषय पर विधि स्पष्ट है कि उन शीर्षों का प्रयोग जहां शब्दों के सामान्य अर्थ के बारे में कोई सन्देह नहीं किया जा सकता, वहां धारा में स्पष्ट शब्दों को भिन्न प्रभाव देने के लिए नहीं किया जा सकता। इस बारे में सर्वोत्तम नियम यह है कि जहां उपविधि के शब्द स्पष्ट, सीधे-सादे और संदिग्ध हों अर्थात् युक्तियुक्त रूप से उनका केवल एक ही अर्थ लगाया जा सकता हो, वहां न्यायालय उनके परिणाम पर ध्यान दिए बिना वही अर्थ देने के लिए बाध्य है। यह आधारभूत नियम है कि न्यायाधीश का कर्तव्य व्याख्या करना है न कि विधान रचना करना। यदि यही सिद्धान्त संविदा के मानक खण्ड 18 के निर्वचन पर भी लागू किया जाए तो यह बात स्पष्ट हो जाएगी कि इस खण्ड द्वारा असंदिग्ध रूप से संदाय के दावे को ही अनुध्यात किया गया है और भारत संघ को ठेकेदार को देय उसके अन्य बिलों की बकाया रकम को समायोजित करने की छूट नहीं है। (पैरा 27)

प्रत्यर्थियों को ठेकेदार के अन्य बकाया बिलों के अधीन शोध्य रकम को रोकने से निर्बन्धित करने वाला व्यादेश वस्तुतः ठेकेदार अपीलार्थी को रकम का संदाय करने का निदेश ही है। ऐसा आदेश स्पष्टतः माध्यस्थम्

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

अधिनियम की धारा 41 के खण्ड (ख) के सीमा-क्षेत्र के बाहर है। भारत संघ को ठेकेदार के अन्य दावों की रकम जो उसके पास पड़ी है, को अपने क्षतिपूर्ति के दावे के लिए वसूल करने या समायोजित करने से रोकते हुए व्यादेश जारी किए जाने में कोई आपत्ति नहीं है। किन्तु मानक संविदा का खण्ड 18 निश्चित रूप से भारत संघ को रकम रोक रखने की पर्याप्त शक्ति प्रदान करता है और भारत संघ द्वारा रकम को रोक रखने से प्रतिबंधित करने वाला कोई व्यादेश पारित नहीं किया जा सकता। (पैरा 30)

अवलम्बित निर्णय

		पैरा
[1974]	[1974] 2 उम० नि० प० 310=ए० आई० आर० 1974 एस० सी० 1265 : **भारत संघ बनाम रमण आयरन फाउण्ड्री** (Union of India *v.* Raman Iron Foundry);	9, 13; 21, 26
[1974]	[1974] 2 उम० नि० प० 310=ए० आई० आर० 1974 एस० सी० 1265 : **भारत संघ बनाम एयर फोम इण्डस्ट्रीज** (Union of India *v.* Air Foam Industries).	9

अनुसरित निर्णय

[1975]	ए० आई० आर० 1975 दिल्ली 248 : **मोहन मेकिन ब्रेवेरीज बनाम भारत संघ** (Mohan Meakin Breweries *v.* Union of India);	13
[1975]	ए० आई० आर० 1975 दिल्ली 27 : **मारवाड़ टैन्ट फैक्टरी बनाम भारत संघ** (Marwar Tent Factory *v.* Union of India);	13
[1973]	ए० आई० आर० 1973 दिल्ली 253 : **मैसर्स एयर फोम इण्डस्ट्रीज बनाम भारत संघ** (M/s. Air Foam Industries *v.* Union of India).	13

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सिविल अपीली अधिकारिता : 1982 की सिविल अपील सं० 2853 और 2863.

1978 के सिविल पुनरीक्षण सं० 3452 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के तारीख 24 जनवरी, 1980 वाले निर्णय और आदेश के विरुद्ध की गई अपीलें ।

अपीलार्थी की ओर से (1982 की सिविल अपील सं० 2853 में)	सर्वश्री डी० सी० सिंघानिया, राजू राम चन्द्रन, मुकुल मुदगल और जे० पी० गुप्त
अपीलार्थी की ओर से (1982 की सिविल अपील सं० 2863 में)	सर्वश्री एस० एन० कक्कड़, डी० सी० सिंघानिया, राजू राम चन्द्रन, मुकुल मुदगल और जे० पी० गुप्त
प्रत्यर्थी की ओर से (1982 की सिविल अपील सं० 2853 में)	श्री के० जी० भगत, अपर महान्यायवादी
प्रत्यर्थी की ओर से (1982 की सिविल अपील सं० 2863 में)	सर्वश्री गिरीश चन्द्र, सी० वी० सुब्बा राव और आर० एन० पोद्दार

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति आर० बी० मिश्र ने दिया ।

न्यायाधिपति मिश्र—

दोनों सम्बद्ध अपीलें क्रमशः इलाहाबाद उच्च न्यायालय और दिल्ली उच्च न्यायालय के क्रमशः तारीख 24 जनवरी, 1980 और 13 नवम्बर, 1979 वाले निर्णय और आदेश के विरुद्ध विशेष इजाजत लेकर की गई हैं । इनमें से प्रथम अपील माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 20 के अधीन की गई कार्यवाही से उद्भूत होती है जबकि दूसरी अपील माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 33 के अधीन की गई कार्यवाही से उद्भूत होती है ।

2. इन अपीलों में पक्षकारों के बीच की गई संविदा के मानक प्ररूप में अन्तर्विष्ट संविदा की सामान्य शर्तों के खण्ड 18 के निर्वचन तथा माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 41 की सीमा और विस्तार का एक समान प्रश्न उठाया गया है । तथ्य जिनके आधार पर ये अपीलें उद्भूत हुई हैं, समान प्रकृति के हैं और इसलिए इन अपीलों में हमारे समक्ष रखे गए मुद्दों पर

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विचार करने के लिए 1982 की सिविल अपील सं० 2863 से सम्बन्धित तथ्यों को अधिकथित कर देना ही पर्याप्त होगा ।

3. इस अपील में अपीलार्थी एक पंजीकृत फर्म है और वह इमारती लकड़ी के सन्निर्माण और विक्रय का कारबार करती है । भारत सरकार की ओर से आपूर्ति एवं व्ययन महानिदेशालय क्रेता संगठन के रूप में कार्य करता है और विभिन्न विभागों के लिए खरीद का काम करता है । आपूर्ति और व्ययन महानिदेशालय द्वारा प्रथम श्रेणी के बिजेसाल के लठ्ठों की आपूर्ति के लिए निविदाएं आमंत्रित किए जाने पर अपीलार्थी-फर्म ने 669 रुपए प्रति घन मीटर की समान दर पर 1,016 घन मीटर लकड़ी की आपूर्ति करने का प्रस्ताव रखा । आपूर्ति और व्ययन महानिदेशालय ने 24 दिसम्बर, 1973 को निविदा मंजूर कर ली । निविदा मंजूर किए जाने के अनुसरण में संविदा का मानक प्ररूप तैयार किया गया जिसमें विभिन्न खण्ड अन्तर्विष्ट किए गए। संविदा के मानक प्ररूप के दो महत्वपूर्ण खण्ड 18 और 24, जिनसे हम इस मामले में मुख्य रूप से सम्बद्ध हैं, इस प्रकार हैं—

"18. संदेय रकमों की वसूली : जब कभी ठेकेदार के विरुद्ध संविदा द्वारा या के अधीन कोई रकम संदेय हो जाती है तो क्रेता ठेकेदार द्वारा जमा की गई प्रतिभूति की रकम, यदि कोई हो, में से ऐसी रकम को पूर्णतः या भागतः समायोजित करके वसूल करने का हकदार होगा और पूर्वोक्त प्रयोजन के लिए ऐसी जमा प्रत्याभूत निक्षेप का रूप पर भाग स्वरूप पूर्णतः या भागतः जमा की गई प्रतिभूतियों को गया बचाने और/या उनमें से वसूली का हकदार होगा । प्रतिभूति के अ पर्याप्त होने की दशा में अतिशेष और यदि ठेकेदार द्वारा प्रतिभूति जमा नहीं कराई गई है तो वसूल की जाने वाली समस्त रकम तत्समय शोध्य रकम में से या तत्पश्चात् संविदा के अधीन या क्रेता अथवा सरकार या सचिव के माध्यम से संविदा करने वाले किसी अन्य व्यक्ति को शोध्य होने वाली किसी रकम में से समायोजन द्वारा वसूल की जाएगी । यदि ऐसी रकम इसके बावजूद भी वसूलीय सम्पूर्ण रकम के बराबर नहीं होती तो ठेकेदार मांग किए जाने पर क्रेता को शेष शोध्य रकम.....का संदाय करेगा ।"

"24. माध्यस्थम् : इन शर्तों के अधीन या संविदा की किसी विशेष शर्त के अधीन अथवा इस संविदा के सम्बन्ध में (ऐसे विषय को छोड़कर जिसके विनिश्चय के लिए इन शर्तों में या विशेष शर्तों

Agamnigam Digital Preservation Foundation

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

में विशेष रूप से उपबन्ध किया गया है) उद्भूत होने वाले किसी प्रश्न, विवाद या मतभेद को आपूर्ति एवं व्ययन महानिदेशालय द्वारा मध्यस्थ के रूप में नियुक्त विधि मंत्रालय के किसी एकमात्र अधिकारी को माध्यस्थम् के लिए निर्दिष्ट किया जाएगा। मध्यस्थ के सरकारी सेवक होने के संबंध में और इस सम्बन्ध में यह कि उसे ऐसे मामलों को निपटाना है जिसका संबंध ठेके से है अथवा यह कि सरकारी सेवक की हैसियत से अपने कर्तव्य के दौरान विवाद या मतभेद से सम्बद्ध सभी या किसी विषय पर अपना मत व्यक्त किया है, कोई आक्षेप नहीं किया जाएगा। माध्यस्थम् द्वारा किया गया पंचाट इस संविदा के पक्षकारों पर अन्तिम और बाध्यकारी होगा।"

4. तथापि अपीलार्थी माल की आपूर्ति करने में असफल रहे। संविदा 28 अगस्त, 1974 को अपीलार्थी के जोखिम और उसकी लागत पर रद्द कर दी गई। आपूर्ति और व्ययन महानिदेशालय का यह दावा है कि उसने कुछ खरीद जोखिम के आधार पर की थी जिस पर 92,364 रुपए का अतिरिक्त खर्च उपगत हुआ। आपूर्ति और व्ययन महानिदेशालय ने 27 दिसम्बर, 1974 को एक नोटिस जारी करके अपीलार्थी को वह रकम संदत्त करने के लिए कहा जिसमें असफल रहने पर उस रकम की वसूली के लिए वैकल्पिक उपाय किए जाएंगे।

5. ऐसा प्रतीत होता है कि अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के बीच कुछ अन्य संविदाएं भी की गई थीं जिनके अधीन अपीलार्थी ने कुछ माल की आपूर्ति की थी और उसका संदाय बकाया बिलों के अधीन शोध्य था।

6. अपीलार्थी-फर्म ने माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 33 के अधीन यह अभिकथन करते हुए न्यायालय में समावेदन किया कि पक्षकारों के बीच ऐसी कोई अन्तिम संविदा विद्यमान नहीं थी जिसमें कोई माध्यस्थम् खण्ड था और अन्य बातों के साथ-साथ यह याचना की कि अभिकथित माध्यस्थम् करार की विद्यमानता, वैधता और उसके प्रभाव का विनिश्चय किया जाए। इसके विपरीत भारत सरकार का यह कथन था कि पक्षकारों के बीच अन्तिम संविदा हो चुकी थी और अपीलार्थी-फर्म निविदा स्वीकार कर लिए जाने के कारण बाध्य थी।

7. चूंकि भारत सरकार ने अन्य संविदाओं के बकाया बिलों के अधीन शोध्य 92,364 रुपए की रकम के संदाय को रोक लेने की धमकी दी है इसलिए अपीलार्थी-फर्म ने माध्यस्थम् अधिनियम तथा सिविल प्रक्रिया

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

संहिता के आदेश 39, नियम 1 और 2 तथा धारा 151 के साथ पठित धारा 41 के अधीन व्यादेश जारी किए जाने की याचना की, जिसके जरिए प्रत्यर्थियों को किसी भी रीति में उसके अन्य बिलों के माध्यम से दावा की गई रकम को समायोजित करने, रोकने या वसूल करने से रोका जाए।

8. चूंकि एक ही उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के बीच इस प्रश्न को लेकर मतभेद था कि माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 41 के अधीन जिस व्यादेश के लिए याचना की गई है वह जारी किया जा सकता है अथवा नहीं, इसलिए विद्वान् एकल न्यायाधीश ने मामले को वृहत्तर न्यायपीठ के समक्ष निर्दिष्ट कर दिया। विद्वान् एकल न्यायाधीश का अपना मत यह था कि धारा 41 के अधीन व्यादेश जारी किया जा सकता है। इसके बावजूद खण्ड न्यायपीठ ने निर्देश किए जाने पर यह अभिनिर्धारित किया कि न्यायालय प्रत्यर्थी को निर्बन्धित करते हुए व्यादेश जारी कर सकता है, जिससे वह अपीलार्थी द्वारा किए गए क्षतिपूर्ति के दावे की रकम को बकाया बिलों में से समायोजित या वसूल न कर सके। किन्तु माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 41 के अधीन ऐसा कोई आदेश जारी नहीं किया जा सकता जिससे भारत संघ को अन्य बकाया बिलों का भुगतान रोक रखने से निर्बन्धित किया जा सके क्योंकि ऐसा करने का तात्पर्य यह होगा मानो वह अन्य बिलों के अधीन बकाया रकम का संदाय करने के लिए निर्देश कर रहा हो और ऐसी याचना का वस्तुतः तात्पर्य यह होगा कि उनके द्वारा संविदाओं में अपीलार्थी के दावे की डिक्री करके अनुतोष प्रदान किया जाए। अपीलार्थी, जैसा कि ऊपर बताया गया है, विशेष इजाजत लेकर इस आदेश के विरुद्ध हमारे समक्ष इस न्यायालय में अपील लेकर आया है।

9. ऐसा प्रतीत होता है कि माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 33 के अधीन दिल्ली उच्च न्यायालय में ऐसे ही विषयों को लेकर बड़ी संख्या में आवेदन प्रस्तुत किए गए हैं। उनमें से कुछ मामलों में विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा प्रत्यर्थियों को ठेकेदारों के बकाया बिलों में से प्रत्यर्थी की वसूली, समायोजन, भुगतान रोक रखने से निर्बन्धित करते हुए व्यादेश जारी किए गए हैं। इस न्यायालय द्वारा इन मामलों में से एक भारत संघ बनाम **एयर फोम इण्डस्ट्रीज**[1] का **विनिश्चय भारत संघ** बनाम **रमण आयरन फाउण्ड्री**[1] के मामले के साथ-साथ किया गया था। उस मामले में भारत संघ ने अपनी संविदा की शर्तों के खण्ड 18 द्वारा अपना मजबूत दावा

[1] [1974] 2 उम० नि० प० 310=ए० आई० आर० 1974 एस० सी० 1265.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रस्तुत किया कि वह दावा की गई गई क्षतिपूर्ति की रकम भारत संघ के पास भुगतान के लिए पड़े हुए ठेकेदार के अन्य बिलों में से, जो उसे देय हों, किसी रकम का समायोजन करके, वसूल कर सकता है। तथापि, इस न्यायालय ने इस अभिवाक् को इस आधार पर मानने से इनकार कर दिया कि भारत संघ द्वारा की गई क्षतिपूर्ति की रकम मात्र एक दावा है और जब तक दावे का न्यायनिर्णयन न्यायालय द्वारा न कर दिया जाए या ठेकेदार द्वारा स्वीकृति न दे दी जाए, तब तक भारत संघ को ठेकेदार के बकाया बिलों के अधीन शोध्य रकम में से अपनी क्षतिपूर्ति के दावे को पूरा करने के लिए समायोजन करने का कोई प्राधिकार नहीं है।

10. इस न्यायालय ने माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 41 (ख) के परिक्षेत्र का अर्थान्वयन करते हुए निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया—

> "अतः न्यायालय को द्वितीय अनुसूची के साथ पठित धारा 41 (ख) के अधीन अन्तरिम व्यादेश जारी करने की शक्ति प्राप्त है किन्तु ऐसा अन्तरिम व्यादेश केवल 'माध्यस्थम् कार्यवाहियों' के प्रयोजन के लिए और उनके सम्बन्ध में ही किया जा सकता है। प्रस्तुत मामले में माध्यस्थम् कार्यवाहियां तारीख 16 जुलाई, 1968 की निविदा स्वीकृति में अन्तर्विष्ट संविदा से उत्पन्न होने वाले अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के पारस्परिक दावों के अवधारण के लिए थीं। यह प्रश्न कि क्या अन्य संविदाओं के अधीन अपीलार्थी द्वारा प्रत्यर्थी को किन्हीं रकमों का संदाय किया जाना था, माध्यस्थम् कार्यवाहियों की विषयवस्तु नहीं था। अतः स्पष्ट है कि न्यायालय ऐसा अन्तरिम आदेश नहीं कर सकता था, जो देखने में तो अन्तरिम व्यादेश के आदेश के रूप में हो किन्तु सारतः अन्य संविदाओं के अधीन प्रत्यर्थी को शोध्य रकमों का संदाय करने के लिए अपीलार्थी को दिए जाने वाले निदेश की कोटि में आता हो। स्पष्ट रूप से ऐसा अन्तरिम आदेश माध्यस्थम् कार्यवाहियों के प्रयोजन के लिए और उनके संबंध में, जैसा कि धारा 41 (ख) द्वारा अपेक्षित है, नहीं होगा।"

11. माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 41 का निर्वचन करते हुए पूर्वोक्त अभिकथन करने के पश्चात् इस न्यायालय ने उस मामले में आक्षेपित व्यादेश के आदेश का विश्लेषण किया। उसकी राय में व्यादेश के आदेश में न तो अभिव्यक्त रूप से और न ही आवश्यक विवक्षा द्वारा भारत सरकार को कोई ऐसा निर्देश किया गया था कि वह अन्य संविदाओं के अधीन प्रत्यर्थी को देय रकमों का भुगतान करे। यह व्यादेश न केवल अपने स्वरूप

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

में बल्कि अपने सारभूत रूप में भी नकारात्मक व्यादेश है । इसमें कोई सकारात्मक तत्व नहीं है । इसके द्वारा मात्र इतना ही किया गया है कि अपीलार्थी को दावा की गई क्षतिपूर्ति प्रत्यर्थी के बकाया बिलों में से अपने आप वसूल करने से रोका गया है । इसमें ऐसा कोई निदेश नहीं किया गया है कि अपीलार्थी ऐसी रकम का संदाय प्रत्यर्थी को करेगा । अपीलार्थी भारत संघ, इसके बावजूद भी यदि वह ऐसा समझता है कि उसके पास वैध प्रतिरक्षा है तो वह ऐसी रकम का संदाय करने से इनकार कर सकता है और यदि अपीलार्थी ऐसा कर देता है तो प्रत्यर्थी के पास केवल यही रास्ता होगा कि वह उपयुक्त न्यायालय के माध्यम से ऐसी रकम की वसूली का उपाय करे जिसके द्वारा यह विनिश्चय किया जाएगा कि अपीलार्थी से ऐसी रकम का संदाय प्रत्यर्थी को करने के लिए दायी है या नहीं । प्रत्यर्थी द्वारा अपीलार्थी को ऐसी रकम का संदाय न करने से अन्तरिम व्यादेश का उल्लंघन नहीं होता केवल एक ही बात जिससे अपीलार्थी को रोका गया है, वह यह है कि वह अपनी क्षतिपूर्ति के दावे का समायोजन अपने दावे के भुगतान के लिए ऐसी रकम में से नहीं कर सकता । यह बात स्पष्टतः धारा 41 (ख) के अधीन न्यायालय की शक्ति के भीतर है क्योंकि क्षतिपूर्ति के लिए किया गया दावा माध्यस्थम् कार्यवाही का ही एक विषय है और न्यायालय सदैव यह कह सकता है कि जब तक ऐसे दावे का न्यायनिर्णयन नहीं हो जाता, तब तक अपीलार्थी को प्रत्यर्थी को अन्य बकाया रकमों में से समायोजन द्वारा वसूली से रोक दिया जाएगा । इसलिए विद्वान् न्यायाधीश द्वारा किए गए अन्तरिम व्यादेश के बारे में यह कहा जाएगा कि वह द्वितीय अनुसूची के साथ पठित धारा 41 (ख) के क्षेत्र और उसकी शक्ति के बाहर है ।

12. उच्चतम न्यायालय के निर्णय का अनुसरण करते हुए दिल्ली उच्च न्यायालय ने भी तदनुसार अपने व्यादेशों को अनुकूल करना आरम्भ कर दिया और व्यादेश में इस आधार पर "रोक रखना" शब्दों को सम्मिलित करने से इनकार कर दिया कि इन शब्दों में आदेश देने का तात्पर्य वस्तुतः संदाय करने का आदेश देना होगा, जिसे इस न्यायालय के उक्त निर्णय की भाषा अनुसार विनिर्दिष्ट रूप से रोक दिया गया है ।

13. चूंकि दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा भारत संघ बनाम रमण आयरन फाउण्डरी[1] वाले पूर्वोक्त मामले के निर्णयाधार के वास्तविक परिक्षेत्र के बारे में कुछ संदेश व्यक्त किया गया था, इसलिए मामला पूर्ण न्यायपीठ

[1] [1974] 2 उम० नि० प० 310=ए० आई० आर० 1974 एस० सी० 1265.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के समक्ष निर्दिष्ट कर दिया गया था जिससे कि मारवाड़ टेंट फैक्टरी बनाम भारत संघ[1] और मैसर्स एयर फोम इण्डस्ट्रीज बनाम भारत संघ[2] वाले मामलों में पूर्वतर खण्ड न्यायपीठों द्वारा दिए गए निर्णयों पर पुनः विचार किया जा सके। पूर्ण न्यायपीठ ने मोहन मेकिन ब्रेवेरीज बनाम भारत संघ[3] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया कि यद्यपि उन मामलों में भारत संघ को ठेकेदारों के बकाया बिलों में से अपनी क्षतिपूर्ति के दावे को समायोजित करने या वसूली करने से निर्बन्धित करते हुए व्यादेश जारी किया जा सकता है, किन्तु ठेकेदारों के अन्य बकाया बिलों के अधीन देय रकमों को रोकने के विरुद्ध भारत संघ के विरुद्ध कोई व्यादेश नहीं जारी किया जा सकता।

14. खण्ड न्यायपीठ ने पूर्ण न्यायपीठ के विनिश्चय का अनुसरण करते हुए वर्तमान मामले में यह अभिनिर्धारित किया कि माध्यस्थम् की कार्यवाहियों के दौरान न्यायालय भारत सरकार के विरुद्ध अपीलार्थी ठेकेदार के अन्य बकाया बिलों के जरिये देय रकम को रोक रखने के लिए व्यादेश जारी करने के लिए सक्षम किया था। अपीलार्थी को प्राप्त एकमात्र उपचार यह है कि वह बकाया बिलों के अधीन शोध्य रकम के संदाय के लिए प्रत्यर्थियों से माध्यस्थम् कार्यवाहियों से भिन्न कार्यवाही करे। तथापि न्यायालय भारत संघ को उसके द्वारा दावा की गई क्षतिपूर्ति की रकम को जब तक उसका न्यायनिर्णयन न हो जाए या अन्य पक्षकार द्वारा उसे स्वीकार न कर लिया जाए, अपीलार्थी ठेकेदार के बकाया बिलों में से वसूल करने या समायोजित करने से रोक सकता है।

15. इस अपील में जो सर्वप्रथम विचारणीय प्रश्न है वह माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 41 के वास्तविक परिक्षेत्र और सीमा के सम्बन्ध में है। इस प्रक्रम में अपीलार्थी की ओर से रखी गई दलीलों से अवगत कराने के लिए यह उपयुक्त होगा कि धारा 41 को पढ़ लिया जाए—

> "41. **न्यायालय की प्रक्रिया और शक्तियां**—इस अधिनियम और तदधीन बनाए गए नियमों के उपबन्धों के अधीन रहते हुए—
>
> (क) सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के उपबन्ध इस अधिनियम के अधीन न्यायालय के समक्ष की सब कार्यवाहियों को और सब अपीलों को लागू होंगे; तथा

---

[1] ए० आई० आर० 1975 दिल्ली 27.
[2] ए० आई० आर० 1973 दिल्ली 253.
[3] ए० आई० आर० 1975 दिल्ली 248.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(ख) माध्यस्थम् कार्यवाहियों के प्रयोजन के लिए और उनके संबंध में न्यायालय को द्वितीय अनुसूची में उपवर्णित विषयों में से किसी के बारे में आदेश पारित करने की वही शक्ति होगी जो उसे न्यायालय के समक्ष की किन्हीं कार्यवाहियों के प्रयोजन के लिए और उनके सम्बन्ध में हो:

परन्तु खण्ड (ख) में की कोई भी बात किसी ऐसी शक्ति पर जो ऐसे विषयों में से किसी के बारे में आदेश देने के लिए मध्यस्थ या अधिनिर्णायक में निहित हो, प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली नहीं समझी जाएगी।"

धारा 41 के खण्ड (ख) को ध्यान में रखते हुए, न्यायालय को द्वितीय अनुसूची में अधिकथित विषयों में से किसी की बाबत न्यायालय के समक्ष लम्बित किसी कार्यवाही के प्रयोजन के लिए और उसके सम्बन्ध में आदेश पारित करने की शक्ति दी गई है। माध्यस्थम् अधिनियम की द्वितीय अनुसूची में अन्य बातों के साथ-साथ 'अन्तरिम व्यादेश जारी करने' और 'प्रापक की नियुक्ति' को भी सम्मिलित किया गया है। किन्तु न्यायालय को न्यायालय के समक्ष चल रही केवल 'माध्यस्थम् की कार्यवाहियों की बाबत और के प्रयोजन के लिए ही' व्यादेश पारित करने की शक्ति दी गई है।

16. वर्तमान मामले में न्यायालय के समक्ष चल रही कार्यवाही के माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 33 के अधीन प्रस्तुत किया गया एक आवेदन था। माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 33 जहां तक वह इस मामले से सुसंगत है, इस प्रकार उपबन्धित किया गया है—

"33. माध्यस्थम् करार का कोई पक्षकार या उससे व्युत्पन्न अधिकार के अधीन दावा करने वाला कोई व्यक्ति, जो माध्यस्थम् करार या पंचाट के अस्तित्व या उसकी विधिमान्यता को चुनौती देना या उन दोनों में से किसी के प्रभाव का अवधारण करना चाहता हो, न्यायालय में आवेदन करेगा और न्यायालय प्रश्न का विनिश्चय शपथपत्रों के आधार पर करेगा।"

17. वर्तमान मामले में अपीलार्थी ने यह तर्क अपनाया कि पक्षकारों के बीच माध्यस्थम् सहित कोई अन्तिम संविदा नहीं हुई थी इसलिए वर्तमान मामले में पारित व्यादेश माध्यस्थम् की कार्यवाहियों के प्रयोजन के लिए और उसके सम्बन्ध में किया गया आदेश नहीं है। इस कठिनाई को देखते हुए, अपीलार्थी के विद्वान काउन्सेल श्री एस० एन० कक्कड़ यह दलील देने

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के लिए धारा 41 के खण्ड (क) की ओर वापस मुड़ कि खण्ड (क) सिविल प्रक्रिया संहिता को न्यायालय के समक्ष लम्बित समस्त कार्यवाहियों के आधार पर और अधिनियम के अधीन की गई समस्त अपीलों पर लागू कर देता है इसलिए अपीलार्थी धारा 41 के खण्ड (ख) की शर्त को न पूरा करने के बावजूद भी व्यादेश प्राप्त करने के लिए संहिता के आदेश 31 का आश्रय लेने का हकदार है।

18. धारा 41 का खण्ड (क) माध्यस्थम् अधिनियम के अधीन न्यायालय की कार्यवाहियों में लागू होने वाले सिविल प्रक्रिया संहिता के लिए मात्र प्रक्रिया सम्बन्धी नियम बनाता है। इस खण्ड द्वारा न्यायालय को व्यादेश पारित करने का प्राधिकार नहीं दिया गया है। यह शक्ति धारा 41 के खण्ड (ख) द्वारा प्रदान की गई है इसलिए शक्ति के स्रोत को खण्ड (क) में नहीं ढूंढा जा सकता। यदि श्री कपकड़ की दलील को स्वीकार कर लिया जाए तो अपीलें सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 96, धारा 100 या धारा 104 के अधीन की गई मानी जाएंगी। जबकिमाध यस्थम् अधिनियम में ही अपील फाइल करने के लिए धारा 39 में उपबन्ध किया गया है। इसके अतिरिक्त, यदि धारा 41 के खण्ड (क) द्वारा व्यादेश पारित करने की व्यापक शक्तियां प्रदान की गई हैं, तो धारा 41 का खण्ड (ख) बेकार हो जाता है।

19. इसके बावजूद, अपीलार्थी के विद्वान काउन्सेल ने यह दलील दी कि माध्यस्थम् कार्यवाहियों का सम्बन्ध भारत सरकार द्वारा क्षतिपूर्ति का दावा किए जाने से है। भारत संघ का कोई भी कृत्य जिसके माध्यम से माध्यस्थम् कार्यवाहियों में सम्यक् रूप से न्यायनिर्णयन करने से पूर्व ही क्षतिपूर्ति का उक्त दावा प्रवृत्त कराया जाना है, ऐसा कृत्य है जो ऐसी माध्यस्थम् की कार्यवाही से सम्बद्ध है।

20. अपीलार्थी की एक समस्या यह भी है कि पक्षकारों के बीच के माध्यस्थम् खण्ड सहित कोई अन्तिम संविदा नहीं हुई थी इसलिए यह कहना कठिन होगा कि अपीलार्थी द्वारा व्यादेश लिए प्रस्तुत किया गया आवेदन-पत्र माध्यस्थम् कार्यवाहियों के प्रयोजनके लिए या उनके सम्बन्ध में किया गया आवेदन था। इसके अतिरिक्त बकाया बिलों के अधीन अपीलार्थी को देय रकमें वर्तमान कार्यवाहियों की विषयवस्तु नहीं थीं और इसलिए प्रत्यर्थियों द्वारा अन्य ठेकों की बाबत बकाया बिलों द्वारा अपीलार्थी की शोध्य रकमों को रोकने के विरुद्ध प्रत्यर्थियों के प्रति जारी किए गए व्यादेश के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि वह माध्यस्थम्

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कार्यवाहियों के प्रयोजन के लिए और उनकी बाबत किया गया था। मामले को इस दृष्टि से देखते हुए, न्यायालय को यह छूट नहीं थी कि वह अन्य संविदाओं की बाबत अपीलार्थी के बकाया बिलों की शोध्य रकम को रोक रखने पर प्रतिबन्ध लगाते हुए अन्तरिम व्यादेश पारित करता।

21, विद्वान् काउन्सेल श्री कक्कड़ ने इसके बावजूद मजबूती से इस न्यायालय द्वारा भारत संघ बनाम रमण आयरन फाउण्डरी[1] (पूर्वोक्त) वाले मामले में किए गए निम्नलिखित अवलोकनों का आश्रय लिया—

> "किन्तु इस मामले में विद्वान् न्यायाधीश द्वारा किए गए अन्तरिम व्यादेश का आदेश, अभिव्यक्त: अथवा आवश्यक विवक्षा द्वारा, अपीलार्थी के लिए कोई ऐसा निदेश नहीं है कि वह अन्य संविदाओं के अधीन प्रत्यर्थी को शोध्य रकमों का संदाय करे। न केवल वस्तुत: बल्कि सारत: यह एक नकारात्मक व्यादेश है। यह किसी भी प्रकार सकारात्मक नहीं है। इसका कार्य अपीलार्थी द्वारा दावा की गई नुकसानी को स्वप्रेरणा से प्रत्यर्थी को शोध्य किन्हीं अन्य रकमों में से वसूल करने से रोकना है। इसमें यह निदेश नहीं दिया गया है कि अपीलार्थी प्रत्यर्थी को ऐसी रकमों का संदाय करेगा। अपीलार्थी अभी भी ऐसी रकमों का संदाय करने से इनकार कर सकता है यदि उसका यह विचार है कि उसके पास विधिमान्य प्रतिरक्षा है और यदि अपीलार्थी ऐसा करता है तो प्रत्यर्थी के लिए उपलब्ध एकमात्र उपचार ऐसी रकमों की वसूली के लिए समुचित न्यायलय में कार्यवाही करना है, जहां यह विनिश्चित किया जाएगा कि क्या अपीलार्थी प्रत्यर्थी को ऐसी रकमों का संदाय करने के दायित्वाधीन है। इस प्रकार अपीलार्थी द्वारा प्रत्यर्थी को ऐसी रकमों का संदाय न होने की दशा में, अन्तरिम व्यादेश के आदेश का कोई भंग नहीं होगा। अपीलार्थी को जिस बात से निषिद्ध किया गया है वह दावे की तुष्टि में ऐसी रकमों को विनियोजित करके नुकसानी के दावे की वसूली करना है। धारा 41 (ख) के अधीन यह स्पष्ट रूप से न्यायालय की शक्ति के भीतर है, क्योंकि नुकसानी के लिए दावा माध्यस्थम् कार्यवाहियों की विषयवस्तु है और न्यायालय सदैव यह कह सकता है कि जब तक ऐसे दावे का न्यायनिर्णयन नहीं हो जाता तब तक अपीलार्थी को उन अन्य रकमों को विनियोजित करके

[1] [1974] 2 उम० नि० प० 310=ए० आई० आर० 1974 एस० सी० 1265.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उनकी वसूली करने से अवरुद्ध किया जायेगा जो प्रत्यर्थी को शोध्य हैं। अतः विद्वान न्यायाधीश द्वारा किए गए अन्तरिम व्यादेश के आदेश के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि वह द्वितीय अनुसूची के साथ पठित धारा 41 (ख) के अधीन उसकी शक्ति के प्रविषय से बाहर है।"

सम्पूर्ण सम्मान के साथ हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि पूर्वोक्त अवलोकन इस न्यायालय द्वारा ठीक इससे पूर्व किए गए अवलोकनों में अधिकथित विधि की प्रस्थापना के प्रतिकूल हैं, हमारे लिए न्यायालय के इस अवलोकन से सहमत होना कठिन है कि आक्षेपित आदेश अपने प्रारूप और सारभूत रूप में नकारात्मक है और प्रत्यर्थी यदि यह समझते हैं कि उनके पास वैध प्रतिरक्षा है, तो रकम का भुगतान करने से इनकार कर सकते है और यदि वे ऐसा करना चाहते हैं, तो उससे व्यादेश भंग नहीं होता।

22. यह सत्य है कि इस मामले में व्यादेश नकारात्मक प्रकृति का था। तथापि यदि कोई व्यादेश किसी पक्षकार को इस बात से रोकता है कि दूसरे पक्षकार की अन्य संविदाओं के बकाया बिलों की रकम न रोकी जाए तो उस आदेश का निश्चित रूप से यही अर्थ होगा कि रकम का संदाय कर दिया जाए। यदि रकम रोक रखी जाती है, तो उससे व्यादेश की अवहेलना होगी और उस पक्षकार को व्यादेश का उल्लंघन करने के लिए फंसाया जा सकता है। यह कहना विरोधाभासपूर्ण होगा कि किसी पक्षकार को रकम रोक रखने से व्यादिष्ट किया गया है और इसके बावजूद भी वह साधिकार रकम को रोक सकता है। किसी भी दशा में यदि व्यादेश ऐसी प्रकृति का है जिसका अनुपालन करने के लिए पक्षकार बाध्य नहीं थी, तो ऐसे अप्रभावी व्यादेश को पारित करने के लिए न्यायालय को अनिच्छुक होना चाहिए। न्यायालय कोई आदेश इसलिए पारित नहीं करता, कि आदेश पारित करने में उसे आनन्द आता है। इसे इस प्रयोजन के लिए पारित किया जाता है कि उसे पूरा किया जाए। जब एक बार न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंच गया कि द्वितीय अनुसूची के साथ पठित धारा 41(ख) के अधीन न्यायालय को अन्तरिम व्यादेश जारी करने की शक्ति प्राप्त है, किन्तु ऐसा अन्तरिम व्यादेश केवल माध्यस्थम् कार्यवाहियों के प्रयोजन के लिए और उनकी बाबत ही पारित किया जा सकता है और आगे यह प्रश्न कि अन्य संविदाओं के अधीन अपीलार्थी द्वारा प्रत्यर्थी को कोई रकम संदेय थी या नहीं, माध्यस्थम् कार्यवाही की विषयवस्तु नहीं थी और इसलिए न्यायालय स्पष्टतः कोई अन्तरिम आदेश नहीं कर सकता भले ही कोई व्यादेश बाह्य रूप से और

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सारभूत रूप से अपीलार्थी के लिए ऐसे निर्देश की प्रकृति का क्यों न हो जिसके माध्यम से प्रत्यर्थी की अन्य संविदाओं की शोध्य रकम का संदाय किया जाना हो और ऐसा आदेश स्पष्टतः माध्यस्थम् कार्यवाहियों के सम्बन्ध में और उनके प्रयोजन के लिए नहीं माना जाएगा। न्यायालय का बाद में किया गया अवलोकन कि अपने स्वरूप और सारभूत रूप में व्यादेश के नकारात्मक रूप में होने से प्रत्यर्थियों के लिए कोई निर्देश नहीं बनता कि वे अन्य संविदाओं के अधीन बकाया बिलों की रकम अपीलार्थी को संदत्त करें। यह बात स्पष्ट रूप से इस प्रकार के मामलों में इस न्यायालय द्वारा अधिकथित प्रस्थापना से असंगत है।

23. इसके द्वारा हमें मानक संविदा के खण्ड 18 के निर्वचन के प्रश्न पर विचार करना होगा। खण्ड 18 को निर्णय के आरम्भिक भाग में विस्तार से उद्धृत किया गया है।

24. भारत संघ की ओर से अपर महान्यायवादी श्री के० जी० भगत ने यह तर्क दिया कि खण्ड 18 को लागू करने की सबसे बड़ी अपेक्षा यह थी कि ठेकेदार के विरुद्ध संविदा के अधीन या उससे अद्भूत होने वाली कोई रकम संदेय है या नहीं और यह आवश्यक नहीं है कि रकम ठेकेदार द्वारा वस्तुतः क्रेता को शोध्य और संदेय हो ही गई हो। उनके अनुसार यदि क्रेता का ठेकेदार से रकम पाने का दावा बनता है, तो वह खण्ड 18 के अधीन दिए गए अधिकार के प्रयोग का हकदार है, भले ही वह दावा किसी शोध्य और संदेय रकम के लिए न हो अपितु क्षतिपूर्ति के लिए ही क्यों न हो और भले ही ठेकेदार ने उस पर विवाद किया हो और उस पर न्यायालय द्वारा या माध्यस्थम् द्वारा न्यायनिर्णयन न किया गया हो। श्री भगत आगे यह निवेदन करते हैं कि यदि क्रेता ने दावा ठीक आधार पर नहीं किया है और भारत संघ द्वारा किया गया समायोजन युक्तियुक्त नहीं है, तो ठेकेदार अपनी उस शोध्य रकम की वसूली के लिए जिसे क्रेता द्वारा गलत ढंग से समायोजित कर लिया गया है, कभी भी कोई वाद दायर कर सकता है या माध्यस्थम् की कार्यवाही आरम्भ कर सकता है और ऐसे वाद या माध्यस्थम् की कार्यवाही में यथास्थिति, न्यायालय या माध्यस्थम् उस दावे की वैधता की परीक्षा करेगा, जिसका समायोजन उस क्रेता द्वारा कर लिया गया है और यदि दावा चलने योग्य नहीं पाया जाता तो वह समायोजन को समाप्त कर देगा और ठेकेदार को शोध्य रकम की डिक्री या पंचाट पारित कर देगा। किन्तु न्यायालय भारत संघ को अपने समायोजन के अधिकार से मात्र इसलिए नहीं रोक सकता कि जिस दावे के विरुद्ध क्रेता द्वारा समायोजन किया जाना

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Ch

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

चाहिए, उस पर ठेकेदार ने विवाद किया है और न्यायालय या माध्यस्थम् के समक्ष उस पर न्यायनिर्णयन की कार्यवाही चल रही है।

25. इसके विपरीत, श्री कक्कड़ ने यह दलील दी कि यद्यपि खण्ड 18 के आरम्भिक भाग में प्रयोग किए गए शब्द "किसी रकम या धन के संदाय के लिए किया गया कोई वाद" जो देखने में तो सामान्य शब्द हैं किन्तु इनका बहुत व्यापक आयाम है जिसके भीतर संविदा से उद्भूत होने वाली क्षतिपूर्ति भी आ जाती है। सम्पूर्ण रूप से पढ़े जाने पर इस खण्ड के समुचित अर्थान्वयन से यह प्रकट होता है कि इन शब्दों के अन्तर्गत केवल किसी शोध्य या देय रकम का दावा ही आशयित है और इसमें ठेकेदार द्वारा विवादित क्षतिपूर्ति का कोई दावा सम्मिलित नहीं है। क्षतिपूर्ति के लिए किए गए दावे का किसी सिविल न्यायालय या किसी माध्यस्थम् द्वारा शोध्य और संदेय ऋण पर न्यायनिर्णयन किए जाने पर और संविदा भंग किए जाने की बात स्थापित हो जाने पर तथा क्षतिपूर्ति की राशि सुनिश्चित और डिक्री पारित कर दिए जाने पर ही कोई ऋण विद्यमान और देय माना जाता है। इसके पहले यह और कुछ नहीं बल्कि क्षतिपूर्ति के लिए दावा करने का अधिकार मात्र होता है और यह खण्ड 18 की शब्दावली के भीतर नहीं आता। इसके अतिरिक्त, खण्ड 18 में केवल वसूली की पद्धति उपबंधित की गई है और जहां किसी दावे को ठेकेदार द्वारा विवादित किया गया है, भले ही वह किसी शोध्य और संदेय रकम के बारे में ही क्यों न हो, और जिसे किसी न्यायालय या माध्यस्थम् द्वारा न्यायनिर्णीत किया जाना है, वहां यह लागू नहीं होता। खण्ड 18 केवल वहीं लागू होता है जहां कोई दावा या तो स्वीकार कर लिया गया है या विवाद की दशा में न्यायालय द्वारा उसे सिद्ध कर दिया गया हो। इसलिए, जहां किसी क्रेता ने क्षतिपूर्ति का कोई ऐसा दावा किया हो जिस पर ठेकेदार ने विवाद किया हो, वहां क्रेता खण्ड 18 के अधीन तब तक ठेकेदार को शोध्य अन्य रकमों में से क्षतिपूर्ति के दावे को समायोजित कर वसूली करने का हकदार नहीं होता जब तक कि क्षतिपूर्ति के दावे का न्यायनिर्णय न हो जाए और वह डिक्री में परिणत न हो जाए। परिणामस्वरूप प्रत्यर्थी को खण्ड 18 के अधीन अपीलार्थी को क्षतिपूर्ति के अपने दावे को पूरा करने के लिए ठेकेदार को अन्य ठेकों के अधीन शोध्य रकम में से क्षतिपूर्ति को समायोजित करने का अधिकार नहीं है जबकि क्षतिपूर्ति का दावा अभी न्यायनिर्णयनाधीन है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

26. इस न्यायालय ने भारत संघ बनाम रमण आयरन फाउण्ड्री[1] वाले (पूर्वोक्त) मामले में मानक संविदा के खण्ड 18 का अर्थान्वयन करते हुए निम्नलिखित अवलोकन किया था—

"यह सत्य है कि खण्ड 18 के आरम्भिक भाग में आने वाले 'धन-राशि के संदाय का कोई दावा' शब्द इतने अधिक महत्वपूर्ण हैं, कि नुकसानी के लिए दावे को व्याप्त भी अपने में सम्मिलित कर सकते हैं किन्तु निर्वचन का यह सुस्थिर सिद्धान्त है, जो लिखतों और कानूनों दोनों को समान रूप से लागू होता है कि मामूली शब्दों का अर्थ इतना अधिक भाषा के व्युत्पत्तिमूलक औचित्य या सामान्य प्रयोग को ध्यान में रखकर नहीं समझा जाना चाहिए जितना कि उस विषय या अवसर के अनुसार जिसके सन्दर्भ में इतना प्रयोग किया गया हो और उस उद्देश्य के अनुसार जिसकी पूर्ति उनसे आशयित हो। किसी विशिष्ट सन्दर्भ और विन्यास से यह दर्शित हो सकता है कि इसे उस भाव में प्रयुक्त किया जाना आशयित नहीं था जो मामूली तौर पर उसमें भाव है। कुछ भी हो, भाषा अभिव्यक्ति का एक अपूर्ण माध्यम है और किसी शब्द अथवा पद में बहुत से अर्थ छिपे हो सकते हैं। किसी शब्द अथवा पद के अर्थ का सही भाव और स्वरूप, उसे अलग से पढ़ कर अभिनिश्चित किया जाना चाहिए बल्कि उसे उस विन्यास और संदर्भ में पढ़ा जाना चाहिए, क्योंकि उसका अर्थ उसकी संदर्भगत स्थिति के साथ बदल सकता है। अतः हमें खण्ड 18 के आरम्भिक भाग में आने वाले 'धनराशि के संदाय का कोई दावा' शब्दों को अलग करके नहीं बल्कि सम्पूर्ण खण्ड के सन्दर्भ में समझना चाहिए क्योंकि पक्षकारों के आशय को खण्ड के किसी एक भाग से अथवा अन्य भाग से नहीं बल्कि सम्पूर्ण खण्ड से समझना होगा। निर्वचन के इस सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुए ही, हमें यह अभिनिर्धारित करना चाहिए कि 'धनराशि के संदाय का कोई दावा' शब्द केवल शोध्य और संदेय राशि के दावे के प्रति जिसे स्वीकार किया गया है अथवा विवाद की दशा में, जिसे न्यायालय में अथवा माध्यस्थम् द्वारा सिद्ध किया गया है, निर्देश करते हैं या उनके अन्तर्गत नुकसानी के लिए ऐसा दावा भी है जिस पर ठेकेदार ने विवाद किया है।"

---

[1] [1974] 2 उम० नि० प० 310=ए० आई० आर० 1964 एस० सी० 1265.

Agamnigam Digital Preservation Foundation

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

27. कतिपय आधुनिक उप-विधियों में किसी धारा या धारा-समूह से पहले जोड़ा गया शीर्ष ही यथास्थिति, उस धारा की या उन धाराओं की उद्देशिका समझ लिया जाता है। उनके द्वारा उपविधि के स्पष्ट शब्दों को नियंत्रित नहीं किया जा सकता किन्तु उनके द्वारा संदिग्ध शब्दों में स्पष्ट किया जा सकता है। यह मत अब सुस्थापित हो चुका है कि किसी धारा या धारा समूह से पूर्व संलग्न शीर्ष या शीर्षक को संदिग्ध पदों का अर्थ अवधारित करने के लिए निर्दिष्ट किया जा सकता है। यह सत्य है कि न्यायालय संदिग्ध शब्दों के बारे में सन्देह का समाधान करने के लिए संसद् के आधार पर उस शीर्ष पर विचार करने का हकदार है। इस विषय पर विधि स्पष्ट है कि उन शीर्षों का प्रयोग जहां शब्दों के सामान्य अर्थ के बारे में कोई सन्देह नहीं किया जा सकता, वहां धारा में स्पष्ट शब्दों को भिन्न प्रभाव देने के लिए नहीं किया जा सकता। इस बारे में सर्वोत्तम नियम यह है कि जहां उपविधि के शब्द स्पष्ट, सीधे-सादे और असंदिग्ध हों अर्थात् युक्तियुक्त रूप से उनका केवल एक ही अर्थ लगाया जा सकता हो, वहां न्यायालय उनके परिणाम पर ध्यान दिए बिना वही अर्थ देने के लिए बाध्य है। यह आधारभूत नियम है कि न्यायाधीश का कर्तव्य व्याख्या करना है न कि विधान रचना करना। यदि हम यही सिद्धान्त संविदा के मानक खण्ड 18 के निर्वचन पर भी लागू करें तो यह बात स्पष्ट हो जाएगी कि इस खण्ड द्वारा असंदिग्ध रूप से दावे को ही अनुध्यात किया गया है और भारत संघ को ठेकेदार को देय उसके अन्य बिलों की बकाया रकम को समायोजित करने की छूट नहीं है। इसमें शोध्य रकम अनुध्यात नहीं है इसलिए इस खण्ड का शीर्ष जिसमें केवल 'शोध्य रकम की वसूली' की बात कही गई है, खण्ड 18 को नियंत्रित नहीं करेगा। हमारी राय में, इस खण्ड के अधीन भारत संघ को ठेकेदार को शोध्य कोई रकम या बाद में किसी अन्य ठेकों के अधीन शोध्य होने वाली किसी रकम को समायोजन द्वारा वसूली की व्यापक शक्ति प्राप्त है।

28. संविधान के खण्ड 18 के पूर्ववर्ती मानक प्ररूप की शब्दावली कुछ भिन्न थी और यह इस प्रकार थी : 'जब कभी इस संविदा के अधीन ठेकेदार से कोई रकम वसूल करनी हो या उसे संदेय हो' किन्तु जब वर्तमान मानक प्ररूप लाया गया तब जानबूझकर और परामर्श के साथ उन शब्दों के स्थान पर 'जब कभी किसी रकम के संदाय का दावा उद्भूत होता है' शब्द रखे गए और वाक्य रचना में इस परिवर्तन से यह उपदर्शित होता है कि वर्तमान खण्ड 18 को लागू करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि ठेकेदार द्वारा क्रेता को कोई रकम शोध्य या संदेय हो अपितु क्रेता की

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ओर से ठेकेदार पर रकम के संदाय का दावा किया जाना ही पर्याप्त है भले ही ऐसी रकम वर्तमान समय में शोध्य और संदेय हो या नहीं। तथापि इस न्यायालय ने निम्नलिखित अवलोकन करते हुए मामले के इस पहलू को कोई महत्व नहीं दिया—

> "हमारा यह विचार है कि पक्षकारों के बीच संविदा के खण्ड 18 का किसी समविषयक खण्ड के प्रति निर्देश करके, जो संविदा के पूर्वतर मानक प्ररूप में था, अर्थान्वयन करना विधिसम्मत नहीं है। विधानमण्डल द्वारा अधिनियमित कोई भी कानून ऐसा नहीं है जिसमें यह कहा जा सके कि यदि विधानमण्डल ने पूर्ववर्ती अधिनियमिति में प्रयुक्त भाषा को बदल दिया है तो यह उपधारणा करना उचित होगा कि उस भाषा में परिवर्तन विमर्शित रूप से किया गया था और वह भिन्न अर्थ देने के लिए आशयित था। जिसका हम अर्थान्वयन कर रहे हैं, वह संविदा का एक खण्ड है और ऐसा करते समय किसी अन्य संविदा में उसके समान या असमान किसी खण्ड के प्रति निर्देश असंगत होगा।"

न्यायालय ने संविदा के खण्ड 18 का अर्थान्वयन करते हुए स्वयं निम्नलिखित अवलोकन किया है—

> "यह सत्य है कि खण्ड 18 के आरम्भिक भाग में आने वाले 'धन-राशि के संदाय का कोई दावा' शब्द इतने अधिक महत्वपूर्ण हैं; कि नुकसानी के लिए दावे को व्याप्त भी अपने में सम्मिलित कर सकते हैं किन्तु निर्वचन का यह सुस्थिर सिद्धान्त है, जो लिखतों और कानूनों दोनों को समान रूप से लागू होता है.....।"

किन्तु खण्ड 18 के दूसरे पहलू पर विचार करते हुए इसके विपरीत यह अवलोकन किया कि इसका अर्थान्वयन उपविधि के रूप में नहीं किया जाना चाहिए तथापि इसका यहां यह उल्लेख किया जा सकता है कि मानक संविदा के खण्ड 18 की भाषा में परिवर्तन कर दिए जाने के पश्चात् भी भारत संघ को ठेकेदार के अन्य बिलों की बकाया रकम को रोक रखने से व्यादिष्ट नहीं किया जा सकता। किन्तु निश्चित रूप से उसे उस रकम को क्षतिपूर्ति के दावे के लिए वसूल करने या समायोजित करने से व्यादिष्ट किया जा सकता है।

29. श्री कक्कड़ के साथ ही उपस्थित होने वाले श्री डी० सी० सिंघालिया ने अपने लिखित टिप्पण में भी सारतः उन्हीं तर्कों को दोहराया।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

30. हमारा यह स्पष्ट मत है कि प्रत्यर्थियों को ठेकेदार के अन्य बकाया बिलों के अधीन शोध्य रकम को रोकने से निर्बन्धित करने वाला व्यादेश वस्तुतः ठेकेदार अपीलार्थी को रकम का संदाय करने का निदेश ही है। ऐसा आदेश स्पष्टतः माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 41 के खण्ड (ख) के सीमा-क्षेत्र से बाहर है। भारत संघ को ठेकेदार के अन्य दावों की रकम जो उसके पास पड़ी है, को अपने क्षतिपूर्ति के दावे के लिए वसूल करने या समायोजित करने से रोकते हुए व्यादेश जारी किए जाने में कोई आपत्ति नहीं है। किन्तु मानक संविदा का खण्ड 18 निश्चित रूप से भारत संघ को रकम रोक रखने की पर्याप्त शक्ति प्रदान करता है और भारत संघ द्वारा रकम को रोक रखने से प्रतिबन्धित करने वाला कोई व्यादेश पारित नहीं किया जा सकता।

31. इन दोनों ही मामलों में क्रमशः इलाहाबाद और दिल्ली उच्च न्यायालयों द्वारा पारित आक्षेपित आदेश में हमें कोई त्रुटि नहीं दिखाई पड़ती। इसलिए अपीलें विफल होनी चाहिएं और तदनुसार वे खारिज की जाती हैं। तथापि मामले की परिस्थितियों को देखते हुए, हम यह निदेश करते हैं कि पक्षकार अपने-अपने खर्चों का वहन करेंगे।

अपीलें खारिज की गईं।

द्वि०

———

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बी० ए० जयराम और अन्य

बनाम

भारत संघ और अन्य

(B. A. Jayaram and Others

v.

Union of India and Others)

और

डी० पी० शर्मा और अन्य

बनाम

भारत संघ और अन्य

(D. P. Sharma and Others

v.

Union of India and Others)

(12 अगस्त, 1983)

(न्यायाधिपति डी० ए० देसाई और श्री० चिन्नप्पा रेड्डी)

संविधान, 1950—अनुच्छेद 301—व्यापार; वाणिज्य और समागम की स्वतंत्रता—क्षेत्र-कर्नाटक राज्य द्वारा दूसरे राज्यों में रजिस्ट्रीकृत यानों के सम्बन्ध में, जो अखिल भारतीय परमिटों पर परिचालित थे, कर से छूट देना—कुछ समय पश्चात् उस छूट को वापस लेना—राज्य के मोटर यान कराधान अधिनियम अनुच्छेद 301 के विस्तार के बाहर विनियमात्मक और प्रतिकरात्मक विधान हैं।

मोटर यान अधिनियम, 1939(1939 का 4)—धारा 63(7) दूसरे राज्यों में रजिस्ट्रीकृत और अखिल भारतीय परमिटों पर परिचालित वाहनों का कर्नाटक राज्य से गुजरना—राज्य द्वारा ऐसे

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Ch

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यानों पर राज्य कर से छूट को, जो पहले अनुदत्त की गई थी, वापस लेना—ऐसी छूट का वापस लेना संविधान के अनुच्छेद 14 या 301 का अतिक्रामी नहीं है।

मोटर यान अधिनियम, 1939 की धारा 63(7) के अधीन जारी किए गए अखिल भारतीय परमिटों पर परिचालित और अन्य राज्यों में रजिस्ट्रीकृत यानों के संबंध में कर्नाटक राज्य ने यदि ऐसे यानों के बारे में उनके अपने गृह-राज्य में कर का संदाय कर दिया गया है तो राज्य के कर से छूट अनुदत्त कर दी गई थी। इस प्रकार की छूट राज्य में पर्यटन को बढ़ावा देने के उद्देश्य से दी गई थी। कुछ समय के पश्चात् राज्य सरकार ने एक अधिसूचना जारी करके इस छूट को वापस ले लिया और राज्य में ऐसे यानों पर जो दूसरे राज्यों में रजिस्ट्रीकृत थे, कर वसूल करना आरम्भ कर दिया। राज्य सरकार की इस अधिसूचना को उच्चतम न्यायालय में रिट पिटीशनों द्वारा चुनौती दी गई। रिट पिटीशनों को खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित—संविधान की सूची 2 की प्रविष्टि 56 और 57 द्वारा राज्यों को दी गई शक्ति के फलस्वरूप उनमें से प्रत्येक को अपने-अपने राज्य के राज्यक्षेत्र के भीतर चलने वाले मोटर यानों के लिए उसके द्वारा दी गई सेवाओं, फायदों और सुविधाओं के लिए उसकी प्रतिपूर्ति हेतु अपना विधान बनाने का अधिकार है। ऐसे विधायी क्रियाकलाप से उत्पन्न होने वाले कर अपनी उत्पत्ति और प्रकृति, अपने आकार तथा स्वरूप से विनियमात्मक तथा प्रतिकरात्मक हैं और, अतः अनुच्छेद 301 की पहुंच के भीतर तब तक नहीं आते जब तक कि कर अन्तराज्यिक व्यापार, वाणिज्य और समागम की स्वतन्त्रता की हानि करने के लिए अभिकल्पित मात्र बहाना न हो। उद्ग्रहण और सेवा के बीच ऐसे करों के मामले में संबंध इतना वास्तविक है कि इस बारे में कुछ कहने की जरूरत नहीं है। कर्नाटक मोटर व्हीकल्स टैक्सेशन ऐक्ट और अन्य राज्यों के मोटर व्हीकल्स टैक्सेशन ऐक्सट् बिना किसी संदेह के संविधान के अनुच्छेद 301 की परिधि से बाहर विनियमात्मक और प्रतिकरात्मक विधान हैं। (पैरा 9)

यह सच है कि संसद द्वारा अधिनियमित धारा 63(7) का उद्देश्य अखिल भारतीय और अन्तराज्यिक पर्यटन यातायात की अभिवृद्धि के लिए था। किन्तु 'सड़कों पर उपयोग किए जाने के लिए···उपयुक्त यानों पर कर' राज्य विधानमण्डल का विषय है और कोई उद्ग्रहण अधिरोपित करना और उद्ग्रहण से छूट देना राज्य विधानमण्डल का ही कार्य है। यह भी सच है कि

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

राज्य सूची की प्रविष्टि 57 समवर्ती सूची की प्रविष्टि 35 के अधीन रहते हुए है और संसद् ऐसे सिद्धान्त अधिकथित कर सकती है जिन पर करों को यन्त्रनोदित यानों पर उद्गृहीत किया जा सकता है। किन्तु संसद् ने, मोटर यान अधिनियम की धारा 63(7) अधिनियमित करते समय, या तो स्पष्ट रूप से या आवश्यक विवक्षा द्वारा, ऐसे कोई सिद्धान्त दर्शित नहीं किए। कर लगाने और छूट देने की राज्य की शक्ति को बिना किसी निषेध के छोड़ दिया गया। ऐसा हो सकता है कि किसी राज्य का विधान, पूर्ण या अधीनस्थ, जिससे "गृह-राज्य से भिन्न पर्यटन यानों" को कर से छूट है, मोटर यान अधिनियम की धारा 63(7) के उद्देश्य को अग्रसर करे और अन्तरराज्यिक व्यापार, वाणिज्य और समागम को बढ़ाने वाला हो। किन्तु मात्र संसद् के धारा 63(7) को अधिनियमित कर देने से ही राज्य विधानमण्डल ऐसी ही कार्यवाही करने के और अपनी कर विधियों को इस प्रकार से व्यवस्थित करने के लिए बाध्य नहीं होंगे जिससे धारा 63(7) का उद्देश्य पूरा हो; चाहे ऐसा वांछनीय भी हो। राज्य न तो कोई छूट देने और न ही किसी छूट को एक बार दे दिए जाने पर उसे सदा बनाए रखने के लिए बाध्य है। किसी छूट से इनकार करने या उसे वापस ले लेने से अनुच्छेद 301 के अधीन स्वतन्त्रता के कम हो जाने का कोई प्रश्न नहीं है। पीठ पर शाबाशी न देने का अर्थ पीठ में छुरा घोंपना नहीं हो सकता। यह सच है कि तिनका-तिनका करके, पर्यटन यानों पर कराधान का बोझ बढ़ जाता है क्योंकि प्रत्येक राज्य तिनके के रूप में अपना थोड़ा सा भाग उसमें जोड़ देता है किन्तु फिर, प्रत्येक राज्य का अपनी तिजोरी से सम्बन्ध है और उसे अपनी सड़कों का उपभोग करने वाले यानों पर कर लगाने का अधिकार है और वह अभिदाय जिसे किसी पर्यटन गाड़ी से राज्य के खजाने में देने की अपेक्षा की जाती है, उससे अभिदाय से अधिक नहीं जिसके अन्य ठेका गाड़ियों से देने की अपेक्षा की जाती है। इससे अनुच्छेद 301 के अधीन स्वतन्त्रता में कोई कमी नहीं हुई है। कर्नाटक के परिचालकों की ओर से दी गई यह दलील कि कर्नाटक सरकार द्वारा बाहर के लोगों को दी गई छूट के वापस ले लिए जाने के परिणामस्वरूप कर्नाटक के परिचालकों को देश के प्रत्येक राज्य में कर का संदाय करना पड़ा है और इसलिए छूट वापस लिए जाने से अनुच्छेद 301 के अधीन स्वतन्त्रता कम हुई है और कुछ न होकर वही साधारण दलील है जिसे अलग-अलग रंगों के शीशों में देखा गया है। इसमें यह भी गुणागुण नहीं है कि कर्नाटक की छूट के वापस लिए जाने से वे प्रत्यक्षतः प्रभावित हुए हैं। (पैरा 10)

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यह कहा गया कि असमान को समान मानने के परिणामस्वरूप संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिलंघन हुआ है। यह भी दलील दी गई कि अन्तरराज्यिक करारों के अधीन अन्तरराज्यिक परमिट धारण करने वाले यानों को अभी कर से छूट थी और यह भी संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण था। एक अन्य विवाद यह उठाया गया था कि किसी न किसी प्रकार का वचनपत्र विबन्ध होने के कारण राज्य सरकार पर छूट वापस लेने की रोक थी। फिर एक और दलील यह थी कि छूट का वापस लिया जाना मनमानी था और इसलिए न्यायिक पुनर्विलोकन जरूरी था। इन दलीलों को स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि इनमें कोई सार नहीं है। (पैरा 12)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[1983]	[1983] 750 उम० नि० प० 750=ए० आई० आर० 1983 एस० सी० 637 : **मालवा बस सर्विस प्राइवेट लिमिटेड बनाम पंजाब राज्य** (Malwa Bus Service Private Limited *v.* State of Punjab);	7
[1981]	[1981] 4 उम० नि० प० 891= [1981] 2 एस० सी० आर० 364 : **इण्टरनेशनल टूरिस्ट कारपोरेशन बनाम हरियाणा राज्य** (International Tourist Corporation *v.* State of Haryana);	7
[1975]	[1975] 2 उम० नि० प० 126= [1975] 2 एस० सी० आर० 715 : **जी० के० कृष्णन् बनाम तमिलनाडु राज्य** (G. K. Krishnan *v.* State of Tamil Nadu);	7
[1975]	[1975] 1 उम० नि० प० 786= [1975] 2 एस० सी० आर० 138 : **बोलानी ओर्स लिमिटेड बनाम उड़ीसा राज्य** (Bolani Ores Limited *v.* State of Orissa);	7

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

[1963]' [1963] 1 एस० सी० आर० 491 :

आटोमोबाइल ट्रांसपोर्ट (राजस्थान) लिमिटेड बनाम राजस्थान राज्य

[Automobile Transport (Rajasthan) Limited v. State of Rajasthan]. 7

आरम्भिक अधिकारिता : रिट पिटीशन सं० 1981 की 1854-60, 1982 की 2125, 2224, 2829, 3321; 3341, 3360, 3604, 3737, 3774, 4128, 4404, 4415, 4428, 4429, 4430, 4431, 4432, 4433, 4436, 4437; 6310, 7090-92, 7138, 7687, 9927, 8481-82, 6790-91; 1981 की 5356-64/83, 1868; 3929, 1983 की 531-32; 533-34; 3957, 3975, 4574-4583, 8004, 8007-8008 और 8047, 5327, 5622-24, 7510-11, 8075, 1981 की 7490-92/82, 2008, 2328, 1982 की 2858, 2859, 4920-4923, 5616; 6065-73, 5818; 5193-5201; 8341-8343, 3149-50, 8381-8382, 9927 1983 की 377, 378, 535/83, 8347-8348, 3560/83, 8003, 8005, 80006, 8787-8788 और 9011-13.

(भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन रिट पिटीशन)

1983 का विशेष इजाजत पिटीशन सं० 11243-46 का (1981 के रिट पिटीशन सं० 11268 से 11271 में कर्नाटक उच्च न्यायालय के तारीख 8 जुलाई, 1983 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध विशेष इजाज़त पिटीशन)

उपस्थित होने वाले पिटीशनरों की ओर से सर्वश्री शान्ति भूषण, वाई० एस० चितले, के० के० वेनुगोपाल, के० एन० भट्ट, वी० के० वर्मा, एस० रविन्द्र भट्ट, एन० गणपति, सी० एस० वैद्यनाथन,

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

एन० नटार, आर० बी० दातार, ए० वी० रंगम, वी० जी० गुप्ता, टी० वी० एस० एन० चारी, ए० टी० एम० सम्पत, विनीत कुमार, डी० पी० सिंह, कुमारी एच० वाही, बी० एन० त्वाकले, एस० श्रीनिवासन, पी० आर० रामशेष, पी० एन० रामलिंगम, एस० आर० श्रीवास्तव और श्री रथिन दास

उपस्थित होने वाले प्रत्यर्थियों की ओर से — सर्वश्री आर० वी० भट्ट, वी० एस० देसाई, हरबन्स लाल, स्वराज कौशल, एम० एन० श्रॉफ, जी० वी० सुब्बा राव, एन० एस० दास बहल और आर० एन० पोद्दार

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति ओ० चिन्नप्पा रेड्डी ने दिया।

न्यायाधिपति चिन्नप्पा रेड्डी—

1969 से पूर्व कोई ऐसी धारणा नहीं थी जिसे "अखिल भारतीय" परमिट की संज्ञा दी जा सकती जो कि सम्पूर्ण भारत के लिए विधिमान्य होता और जो परमिट के धारक को सम्पूर्ण भारत में अपनी ठेका गाड़ी चलाने के लिए समर्थ करता। मोटर-यान अधिनियम की धारा 63 (1) में इस प्रकार उपबन्धित है; जैसा कि अन्यथा विहित किया जाए, जिसके सिवाय कोई परमिट, जो किसी एक प्रदेश के प्रादेशिक परिवहन प्राधिकरण ने दिया है, किसी अन्य प्रदेश में तब तक विधिमान्य न होगा जब तक कि वह परमिट उस अन्य प्रादेशिक परिवहन प्राधिकरण द्वारा प्रतिहस्ताक्षरित न कर दिया गया हो और वह परमिट, जो किसी एक राज्य में दिया गया है, किसी अन्य राज्यों में तब तक विधिमान्य न होगा जब तक कि वह उस अन्य राज्य के राज्य परिवहन प्राधिकरण द्वारा या संबंधित प्रादेशिक परिवहन प्राधिकरण द्वारा प्रतिहस्ताक्षरित न कर दिया गया हो। अन्य प्रदेशों और राज्यों के परिवहन प्राधिकरणों के प्रतिहस्ताक्षर प्राप्त करने के लिए विहित की गई प्रक्रिया बोझिल थी और अखिल भारतीय या अन्तरराज्यिक पर्यटन यातायात के विकास में सहायक नहीं थी। इस स्थिति को ठीक करने और अखिल भारतीय तथा अन्तरराज्यिक पर्यटन यातायाय की अभिवृद्धि करने के उद्देश्य से संसद ने

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मोटर-यान अधिनियम का संशोधन किया और 1969 के संशोधन अधिनियम 56 द्वारा धारा 63 (7) को पुरःस्थापित किया। यह नया उपबन्ध प्रत्येक राज्य के परिवहन प्राधिकरण को सम्पूर्ण भारत या उसके किसी भाग में उतने पर्यटन यानों का बाबत जितने केन्द्रीय सरकार इस निमित्त उस राज्य के बारे में विनिर्दिष्ट करे विधिमान्य परमिट देने के लिए समर्थ करता है। भारत पर्यटन विकास निगम, राज्य पर्यटन विकास निगम, राज्य पर्यटन विभाग और ऐसे परिचालकों और पर्यटन यानों अथवा ऐसे यात्रा अभिकर्ताओं से, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा इस निमित्त अनुमोदित किए जाएं, परमिटों के लिए आवेदनों का अधिमान दिया जाना है। यह केवल अखिल भारतीय और अन्तरराज्यिक पर्यटन यातायात को प्रोत्साहित करने की दृष्टि में पहला मूल कदम था। इससे पहले कि अखिल भारतीय परमिटों के दिए जाने के लिए स्कीम को प्रभावी रूप से कार्यान्वित किया जा सकता, बहुत सारी अन्य रुकावटें आईं, जिन्हें दूर करना था। उनमें से एक रुकावट यह थी : संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची 2 की प्रविष्टि 57 के उपबन्धों के अधीन राज्य विधानमंडल "सूची 3 की प्रविष्टि 35 के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, सड़कों पर उपयोग के योग्य यानों पर कर, चाहे वे यंत्र नोदित हो या नहीं, जिनके अन्तर्गत ट्राम-कार हैं, उद्गृहीत करने के लिए सशक्त है। सूची 3 की प्रविष्टि 35 इस प्रकार है : "यंत्र नोदित यान जिसके अन्तर्गत वे सिद्धांत हैं जिनके अनुसार ऐसे यानों पर कर उद्गृहीत किया जाना है।" सूची 2 की प्रविष्टि 57 और सूची 3 की प्रविष्टि 35 का सुसंगत परिशीलन करने पर यह बहुत ही स्पष्ट है कि सड़कों के उपयोग के लिए उपयुक्त यानों पर कर उद्गृहीत करने की शक्ति पूर्णतः राज्य विधानमण्डल में निहित है। यद्यपि संसद इस बात के लिए स्वतन्त्र है कि वह ऐसे सिद्धांत अधिकथित करे जिन पर यंत्र नोदित यानों पर करों का उद्ग्रहण किया जा सके। दूसरे शब्दों में, संसद यन्त्र नोदित यानों पर करों के उद्ग्रहण के लिए मार्ग-दर्शन अधिकथित कर सकती है, किन्तु ऐसे करों के उद्ग्रहण का अधिकार पूर्णतया राज्य विधानमण्डल में निहित है। अब संविधान की प्रथम अनुसूची में निर्दिष्ट भारत में 22 राज्य और 9 संघ राज्य क्षेत्र हैं। प्रत्येक राज्य को अपने राज्यक्षेत्र के भीतर मोटरयानों पर कर उद्ग्रहण करने का अधिकार है। यदि कोई पर्यटन यान जिसके पास मोटर-यान अधिनियम की धारा 63 (7) के अधीन "अखिल भारतीय परमिट है", ऐसी यात्रा के क्रम में आधा दर्जन राज्यों से, उदाहरणार्थ, दिल्ली से कन्याकुमारी या श्रीनगर से हैदराबाद होकर जाना चाहता है तो

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सामान्यतः कर सभी आधा दर्जन या इसके लगभग राज्यों में संदत्त करना होता है। निश्चित रूप से यह बोझ असहनीय होगा और धारा 63 (7) का पूर्ण उद्देश्य ही, अर्थात् अखिल भारतीय या अन्तरराज्यिक पर्यटन यातायात की अभिवृद्धि विफल हो जाएगी। केन्द्रीय सरकार इस समस्या के प्रति सजग थी और उसने इस मामले को परिवहन विकास परिषद् को उसकी सलाह के लिए निर्दिष्ट कर दिया। परिवहन विकास परिषद् केन्द्रीय सरकार द्वारा गठित एक कानूनी निकाय है और इसमें सभी राज्यों की सरकारों के प्रतिनिधि हैं। परिवहन सलाहकार परिषद् ने केन्द्रीय सरकार को सलाह दी कि धारा 63 (7) के अधीन परमिट धारण करने वाले पर्यटन यानों पर एकल राज्य कराधान होना चाहिए, अर्थात् कर "गृह राज्य (होम स्टेट) में ही संदत्त किया जाना चाहिए और यानों को गृह राज्य से भिन्न राज्यों में कर के सदाय से छूट प्राप्त होनी चाहिए। यह, यदि कर पहले से ही गृह राज्य में संदत्त किया जा चुका है, अपनी-अपनी राज्य सरकारों द्वारा अन्य राज्यों में रजिस्ट्रीकृत पर्यटन यानों के कर के संदाय से छूट के लिए उनके कराधान विधान के अधीन अधिसूचना जारी करके किया जा सकता था। भारत सरकार ने सुझाव को मान लिया और राज्य सरकारों और संघ प्रशासनों से आवश्यक अधिसूचनाएं जारी करने की प्रार्थना की। सुझाव आरम्भ से ही खटाई में पड़ गया। जहां आन्ध्र प्रदेश, बिहार, गोवा, दमन और दीव, महाराष्ट्र, नागालैंड और उत्तर प्रदेश की सरकारों ने आदान-प्रदान के आधार पर ऐसी अधिसूचनाओं के जारी किए जाने को तुरन्त मान लिया, वहां कुछ अन्य राज्यों से कोई भी तुरन्त प्रतिक्रिया नहीं दिखाई दी। कर्नाटक सरकार विशेष तौर पर किसी ऐसी छूट के दिए जाने के विरुद्ध थी। अन्त में कर्नाटक सरकार और अन्य राज्यों की सरकारों को भी ऐसी अधिसूचनाओं के जारी करने के लिए मना लिया गया। इसी बीच भारत सरकार ने मोटर-यान अधिनियम की धारा 63 (7) के अधीन शक्ति का प्रयोग करते हुए ऐसी अधिसूचनाएं जारी कीं जिनमें पर्यटन यानों की संख्या और वर्ग विनिर्दिष्ट था, जिसकी बाबत राज्यों को प्रत्येक राज्य परिवहन प्राधिकरण अखिल भारत परमिट दे सकते थे। इनमें से अन्तिम अधिसूचना में यह विनिर्दिष्ट था कि प्रत्येक राज्य परिवहन प्राधिकरण पर्यटन बसों के लिए 50 परमिट जारी कर सकता था।

2. केन्द्रीय सरकार की प्रार्थना पर जिसके प्रति अन्त में सभी राज्य सरकारें सहमत हो गईं, ऐसी अधिसूचनाएं जारी की गई जिनमें धारा 63(7) के अधीन परमिट धारण करने वाले पर्यटन यानों को, यदि उन्होंने गृह

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

राज्य में कर संदत्त कर दिया था तो, कर के संदाय से छूट प्राप्त थी। हम इन मामलों में विशिष्टतया उन अधिसूचनाओं से सम्बद्ध हैं, जिन्हें कर्नाटक सरकार ने समय-समय पर जारी किया, क्योंकि यहीं से समस्या आरम्भ हुई। उनमें से पहली अधिसूचना कर्नाटक सरकार ने 18 सितम्बर, 1972 को जारी की थी और इसके द्वारा कर्नाटक राज्य से भिन्न राज्य में रजिस्ट्रीकृत और कर्नाटक राज्य में चलने वाली ऐसी पर्यटन मोटर-गाड़ियों और पर्यटन बसों को जिनके पास ऐसे परमिट थे जो कर्नाटक राज्य में प्रतिहस्ताक्षर के बिना विधिमान्य थे कर्नाटक मोटर व्हीकल्स टैक्सेशन ऐक्ट, 1957 के अधीन संदेय करों के संदाय से छूट दी गई थी, परन्तु यह तब जब ऐसे यानों की बाबत संदेय कर उस राज्य में संदत्त कर दिया गया था, जिनमें यान रजिस्ट्रीकृत थे, परन्तु यह और भी कि उक्त राज्य ने ऐसी पर्यटन मोटर गाड़ियों और पर्यटन बसों को जिनके परमिट कर्नाटक मोटर व्हीकल्स रूल्स के नियम 123क के अधीन कर्नाटक राज्य में पृष्ठांकित थे, इसी प्रकार की छूट दी थी। 15 जुलाई, 1976 को कर्नाटक सरकार ने ऐसे पर्यटन यानों की बाबत जिसके लिए परमिट धारा 63 (7) या कर्नाटक मोटर व्हीकल्स रूल्स के नियम 123-क के अधीन दिए गए पृष्ठांकन जारी किए गए थे, मोटर व्हीकल्स टैक्सेशन ऐक्ट, 1957 के अधीन संदेय कर को कम करने वाली अधिसूचना जारी की थी। 20 दिसम्बर, 1976 को एक और अधिसूचना द्वारा पहले से जारी की गई तारीख 18 सितम्बर, 1972 वाली अधिसूचना में भागतः उपान्तरण कर दिया गया। कर्नाटक राज्य से भिन्न राज्यों में रजिस्ट्रीकृत और धारा 63 (7) के अधीन दिए गए परमिट के प्राधिकार के अधीन कर्नाटक राज्य में चलने वाली पर्यटन मोटर गाड़ियों और पर्यटन बसों को कर के संदाय से छूट दी गई, परन्तु यह तब जब उस यान की बाबत संदेय कर उस राज्य में जिसमें वह रजिस्ट्रीकृत है, पहले से ही संदत्त किया जा चुका हो; परन्तु यह और भी कि कर के संदाय से उसी प्रकार की छूट कर्नाटक राज्य के ऐसे ही अन्य यानों की बाबत भी दी गई हो।

3. "अखिल भारतीय परमिट" देने की इस स्कीम का, जो कि अखिल भारतीय और अन्तराज्यिक पर्यटन यातायात की अभिवृद्धि के लिए बनाई गई थी, षडयन्त्रकारी परिवहन परिचालकों के हाथों शीघ्र ही दुरुपयोग होने लगा। स्कीम के अन्तर्गत ही उसके दुरुपयोग के बीज बो दिए गये थे। स्कीम में प्रत्येक राज्य का परिवहन प्राधिकरण राज्य के आकार उसके स्रोतों, उसकी प्रवेश्यता, उसके संचारों, उसकी सुविधाओं, परिवहन सेवाओं की उपलभ्यता और राज्य में आवश्यक विशेषज्ञता वाले परिचालकों,

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

निश्चित स्थान पर उनको उतारना और वापसी यात्रा में भिन्न-भिन्न यात्रियों को लाना दर्शित है। संलग्न कथनों से यह स्पष्ट है कि अखिल भारतीय पर्यटन परमिटों के अन्तर्गत पर्यटन बसों के परिचालकों ने पर्यटन बसों का राज्य के भीतर क० रा० स० प० नि० की बसों और अन्य प्राइवेट मंजिली गाड़ियों से मुकाबला करके नियमित मंजिली गाड़ियों के रूप में पर्यटन बसों को चलाकर उनका दुरुपयोग किया है। मंजिली गाड़ियों के रूप में यानों के अंधाधुंध दुरुपयोग के परिणामस्वरूप यद्यपि पर्यटन के लिए केन्द्रीय अधिनियम की धारा 63 (7) के अधीन परमिट अभिप्राप्त किए गए थे, फिर भी राज्य सरकार की राजस्व में बहुत हानि हुई है। इन बसों में वास्तव में उन यात्रियों को लिया गया जोकि आमतौर पर क० रा० स० प० नि० की बसों और अन्य प्राइवेट गाड़ियों का प्रयोग करते थे। केन्द्रीय अधिनियम की धारा 63 (7) के अधीन परमिट अभिप्राप्त करने के उद्देश्य का ही, जिसमें पर्यटन की अभिवृद्धि आशयित थी, पर्यटन बसों के इन परिचालकों ने अपने यानों को नियमित रूप से मंजिली गाड़ियों के रूप में चलाकर दुरुपयोग किया है। कर्नाटक राज्य से भिन्न राज्यों में केन्द्रीय अधिनियम की धारा 63 (7) के अधीन अभिप्राप्त किए गए अधिकतर परमिटों पर्यटन बसों के चलाये जाने के प्रयोग के लिए तात्पर्यित हैं। किन्तु वास्तव में परमिटों पर्यटन और यानों का या तो मंजिली गाड़ियों या ठेका गाड़ियों को चलाकर दुरुपयोग किया गया।"

महाराष्ट्र के परिवहन आयुक्त द्वारा किए गए एक सर्वेक्षण से ऐसी ही परिस्थितियां सामने आई हैं। परिवहन आयुक्त ने महाराष्ट्र सरकार को एक रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसकी एक प्रति हमें उपलब्ध कराई गई है। रिपोर्ट में निम्नलिखित कथन है :—

"हमारा अनुमान है कि इन 1300 परमिटों में से कोई 300 से 400 के बीच बसें महाराष्ट्र में चल रही हैं, जिनका मुख्य केन्द्र मुम्बई है। इनमें से बहुत सी सभी बसें व्यावहारिक प्रयोजनों के लिए ठेका गाड़ियों के रूप में छद्मवेश बनाकर मंजिली गाड़ियों के रूप में चल रही हैं। महाराष्ट्र में मंजिली गाड़ियों और ठेका-गाड़ियों द्वारा सामान्य यात्री परिवहन पूर्णतः राष्ट्रीकृत कर दिया गया है। इसके विपरीत सभी अखिल भारतीय पर्यटन बसें विधि में

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उपलभ्य बचाव के रास्तों का अनुचित लाभ उठा रही है और ऐसे मार्गों पर एक निश्चित स्थान से दूसरे निश्चित स्थान तक यात्री सेवाओं के रूप में चल रही हैं जहां यातायात बहुत अधिक है अर्थात् ऐसे मार्ग पर जिसे बम्बई-कोल्हापुर, बम्बई-मंगलौर (मंगलौर), बम्बई-पणजी, बम्बई-बेलगाम, बम्बई-अहमदाबाद और बम्बई-इन्दौर.....।"

"9/10 अप्रैल, 1983 को परिवहन आयुक्त ने चरोती चैकनाका का स्वयं जाकर दौरा किया जोकि बम्बई-अहमदाबाद सड़क पर गुजरात की सीमा पर हमारी सीमा नाकाबन्दी (चैकपोस्ट) है। नाकाबन्दी (चैकपोस्ट के अभिलेखों से उसे यह पता चला कि कोई 115 अखिल भारतीय पर्यटन बसे नियमित आधार पर इस मार्ग पर चल रही हैं। इन 115 अखिल भारतीय पर्यटन बसों का विश्लेषण करने पर उसने देखा कि 41 परमिट मणिपुर के राज्य परिवहन प्राधिकरण द्वारा जारी किए गए थे, 17 परमिट राज्य परिवहन प्राधिकरण, नगर हवेली द्वारा जारी किए गए थे, 8 परमिट राज्य परिवहन प्राधिकरण, मेघालय द्वारा जारी किए गए थे और 5 परमिट राज्य परिवहन प्राधिकरण, नागालैंड द्वारा जारी किए गए थे। बहुत बड़ी संख्या में अखिल भारतीय पर्यटन बसें बम्बई को अपना आधार बनाकर चल रही थीं, जिनके परमिट मणिपुर, नागालैंड और दादरा और नगर हवेली संघ राज्यक्षेत्र द्वारा जारी किए गए थे।"

पिटीशनरों ने, जोकि अखिल भारतीय परमिटों वाले परिवहन परिचालक हैं, उनके द्वारा धारित परमिटों के किसी अनाचार या दुरुपयोग के दोषी होने से इन्कार किया है। किन्तु पिटीशनरों के इन्कार के होते हुए भी हमें जरा भी संदेह नहीं है कि कर्नाटक सरकार की ओर से फाइल किए गए प्रति शपथ-पत्र में दुरुपयोग और अनाचार के अभिकथन साधारणतया और सारवान रूप से सही हैं। स्कीम के दुरुपयोग के बारे में शिकायतें केन्द्रीय सरकार को और परिवहन सलाहकार परिषद् को भी की गई प्रतीत होती हैं। हमें यह भी बताया गया है कि इन दुरुपयोगों द्वारा सामने आई चुनौती से निपटने के प्रश्न पर केन्द्रीय सरकार का ध्यान आकृष्ट हो रहा है।

5. कर्नाटक सरकार की, जिसे स्पष्ट रूप से सबसे अधिक नुकसान हुआ, तेज प्रतिक्रिया हुई। अखिल भारतीय परमिट धारकों को अन्य राज्यों

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

में राष्ट्रीकृत, अखिल भारतीय पर्यटन यानों पर कर्नाटक के कर के संदाय से छूट के रूप में दी गई रियायत को, यदि कर पहले से ही गृह राज्य में संदत्त कर दिया गया था, तारीख 31 मार्च, 1981 की एक अधिसूचना द्वारा वापस ले लिया गया। यह वही अधिसूचना है और इस अधिसूचना के परिणाम हैं जोकि इन बहुत सी रिट पिटीशनों में प्रश्नगत हैं। हमें सूचना मिली है कि आन्ध्र प्रदेश राज्य ने भी, कर्नाटक राज्य जैसी ही एक अधिसूचना जारी की है; जिसमें ऐसी छूट को वापस लिया गया है, जिसे उसने धारा 63(7) के अधीन जारी किए गए परमिटों पर चलने वाले और अन्य राज्यों में राष्ट्रीयकृत यानों को दिया था। अन्य राज्यों में राष्ट्रीयकृत और धारा 63(7) के अधीन जारी किए गए परमिटों पर चलने वाले यानों को उनके द्वारा पहले दी गई छूट को वापस नहीं लिया। किन्तु चूंकि उनमें से बहुतों द्वारा दी गई छूट आदान-प्रदान के आधार पर है, अतः कर्नाटक राज्य और आन्ध्र प्रदेश में रजिस्ट्रीकृत यानों को तुरन्त उन राज्यों में प्रत्येक में कर का संदाय करना होगा जिनसे होकर वे गुजरेंगे। अन्य राज्यों द्वारा कर के संग्रहण का भी इन रिट पिटीशनों में विरोध किया गया है। राज्य विधानमण्डलों की किसी विशिष्ट कर के उद्ग्रहण की शक्ति, विधानमण्डल द्वारा उसे प्रत्यायोजित प्राधिकार के अधीन कर के संदाय से छूट देने की राज्य सरकार की शक्ति और राज्य सरकार की उसके द्वारा दी गई छूट को वापस लेने की विवक्षित शक्ति को, मान लिया गया। फिर भी, बहुत सी बढ़िया और घिसी-पिटी दलीलें प्रस्तुत की गई हैं, यद्यपि हम यह अवश्य मानेंगे कि उनमें से बहुत सी दलीलों को रद्द किया जाना है। उनमें से बहुत सी ऐसी हैं, जिनमें केवल न्यायालय का समय ही लिया गया है, समय जोकि न्यायालय के विनिश्चय के लिए पड़े हुए बहुत से मामलों को देखते हुए बहुत ही महंगा और कीमती है। हम चाहते हैं कि इस बात को याद रखना चाहिए कि उच्चतम न्यायालय देश का सबसे बड़ा न्यायालय है और इसका समय केवल तर्कों के लिए प्रस्तुत किए गए बेकार के तर्कों को सुनने में नष्ट नहीं किया जाना चाहिए। न्यायाधीशों और वकीलों के लिए अब वह समय आ गया है कि वे वाद का अनुसरण करने वाले निर्णयों में कतिपय तर्कों को काटने और कुछ अन्यों में कांटछांट करने का पूरा प्रयत्न करें। उन काउन्सेलों के प्रति सम्मान प्रकट करते हुए जोकि इन मामलों में हमारे सामने उपस्थित हुए, हम यह कहेंगे कि उनमें से प्रत्येक ने अपना मामला संक्षेप में प्रस्तुत किया और किसी ने भी कुछ अधिक नहीं कहा।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

6. यह दलील दी गई कि मोटर यान अधिनियम की धारा 63(7) को अखिल भारतीय और अन्तरराज्यिक पर्यटन यातायात के लिए और सम्पूर्ण भारत में व्यापार, वाणिज्य और समागम की अभिवृद्धि के लिए बनाया गया था। धारा 63(7) में यह बात अस्पष्ट थी कि राज्य अपने कराधान की शक्ति का इस तरह से प्रयोग करेंगे जिससे अन्य राज्यों में रजिस्ट्रीकृत और धारा 63(7) के अधीन जारी किए गए परमिटों पर चलने वाले पर्यटन यानों पर गृह राज्य में संदत्त किए गए कर के ऊपर अतिरिक्त भार अधिरोपित न हो। दूसरे शब्दों में यह बात अस्पष्ट थी कि सभी राज्य अन्य राज्यों में रजिस्ट्रीकृत और धारा 63(7) के अधीन जारी किए गए परमिटों पर चलने वाले पर्यटन यानों को कराधान से छूट देंगे। छूट वापस लेकर धारा 63(7) का उद्देश्य विफल हो गया और इसलिए, सम्पूर्ण भारत में संविधान के अनुच्छेद 301 द्वारा गारन्टीकृत व्यापार, वाणिज्य और समागम की स्वतन्त्रता कम हो गई। अतः छूट वापस लेना विधितः असांविधानिक और खराब था। कर्नाटक के परिवहन परिचालकों ने जोकि कर्नाटक सरकार द्वारा छूट के वापस लिए जाने से सीधे प्रभावित नहीं थे, एक प्रखर तर्क प्रस्तुत किया और यह सुझाव दिया कि वे वास्तव में सबसे बुरी तरह प्रभावित हुए हैं। उनका तर्क यह था कि यद्यपि छूट के वापस ले लिए जाने के बावजूद वे कर्नाटक राज्य को कोई ऐसा और कर नहीं दे रहे थे जो वे इससे पहले देते थे, फिर भी छूट के वापस ले लेने से एक ऐसी परिस्थिति पैदा हो गई थी जिससे सभी अन्य राज्यों की सरकारों द्वारा दिए गए छूट के फायदे से वे वंचित हो गए, क्योंकि वे छूटें आदान-प्रदान की शर्त पर थीं। कर्नाटक सरकार की कार्रवाई द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से पैदा की गई स्थिति में उन पर असहनीय भार अधिरोपित हुआ; और उन्हें अपने यानों पर कर्नाटक से भिन्न प्रत्येक राज्य में से होकर गुजरते समय कर देने के लिए मजबूर होना पड़ा और इस प्रकार वे संविधान के अनुच्छेद 301 द्वारा गारन्टीकृत सम्पूर्ण भारत में व्यापार, वाणिज्य और समागम की स्वतन्त्रता से वंचित हो गए।

7. हमें इन दलीलों में पूर्णतः कोई बल दिखाई नहीं देता दोनों ओर के पक्षकारों की ओर से विद्वान काउन्सेलों ने संविधान के अनुच्छेद 301 द्वारा उद्घोषित सम्पूर्ण भारत के राज्यक्षेत्र में व्यापार, वाणिज्य और समागम की स्वतन्त्रता की सीमा और परिसीमाओं को स्पष्ट करने के लिए हमारा ध्यान **आटोमोबाइल ट्रांसपोर्ट (राजस्थान) लिमिटेड बनाम राजस्थान राज्य**

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

और अन्य[1], बोलानी ओर्स लिमिटेड बनाम उड़ीसा राज्य[2], जो० के० कृष्णन बनाम तमिलनाडु राज्य[3], इन्टरनेशनल टूरिस्ट कार्पोरेशन बनाम हरियाणा राज्य[4] और मालवा बस सर्विस प्राइवेट लिमिटेड बनाम पंजाब राज्य[5] वाले मामलों की ओर दिलाया है। हम इन मामलों में से किसी को निर्दिष्ट करने का प्रस्ताव नहीं करते क्योंकि इस मामले में विधि पूरी तरह से तय की जा चुकी है :

8. प्रतिकरात्मक और विनियामात्मक प्रकृति के कर संविधान के अनुच्छेद 301 की परिधि से बाहर हैं। विनियामक उपाय और प्रतिकरात्मक कर व्यापार और वाणिज्य के मुक्त प्रवाह में रुकावट डालने की अपेक्षा अनुकूल परिस्थितियां उत्पन्न करके और उपयुक्त सेवाएं उपलब्ध कराकर बहुधा ऐसे व्यापार और वाणिज्य के मुक्त प्रवाह की अभिवृद्धि करते हैं। किसी कर के लिए, जो प्रतिकरात्मक कर के रूप में तात्पर्यित है या जिसका इस रूप में दावा किया गया है, कायम रखने के लिए जो बात आवश्यक है, "वह किसी विनिर्दिष्ट, पहचाने जाने वाले उद्देश्य के अस्तित्व और उद्ग्रहण के विषय और उद्देश्य के बीच संबंध है"।[4] यदि उद्ग्रहण के पीछे होने वाले उद्देश्य को पहचाना जाता है और यदि उद्ग्रहण के विषय और उद्देश्य के बीच पर्याप्त सम्बन्ध है तो यह आवश्यक नहीं है कि उद्ग्रहण द्वारा वसूल किए गए धन को किसी अलग निधि में रहना चाहिए अथवा यह कि उद्ग्रहण व्यय के अनुपात में होना चाहिए। विनियामक और प्रतिकरात्मक करों तथा सामान्य प्रकृति के अन्य करों से वसूल किए गए राजस्व को परस्पर मिला देने के लिए कोई वर्जन नहीं हो सकता, न ही प्रतिकरात्मक और विनियामक उद्ग्रहण के पीछे होने वाले उद्देश्य पर उपगत किए जाने वाले अधिक अथवा कम व्यय के लिए, उससे अधिक जो उद्ग्रहण के लिए वसूल किया गया है, कोई आक्षेप किया जा सकता है।[4] यह स्पष्ट होना चाहिए कि "सामान्यतः किसी यथार्थ के साथ प्राप्त किए गए फायदों और उपगत व्यय को जानना तथा नापना और प्राप्त किए गए फायदों और उपगत व्यय के अनुसार कर उद्गृहीत करना पूर्ण रूप से असम्भव होगा।" न ही न्यायालय लागत लेखाकार का रूप धारण करके हस्तक्षेप कर सकता है और उद्ग्रहण

---

[1] 1963 एस० सी० आर० (1) 491.

[2] [1975] 1 उम० नि० प० 786=1975 एस० सी० आर० (2) 138.

[3] [1975] 2 उम० नि० प० 126=1975 एस० सी० आर० (2) 715.

[4] [1981] 4 उम० नि० प० 891=1981 एस० सी० आर० (2) 364.

[5] [1983] ए० आई० आर० 1983 एस० सी० 637.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

से प्राप्त धन के विरुद्ध सेवाओं, फायदों और सुविधाओं की लागत को बारीकी से एकसमान करने का प्रयत्न करता है। यदि उद्ग्रहण साधारणतया जरूरत के पूर्णतः न्यायोचित है तो इसे ऐसे व्यक्ति के प्रत्येक समूह के संदर्भ में जो अन्यों की अपेक्षा कम सेवाओं की अपेक्षा करते हैं और उन्हें प्राप्त करते हैं, अलग से न्यायोचित नहीं ठहराना होगा। जब एक बार उद्ग्रहण और सेवाओं के बीच सम्बन्ध दिखाई दे जाए तो उद्ग्रहण को तब तक कायम रखा जाना चाहिए जब तक कि उसका प्रतिकरात्मक स्वरूप पूर्णतः या भागतः मात्र मजाक और वास्तव में वह अभिकल्पना जोकि अन्तरराज्यिक व्यापार, वाणिज्य और समागम की स्वतन्त्रता को नष्ट करती हो, दर्शित नहीं कर दिया जाता है।

9. सूची 2 की प्रविष्टि 56 और 57 द्वारा राज्यों को दी गई शक्ति के फलस्वरूप उनमें से प्रत्येक को अपने-अपने राज्यक्षेत्र के भीतर चलने वाले मोटरयानों के लिए उसके द्वारा दी गई सेवाओं, फायदों और सुविधाओं के लिए उसकी प्रतिपूर्ति हेतु अपना विधान बनाने का अधिकार है। ऐसे विधायी क्रियाकलाप से उत्पन्न होने वाले कर अपनी उत्पत्ति और प्रकृति, अपने आकार तथा स्वरूप से विनियामक तथा प्रतिकरात्मक हैं और अतः, अनुच्छेद 301 की पहुंच के भीतर तब तक नहीं आते जब तक, जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, कर अन्तरराज्यिक व्यापार, वाणिज्य और समागम की स्वतन्त्रता की हानि करने के लिए अभिकल्पित मात्र बहाना न हो। उद्ग्रहण और सेवा के बीच ऐसे करों के मामले में सम्बन्ध इतना वास्तविक है कि हम इस बारे में कुछ कहने की जरूरत नहीं समझते। कर्नाटक मोटर व्हीकल्स टैक्सेशन ऐक्ट और अन्य राज्यों के मोटर व्हीकल्स ऐक्ट्स बिना किसी सन्देह के संविधान के अनुच्छेद 301 की परिधि से बाहर विनियामक और प्रतिकरात्मक विधान हैं।

10. यह सच है कि संसद् द्वारा अधिनियमित धारा 63(7) का उद्देश्य अखिल भारतीय और अंतराज्यिक पर्यटन यातायात की अभिवृद्धि के लिए था। किन्तु "सड़कों पर उपयोग किए जाने के लिए ..... उपयुक्त यानों पर कर" राज्य विधानमण्डल का विषय है और कोई उद्ग्रहण अधिरोपित करना और उद्ग्रहण से छूट देना राज्य विधानमण्डल का ही कार्य है। यह भी सच है कि राज्य सूची की प्रविष्टि 57 समवर्ती सूची की प्रविष्टि 35 के अधीन रहते हुए है और इसलिए अतः जैसा कि हमने आरम्भ में ही स्पष्ट कर दिया था, संसद् ऐसे सिद्धांत अधिकथित कर सकती है जिन

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पर करों को यन्त्रनोदित यानों पर उद्गृहीत किया जा सकता है। किन्तु संसद् ने, मोटर यान अधिनियम का अनुच्छेद 63(7) अधिनियमित करते समय, या तो स्पष्ट रूप से या आवश्यक विवक्षा द्वारा, ऐसे कोई सिद्धांत दर्शित नहीं किए। कर लगाने और छूट देने की राज्य की शक्ति को बिना किसी निषेध के छोड़ दिया गया। ऐसा हो सकता है कि किसी राज्य का विधान, पूर्ण या अधीनस्थ, जिससे "गृह-राज्य से भिन्न पर्यटन यानों" को कर से छूट है, मोटर यान अधिनियम की धारा 63(7) के उद्देश्य को अग्रसर करे और अंतरराज्यिक व्यापार, वाणिज्य और समागम को बढ़ाने वाला हो। किन्तु मात्र संसद के धारा 63(7) को अधिनियमित कर देने से ही राज्य विधानमण्डल ऐसी ही कार्यवाही करने के और अपनी कर विधियों को इस प्रकार से व्यवस्थित करने के लिए बाध्य नहीं होंगे जिससे धारा 63(7) का उद्देश्य पूरा हो, चाहे ऐसा वांछनीय भी हो। राज्य न तो कोई छूट देने और न ही किसी छूट को एक बार दे दिए जाने पर उसे सदा बनाए रखने के लिए बाध्य है। किसी छूट से इन्कार करने या उसे वापस ले लेने से अनुच्छेद 301 के अधीन स्वतन्त्रता के कम हो जाने का कोई प्रश्न नहीं है। पीठ पर शाबाशी न देने का अर्थ पीठ में छुरा घोंपना नहीं हो सकता। यह सच है कि तिनका-तिनका करके, पर्यटन यानों पर काराधान का बोझ बढ़ जाता है क्योंकि प्रत्येक राज्य तिनके के रूप में अपना थोड़ा सा भाग उसमें जोड़ देता है किन्तु फिर, प्रत्येक राज्य का अपनी तिजोरी से सम्बन्ध है और उसे अपनी सड़कों का उपभोग करने वाले यानों पर कर लगाने का अधिकार है और वह अभिदाय जिसे किसी पर्यटन गाड़ी से राज्य के खजाने में देने की अपेक्षा की जाती है, उससे अभिदाय से अधिक नहीं जिसके अन्य ठेका गाड़ियों से देने की अपेक्षा की जाती है। हमारा यह पक्का विचार है कि अनुच्छेद 301 के अधीन स्वतन्त्रता में कोई कमी नहीं हुई है।" कर्नाटक के परिचालकों की ओर से दी गई यह दलील, कि कर्नाटक सरकार द्वारा "बाहर के लोगों" को दी गई छूट के वापस ले लिए जाने के परिणामस्वरूप कर्नाटक के परिचालकों को देश के प्रत्येक राज्य में कर का संदाय करना पड़ा है और इसलिए, छूट वापस लिए जाने से अनुच्छेद 301 के अधीन स्वतन्त्रता कम हुई है, और कुछ न होकर वही साधारण दलील है जिसे अलग-अलग रंगों के शीशों में देखा गया है। इसमें यह भी गुणागुण नहीं है कि कर्नाटक की छूट के वापस लिए जाने से वे प्रत्यक्षतः प्रभावित हुए हैं। इस दलील को रद्द किया जाता है।

11. हमारे सामने दी गई एक दलील यह थी कि यदि अखिल

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भारतीय परमिटों का दुरुपयोग हो रहा था तो उसको दूर करने का उपाय यह था कि यदि आवश्यक हो तो परमिट रद्द करके गलती करने वालों के विरुद्ध उपयुक्त कार्रवाई करके उन्हें दण्डित किया जाए, किन्तु इमानदार परिचालकों के मामले में भी, छूट के फायदे को पूर्णतया वापस न लिया जाए। यह विनिश्चय करने वाला मामला विधानमण्डल और इसके प्रतिनिधि का है, न कि न्यायालय का। यदि परिस्थिति ऐसी परिद्वेषपूर्ण हो गई थी कि कठोर कार्रवाई की आवश्यकता थी तो यह न्यायालय निर्णय के स्थान पर यह कहने का कार्य नहीं कर सकता कि उद्देश्य सम्भवतः कम कठोर प्रक्रिया अपना करके अच्छी तरह प्राप्त किया जा सकता था।

12. यह दलील दी गई कि अखिल-भारतीय पर्यटन यान राज्य की सड़कों का उतना उपयोग नहीं करते जितना राज्य में चलने वाली ठेका गाड़ियां करती है और अतः, राज्य ने उनको एक समान मान कर गलती की थी। यह कहा गया कि असमान को समान मानने के परिणामस्वरूप संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिलंघन हुआ है। यह भी दलील दी गई कि अन्तरराज्यिक करारों के अधीन अन्तराज्यिक परमिट धारण करने वाले यानों को अभी कर से छूट थी और यह भी संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण था। एक अन्य विवाद यह उठाया गया था कि किसी न किसी प्रकार का वचनपत्र विबंध होने के कारण राज्य सरकार पर छूट वापस लेने की रोक थी। फिर एक और करार यह था कि छूट का वापस लिया जाना मनमानी थी और इसलिए, न्यायिक पुनर्विलोकन जरूरी था। ये तथा अन्य ऐसी दलीलें जो हमारे समक्ष दी गई थीं, हमारी राय में उन तर्कों के प्रवर्गों में आती हैं, जिनके बारे में हम पहले से उल्लेख कर चुके हैं कि उन्हें रद्द किया जाना चाहिए। उत्तर स्पष्ट है। इन दलीलों में पूर्णतः कोई गुणागुण नहीं हैं और हमें और आगे व्यर्थ चर्चा करके निर्णय को बढ़ाने में कोई औचित्य दिखाई नहीं देता। सभी रिट पिटीशनों को खर्चों सहित खारिज किया जाता है और अन्तरिम आदेश को बातिल किया जाता है।

रिट पिटीशन खारिज किए गए।

घ०/स०

———

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भारत के संविधान के अनुच्छेद 317(1) के अधीन निर्देश के सम्बन्ध में

[Reference under Article 317(1) of the Constitution of India]

(17 अगस्त, 1983)

(मुख्य न्यायाधिपति वाई० वी० चन्द्रचूड़, न्यायाधिपति आर० एस० पाठक और सव्यसाची मुखर्जी)

संविधान, 1950—अनुच्छेद 317(1)—लोक सेवा आयोग के किसी सदस्य को हटाया जाना—लोक सेवा आयोग के एक सदस्य द्वारा आयोग की अध्यक्ष के साथ कदाचार किए जाने का अभिकथन किया जाना—राष्ट्रपति द्वारा उच्चतम न्यायालय को जांच के लिए निर्देश किया जाना—कदाचार के आधार पर लोक सेवा आयोग के किसी सदस्य को हटाने के लिए राष्ट्रपति द्वारा उच्चतम न्यायालय को जांच का निर्देश करने के लिए यह कोई पूर्ववर्ती शर्त नहीं है कि वे पहले उस मामले के तथ्यों की जांच किसी अन्य निकाय या प्राधिकारी से करवाएं, स्वयं उच्चतम न्यायालय कदाचार के अभिकथन सम्बन्धी तथ्यों की जांच कर सकता है।

संविधान, 1950—अनुच्छेद 317(1) और 145 [सपठित सुप्रीम कोर्ट रूल्स, 1966, आदेश 38, 47 नियम 6]—लोक सेवा आयोग की सदस्यता से हटाया जाना—लोक सेवा आयोग के सदस्य को कदाचार के आधार पर हटाए जाने की प्रक्रिया—ऐसे मामले में उच्चतम न्यायालय सुप्रीम कोर्ट रूल्स, 1966 के आदेश 38 के नियम 2 के अनुसार जांच करने तथा साक्षियों को समन करने, उनकी परीक्षा करने और उनके साक्ष्य के अभिलेख मंगवाने के लिए सशक्त है।

24-11-1982 को लगभग 1-00 बजे अपराह्न पंजाब लोक सेवा आयोग के एक सदस्य ने पंजाब लोक सेवा आयोग की अध्यक्ष पर शारीरिक

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रूप से हमला में किया, यहां तक कि उन्होंने पंजाब लोक सेवा आयोग के तीन अन्य सदस्यों की उपस्थिति में उनके मुंह पर तमाचा मारा और तद्द्वारा घोर कदाचार किया। जब राष्ट्रपति को उक्त रिपोर्ट मिली, तो उन्होंने संविधान के अनुच्छेद 317(1) द्वारा प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए, उच्चतम न्यायालय के विचार के लिए यह प्रश्न निर्देशित किया कि क्या पंजाब लोक सेवा आयोग के अमुक सदस्य को कदाचार के आधार पर आयोग के सदस्य के पद से हटा दिया जाना चाहिए। निर्देश विचारार्थ मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित—संविधान के अनुच्छेद 317(1) के अधीन उच्चतम न्यायालय को निर्देश करने सम्बन्धी राष्ट्रपति की शक्ति इस पूर्ववर्ती शर्त के अध्यधीन नहीं है कि उन्हें सर्वप्रथम किसी अन्य निकाय या प्राधिकारी द्वारा तथ्यों की जांच करानी चाहिए। उस अनुच्छेद में यह उपबन्ध किया गया है कि लोक सेवा आयोग का अध्यक्ष या कोई अन्य सदस्य राष्ट्रपति द्वारा उच्चतम न्यायालय को किए गए निर्देश के आधार पर उसके द्वारा यह रिपोर्ट प्रस्तुत किए जाने के बाद कि अध्यक्ष या ऐसे अन्य व्यक्ति को किसी ऐसे आधार पर हटा दिया जाना चाहिए, कदाचार के आधार पर ही उसको पद से हटाया जा सकता है। इस अनुच्छेद में इस उपबन्ध को पढ़ने के लिए कोई भी न्यायौचित्य नहीं है जो कि स्पष्टतः उसमें मौजूद नहीं है, विशेषकर ऐसा उपबन्ध जो कि पूर्ववर्ती शर्त की प्रकृति में हो। इसके अलावा, निर्देश से उपाबद्ध दस्तावेजों और वास्तव में ये तथ्य कि वे दस्तावेजें इस प्रकार उपाबद्ध हैं, से यह दर्शित होगा कि राष्ट्रपति का प्रथमदृष्टया यह समाधान हो गया था कि लोक सेवा आयोग के सदस्य के विरुद्ध किए गए अभिकथन इस बात की अपेक्षा करते हैं कि उच्चतम न्यायालय उनकी जांच करें। इन परिस्थितियों में, एक दूसरे निकाय द्वारा भी प्रारम्भिक राय का लिया जाना काम को अनावश्यक रूप से दुबारा करने के समान होगा और जनता के समय और धन का परिहार्य रूप से अपव्यय होगा। (पैरा 6)

यह दलील कि अनुच्छेद 317(1) के अधीन किए गए निर्देश में उच्चतम न्यायालय को तथ्यों की जांच नहीं करनी चाहिए और यह कि उसका कृत्य यह अवधारित करने तक ही सीमित है कि क्या सम्बन्धित व्यक्ति कदाचार का दोषी है और यह कि क्या वह कदाचार ऐसी प्रकृति का है जिससे कि उसे हटाए जाने की बात न्यायोचित ठहर सके, अनुच्छेद 317(1) के स्पष्ट शब्दों के बिल्कुल विरुद्ध है। उस अनुच्छेद में यह उपबन्ध किया गया है कि खण्ड (3) के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, (i) लोक सेवा

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आयोग का अध्यक्ष या कोई अन्य सदस्य कदाचार के आधार पर राष्ट्रपति के आदेश द्वारा ही अपने पद से हटाया जा सकता है और (ii) हटाए जाने का आदेश उच्चतम न्यायालय द्वारा, जांच किए जाने पर, राष्ट्रपति को यह रिपोर्ट दिए जाने के बाद किया जा सकता है, कि लोक सेवा आयोग का अध्यक्ष या सदस्य कदाचार का दोषी है और उसे उस आधार पर उस पद से हटा दिया जाना चाहिए। उच्चतम न्यायालय से जो जांच की जानी अपेक्षित है, वह इस प्रश्न तक ही सीमित नहीं है कि क्या राष्ट्रपति द्वारा निकाले गए तथ्यों के आधार पर, कदाचार का आरोप साबित हो गया है और यह कि क्या कदाचार ऐसी प्रकृति का है जिससे कि उस व्यक्ति को उसके पद से हटाना उचित हो। अनुच्छेद द्वारा अनुध्यात जांच स्वयं तथ्यों की जांच है जिससे कि उच्चतम न्यायालय इस प्रश्न के सम्बन्ध में अपना निर्णय दे सके कि क्या अध्यक्ष या सदस्य के विरुद्ध किए गए अभिकथन साबित हो गए हैं या नहीं। अनुच्छेद 317(1) का प्रयोजन लोक सेवा आयोगों के सदस्यों की स्वतन्त्रता को सुनिश्चित करना है और उन्हें उनकी सेवा-धृति के विषय में संरक्षण देना है। उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को उनके पद से अनुच्छेद 124(क) की विहित प्रक्रिया के अनुसार ही हटाया जा सकता है जोकि क्रमशः अनुच्छेद 218, 148 और 324(5) द्वारा उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों, भारत के नियंत्रक और महालेखा-परीक्षक और मुख्य निर्वाचन आयुक्त को लागू किए गए हैं। एक अर्थ में लोक सेवा आयोग के सदस्यों को जहां तक सम्भव हो, उनके हटाए जाने के विषय में दबावों को दूर करके अधिक संरक्षा प्रदान की गई है। उनके विरुद्ध किए गए कदाचार संबंधी किन्ही भी अभिकथनों की परीक्षा उच्चतम न्यायालय को गुणागुण के आधार पर करनी होती है जो कि ऐसे अभिकथनों से भिन्न होते हैं, जो उन लोगों के विरुद्ध किए जाते हैं जिनके सिद्ध किए गए कदाचार या अक्षमता के आधार पर हटाए जाने का कार्य संसद् की इच्छा पर निर्भर होता है। यह स्वीकार करना असंम्भव है कि संविधान में उच्चतम न्यायालय को एक मामले में और संसद् को उन अन्य लोगों के मामले में यह अवधारित करने की सीमित शक्ति सौंपी है कि क्या किसी अन्य निकाय द्वारा निकाले गए तथ्य एक मामले में कदाचार साबित करते हैं और दूसरे लोगों के मामले में कदाचार या अक्षमता साबित करते हैं। उनका कृत्य तथ्यों के आधार पर निष्कर्ष निकालना है और उनका कर्तव्य यह निर्णय करना है कि उन्होंने जो तथ्य निकाले हैं क्या उनके आधार पर यथास्थिति कदाचार या अक्षमता का आरोप साबित होता है। (पैरा 7)

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जो यह आशंका व्यक्त की गई है कि उच्चतम न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष से अभियोजन या नुकसानी के लिए किसी सिविल वाद के भाग्य का स्वतः ही निर्णय हो जाएगा, वह वास्तविक है, किन्तु उसे ऐसा ही होना चाहिए। उचित रूप से ऐसी कोई शिकायत नहीं की जा सकती है कि यह न्यायालय तथ्यों की परीक्षा या निर्धारण मजिस्ट्रेट या मुन्सिफ के स्थान पर नहीं कर सकता। यदि पक्षकारों को विवाद्य तथ्यों को सिद्ध करने और उनका प्रतिवाद करने का उसी प्रकार से पूरा अवसर दिया जाता है जैसे कि नियमित विचारण में, तो यह शिकायत व्यर्थ है कि उच्चतम न्यायालय ने, न कि प्रथम वाद के न्यायालय ने साक्ष्य की परीक्षा की है और निष्कर्ष निकाला है। यदि दोनों पक्षों को पूर्ण अवसर दिए जाने के बाद, उच्चतम न्यायालय यह निष्कर्ष निकालता है कि अभिकथित तथ्य साबित हो गए हैं, तो दोष-सिद्धि या नुकसानी के लिए की गई डिक्री साधारण अनुक्रम में होगी। किन्तु फिर उच्चतम न्यायालय द्वारा निकाला गया प्रतिकूल निष्कर्ष भी उसी प्रकार से उन कार्यवाहियों का अन्तिम रूप से निपटारा कर देगा। अतः किसी भी पक्ष को ऐसा कोई भी अनुचित लाभ मिलने वाला नहीं है, यदि उच्चतम न्यायालय सीधे ही तथ्य सम्बन्धी प्रश्नों का विनिश्चय करता है। यदि उचित न्यायनिर्णयन के आवश्यक रक्षोपायों को अपनाया जाता है, तो ऐसी कोई शिकायत नहीं की जा सकती कि वे तथ्य जो कि कदाचार के आरोप को साबित करते हैं, देश के सर्वोच्च न्यायालय ने निकाले हैं, न कि सबसे निचले न्यायालय ने। (पैरा 8)

उस प्रक्रिया के सम्बन्ध में प्रश्न उत्पन्न हुआ है, जो कि उच्चतम न्यायालय को संविधान के अनुच्छेद 317(1) के अधीन राष्ट्रपति द्वारा किए गए निर्देश में अपनानी चाहिए। उस अनुच्छद में यह उपबंध किया गया है कि उच्चतम न्यायालय को अनुच्छद 145 के अधीन उस निमित्त विहित प्रक्रिया के अनुसार जांच करनी होगी। अनुच्छेद 145 में यह उपबन्ध किया गया है कि "संसद् द्वारा बनाई गई किसी भी विधि के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, उच्चतम न्यायालय समय-समय पर राष्ट्रपति के अनुमोदन से, न्यायालय की पद्धति, प्रक्रिया और विनियमन के नियम बना सकेगा।" अनुच्छेद 145(1) का उपखण्ड (ज) उच्चतम न्यायालय को यह शक्ति देता है कि अनुच्छेद 317(1) के अधीन की जाने वाली जांच को विनियमित करने के लिए नियम बना सकेगा। सुप्रीम कोर्ट रूल्स (सुप्रीम कोर्ट नियम), 1966 के आदेश 38 में अनुच्छेद 317(1) के अधीन किए गए निर्देशों को विनियमित करने के नियम दिए गए हैं। आदेश 38 के नियम 1 में ऐसे

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

व्यक्तियों का उल्लेख किया गया है जिनको निर्देश सम्बन्धी सूचना का दिया जाना अपेक्षित है। नियम 2 में, यह उपबन्ध किया गया है कि न्यायालय ऐसे साक्षी को समन कर सकेगा जैसे कि वह आवश्यक समझे। इस नियम से यह दर्शित होता है कि राष्ट्रपति द्वारा उच्चतम न्यायालय को निर्देशित विषय में जांच करते हुए वह न्यायालय ऐसे साक्षियों को समन करने का हकदार होता है जो कि स्पष्टतः उनके साक्ष्य को अभिलिखित करने के प्रयोजन के लिए से है। अन्य शब्दों में, अनुच्छेद 317 (1) के अधीन किए गए निर्देश के सम्बन्ध में कार्रवाई करते हुए, उच्चतम न्यायालय को यह शक्ति प्राप्त है कि वह साक्षियों को समन करे और उनके साक्ष्य को अभिलिखित करे। (पैरा 9)

यह देखकर कि साक्षियों को समन करना होगा और उन्हें विरोधी पक्षकार द्वारा प्रतिपरीक्षा करने की इजाजत देनी होगी, जो दूसरा प्रश्न उच्चतम न्यायालय को विनिश्चित करना होगा, वह यह है कि क्या यह न्यायालय अपने ही समक्ष साक्ष्य अभिलिखित करवाए या यह कि वह किसी उत्तरदायी प्रतिनिधि को ऐसा करने के लिए नियुक्त करें। सुप्रीम कोर्ट रूल्स, 1966 के आदेश 38 के नियम 2 में यह उपबन्ध किया गया है कि उच्चतम न्यायालय ऐसे साक्षियों को समन कर सकेगा जैसे कि वह ठीक समझे। यह उपबन्ध उच्चतम न्यायालय को साक्षी को समन करने और उसकी प्रतिपरीक्षा करने के लिए अपेक्षित शक्ति प्रदत्त करता है, किन्तु उसमें अन्तर्विष्ट किसी भी बात को इस प्रकार नहीं पढ़ा जाना चाहिए कि उससे यह अभिप्रेत है कि यह विनिश्चित करने के बाद कि कौन से साक्षियों को बुलाया जाना चाहिए और उनकी परीक्षा की जानी चाहिए, स्वयं उच्चतम न्यायालय को ही साक्ष्य अभिलिखित करना चाहिए। उन्हीं नियमों के आदेश 47 के नियम 6 में यह उपबन्ध किया गया है कि इन नियमों में अन्तर्विष्ट किसी भी बात के बारे में यह नहीं समझा जाएगा कि वह उच्चतम न्यायालय की आन्तरिक शक्तियों को ऐसे आदेश करने के लिए जैसे कि न्याय के उद्देश्य के लिए आवश्यक हों, या न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग रोकने के लिए न्यायालय की अन्तर्निहित शक्ति सीमित करती है या उन पर अन्यथा प्रभाव डालती है। सिविल प्रक्रिया संहिता (धारा 151) या दण्ड प्रक्रिया संहिता (धारा 482) जैसे कानून में उसके तत्समान उपबन्ध से कोई नई शक्ति न तो सृष्ट होती है और न ही प्रदत्त होती है, बल्कि वह न्याय का कार्य करने के लिए न्यायालय की शक्ति परिरक्षित करता है। यद्यपि उच्चतम न्यायालय के आदेश 47 के नियम 6

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जैसा उपबन्ध विनिर्दिष्ट रूप से उन नियमों के आदेश 38 में समाविष्ट नहीं किया गया है, तथापि उसे पश्चात्कथित आदेश के साथ ही इस दृष्टि से पढ़ना होगा जिससे कि यह न्यायालय न्याय के हित में उचित आदेश करने में समर्थ हो सके। उच्चतम न्यायालय की तत्समय (और निकट भविष्य में) महत्वपूर्ण वचनबद्धताओं पर विचार करते हुए, दुःख के साथ यह कहना पड़ रहा है कि यह बात असमीचीन है कि उच्चतम न्यायालय को स्वयं ही साक्ष्य अभिलिखित करना चाहिए। साक्षी को देखने और उनकी सुनवाई का फायदा प्राप्त करने के सिवाय विभिन्न साक्षियों के साक्ष्य को अभिलिखित करने में अपना समय लगाने से कोई भी उपादेय प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा। सुविधा की दृष्टि से, यह अपेक्षित है कि उस लाभ को छोड़ दिया जाए और साक्ष्य अभिलिखित करने का कर्त्तव्य प्रत्यायोजित कर दिया जाए। तदनुसार, यह निदेश दिया जाता है कि इस निर्देश में दिल्ली के विद्वान अपर जिला और सेशन न्यायाधीश साक्ष्य अभिलिखित करेंगे जिन्हें दिल्ली के विद्वान जिला और सेशन न्यायाधीश नामनिर्दिष्ट करेंगे। नामनिर्देशन 22 अगस्त, 1983 के पूर्व किया जाए। (पैरा 12)

सलाहकारी अधिकारिता : 1983 का विशेष निर्देश 1 ं० 1.

भारत के संविधान के अनुच्छेद 317(1) के अधीन किया गया निर्देश।

अध्यक्ष, पंजाब लोक सेवा आयोग की ओर से	सर्वश्री जी० एल० संघी, एस० के० मेहता, पी० एन० पुरी और एम० के० दुआ
पंजाब राज्य की ओर से	सर्वश्री सोली जे० सोराबजी, भगवन्त सिंह, महाधिवक्ता, पंजाब, और एस० के० बग्गा
गोपाल कृष्ण सैनी (व्यतिक्रमी सदस्य) की ओर से	सर्वश्री एफ० एस० नारीमन, अनिल बी० दीवान, गिरीश चन्द्र और श्रीमती सरला चन्द्रा
भारत संघ की ओर से	श्री के० पाराशरण, अटर्नी जनरल और कुमारी ए० सुभाषिणी

न्यायालय का निर्णय मुख्य न्यायाधिपति वाई० वी० चन्द्रचूड़ ने दिया।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मुख्य न्यायाधिपति चन्द्रचूड़—

भारत के राष्ट्रपति द्वारा संविधान के अनुच्छेद 317(1) के अधीन इस न्यायालय को किया गया यह निर्देश अपने ढंग का पहला है। वह अनुच्छेद निम्नलिखित रूप में है :—

> "317. लोक सेवा आयोग के किसी सदस्य को हटाया जाना और निलम्बित किया जाना :
>
> (1) खण्ड (3) के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष या किसी अन्य सदस्य को केवल कदाचार के आधार पर किए गए राष्ट्रपति के ऐसे आदेश से उसके पद से हटाया जाएगा जो उच्चतम न्यायालय को राष्ट्रपति द्वारा निर्देश किए जाने पर उस न्यायालय द्वारा अनुच्छेद 145 के अधीन इस निमित्त विहित प्रक्रिया के अनुसार की गई जांच पर, उस न्यायालय द्वारा यह रिपोर्ट किए जाने के पश्चात् किया गया है कि, यथास्थिति, अध्यक्ष या ऐसे किसी सदस्य को ऐसे किसी आधार पर हटा दिया जाए।"

अनुच्छेद 317 का खण्ड (3), जो कि राष्ट्रपति को लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष या किसी अन्य सदस्य को उपखण्ड (क), (ख) और (ग) में उल्लिखित कारणों से हटाने की शक्ति प्रदत्त करता है, हमारे प्रयोजन के लिए सुसंगत नहीं है।

2. न केवल यह निर्देश अपने ढंग का प्रथम है, बल्कि इसके तथ्य भी, जो कि हमारे विचार और रिपोर्ट के लिए हमें निर्देशित किए गए हैं, खेदजनक रूप से अपने ढंग के पहले हैं। हमें यह आशा है कि वे अपने ढंग के अन्तिम होंगे। निर्देश के आदेश में वे तथ्य निम्नलिखित रूप में परिवर्णित हैं—

> "24-11-1982 को लगभग 1-00 बजे अपराह्न में पंजाब लोक सेवा आयोग के सदस्य श्री गोपाल कृष्ण सैनी ने पंजाब लोक सेवा आयोग की अध्यक्ष श्रीमती संतोष चौधरी पर शारीरिक रूप से हमला किया, यहां तक कि उन्होंने पंजाब लोक सेवा आयोग के तीन अन्य सदस्यों अर्थात् सर्वश्री एच० एस० दियोल, एम० एस० बरार और डब्ल्यू० जी० लाल की उपस्थिति में उनके मुंह पर तमाचा मारा और तद्द्वारा घोर कदाचार किया।"

संविधान के अनुच्छेद 317(1) द्वारा प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए, राष्ट्रपति ने इस न्यायालय के विचार के लिए यह प्रश्न निर्देशित किया है

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

"कि क्या पंजाब लोक सेवा आयोग के सदस्य श्री गोपाल कृष्ण सैनी को कदाचार के आधार पर सदस्य के पद से हटा दिया जाना चाहिए"।

3. हमने आयोग के पांच सदस्यों को जिनमें अध्यक्ष श्रीमती संतोष चौधरी और श्री गोपाल कृष्ण सैनी, जिनकी बाबत यह अभिकथित किया गया है कि उन्होंने अध्यक्ष पर हमला किया है, शामिल हैं, निर्देश के सम्बन्ध में सूचना निकाली। उनमें से सभी ने इन कार्यवाहियों में अपने-अपने शपथपत्र फाइल किए हैं। अन्य ऐसे व्यक्तियों ने भी जिनका दावा यह है कि उन्हें उस घटना या अभिकथित पृष्ठभूमि के बारे में जानकारी है, अपने-अपने शपथपत्र फाइल किए हैं। उनमें से ये हैं : डा० विनोद गुप्ता, उजागर सिंह, अवतार सिंह, हाकम सिंह और डा० रेसवत। श्री सैनी की पत्नी ने भी शपथपत्र फाइल किया है जिसका तात्पर्य यह है कि श्री सैनी को मिथ्या घटना में इसलिए फंसाया गया है क्योंकि पंजाब के मुख्यमन्त्री श्री दरबारा सिंह पंजाब लोक सेवा आयोग के सदस्य के रूप में उनकी नियुक्ति से प्रसन्न नहीं हैं। यह भी अभिकथन किया गया है कि अध्यक्ष का पति लोक सेवा आयोग की परीक्षाओं के लिए छात्रों को प्रशिक्षित करने की कक्षाएं चला रहा है ; यह कि वह यह चाहता था कि कुछ छात्रों के साथ उन परीक्षाओं में कुछ पक्षपात किया जाए और यह कि चूंकि श्री सैनी ने उसकी बात नहीं मानी, इसलिए उसकी पत्नी ने जो कि (आयोग की) अध्यक्ष हैं, श्री सैनी पर मिथ्या आरोप लगाकर उन्हें फंसा दिया है। पंजाब के मुख्यमन्त्री ने भी शपथपत्र फाइल किया है जिसमें उन्होंने अपने विरुद्ध लगाए गए अभिकथनों से इन्कार किया है।

4. इस न्यायालय द्वारा निकाली गई सूचनाओं के अनुसरण में भारत के अटर्नी जनरल और पंजाब के महाधिवक्ता इन कार्यवाहियों में उपस्थित हुए।

5. श्री नारीमन ने जो कि श्री सैनी की ओर से उपस्थित हुए हैं, जिसके आचरण की जांच करने के लिए कहा गया है, यह दलील दी कि यह निर्देश करने के पूर्व राष्ट्रपति को यह चाहिए था कि वे अपने इस प्रथमदृष्टया समाधान के लिए तथ्य अन्वेषक निकाय की राय अभिप्राप्त करते कि श्री सैनी के अभिकथित कदाचार के प्रश्न पर इस न्यायालय से रिपोर्ट अभिप्राप्त करने के लिए मामला बन गया है। काउन्सेल के मतानुसार, इस न्यायालय से, निर्देश के माध्यम से, ऐसे कृत्यों का निर्वहन करने की प्रार्थना नहीं की जा सकती है जो कि मामूली तौर से विचारण न्यायालय की, चाहे वह सिविल न्यायालय हो या दण्ड न्यायालय, अधिकारिता के भीतर

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आते हैं। ऐसी प्रक्रिया के खतरे के बारे में जो कहा गया है, वह यह है कि यदि हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि यह घटना साबित हो गई है, तो श्री सैनी को स्वतः ही हमला करने के आरोप के लिए दण्ड न्यायालय द्वारा दोषी ठहराया जायेगा और उसे सिविल न्यायालय में नुकसानी की डिक्री का भी भुगतान करना पड़ेगा। काउन्सेल का कहना यह है कि अनुच्छेद 317 (1) के अधीन इस न्यायालय का सीमित कृत्य यह अवधारित करना होना चाहिए कि क्या स्वतः तथ्य अन्वेषक निकाय द्वारा निकाले गए तथ्यों से यह दर्शित होता है कि सम्बन्धित व्यक्ति अवचार का दोषी है और दूसरी बात यह है कि क्या वह अवचार ऐसी प्रकृति का है जिससे कि लोक सेवा आयोग के ऐसे सदस्य को उस पद से हटाना अपेक्षित हो।

6. हम ये दलीलें स्वीकार करने में असमर्थ हैं। अनुच्छेद 317 (1) के अधीन इस न्यायालय को निर्देश करने संबंधी राष्ट्रपति की शक्ति इस पूर्ववर्ती शर्त के अध्यधीन नहीं है कि उन्हें सर्वप्रथम किसी अन्य निकाय या प्राधिकारी द्वारा तथ्यों की जांच करानी चाहिए। उस अनुच्छेद में यह उपबंध किया गया है कि लोक सेवा आयोग का अध्यक्ष या कोई अन्य सदस्य राष्ट्रपति द्वारा उच्चतम न्यायालय को किए गए निर्देश के आधार पर उसके द्वारा यह रिपोर्ट प्रस्तुत किए जाने के बाद कि अध्यक्ष या ऐसे अन्य व्यक्ति को किसी ऐसे आधार पर हटा दिया जाना चाहिए, कदाचार के आधार पर ही उसको पद से हटाया जा सकता है। इस अनुच्छेद में इस उपबन्ध को पढ़ने के लिए कोई भी न्यायौचित्य नहीं है जो कि स्पष्टतः उसमें मौजूद नहीं है, विशेषकर ऐसा उपबन्ध जो कि पूर्ववर्ती शर्त की प्रकृति में हो। इसके अलावा, निर्देश के उपाबद्ध दस्तावेजों और वास्तव में इन तथ्यों से कि वे दस्तावेज इस प्रकार उपाबद्ध हैं, यह दर्शित होगा कि राष्ट्रपति का प्रथम-दृष्टया यह समाधान हो गया था कि लोक सेवा आयोग के सदस्य के विरुद्ध किए गए अभिकथन इस बात की अपेक्षा करते हैं कि हम उनकी जांच करें। निर्देश के आदेश के साथ श्री सैनी के विरुद्ध किए गए अभिकथनों का उसके द्वारा दिया गया उत्तर तथा आयोग के तीनों सदस्यों श्री एच० एस० दियालो, श्री एम० एस० बरार और श्री डब्ल्यू० जी० लाल के कथन उपाबद्ध हैं। ये चारों कथन निर्देश के क्रमशः उपाबन्ध 2, 3, 3-क और 3-ख हैं। इस सामग्री के आधार पर ही राष्ट्रपति ने निर्देश किया है। यह सामग्री ऐसे ढंग और ऐसे प्रकार की है जो कि राष्ट्रपति की इस राय को न्यायोचित ठहराने के लिए काफी है कि इस न्यायालय द्वारा जांच करने और रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए प्रथमदृष्टया मामला बनता है। इन परिस्थितियों में, एक दूसरे निकाय

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

द्वारा भी प्रारम्भिक राय का लिया जाना काम को अनावश्यक रूप से दुबारा करने के समान होगा और जनता के समय और धन का परिहार्य रूप से अपव्यय होगा।

7. यह दलील कि अनुच्छेद 317 (1) के अधीन किए गए निर्देश में इस न्यायालय को तथ्यों की परीक्षा नहीं करनी चाहिए और यह कि उसका कृत्य यह अवधारित करने तक ही सीमित है कि क्या सम्बन्धित व्यक्ति कदाचार का दोषी है और यह कि क्या वह कदाचार ऐसी प्रकृति का है जिससे कि उसे हटाए जाने की बात न्यायोचित ठहर सके अनुच्छेद 317 (1) के स्पष्ट शब्दों के बिलकुल विरुद्ध है। उस अनुच्छेद में यह उपबन्ध किया गया है कि खण्ड (3) के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, (i) लोक सेवा आयोग का अध्यक्ष या कोई अन्य सदस्य कदाचार के आधार पर राष्ट्रपति के आदेश द्वारा ही अपने पद से हटाया जा सकता है और (ii) हटाए जाने का आदेश उच्चतम न्यायालय द्वारा, जांच किए जाने पर, राष्ट्रपति को यह रिपोर्ट दिए जाने के बाद किया जा सकता है, कि लोक सेवा आयोग का अध्यक्ष या सदस्य कदाचार का दोषी है और उसे उस आधार पर उस पद से हटा दिया जाना चाहिए। इस न्यायालय से जो जांच की जानी अपेक्षित है, वह इस प्रश्न तक ही सीमित नहीं है कि क्या राष्ट्रपति द्वारा निकाले गए तथ्यों के आधार पर, कदाचार का आरोप साबित हो गया है और यह कि क्या कदाचार ऐसी प्रकृति का है जिससे कि उस व्यक्ति को उसके पद से हटाना उचित हो। अनुच्छेद द्वारा अनुध्यात जांच स्वयं तथ्यों की जांच है जिससे कि यह न्यायालय इस प्रश्न के सम्बन्ध में अपना निर्णय दे सके कि क्या अध्यक्ष या सदस्य के विरुद्ध किए गए अभिकथन साबित हो गए हैं या नहीं। अनुच्छेद 317 (1) के प्रयोजन लोक सेवा आयोगों के सदस्यों की स्वतन्त्रता को सुनिश्चित करना है और उन्हें उनकी सेवावृत्ति के विषय में संरक्षण देना है। उच्चतम न्यायालयों के न्यायाधीशों को उनके पद से अनुच्छेद 124 (क) की विहित प्रक्रिया के अनुसार ही हटाया जा सकता है जो कि क्रमशः अनुच्छेद 218, 148 और 324 (5) द्वारा उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों, भारत के नियंत्रक और महालेखा-परीक्षक और मुख्य निर्वाचन आयुक्त को लागू किए गए हैं। एक अर्थ में लोक सेवा आयोग के सदस्यों को, जहां तक संभव हो, हटाए जाने के विषय में पड़ने वाले दबावों को दूर करके उन्हें अधिक संरक्षा प्रदान की गई है। उच्चतम न्यायालय को उनके विरुद्ध किए गए कदाचार सम्बन्धी किन्हीं भी अभिकथनों की परीक्षा गुणागुण के आधार पर करनी होती है जो कि ऐसे अभिकथनों से भिन्न होती है जो अन्य लोगों के विरुद्ध किए जाते हैं

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जिनके सिद्ध किए गए कदाचार या अक्षमता के आधार पर हटाए जाने का कार्य संसद् की इच्छा पर निर्भर होता है। यह स्वीकार करना असंभव है कि संविधान में उच्चतम न्यायालय को एक मामले में और संसद् को उन अन्य लोगों के मामले में यह अवधारित करने की सीमित शक्ति सौंपी है कि क्या किसी अन्य निकाय द्वारा निकाले गए तथ्य एक मामले में कदाचार साबित करते हैं और दूसरे लोगों के मामले में कदाचार या अक्षमता साबित करते हैं। उनके कृत्य तथ्यों के आधार पर निष्कर्ष निकालना है और उनका कर्त्तव्य यह निर्णय करना है कि उन्होंने जो तथ्य निकाले हैं क्या उनके आधार पर यथास्थिति कदाचार या अक्षमता का आरोप साबित होता है।

8. विद्वान् काउन्सेल ने जो यह आशंका व्यक्त की है कि इस न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष से अभियोजन या नुकसानी के लिए किसी सिविल वाद के भाग्य का स्वतः ही निर्णय हो जाएगा, वास्तविक है, किन्तु उसे ऐसा ही होना चाहिए। उचित रूप से ऐसी कोई शिकायत नहीं की जा सकती है कि यह न्यायालय तथ्यों की परीक्षा या निर्धारण मजिस्ट्रेट या मुन्सिफ के स्थान पर नहीं कर सकता। यदि पक्षकारों को विवाद्य तथ्यों को सिद्ध करने और उनका प्रतिवाद करने का उसी प्रकार से पूरा अवसर दिया जाता है जैसे कि नियमित विचारण में, तो यह शिकायत व्यर्थ है कि उच्चतम न्यायालय ने, न कि प्रथम वाद के न्यायालय ने, साक्ष्य की परीक्षा की है और निष्कर्ष निकाला है। यदि दोनों पक्षों को पूर्ण अवसर दिए जाने के बाद, उच्चतम न्यायालय यह निष्कर्ष निकालता है कि अभिकथित तथ्य साबित हो गए हैं, तो दोषसिद्धि या नुकसानी के लिए की गई डिक्री साधारण अनुक्रम में होगी। किन्तु फिर इस न्यायालय द्वारा निकाला गया प्रतिकूल निष्कर्ष भी उसी प्रकार से उन कार्यवाहियों का अन्तिम रूप से निपटारा कर देगा। अतः किसी भी पक्ष को ऐसा कोई भी अनुचित लाभ मिलने वाला नहीं है, यदि यह न्यायालय सीधे ही तथ्य संबंधी प्रश्नों का विनिश्चय करता है। यदि उचित न्यायनिर्णयन के आवश्यक रक्षोपायों को अपनाया जाता है, तो ऐसी कोई शिकायत नहीं की जा सकती कि वे तथ्य जो कि कदाचार के आरोप को साबित करते हैं, देश के सर्वोच्च न्यायालय ने निकाले हैं, न कि सबसे निचले न्यायालय ने।

9. तो हमारे समक्ष जो प्रश्न उत्पन्न हुआ है, वह इस प्रक्रिया के सम्बन्ध में है जो कि इस न्यायालय को संविधान के अनुच्छेद 317 (1) के अधीन राष्ट्रपति द्वारा किए गए निर्देश में अपनानी चाहिए। उस अनुच्छेद में

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यह उपबंध किया गया है कि इस न्यायालय को अनुच्छेद 145 के अधीन उस निमित्त विहित प्रक्रिया के अनुसार जांच करनी होगी। अनुच्छेद 154 में यह उपबन्ध किया गया है कि "संसद् द्वारा बनाई गई किसी भी विधि के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, उच्चतम न्यायालय, समय-समय पर राष्ट्रपति के अनुमोदन से, न्यायालय की पद्धति प्रक्रिया और विनियमन के नियम बना सकेगा।" अनुच्छेद 145 (1) का उपखण्ड (ग्र) इस न्यायालय को यह शक्ति देता है कि वह अनुच्छेद 317 (1) के अधीन की जाने वाली जांच को विनियमित करने के लिए नियम बना सकेगा। सुप्रीम कोर्ट रूल्स, (सुप्रीम कोर्ट नियम), 1966 के आदेश 38 में अनुच्छेद 317 (1) के अधीन किए गए निर्देशों को विनियमित करने के नियम दिए गए हैं। आदेश 38 के नियम 1 में ऐसे व्यक्तियों का उल्लेख किया गया है जिनको निर्देश सम्बन्धी सूचना का दिया जाना अपेक्षित है। नियम 2 में, जिसके संबंध में हमें विचार करना है, यह उपबन्ध किया गया है कि "न्यायालय ऐसे साक्षी को समन कर सकेगा जैसे कि वह आवश्यक समझे"। इस नियम से यह दर्शित होता है कि राष्ट्रपति द्वारा उच्चतम न्यायालय को निर्देशित विषय की जांच करते हुए यह न्यायालय ऐसे साक्षियों को समन करने का हकदार होता है जो कि स्पष्टतः उनके साक्ष्य को अभिलिखित करने के प्रयोजन के लिए है। अन्य शब्दों में, अनुच्छेद 317 (1) के अधीन किए गए निर्देश के सम्बन्ध में कार्रवाई करते हुए, इस न्यायालय को यह शक्ति प्राप्त है कि वह साक्षियों को समन करे और उनके साक्ष्य को अभिलिखित करे।

10. प्रक्रिया सम्बन्धी विवाद्यक जो कि हमारे समक्ष उठाया गया था, यह है कि क्या हमें शपथपत्रों के आधार पर ही श्री सैनी के विरुद्ध किए गए अभिकथनों के सम्बन्ध में अपनी राय व्यक्त करनी चाहिए या यह कि क्या हमें ऐसे व्यक्तियों की जिन्होंने अपने शपथपत्र फाइल किए हैं प्रतिपरीक्षा करने के लिए पक्षकारों को इजाजत देनी चाहिए। हमें निर्देशित किए गए विषय की प्रकृति और गम्भीरता पर विचार करते हुए, हमारी राय यह है कि केवल शपथपत्रों पर विचार करने के आधार पर ही इस निर्देश को विनिश्चित करना न्याय के अनुकूल नहीं होगा। इस प्रक्रम में हमें यह नहीं मालूम कि क्या श्री सैनी द्वारा किया गया यह अभिकथन कि मुझे किन्हीं अन्य विषयों के कारण और कतिपय अन्य व्यक्तियों के कहने पर, इस विशिष्ट घटना में मिथ्या रूप से फंसाया गया है, सही है या नहीं, किन्तु उन अभिकथनों के सम्बन्ध में कोई भी न्यायनिर्णयन केवल शपथपत्रों पर विचार करके ही नहीं किया जा सकता। ऐसे साक्षियों की विश्वसनीयता जो कि तथ्यों

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के सम्बन्ध में अभिसाक्ष्य देते हैं, ऐसा विषय है जिसका सीधा प्रभाव प्रत्यर्थियों के न्यायनिर्णयन पर पड़ता है और इस बात की परीक्षा करने का सर्वाधिक अच्छा ढंग कि क्या कोई साक्षी विश्वसनीय व्यक्ति हैं, उसकी प्रतिपरीक्षा करना है। साक्षी की विश्वसनीयता को उसकी प्रतिपरीक्षा करके धक्का पहुंचाया जा सकता है (और यदि इसी बात को व्यंग्यात्मक रूप से कहा जाए, तो कभी-कभी उसे साबित किया जा सकता है) तथा वास्तव में साक्ष्य अधिनियम की धारा 146(3) किसी साक्षी की प्रतिपरीक्षा को विनिर्दिष्ट रूप से इस दृष्टि से अनुज्ञात करती है जिससे कि उसके "शील पर दोष लगाकर उसकी विश्वसनीयता को" धक्का पहुंचाया जा सके। हमें निर्देशित प्रश्न से सम्बन्धित भावी विचारण के सम्बन्ध में, चाहे वह सिविल हो या दाण्डिक, निकाले गए अपने निष्कर्षों के प्रभाव को ध्यान में रखते हुए, सम्बन्धित पक्षकारों के सम्बन्ध में हमारे निष्कर्षों के प्रभाव और तथ्य इस कि हमें निर्देशित विषय ऐसे लोक महत्व के हैं जो कि पक्षकारों के, जिन्होंने एक दूसरे के विरुद्ध अभिकथन और प्रति-अभिकथन किए हैं, अव्यवहित निजी हितों की समान रेखा पार करता है, हमारा मत यह है कि इन कार्यवाहियों के परिणामस्वरूप जिन पक्षकारों के अर्थात् अध्यक्ष श्रीमती संतोष चौधरी और श्री गोपाल कृष्ण सैनी, के हितों पर सीधा प्रभाव पड़ता है, उन्हें विरोध करने वाले ऐसे साक्षियों की प्रतिपरीक्षा करने की अनुज्ञा दी जानी चाहिए जिन्होंने अपने शपथपत्र फाइल किए हैं।

11. इस साक्ष्य की, जिसे हमें पक्षकारों को पेश करने की इजाजत देनी चाहिए, प्रकृति और विस्तार के सम्बन्ध में हमारे समक्ष प्रस्तुत परस्पर-विरोधी मतों के बीच काफी भिन्नता है। श्री सोराबजी जो कि पंजाब सरकार की ओर से उपस्थित हुए हैं और श्री जी० एल० संघी की जो कि अध्यक्ष की ओर से उपस्थित हुए हैं, यह दलील है कि केवल इसी प्रश्न के सम्बन्ध में ही साक्ष्य पेश किए जाने की इजाजत दी जानी चाहिए कि क्या चांटा लगाने की घटना उसी रूप में हुई थी जैसे कि अभिकथन किया गया है, न कि किसी ऐसे अन्य विषय के सम्बन्ध में। इन विद्वान काउन्सेलों ने इस बात पर जोर दिया कि हमारा सम्बन्ध यह अवधारित करने से ही है कि क्या श्री सैनी ने अध्यक्ष को चांटा मारा था, न कि हमला करने से पहले वाली घटनाओं से, जिनकी बाबत यह कहा गया है कि वे श्री सैनी को अभिकथित रूप से तथा मिथ्या रूप से फंसाने का हेतु प्रस्तुत करती हैं। दूसरी ओर, श्री नारीमन ने यह दलील दी कि उसके मुवक्किल का मामला यह है कि उसे हमला के उस आरोप में मिथ्या रूप से फसाया गया है क्योंकि उसने पंजाब के

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मुख्यमन्त्री को नाराज किया था और अध्यक्ष के पति की शत्रुता मोल ली थी और यह कि उसके लिए अपने मामले को साबित करना तब तक असम्भव होगा जब तक कि उसे इस विषय के उन पहलुओं के संबंध में साक्षियों की प्रतिपरीक्षा करने की इजाजत न दे दी जाए। काउन्सेल की दलील यह है कि यदि वह हमारा समाधान कर दे कि उसके मुवक्किल को मिथ्या रूप से फंसाने के लिए षड़यंत्र था और या यह कि उसे इस रूप में फंसाने के लिए कारण मौजूद हैं, तो हम यह अभिनिर्धारित न करें कि अभिकथित घटना साबित हो गई है। श्री नारीमन की दलील को इस मामले की परिस्थितियों में अवश्य ही स्वीकार करना होगा। किसी साक्ष्य पर, जिसका सीधा प्रभाव उस घटना पर पड़ता है जिसकी बाबत यह अभिकथित किया गया है कि वह 22 नवम्बर, 1982 को हुई थी, उसे अलग रखकर विचार करना असम्भव होगा। सम्पूर्ण साक्ष्य को, चाहे वह ग्राह्य हो या सुसंगत हो, यह विनिश्चित करने के प्रयोजनार्थ विचार में लेना होगा कि क्या श्री सैनी के विरुद्ध किए गए अभिकथन के बारे में यह अभिनिर्धारित किया जा सकता है कि वह साबित हो गया है। इस प्रक्रम में हम साक्ष्य के किसी विशिष्ट प्रभाग की ग्राह्यता और सुसंगति के सम्बन्ध में कोई भी निर्णय नहीं देना चाहते हैं, जो कि हमारे समक्ष सम्पूर्ण साक्ष्य के पेश किए जाने के बाद ही किया जा सकता है। इस समय हम जो कर रहे हैं, वह केवल इस कहने तक ही सीमित है कि हम श्री सैनी को, जिनके विरुद्ध गम्भीर आरोप लगाया गया है, यह साबित करने से हम नहीं रोक सकते कि यह आरोप मिथ्या और दुष्प्रेरित है। एक प्रश्न जो कि इस मामले में निश्चित रूप से उठेगा, जैसा कि उसी प्रकार के मामलों में उठता है, इस सम्बन्ध में है कि परिवादी, परेशानी मोल लेकर और अपनी समस्त सम्मानीयता को खतरे में डालते हुए, यह मिथ्या अभिकथन क्यों करेगी कि उसको चांटा मारा गया था। उस प्रश्न का उत्तर उस व्यक्ति को देना होगा जिससे कि इस अभिकथन का उत्तर देने के लिए कहा गया है कि उसने उसे (अध्यक्ष को) चांटा मारा था। तथ्य सम्बन्धी प्रश्नों के उत्तर न्यायालयों में किन्हीं आधार पर देने के सिवाय नहीं दिए जा सकते। उन उत्तरों को न्यायोचित ठहराने के लिए साक्ष्य होना ही चाहिए। अतः यह उचित है कि श्री सैनी को अपना यह मामला साबित करने का अवसर दिया जाए कि उसके विरुद्ध जो आरोप लगाया गया है, वह मिथ्या है, दुष्प्रेरित है और उकसाए जाने के कारण लगाया गया है। हम केवल यह आशा करते हैं कि श्री सैनी इस अवसर का उपयोग मुख्यमन्त्री के विरुद्ध राजनीतिक लड़ाई लड़ने या अध्यक्ष के पति से झगड़ा करने के लिए नहीं करेंगे। इन अभियोगों और प्रति-

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अभियोगों के लगाए जाने के बाद जब वातावरण शान्त हो जाएगा, तो अन्तिम विश्लेषण करने पर जिस मुख्य प्रश्न का उत्तर इस न्यायालय को देना होगा, वह यह है कि : क्या श्री सैनी ने अध्यक्ष को चांटा मारा था या नहीं ? अध्यक्ष का कहना है कि उसने चांटा मारा था। श्री सैनी का कहना है कि उसने चांटा नहीं मारा था। इसके विपरीत, उसके मतानुसार, अध्यक्ष ने ही जबकि उसे चांटा मारने के लिए अपना हाथ उठाया था, तो उसने उसे रोकने की कोशिश की थी। उसका कहना यह है कि हितबद्ध पक्षकारों ने व्यक्तिगत दुर्भावना या शत्रुता के कारण उसे मिथ्या आरोप में फंसाने के लिए इस अवसर का उपयोग किया गया है। अभियोग लगाने वाले और अभियुक्त दोनों को अपने-अपने मामले साबित करने का समान अवसर दिया जाना चाहिए। यह भी स्मरण रखा जाना चाहिए कि अनुच्छेद 317 इस दृष्टि से अधिनियमित किया गया था जिससे कि लोक सेवा आयोग के सदस्यों को उनके पद से उन्हें हटाने के सम्बन्ध में संरक्षा प्रदान की जा सके, न कि निर्योग्यता के रूप में।

12. यह देखकर कि साक्षियों को समन करना होगा और उन्हें विरोधी पक्षकार द्वारा प्रतिपरीक्षा करने की इजाजत देनी होगी, जो दूसरा प्रश्न हमें विनिश्चित करना होगा, वह यह है कि क्या हम, अपने ही समक्ष साक्ष्य अभिलिखित करवाएं या यह कि हम उसे किसी उत्तरदायी प्रतिनिधि को ऐसा करने के लिए नियुक्त करें और करना चाहिए। सुप्रीम कोर्ट रूल्स, 1966 के आदेश 38 के नियम 2 में यह उपबन्ध किया गया है कि यह न्यायालय ऐसे साक्षियों को समन कर सकेगा जैसे कि वह ठीक समझे। यह उपबन्ध इस न्यायालय को साक्षी को समन करने और उसकी प्रतिपरीक्षा करने के लिए अपेक्षित शक्ति प्रदत्त करता है, किन्तु उसमें अन्तर्विष्ट किसी भी बात को इस प्रकार नहीं पढ़ा जाना चाहिए कि उससे यह अभिप्रेत है कि यह विनिश्चित करने के बाद कि कौन-से साक्षियों को बुलाया जाना चाहिए और उनकी परीक्षा की जानी चाहिए, स्वयं इस न्यायालय को ही साक्ष्य अभिलिखित करना चाहिए। उन्हीं नियमों के आदेश 47 के नियम 6 में यह उपबन्ध किया गया है कि इन नियमों में अन्तर्विष्ट किसी भी बात के बारे में यह नहीं समझा जाएगा कि वह इस न्यायालय की आन्तरिक शक्तियों को ऐसे आदेश करने के लिए जैसे कि न्याय के उद्देश्य के लिए आवश्यक हों, या न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग रोकने के लिए न्यायालय की अन्तर्निहित शक्ति सीमित करती है या उन पर अन्यथा प्रभाव डालती है। सिविल प्रक्रिया संहिता (धारा 151) या दण्ड प्रक्रिया संहिता (धारा 482) जैसे

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कानून में उसके तत्समान उपबन्ध जैसे इस उपबन्ध से कोई नई शक्ति न तो सृष्ट होती है और न ही प्रदत्त होती है, बल्कि वह न्यास का कार्य करने के लिए न्यायालय की शक्ति परिरक्षित करता है। यद्यपि उच्चतम न्यायालय के आदेश 47 के नियम 6 जैसा उपबन्ध विनिर्दिष्ट रूप से उन नियमों के आदेश 38 में समाविष्ट नहीं किया गया है, तथापि उसे पश्चातकथित आदेश के साथ ही इस दृष्टि से पढ़ना होगा जिससे कि यह न्यायालय न्याय के हित में उचित आदेश करने में समर्थ हो सके। इस न्यायालय की तत्समय (और निकट भविष्य में) महत्वपूर्ण वचनबद्धताओं पर विचार करते हुए, दुःख के साथ यह कहना पड़ रहा है कि यह बात असमीचीन है कि इस न्यायालय को स्वयं ही साक्ष्य अभिलिखित करना चाहिए। साक्षी को देखने और उनकी सुनवाई का फायदा प्राप्त करने के सिवाय विभिन्न साक्षियों के साक्ष्य को अभिलिखित करने में अपना समय लगाने से कोई भी उपादेय प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा। सुविधा की दृष्टि से यह अपेक्षित है कि हम उस लाभ को छोड़ दें और साक्ष्य अभिलिखित करने का कर्तव्य प्रत्यायोजित कर दिया जाए। तदनुसार, हम यह निदेश देते हैं कि इस निर्देश में दिल्ली के विद्वान अपर जिला और सेशन न्यायाधीश साक्ष्य अभिलिखित करेंगे जिन्हें दिल्ली के विद्वान जिला और सेशन न्यायाधीश नामनिर्दिष्ट करेंगे। नामनिर्देशन 22 अगस्त, 1983 के पूर्व किया जाए।

13. हम इस प्रकार नामनिर्दिष्ट किए गए विद्वान न्यायाधीश को साक्ष्य अभिलिखित करने के लिए कोई भी ऐसी शक्ति प्रदत्त नहीं कर सकते जिससे कि वह साक्ष्य के किसी विशिष्ट प्रभाग की ग्राह्यता या उसकी सुसंगति के सम्बन्ध में विनिश्चय कर सके। अतः विद्वान न्यायाधीश ऐसे साक्ष्य, जो कि पक्षकार उसके समक्ष प्रस्तुत करें, निम्नलिखित मार्गदर्शक सिद्धान्तों की सीमाओं के भीतर रहते हुए, अभिलिखित करेगा :

(1) इस न्यायालय में फाइल किए गए शपथपत्रों को सम्बन्धित साक्षियों की मुख्य परीक्षा के रूप में माना जाएगा।

(2) विद्वान सेशन न्यायाधीश द्वारा अभिलिखित किया जाने वाला साक्ष्य उन साक्षियों की प्रतिपरीक्षा तक ही सीमित रहेगा जिन्होंने हमारे समक्ष शपथपत्र फाइल किए हैं। अन्य शब्दों में, ऐसे किसी व्यक्ति की जिसने इस न्यायालय में शपथपत्र फाइल नहीं किया है, साक्षी के रूप, इस न्यायालय की इजाजत से करने के सिवाय, न तो परीक्षा की जाएगी और न ही प्रतिपरीक्षा की जाएगी।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(3) ऐसे साक्षियों को जिन्होंने इस न्यायालय में शपथपत्र फाइल किए हैं, प्रतिपरीक्षा के प्रयोजनार्थ इस न्यायालय में उपस्थित होने वाले विद्वान न्यायाधीश समन कर सकेंगे या उसके सम्बन्ध में निदेश दे सकेंगे। प्रसामान्यतः कार्यवाहियां दिल्ली में की जाएंगी। तथापि साक्ष्य किसी अन्य स्थान पर उस दशा में अभिलिखित किया जा सकेगा यदि विद्वान न्यायाधीश उसे आवश्यक या सुविधाजनक समझते हैं।

14. मात्र इस तथ्य से कि किसी विशिष्ट साक्षी का साक्ष्य विद्वान न्यायाधीश द्वारा अभिलिखित किया गया है, उस साक्ष्य की ग्राह्यता या सुसंगति से सम्बन्धित विवाद्यक समाप्त नहीं हो जाएगा। यह न्यायालय इस प्रकार अभिलिखित किए गए साक्ष्य की ग्राह्यता या सुसंगति से सम्बन्धित सभी प्रश्न निर्देश की सुनवाई के दौरान विनिश्चित करेगा।

15. हम यह आशा करते हैं कि सभी सम्बन्धित पक्षकार इस बात की सावधानी बरतेंगे कि वे साक्षियों से तुच्छ या निंद्य प्रश्न न करें और विद्वान न्यायाधीश को उसके समक्ष वाली कार्यवाहियों को शीघ्रता के साथ समाप्त करने में आवश्यक सहयोग देंगे।

16. पक्षकार दिल्ली के विद्वान जिला और सेशन न्यायाधीश द्वारा नामनिर्दिष्ट विद्वान अपर जिला और सेशन न्यायाधीश के समक्ष सोमवार, 5 सितम्बर, 1983 को इस मामले में आगे निदेश अभिप्राप्त करने के लिए उपस्थित होंगे। साक्ष्य अभिलिखित करने का कार्य सोमवार, 12 सितम्बर, 1983 को प्रारम्भ होगा और दिन-प्रतिदिन तब तक चलता रहेगा, कि जब तक समस्त साक्ष्य समाप्त न हो जाएं। हम इस बात की आशा करते हैं कि साक्ष्य को अभिलिखित करने का कार्य 30 सितम्बर, 1983 तक समाप्त हो जाएगा। यदि उस तारीख तक वह समाप्त नहीं होता, तो विद्वान न्यायाधीश समय बढ़ाने के लिए उच्चतम न्यायालय के रजिस्ट्रार को लिख सकेंगे। समस्त साक्ष्य अभिलिखित किए जाने के तुरन्त बाद इस न्यायालय के रजिस्ट्रार (न्यायिक) को साक्ष्य प्रतिप्रेषित कर दिया जाएगा। तदनुसार आदेश किया गया।

निर्देश विचारार्थ मंजूर किया गया।

श्री/

———

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

शिवाजी नारायण बाछव

बनाम

महाराष्ट्र राज्य

(Shivaji Narayan Bachhav

v.

State of Maharashtra)

(18 अगस्त, 1983)

[न्यायाधिपति ओ० चिन्नप्पा रेड्डी और ई० एस० वेंकटरामय्या]

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2)—धारा 384 और 374—अपील का संक्षेपतः खारिज किया जाना—वैधता—हत्या के लिए दोषसिद्धि और आजीवन कारावास के दण्ड के विरुद्ध अपील की जानी—अपील को संक्षेपतः "खारिज की गई" शब्दों के साथ खारिज नहीं किया जा सकता।

वर्तमान अपील में मुम्बई उच्च न्यायालय ने हत्या के एक ऐसे मामले में जिसमें दोषसिद्धि की गई थी और आजीवन कारावास की शास्ति अधिरोपित की गई थी, दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 384 में विहित प्रक्रिया को नजरअन्दाज करते हुए उसे संक्षेपतः खारिज कर दिया और अपने निर्णय में केवल एक ही शब्द लिखा "डिसमिस्ड" (खारिज की गई)। उच्च न्यायालय के इस निर्णय के विरुद्ध संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन विशेष इजाज़त पिटीशन फाइल किया गया जिस पर विशेष इजाज़त देकर अपील मंजूर करते हुए, उच्चतम न्यायालय द्वारा

अभिनिर्धारित—हत्या के अपराध के लिए की गई दोषसिद्धि और आजीवन कारावास के विरुद्ध की गई अपील को संक्षेपतः खारिज नहीं किया जा सकता। संक्षेपतः अपील खारिज करने के लिए जो भी कारण हों उनको अभिलिखित करना आवश्यक है जिससे कि न्यायिक प्रक्रिया के औचित्य को दर्शाया जा सके भले ही उल्लेख संक्षेप में ही क्यों न हो। कम से कम इस बात का प्रमाण तो होना ही चाहिए कि मामले का विवरण न्यायालय के

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

समक्ष था और उसने अन्तर्ग्रस्त प्रश्न पर विचार कर लिया है। उन मामलों को छोड़कर जो बहुत मामूली किस्म के हैं और जिनमें अभियुक्त ने अपराध स्वीकार कर लिया हो, शेष सभी मामलों में अभियुक्त को दण्ड प्रक्रिया संहिता के अधीन अपील करने का अधिकार प्राप्त है। दोषसिद्ध व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह अपीली न्यायालय से साक्ष्य के पुनर्मूल्यांकन किए जाने की प्रार्थना कर सकता है। अपीली न्यायालय को धारा 384 के अधीन आरम्भतः कोई भी अपील खारिज करने की शक्ति प्राप्त है जिसमें कोई सन्देह नहीं है। किन्तु यह ऐसी शक्ति है जिसका प्रयोग बहुत सावधानी और सतर्कता से किया जाना चाहिए। हत्या के लिए दोषसिद्धि और आजीवन कारावास का दण्ड दोनों ही ऐसी बातें हैं जिनके लिए उच्च न्यायालय को अपील ग्रहण करना था और साक्ष्य का निष्पक्ष मूल्यांकन करना चाहिए था। इस प्रकार के मामले में "खारिज की गई" पद की त्रुटिपूर्ण शब्दावली के साथ अपील का संक्षेपतः खारिज किया जाना एक खतरनाक कदम है। इस प्रकार अपील खारिज करना तो वस्तुतः अपील के अधिकार से इनकार करना ही है। (पैरा 2)

अवलम्बित निर्णय

पैरा

[1981] [1981] क्रिमिनल ला जर्नल 724 : दगादू बनाम महाराष्ट्र राज्य (Dagadu *v.* State of Maharashtra);

[1974] ए० आई० आर० 1974 एस० सी० 791 : सम्पत तत्याड शिन्दे बनाम महाराष्ट्र राज्य (Sampata Tatyada Shinde *v.* State of Maharashtra); 2

[1974] [1974] 3 उम० नि० प० 1602 = ए० आई० आर० 1970 एस० सी० 977 : सिदन्ना अप्पा राव बनाम महाराष्ट्र राज्य (Siddanna Appa Rao *v.* State of Maharashtra); 2

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

[1974] [1974] 3 उम० नि० प० 1037= ए० आई० आर० 1970 एस० सी० 1033 : गोविन्द काडटुजी कदम बनाम महाराष्ट्र राज्य (Govinda Kadutji Kadam *v.* State of Maharashtra); 2

[1973] [1973] 3 उम० नि० प० 1113= ए० आई० आर० 1974 एस० सी० 274 : कृष्णा विठू सुरोशे बनाम महाराष्ट्र राज्य (Krishna Vithu Suroshe *v.* State of Maharashtra); 2

[1973] ए० आई० आर० 1973 एस० सी० 1122 : मुश्ताक अहमद बनाम महाराष्ट्र राज्य (Mushtaq ahmed *v.* State of Maharashtra); 2

[1973] ए० आई० आर० 1973 एस० सी० 278 : जीवन प्रकाश बनाम महाराष्ट्र राज्य (Jeewan Prakash *v.* State of Maharashtra); 2

[1973] ए० आई० आर० 1973 एस० सी० 243 : के० के० जैन बनाम महाराष्ट्र राज्य (K. K. Jain *v.* State of Maharashtra); 2

[1973] ए० आई० आर० 1973 एस० सी० 43 : शेख मोहम्मद अली बनाम महाराष्ट्र राज्य (Shaik Mohamed Ali *v.* State of Maharashtra); 2

[1971] ए० आई० आर० 1971 एस० सी० 1656 : नारायण नत्थू नायक बनाम महाराष्ट्र राज्य (Narayan Nathu Naik *v.* State of Maharashtra); 2

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

[1969] [1969] 3 एस० सी० सी० 883 :
विश्वनाथ शंकर वेलदार बनाम महाराष्ट्र राज्य
(Vishwanath Shankar Beldar *v.* State of Maharashtra); 2

[1955] ए० आई० आर० 1955 एस० सी० 287 :
रमय्या बनाम मुम्बई राज्य
(Ramayya *v.* State of Bombay); 2

[1953] [1953] एस० सी० आर० 809 :
मुश्ताक हुसैन बनाम मुम्बई राज्य
(Mushtaq Hussain *v.* State of Bombay). 2

दाण्डिक अपीली अधिकारिता : 1983 की दाण्डिक अपीली सं० 386.

1980 की दाण्डिक अपील सं० 1138 और 1144 में मुम्बई उच्च न्यायालय के तारीख 23 जून, 1981 वाले निर्णय और आदेश के विरुद्ध की गई अपील।

पीलार्थी की ओर से श्री एस० एन० झा, न्यायमित्र
प्रत्यर्थी की ओर से श्री एम० एन० श्राफ

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति ओ० चिन्नप्पा रेड्डी ने दिया।

न्यायाधिपति चिन्नप्पा रेड्डी—

विशेष इजाजत अनुज्ञात की गई।

2. अभियुक्त की अपील उच्च न्यायालय द्वारा संक्षिप्त विचारण के माध्यम से 'खारिज की जाती है' शब्दों के साथ खारिज कर दी गई थी जिससे संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन फाइल किए गए विशेष इजाजत पिटीशन पर विचार करते समय इस न्यायालय के समक्ष बहुत उलझन पैदा हो गई। उच्च न्यायालय द्वारा अपीलों के इस प्रकार संक्षिप्त विचारण के माध्यम से खारिज किए जाने की पद्धति को इस न्यायालय द्वारा 30 वर्षों से भी पहले मुश्ताक हुसैन बनाम मुम्बई राज्य[1] वाले मामले में अनुमोदित कर दिया गया था और तत्पश्चात् वर्षों से उसी उच्च न्यायालय के निर्णयों की

[1] [1953] एस० सी० आर० 806.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

एक लम्बी श्रृंखला रमय्या बनाम मुम्बई राज्य[1], विश्वनाथ शंकर बेलदार बनाम महाराष्ट्र राज्य[2], सिदन्ना अप्पाराव बनाम महाराष्ट्र राज्य[3], नारायण तत्थू नायक बनाम महाराष्ट्र राज्य[4], गोविन्द काडटूजी कदम बनाम महाराष्ट्र राज्य[5], शेख मोहम्मद अली बनाम महाराष्ट्र राज्य[6], के० के० जैन बनाम महाराष्ट्र राज्य[7], जीवन प्रकाश बनाम महाराष्ट्र राज्य[8], मुश्ताक अहमद बनाम महाराष्ट्र राज्य[9], कृष्णा विठू सुरोशे बनाम महाराष्ट्र राज्य[10], सम्पत तटयाड शिन्दे बनाम महाराष्ट्र राज्य[11], दगादू बनाम महाराष्ट्र राज्य[12] वाले मामलों में भी प्रमोदित किया गया। हम इस बात से न केवल विचलित हुए हैं बल्कि हमें कष्ट हुआ है कि एक ही उच्च न्यायालय से आने वाले निर्णयों की एक लम्बी श्रृंखला के बावजूद उस उच्च न्यायालय ने अपने आपको सुधारा नहीं और अपने ही तरीके से गलती पर गलती करता रहा। कतिपय मामलों को छोड़कर जिनमें कोई अभियुक्त व्यक्ति गलती मान लेता है और मामूली मामलों को छोड़कर किसी अपराध के लिए दोषसिद्ध किए गए प्रत्येक व्यक्ति को दण्ड प्रक्रिया संहिता के अधीन अपील करने का अधिकार है। कोई भी अपील दोषसिद्ध या दण्ड तथा विधिक तथ्यों दोनों के ही आधार पर की जा सकती है। कोई भी दोषसिद्ध व्यक्ति पहले न्यायालय से साक्ष्य की पुनः सुनवाई करने और अपना निष्कर्ष देने की प्रार्थना करने का हकदार है। निस्सन्देह किसी अपीली न्यायालय को यह शक्ति है कि वह अपील को आरम्भतः ही खारिज कर दे। इसके लिए दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 384 में प्रक्रिया दी गई है। किन्तु यह ऐसी शक्ति है जिसका प्रयोग बहुत मितव्ययितापूर्वक और एक सीमा के भीतर ही करना चाहिए। आप किसी हत्या के लिए किसी ऐसी दोषसिद्धि के बारे में सोचिए जिसके

---

[1] ए० आई० आर० 1955 एस० सी० 287.
[2] (1969) 3 एस० सी० सी० 883.
[3] [1974] 3 उम० नि० प० 1602=ए० आई० आर० 1970 एस० सी० 977.
[4] ए० आई० आर० 1971 एस० सी० 1656.
[5] [1974] 3 उम० नि० प० 1037=ए० आई० आर० 1970 एस० सी० 1033.
[6] ए० आई० आर० 1973 एस० सी० 43.
[7] ए० आई० आर० 1973 एस० सी० 243.
[8] ए० आई० आर० 1973 एस० सी० 278.
[9] ए० आई० आर० 1973 एस० सी० 1122.
[10] [1973] 3 उम० नि० प० 1113=ए० आई० आर० 1974 एस० सी० 274.
[11] ए० आई० आर० 1974 एस० सी० 791.
[12] (1981) क्रिमिनल ला जर्नल 724.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

लिए आजीवन कारावास दिया गया हो, जैसा कि हमारे समक्ष लाए गए इस मामले में है, जो कि इतना गम्भीर मामला है जिसकी अपील को ग्रहण करने पर उच्च न्यायालय द्वारा साक्ष्य के पक्षपातरहित और सार्वजनिक रूप से विचार किए जाने की आवश्यकता थी। ऐसे मामलों में अपील को 'खारिज की गई' शब्दों के साथ अस्वीकार कर देना बड़ा कठोर कदम प्रतीत होता है। इस प्रकार किसी अपील को नामंजूर कर दिया जाना व्यावहारिक रूप से अपील के अधिकार से इनकार किया जाना है। हम यहां उच्च न्यायालय के आरम्भतः दाण्डिक अपील को खारिज किए जाने के मुखर आदेश पर बहुत जोर नहीं देना चाहते। 'संक्षिप्त रूप से खारिज किए जाने के कारणों को अभिलिखित किए जाने की आवश्यकता, वह चाहे कितना भी संक्षिप्त क्यों न हों, इस बात को सुनिश्चित करती है कि न्यायिक प्रक्रिया का समुचित कार्यान्वयन हुआ है"। इस बात का कुछ न कुछ स्पष्ट संकेत होना चाहिए कि उच्च न्यायालय ने मुद्दाग्रस्त प्रश्नों से स्वयं को सम्बोधित किया और उसके पास उसके अभिलेख मौजूद हैं। वर्तमान मामले में इस बात का संकेत भी नहीं है कि अभिलेख मंगाए भी गए या नहीं और वे न्यायालय के समक्ष रखे गए अथवा नहीं। हमारे पास इसके अतिरिक्त अन्य विकल्प नहीं है कि उच्च न्यायालय के आदेश को अपास्त कर दिया जाए। उच्च न्यायालय अब अपील को 'मंजूर' कर ले और विधि के अनुसार उसका निपटान करे।

अपील मंजूर की गई।

हि/

———

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पी० ग्रोवर (श्रीमती)

बनाम

हरियाणा राज्य और एक अन्य

(Smt. P. Grover

v.

State of Haryana and Another)

(18 अगस्त, 1983)

(न्यायाधिपति ओ० चिन्नप्पा रेड्डी और ई० एस० वेंकटरामय्या)

सिविल सेवा—स्थानापन्न आधार पर प्रोन्नति—यदि किसी सिविल सेवक को स्थानापन्न आधार पर उच्चतर पद पर प्रोन्नत किया जाता है, तो उसे उस पद का वेतन प्राप्त करने से तब तक वंचित नहीं किया जा सकता जब तक कि वंचित करने की बात को न्यायोचित ठहराने वाला नियम न हो, जिसकी विधिमान्यता को भी चुनौती दी जा सकेगी।

अपीलार्थी को अपनी अधिवर्षिता की आयु प्राप्त करने के दो वर्ष पूर्व से और उसके दो वर्ष बाद तक स्थानापन्न जिला शिक्षा अधिकारी के रूप में नियुक्त किया गया और उसने उस पद पर कार्य किया। बाद में राज्य सरकार ने उसे उक्त उच्च पद का वेतन देने से इस आधार पर इनकार कर दिया कि वह पद उपलभ्य नहीं है। अतः व्यथित होकर उसने पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय में अनुच्छेद 226 के अधीन रिट पिटीशन फाइल किया, जो खारिज कर दिया गया। उसने उस निर्णय के विरुद्ध अनुच्छेद 136 के अधीन विशेष इजाजत लेकर उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की। अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित—न्यायालय के ध्यान में कोई भी ऐसा नियम नहीं लाया गया जिसमें यह उपबन्ध हो कि स्थानापन्न आधार पर प्रोन्नति में कोई प्रोन्नत अधिकारी उस पद पर वेतन का हकदार नहीं होगा। किसी

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उच्चतर पद पर प्रोन्नत किसी अधिकारी को ऐसे उच्चतर पद के वेतन से इस प्रकार वंचित करने को न्यायोचित ठहराने वाले किसी नियम के न होने पर (यदि कोई ऐसा नियम होता तो भी, उसकी विधिमान्यता संदिग्ध होती) यह अभिनिर्धारित किया गया कि अपीलार्थी उस तारीख से जिसको उसे उस पद पर प्रोन्नत किया गया, अर्थात् 19 जुलाई, 1976 से, अपनी सेवानिवृत्ति की तारीख, अर्थात् 31 अगस्त, 1980 तक जिला शिक्षा अधिकारी का वेतन प्राप्त करने की हकदार है। (पैरा 3)

सिविल अपीली अधिकारिता : 1983 की सिविल अपील सं० 6229.

1980 की सिविल रिट पिटीशन सं० 1225 में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के तारीख 29 मई, 1980 वाले निर्णय और आदेश के विरुद्ध विशेष इजाजत लेकर की गई अपील।

अपीलार्थी की ओर से — सर्वश्री के० जी० भगत और श्री के० के० मोहन

प्रत्यर्थी की ओर से — श्री आर० एन० पोद्दार

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति ओ० चिन्नप्पा रेड्डी ने दिया।

न्यायाधिपति चिन्नप्पा रेड्डी—

विशेष इजाजत दी गई।

2. श्रीमती पी० ग्रोवर एक प्रतिभाशाली अध्यापक थीं। 1968-69 में हरियाणा सरकार ने उसे अध्यापकों को दिए जाने वाले राज्य पुरुस्कार से सम्मानित किया। उसने 20 अगस्त, 1978 को अधिवर्षिता की आयु प्राप्त की। अपनी अधिवर्षिता की आयु प्राप्त करने के लगभग 2 वर्ष पहले उसे 19 जुलाई, 1976 से स्थानापन्न जिला शिक्षा अधिकारी के रूप में प्रोन्नत किया गया। हरियाणा सरकार नेब हुत पहले 1965 में नीति सम्बन्धी यह विनिश्चय किया था कि उन अध्यापकों की सेवाओं को, जिन्होंने राष्ट्रीय या राज्य पुरुस्कार प्राप्त किए हैं, यदि अन्यथा उनका सेवा अभिलेख ठीक बना रहता है तो, वर्षानुवर्ष आधार पर, 60 वर्ष की आयु पूरी होने तक बढ़ा दिया जाना चाहिए। नीति संबंधी इस विनिश्चय के अनुसरण में श्रीमती ग्रोवर की सेवाओं को

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पहले एक वर्ष और बाद में एक वर्ष तक और आगे बढ़ाया गया। सेवा की बढ़ी हुई अवधि के दौरान उसने राजकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, महेन्द्रगढ़ के प्रधानाचार्य के रूप में कार्य किया। अन्त में 31 अगस्त, 1980 को वह सेवानिवृत्त हो गई।

3. हमने यह उल्लेख किया कि श्रीमती ग्रोवर को 19 जुलाई, 1976 से स्थानापन्न जिला शिक्षा अधिकारी के रूप में प्रोन्नत किया गया था। प्रोन्नति के आदेश में एक और शर्त यह जोड़ी गई थी कि वह अपना वही वर्तमान वेतनमान प्राप्त करेंगी, जिसका स्पष्ट रूप से अर्थ यह था कि वह वही वेतनमान लेती रहेगी जो उसकी प्रोन्नति से पूर्व था। उसकी सेवाओं को बढ़ाने वाले आरम्भिक आदेश में यह कहा गया था कि वह स्थानापन्न जिला शिक्षा अधिकारी है, किन्तु एक और शर्त यह जोड़ी गई थी कि उसका वेतन प्रधानाचार्य की श्रेणी के वेतन के अधिकतम से अधिक नहीं होगा। श्रीमती ग्रोवर का यह दावा है कि जिला शिक्षा अधिकारी के रूप में प्रोन्नत किए जाने पर वह जिला शिक्षा अधिकारी के वेतन की हकदार है और उससे उसे वंचित करने का कोई न्यायौचित्य नहीं है। पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय ने उसके द्वारा फाइल किया गया रिट पिटीशन खारिज कर दिया और उसने अब हमारे समक्ष संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन विशेष इजाजत लेकर अपील फाइल की है। हरियाणा सरकार की ओर से फाइल किए गए प्रतिशपथ-पत्र में श्रीमती पी० ग्रोवर को उसके जिला शिक्षा अधिकारी के रूप में कार्य करने के लिए प्रोन्नत किए जाने के पश्चात् जिला शिक्षा अधिकारी के वेतन से वंचित करने के लिए कोई युक्तिसंगत स्पष्टीकरण नहीं है। प्रतिशपथ-पत्र में जो कुछ कहा गया, वह यह था कि चूंकि वर्ग-I का कोई पद उपलब्ध नहीं था, इसलिए वह जिला शिक्षा अधिकारी का वेतन प्राप्त करने की हकदार नहीं है। हम प्रतिशपथ-पत्र में दिए गए कारण को समझने में असमर्थ हैं। श्रीमती ग्रोवर को स्थानापन्न आधार पर जिला शिक्षा अधिकारी के पद पर जो कि वर्ग-I पद है, प्रोन्नत किया गया था। हमारा ध्यान किसी भी ऐसे नियम की ओर नहीं दिलाया गया है, जिसमें यह उपबन्ध हो कि स्थानापन्न आधार पर प्रोन्नति में कोई प्रोन्नत अधिकारी उस पद पर वेतन का हकदार नहीं होगा। किसी उच्चतर पद पर प्रोन्नत किसी अधिकारी को ऐसे उच्चतर पद के वेतन से इस प्रकार वंचित करने को न्यायोचित ठहराने वाले किसी नियम के न होने पर (यदि कोई ऐसा नियम

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

होता, तो भी उसकी विधिमान्यता संदिग्ध होती) हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि श्रीमती पी० ग्रोवर, उस तारीख से, जिसको उसे उस पद पर प्रोन्नत किया गया, अर्थात् 19 जुलाई, 1976 से, अपनी सेवानिवृत्ति की तारीख, अर्थात् 31 अगस्त, 1980 तक जिला शिक्षा अधिकारी का वेतन प्राप्त करने की हकदार है। तदनुसार अपील खर्चे सहित मंजूर की जाती है।

अपील मंजूर की गई।

घई/श्रा०

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रवीन्द्र ईश्वरदास सेठना और एक अन्य

बनाम

शासकीय समापक, उच्च न्यायालय, मुम्बई और एक अन्य

(Ravindra Ishwardas Seth na and Another

v.

Official Liquidator, High Court, Bombay & Another)

(19 अगस्त, 1983)

(न्यायाधिपति डी० ए० देसाई और वी० बालकृष्ण एराडी)

कम्पनी अधिनियम, 1956(1956 का 1)—धारा 457(1) [सपठित बाम्बे रेण्ट्स, होटल एण्ड लाजिंग हाउस रेट्स कन्ट्रोल ऐक्ट, 1948(1973 में यथा-संशोधित) की धारा 13 और 15]—परिसमापन—कम्पनी के परिसमापन के लिए समापक को नियुक्त किया जाना—कम्पनी न्यायाधीश के निदेश से समापक द्वारा कम्पनी के अधिभोगाधीन परिसर का कब्जा अभिरक्षक करार के अधीन अन्य व्यक्ति को दिया जाना—कम्पनी न्यायाधीश समापक को अभिरक्षक-करार करने के लिए प्राधिकृत नहीं कर सकता—समापक ऐसा तभी कर सकता है, यदि प्रश्नगत परिसर कम्पनी के फायदाप्रद परिसमापन के लिए कम्पनी का कारबार चलाने के लिए दिया गया हो।

कम्पनी अधिनियम, 1956 के अधीन फाइल किए गए परिसमापन विषयक पिटीशन के आधार पर उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश ने चिट सेंटर प्राइवेट लिमिटेड का परिसमापन करते हुए 23 सितम्बर, 1974 को आदेश किया। कम्पनी का कार्यालय उस भवन के जो कि पहले 'जगमोहन भवन सं० 2' या 'अयाज महल' के रूप में ज्ञात था और जो अब 'राम कुटीर' के नाम से ज्ञात है, भू-तल पर 8 और 9 नं० वाली दुकानों में था। परिसमापन संबंधी आदेश किए जाने पर शासकीय समापक ने कम्पनी के कार्यालय-परिसर का कब्जा ले लिया। इसी रीति से ही समापक ने इस अपील में अन्तर्ग्रस्त परिसर का कब्जा अर्जित किया। इसके बाद समापक ने 25 अप्रैल, 1979 को यह निदेश प्राप्त करने की प्रार्थना की कि

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

क्या उक्त परिसर को पट्टे पर अनुज्ञप्ति पर उठा दिया जाना चाहिए या यह कि क्या उक्त परिसर में फर्नीचर और फिक्सचर का विक्रय कर दिया जाना चाहिए। न्यायालय ने यह आदेश दिया कि 2,250 रुपए प्रतिमास से अन्यून प्रतिकर का संदाय करने पर उचित दस्तावेज अभिप्राप्त किए जाने के बाद, अभिरक्षक होने के आधार पर वह परिसर दिया जाना चाहिए। इस निदेश का अनुसरण करते हुए, समापक ने ऐसे व्यक्तियों से प्रस्थापनाएं आमन्त्रित कीं जो कि न्यायालय द्वारा अधिकथित निबन्धनों और शर्तों पर परिसर को अपने अधिभोग में लेने के लिए रजामन्द हों। अन्त में कम्पनी न्यायाधीश ने 3 जुलाई, 1980 वाले अपने आदेश द्वारा समापक को यह निदेश दिया कि वह न्यायालय द्वारा यथा-उपांतरित द्वितीय प्रत्यर्थी की, प्रस्थापना स्वीकार कर ले। तदुपरान्त समापक ने द्वितीय प्रत्यर्थी के साथ 29 जुलाई, 1980 को करार किया और करार में उपवर्णित निबन्धनों और शर्तों के आधार पर द्वितीय प्रत्यर्थी को उस परिसर का कब्जा दे दिया। यहां पर जो अपीलार्थी हैं, वे उस भवन के मकान मालिक हैं जिसका इस अपील में अन्तर्ग्रस्त परिसर एक भाग था। अपीलार्थी ने न्यायाधीश का समन ले लिया था और समापक को यह निदेश जारी करने की प्रार्थना की थी कि वह न्यायालय के निदेशाधीन द्वितीय प्रत्यर्थी के साथ किए गए अभिरक्षक-करार को समाप्त कर दे और अपीलार्थी को उस परिसर का रिक्त और शांतिपूर्ण कब्जा सौंप दे। कम्पनी न्यायाधीश ने अपीलार्थी की यह दलील अस्वीकृत कर दी कि द्वितीय प्रत्यर्थी के साथ समापक द्वारा किए गए तथाकथित अभिरक्षक-करार बाम्बे रेंट्स, होटल एण्ड लाजिंग हाउस रेट्स कण्ट्रोल ऐक्ट, 1948, जैसा कि वह 1973 में संशोधित किया गया था, के विभिन्न उपबन्धों का उल्लंघन करते हुए किया गया और उसने यह अभिनिर्धारित किया कि सारतः और प्ररूपतः यह ऐसा अभिरक्षक-करार था जो कि अनुज्ञेय है। तदनुसार, न्यायाधीश ने दोनों प्रार्थनाओं के संबंध में न्यायाधीश का समन अस्वीकार कर दिया। अपीलार्थियों ने उच्च न्यायालय की खण्ड न्यायपीठ के समक्ष अपील की। खण्ड न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया कि अपीलार्थी परिसर के संबंध में निदेश प्राप्त करने के लिए समापक द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट के सम्बन्ध में सूचना प्राप्त करने के हकदार नहीं थे और इसके अलावा यह मत व्यक्त किया कि अपीलार्थियों को उक्त परिसर का वर्तमान कब्जा प्राप्त करने का इसलिए भी कोई अधिकार नहीं था, क्योंकि अपीलार्थियों ने पहले ही मुम्बई के लघुवाद न्यायालय में शासकीय समापक के विरुद्ध बेदखली का वाद फाइल किया था और इस संक्षिप्त

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आधार पर हो वह अपील खारिज कर दी गई थी और इसलिए विशेष इजाज़त लेकर यह अपील की गई है। अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित—समापक ने परस्पर विरोधी रुख अपनाया है जिसे कम्पनी न्यायाधीश ने दुर्भाग्यवश नजरअन्दाज कर दिया है। यदि समापक कम्पनी का कारबार चलाने के लिए कम्पनी अधिनियम, 1956 की धारा 457 (1) (ख) के अधीन अपनी शक्ति का प्रयोग वहां तक करना चाहता था जहां तक कि वह फायदाप्रद परिसमापन के लिए आवश्यक हो, तो ऐसा कारबार जो कि चलाया जाना था, कम्पनी का कारबार होना चाहिए था। पट्टे पर या अनुज्ञप्ति के आधार पर या अभिरक्षक-करार के अधीन परिसर देना कम्पनी का कारबार नहीं था। यदि कम्पनी का कोई अन्य कारबार चलाया जाना था, तो कार्यालय-परिसर का उपयोग कम्पनी का कारबार चलाने के लिए आवश्यक होगा। यदि परिसर का कब्जा कंपनी का कारबार चलाने के लिए बनाए रखना था, तो समापक किसी भी नाम के अधीन, जैसे कि पट्टा, अनुज्ञप्ति अभिरक्षक-करार या द्वितीय प्रत्यर्थी के लिए किसी अन्य मुखौटे के अधीन कब्जा सौंपने के लिए न्यायालय के निदेश की ईप्सा नहीं कर सकता। यदि समापक धारा 457 (1) (ख) के अधीन अपनी शक्ति का प्रयोग करना चाहता था, तो उसे यह चाहिए था कि वह कम्पनी के संगम-ज्ञापन के उद्देश्य-खण्ड के प्रति निर्देश करते हुए यह दर्शित करता कि पट्टे या अनुज्ञप्ति के आधार पर या अभिरक्षक-करार के आधार पर परिसर देना कम्पनी के दैनिक कारबार का भाग था। ऐसा मामला तो नहीं है, वास्तव में चूंकि कारबार पूरी तरह से समाप्त हो चुका था, इसलिए कार्यालय-परिसर का समापक के लिए कोई भी उपयोग नहीं था। अतः उसने ऐसी स्कीम निकाली जिसके द्वारा वह परिसर के उपयोग और अधिभोग के लिए प्रतिकर प्राप्त कर सके जो कि बाम्बे रेण्ट्स, होटल एण्ड लाजिंग हाउस रेट्स कण्ट्रोल ऐक्ट का उल्लंघन करते हुए कम्पनी के उपयोग के लिए आवश्यक नहीं है और दुर्भाग्यवश न्यायालय ने कम्पनी अधिनियम के सुसंगत उपबन्धों की उपेक्षा करते हुए समापक के इस गलत कार्य के लिए मंजूरी दे दी। (पैरा 8)

कम्पनी उस परिसर का किराएदार या पट्टेदार थी जिसके मकान मालिक इस मामले में अपीलार्थी हैं। पट्टे के प्रारम्भ की तारीख ज्ञात नहीं है किन्तु समापक की ओर से इस बात का दावा नहीं किया गया है कि पट्टा बहुत लम्बे समय तक के लिए था। यदि ऐसा है, तो कम्पनी बाम्बे रेण्ट्स, होटल एण्ड लाजिंग हाउस रेट्स कण्ट्रोल ऐक्ट, 1948 के अधीन कानूनी

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

किराएदार थी। कानूनी किराएदारी कब्जे में बने रहने का अधिकार प्रदत्त करती है, किन्तु यदि किराएदार को उक्त परिसर के उपयोग की अब आवश्यकता नहीं रह गई है, तो किराया अधिनियम के उपबन्ध और विशेषकर धारा 13 और 15 अनुज्ञप्ति या उप-पट्टे पर परिसर के कब्जे के लिए पूरी तरह प्रतिषिद्ध करती हैं। अतः विद्वान कम्पनी न्यायाधीश ने समापक द्वारा कब्जा देने का यह रास्ता निकाला कि वह अभिरक्षक-करार के अधीन द्वितीय प्रत्यर्थी को परिसर दे सकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह अभिरक्षक-करार प्रतिकर लेने के लिए अच्छी अभिव्यक्ति है जो कि द्वितीय प्रत्यर्थी द्वारा अनन्य रूप से उसे परिसर के उपयोग और अधिभोग के लिए प्रभार प्राप्त करना है। इस बात का कि क्या वह उप-पट्टा है या अनुज्ञप्ति, विनिश्चय करने की आवश्यकता नहीं है। वर्तमान कार्यवाहियों के प्रयोजनार्थ यह पर्याप्त है कि कम्पनी और उसके समापक को परिसर की अपने उपयोग के लिए अब आवश्यकता नहीं रह गई है। समापक को कंपनी के परिसमापन सम्बन्धी क्रियाकलाप चलाने के लिए उस परिसर के उपयोग की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उसने कब्जा देने के लिए निदेश प्राप्त करने की कोशिश की थी। वह ऐसा अभिरक्षक-करार है जो कि किराया अधिनियम के उपबन्धों से बच निकलने का मुखौटा मात्र लगता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि किराया अधिनियम किराएदारों को संरक्षा देने के लिए अधिनियमित किया गया था और निर्विवाद रूप से उसके उपबन्धों का निर्वचन इस प्रकार किया जाना चाहिए जिससे कि उन्हें संरक्षा मिल सके और किराएदारों को असहाय करने वाली मकान मालिकों की कार्रवाई को रोका जा सके। किन्तु इससे यह अभिप्रेत नहीं है कि न्यायालय को चाहिए कि वह किराया अधिनियम के उपबन्धों का उल्लंघन करने में उसकी सहायता करे जिससे कि वह परिसर का अनुचित और अननुज्ञेय उपयोग के लिए धन कमा सकें और यही बात समापक ने करनी चाही थी और न्यायालय ने समापक को ऐसा करने के लिए सहायता दी थी। यह तो पूर्णतः अननुज्ञेय है। कम्पनी न्यायाधीश समापक को ऐसा करार करने के लिए प्राधिकृत नहीं कर सकता था और इसी कारण से उसका आदेश अपास्त किए जाने के लायक है। (पैरा 9)

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

निर्विष्ट निर्णय

		पैरा
[1976]	[1976] 46 कम्पनी केसेज़ 706 : पंचमहल्स स्टील लिमिटेड बनाम यूनिवर्सल स्टील ट्रेडर्स (Panchmahals Steel Limited v. Universal Steel Traders);	6
[1881]	[1881] 17 चांसरी डिवीज़न 35 : बेटे : एकपक्षीय इमैन्युल (Batey: Ex-parte Emmanuel).	6

सिविल अपीली अधिकारिता : 1983 की सिविल अपील सं० 2609.

1981 की अपील सं० 215 में मुम्बई उच्च न्यायालय के तारीख 1 जुलाई, 1982 वाले निर्णय और आदेश के विरुद्ध विशेष इजाज़त लेकर की गई अपील ।

अपीलार्थी की ओर से	सर्वश्री डी० वी० पंटेल, टी० यू० मेहता और एच० जे० ज़वेरी
प्रत्यर्थी सं० 1 की ओर से	सर्वश्री ओ० पी० मल्होत्रा और पी० एच० पारेख और श्रीमती इन्दू मल्होत्रा
प्रत्यर्थी सं० 2 की ओर से	सर्वश्री यू० आर० ललित और वी० एन० गणपुले और श्रीमती वी० डी० खन्ना

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति डी० ए० देसाई ने दिया ।

न्यायाधिपति देसाई—

चूंकि इस मामले में विलम्ब नहीं किया जा सकता था, इसलिए अपील करने की विशेष इजाज़त देने के बाद हमने गुणागुण के आधार पर इस अपील की सुनवाई आरम्भ की । जबकि सुनवाई समाप्त हो गई, तो हमने निम्नलिखित आदेश दिया और यह कथन किया कि कारण बाद में बताए जाएंगे । वह आदेश निम्नलिखित रूप में है—

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

"अपील मंजूर की जाती है और मुम्बई उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश और खण्ड न्यायपीठ द्वारा किया गया वह आदेश जिसके द्वारा अपीलार्थियों द्वारा ले लिए गए न्यायाधीश के समन को अस्वीकार कर दिया गया था, अपास्त किया जाता है और न्यायाधीश का समन उस सीमा तक जिस सीमा तक यहां पर उपदर्शित किया गया है, मंजूर किया जाता है।

अपीलार्थी इस न्यायालय में 1 मार्च, 1983 तक या उसके पूर्व 1,50,000 रुपए जमा कराएंगे। प्रत्यर्थी सं० 2—श्रीमती सविता वी० अदपा समापक को उस सम्पत्ति का रिक्त और शांतिपूर्ण कब्जा, जो कि 'जगमोहन भवन सं० 2' के रूप में या 'अयाज़ भवन' के रूप में पहले ज्ञात और अब स्टेशन रोड, अंधेरी, मुम्बई-400058 पर स्थित 'रामकुटीर' के अभिनाम से ज्ञात भवन के भू-तल पर दुकान सं० 8/9 है, 28 फरवरी, 1983 को या उसके पूर्व परिसमापक को सौंप देगी, जो कि अपीलार्थियों को उनसे यह कथन प्राप्त करने के बाद कि उन्होंने यहां पर उपदर्शित रीति से इस न्यायालय में 1,50,000 रुपए की रकम जमा कर दी है, 1 मार्च, 1983 को तुरन्त कब्जा दे देगा।

28 फरवरी, 1983 तक या उसके पूर्व समापक को पूर्वोक्त दुकानों का रिक्त और शांतिपूर्ण कब्जा प्रत्यर्थी सं० 2 को सौंप देने पर, समापक द्वितीय प्रत्यर्थी द्वारा समापक के पास जमा किए गए 28,800 रुपए का प्रतिभूति निक्षेप उसको तुरन्त प्रतिदाय कर देगा।

प्रत्यर्थी सं० 2 सम्पत्ति को कोई नुकसान पहुंचाए बिना वादगत दुकान में स्वयं द्वारा रखे गए सभी फर्नीचर और फिक्सचर हटाने के लिए स्वतन्त्र होगी।

इस न्यायालय ने अपीलार्थियों द्वारा जमा की जाने वाली 1,50,000 रुपए की रकम अपीलार्थियों की सम्मति से इस न्यायालय द्वारा दिए गए निदेश के अनुसार चिट सैंटर प्राइवेट लिमिटेड के, जिसका परिसमापन करने के लिए उच्च न्यायालय ने पहले ही

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आदेश दे दिया था, ऐसे जरूरतमंद और उपयुक्त लेनदारों को संवितरित की जाएगी। न तो समापक और न ही चिट सैंटर प्राइवेट लिमिटेड के लेनदारों को 1,50,000 रुपए की रकम या उसके किसी भाग का दावा करने का अधिकार है, क्योंकि वह चिट सैंटर प्राइवेट लिमिटेड के परेशान लेनदारों में से कुछ की परेशानी को कम करने के लिए अपीलार्थियों द्वारा किया गया अनुग्रहपूर्वक संदाय है। पूर्वोक्त रकम का वितरण इस न्यायालय का पूर्ण विवेकाधिकार होगा। अपील उस सीमा तक मंजूर की जाती है, जिस सीमा तक यहां पर उपदर्शित किया गया है, किन्तु खर्चे के सम्बन्ध में कोई भी आदेश नहीं होगा।"

ये ही कारण हैं।

2. कम्पनी अधिनियम, 1956 के अधीन फाइल किए गए परिसमापन विषयक पिटीशन के आधार पर उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने चिट सैंटर प्राइवेट लिमिटेड (संक्षेप में जिसे कम्पनी कहा गया है) का परिसमापन करते हुए 23 सितम्बर, 1974 को आदेश किया। कम्पनी का कार्यालय उस भवन के, जो कि पहले 'जगमोहन भवन सं० 2' या 'अयाज़ महल' के रूप में ज्ञात था और जो अब 'राम कुटीर' के नाम से ज्ञात है, भू-तल पर 8 और 9 नं० वाली दुकानों में था। परिसमापन सम्बन्धी आदेश किए जाने पर शासकीय समापक ने, जो कि कम्पनी की आस्तियों का कब्जा लेते हुए कम्पनी के समापक के रूप में नियुक्त किया गया था, कम्पनी के कार्यालय-परिसर का कब्जा ले लिया। इसी रीति से ही समापक ने इस अपील में अन्तर्ग्रस्त परिसर दुकान सं० 8 और 9 का कब्जा अर्जित किया। इसके बाद समापक ने 25 अप्रैल, 1979 को न्यायालय से यह निदेश प्राप्त करने की प्रार्थना की कि क्या उक्त परिसर को पट्टे पर या अनुज्ञप्ति पर उठा दिया जाना चाहिए या यह कि क्या उक्त परिसर में फर्नीचर और फिक्सचर का विक्रय कर दिया जाना चाहिए। न्यायालय ने यह आदेश दिया कि 2,250 रुपए प्रतिमास से अन्यून प्रतिकर का संदाय करने पर उचित दस्तावेज अभिप्राप्त किए जाने के बाद अभिरक्षक होने के आधार पर वह परिसर दिया जाना चाहिए। इस निदेश का अनुसरण करते हुए, समापक ने ऐसे व्यक्तियों से प्रस्थापनाएं आमंत्रित कीं जो कि न्यायालय द्वारा अधिकथित निबन्धनों और शर्तों पर परिसर को

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अपने अधिभोग में लेने के लिए रजामंद हों। 2 जुलाई, 1980 को समापक ने न्यायालय से यह निदेश प्राप्त करने की कोशिश की कि क्या मैसर्स माडर्न कैटरर्स की, जिसका प्रतिनिधित्व यहां पर प्रत्यर्थी सं० 2 श्रीमती सविता वी० अदपा ने किया था, प्रस्थापना स्वीकार की जानी चाहिए। कम्पनी न्यायाधीश ने 3 जुलाई, 1980 वाले अपने आदेश द्वारा समापक को यह निदेश दिया कि वह न्यायालय द्वारा यथा-उपांतरित द्वितीय प्रत्यर्थी की, प्रस्थापना स्वीकार कर ले। तदुपरान्त समापक ने द्वितीय प्रत्यर्थी के साथ 29 जुलाई, 1980 को करार किया और करार में उपवर्णित निर्बन्धनों और शर्तों के आधार पर द्वितीय प्रत्यर्थी को उस परिसर का कब्जा दे दिया।

3. यहां पर जो अपीलार्थी हैं, वे उस भवन के मकान-मालिक हैं जिसका इस अपील में अन्तर्ग्रस्त परिसर एक भाग था। अपीलार्थी ने न्यायाधीश का समन ले लिया था और समापक को यह निदेश जारी करने की प्रार्थना की थी कि वह न्यायालय के निदेशाधीन द्वितीय प्रत्यर्थी के साथ किए गए अभिरक्षक-करार को समाप्त कर दे और अपीलार्थी को उस परिसर का रिक्त और शांतिपूर्ण कब्जा सौंप दे। न्यायाधीश के समन में अन्य प्रार्थनाएं भी की गई थीं जिनसे कि इस अपील में हमारा सम्बन्ध नहीं है।

4. कम्पनी के विद्वान् न्यायाधीश ने अपीलार्थियों की यह दलील अस्वीकृत कर दी कि द्वितीय प्रत्यर्थी के साथ समापक द्वारा किए गए तथा-कथित अभिरक्षक-करार बाम्बे रेंट्स, होटल एण्ड लाजिंग हाउस रेट्स कण्ट्रोल ऐक्ट, 1948, जैसा कि वह 1973 में संशोधित किया गया था (जिसे संक्षेप में यहां अधिनियम कहा गया है) के विभिन्न उपबन्धों का उल्लंघन करते हुए किया गया और उसने यह अभिनिर्धारित किया कि सारतः और प्ररूपतः यह ऐसा अभिरक्षक-करार था जो कि अनुज्ञेय है। तदनुसार, विद्वान न्यायाधीश ने दोनों प्रार्थनाओं के सम्बन्ध में न्यायाधीश का समन अस्वीकार कर दिया। अपीलार्थियों ने उच्च न्यायालय की खण्ड न्यायपीठ के समक्ष अपील की। खण्ड न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया कि अपीलार्थी परिसर के संबंध में निदेश प्राप्त करने के लिए समापक द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट के संबंध में सूचना प्राप्त करने के हकदार नहीं थे और इसके अलावा यह मत व्यक्त किया कि अपीलार्थियों को उक्त परिसर का वर्तमान कब्जा प्राप्त करने का इसलिए भी कोई अधिकार नहीं था, क्योंकि अपीलार्थियों ने पहले ही मुम्बई के लघु वाद न्यायालय में शासकीय समापक के विरुद्ध बेदखली का वाद फाइल किया था और इस संक्षिप्त आधार पर ही

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वह अपील खारिज कर दी गई थी और इसलिए विशेष इजाजत लेकर यह अपील की गई है।

5. न्यायालय के तारीख 23 सितम्बर, 1974 वाले आदेश द्वारा पहले ही कम्पनी का परिसमापन करने का आदेश दिया गया था। कम्पनी के नाम से ही स्पष्ट रूप से उन उद्देश्यों का पता चल जाता है जिनके लिए वह बनाई गई थी। कम्पनी का नाम चिट सैंटर प्राइवेट लिमिटेड था। कम्पनी ने इनामी चिट स्कीमों को चालू करने का कारबार अपने हाथ में लिया था। आधुनिक समय में इस कारबार की प्रकृति पर्याप्त रूप से सुपरिचित है और उसकी व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं है। कम्पनी ने इस कारबार को चलाने के लिए कार्यालय स्थापित किया था, वह कार्यालय पट्टे पर लिए गए परिसर में स्थापित किया गया था। इनामी चिट स्कीमों को चालू करने का, कम्पनी का कारबार उसी समय समाप्त हो गया जब कि उसके बारे में यह आदेश किया गया कि उसका परिसमापन कर दिया जाए। समापक का पक्षकथन यह नहीं है कि वह उस कम्पनी का कारबार चला रहा है जिसका परिसमापन कम्पनी अधिनियम की धारा 457 के अधीन न्यायालय की अनुज्ञा से किया जा रहा है।

6. धारा 457 समापक को, अन्य बातों के साथ-साथ न्यायालय की मंजूरी से, कम्पनी का कारबार चलाने के लिए वहां तक परिसमापन करने में समर्थ बनाती है जहां तक कि वह कम्पनी के फायदाप्रद परिसमापन के लिए आवश्यक हो। यदि इनामी चिट स्कीमों के चालू रखने का कार्य उसी समय समाप्त हो गया था जबकि कम्पनी के परिसमापन का आदेश दिया गया था, तो समापक द्वारा कम्पनी के कारबार के चलाए जाने का कोई प्रश्न ही नहीं था और वह भी कम्पनी के फायदाप्रद परिसमापन के लिए। यह कि क्या ऐसी कम्पनी का कारबार चलाने के लिए, जिसके परिसमापन का आदेश दे दिया गया हो, ऐसा मामला नहीं है जो कि समापक के अनियंत्रित विवेकाधिकार पर छोड़ दिया गया। समापक को, निस्संदेह, धारा 457 के अधीन कम्पनी का कारबार चलाने की शक्ति उस दशा में प्राप्त है यदि वह कम्पनी के फायदाप्रद परिसमापन के लिए आवश्यक हो। और इस शक्ति का प्रयोग समापक के विवेकाधिकार के अनुसार नहीं किया जा सकता, बल्कि न्यायालय की मंजूरी से किया जा सकता है। बेटे: एकपक्षीय इम्पैन्युल[1] वाले मामले का अवलम्ब लिया गया जिसमें यह मत व्यक्त किया गया कि

[1] (1881) 17 चांसरी डिवीजन 35.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कारबार चलाने की शक्ति का प्रयोग कम्पनी के फायदाप्रद परिसमापन के प्रयोजनार्थ केवल इसलिए किया जा सकता है, न कि इसलिए कि लेनदार यह समझे कि कारबार बहुत ही लाभदायक होगा और यह कि जितने दिन वह चलाया जाएगा उतना ही अच्छा होगा और यह कि उससे उन्हें लाभ मिलेगा। **पंचमहल्स स्टील लिमिटेड बनाम यूनिवर्सल स्टील ट्रेडर्स**[1] वाले मामले का भी अवलम्ब लिया गया जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अन्य बातों के साथ-साथ 'समापक को न्यायालय की मंजूरी से, कम्पनी का कारबार चलाने की वहां तक शक्ति होती है जहां तक कि वह कम्पनी के फायदाप्रद परिसमापन के लिए आवश्यक हो। यह सच है कि समापक उस प्रयोजन के लिए चलाने के सिवाय जिसके लिए उसको शक्ति प्रदत्त की गई है अर्थात् कम्पनी के फायदाप्रद परिसमापन के लिए करने के सिवाय किसी अन्य प्रयोजन के लिए कारबार नहीं चला सकता। वह इस आधार पर कारबार नहीं चला सकता है कि वह लेनदारों या अभिदायकर्ताओं को फायदाप्रद होगा। अधिकारिता विषयक यह तथ्य जो कि कम्पनी का कारबार चलाने के लिए समापक द्वारा शक्ति के प्रयोग के लिए अभिनिश्चित और साबित किया जाना चाहिए, यह है कि कम्पनी का कारबार चलाना कम्पनी के फायदाप्रद परिसमापन के लिए आवश्यक है'। तथापि चूंकि इस धारा की भाषा असंदिग्ध और स्पष्ट है, इसलिए यह निष्कर्ष निकालने के लिए नजीरों की आवश्यकता नहीं है कि समापक, न्यायालय की मंजूरी से, कम्पनी का कारबार केवल उस सीमा तक चला सकता है जिस सीमा तक कि कारबार का ऐसा चलाया जाना, कम्पनी के फायदाप्रद परिसमापन के लिए आवश्यक है।

7. तुरन्त यह बात स्पष्ट हो जानी चाहिए कि हमारे ध्यान में न्यायालय का ऐसा कोई आदेश नहीं लाया गया है जिसके अधीन समापक द्वारा कम्पनी का कारबार चलाने की शक्ति का प्रयोग करने सम्बन्धी न्यायालय की मंजूरी दी गई हो और हम यह प्रश्न पूछना चाहते हैं कि कम्पनी का कौन-सा कारबार समापक ने चलाया था? इनामी चिट स्कीम चलाने का कारबार उस समय समाप्त हो गया जबकि कम्पनी के परिसमापन का आदेश दिया गया था। क्षण भर के लिए भी इस बात के संबंध में सुझाव नहीं दिया गया कि समापक को किसी इनामी चिट स्कीम को चलाना था और यह कि लम्बित स्कीम उसके द्वारा जारी रखी जानी थी या चलाई

[1] (1976) 46 कम्पनी केसेज 706, 722.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जानी थी। यह तो समापक का पक्षकथन भी नहीं है और न ही विद्वान् कम्पनी न्यायाधीश के समक्ष ऐसी दलील ही दी गई थी।

8. समापक ने परस्पर विरोधी रुख अपनाया है जिसे विद्वान् कम्पनी न्यायाधीश ने दुर्भाग्यवश नजरअन्दाज कर दिया है। यदि समापक कम्पनी का कारबार चलाने के लिए धारा 457(1)(ख) के अधीन अपनी शक्ति का प्रयोग वहां तक करना चाहता था जहां तक कि वह फायदाप्रद परिसमापन के लिए आवश्यक हो, तो ऐसा कारबार जो कि चलाया जाना था, कम्पनी का कारबार होना चाहिए था। पट्टे पर या अनुज्ञप्ति के आधार पर या अभिरक्षक-करार के अधीन परिसर देना कम्पनी का कारबार नहीं था। यदि कम्पनी का कोई अन्य कारबार चलाया जाना था, तो कार्यालय-परिसर का उपयोग कम्पनी का कारबार चलाने के लिए आवश्यक होगा। यदि परिसर का कब्जा कम्पनी का कारबार चलाने के लिए बनाए रखना था, तो समापक किसी भी नाम के अधीन, जैसे कि पट्टा, अनुज्ञप्ति, अभिरक्षक-करार या द्वितीय प्रत्यर्थी के लिए किसी अन्य मुखौटे के अधीन कब्जा सौंपने के लिए न्यायालय के निदेश की ईप्सा नहीं कर सकता। यदि समापक, धारा 457(1)(ख) के अधीन अपनी शक्ति का प्रयोग करना चाहता था, तो उसे यह चाहिए था कि वह कम्पनी के संगम-ज्ञापन के उद्देश्य-खण्ड के प्रति निर्देश करते हुए यह दर्शित करता कि पट्टे या अनुज्ञप्ति के आधार पर या अभिरक्षक-करार के आधार पर परिसर देना कम्पनी के दैनिक कारबार का भाग था। ऐसा मामला नहीं है, वास्तव में चूंकि कारबार पूरी तरह से समाप्त हो चुका था, इसलिए कार्यालय-परिसर का समापक के लिए कोई भी उपयोग नहीं है। अतः उसने ऐसी स्कीम निकाली जिसके द्वारा वह परिसर के उपयोग और अधिभोग के लिए प्रतिकर प्राप्त कर सके जो कि किराया अधिनियम का उल्लंघन करते हुए कम्पनी के उपयोग के लिए आवश्यक नहीं है और दुर्भाग्यवश न्यायालय ने कम्पनी अधिनियम के सुसंगत उपबन्धों की उपेक्षा करते हुए समापक के इस गलत कार्य के लिए मंजूरी दे दी।

9. कम्पनी उस परिसर का किराएदार या पट्टेदार थी जिसके मकान-मालिक अपीलार्थी हैं। पट्टे के प्रारम्भ की तारीख हमें नहीं बताई गई है किन्तु समापक की ओर से इस बात का भी दावा नहीं किया गया है कि पट्टा बहुत लम्बे समय तक के लिए था। यदि ऐसा है, तो कम्पनी किराया अधिनियम के अधीन कानूनी किराएदार थी। कानूनी किराएदारी कब्जा में

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बने रहने का अधिकार प्रदत्त करती है, किन्तु यदि किराएदार को उक्त परिसर के उपयोग की अब आवश्यकता नहीं रह गई है, तो किराया अधिनियम के उपबन्ध और विशेषकर धारा 13 और 15 अनुज्ञप्ति या उप-पट्टे पर परिसर के कब्जे के लिए पूरी तरह प्रतिषिद्ध करती है। अत: विद्वान् कम्पनी न्यायाधीश ने समापक द्वारा कब्जा देने का एक तीसरा ही रास्ता निकाला अर्थात् यह कि वह अभिरक्षक-करार के अधीन द्वितीय प्रत्यर्थी को परिसर दे सकता है। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि यह अभिरक्षक करार प्रतिकर लेने के लिए अच्छी अभिव्यक्ति है जो कि द्वितीय प्रत्यर्थी द्वारा अनन्य रूप से उस परिसर के उपयोग और अधिभोग के लिए प्रभार प्राप्त करना है। इस बात का कि क्या वह उप-पट्टा है या अनुज्ञप्ति, विनिश्चय करने की आवश्यकता नहीं है। वर्तमान कार्यवाहियों के प्रयोजनार्थ हमारे लिए यह कहना पर्याप्त है कि कम्पनी और उसके समापक को परिसर की अपने उपयोग के लिए अब आवश्यकता नहीं रह गई है। समापक को कम्पनी के परिसमापन सम्बन्धी क्रियाकलाप चलाने के लिए उस परिसर के उपयोग की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उसने कब्जा देने के लिए निदेश प्राप्त करने की कोशिश की थी। विद्वान् न्यायाधीश के इस व्यावृत्ति के परिणामस्वरूप हमारे मन पर कोई भी प्रभाव नहीं पड़ा है कि यह अनन्य रूप से द्वितीय प्रत्यर्थी के पक्ष में उस परिसर का कब्जा देने का एक तीसरा ही तरीका है अर्थात् वह ऐसा अभिरक्षक-करार है जो कि हमें किराया अधिनियम के उपबंधों से बच निकलने का मुखौटा मात्र लगता है। हमें कोई सन्देह नहीं है कि किराया अधिनियम किराएदारों को संरक्षा देने के लिए अधिनियमित किया गया था और निर्विवाद रूप से उसके उपबन्धों का निर्वचन इस प्रकार किया जाना चाहिए जिससे कि उन्हें संरक्षा मिल सके और किराएदारों को असहाय करने वाली मकान-मालिकों की कार्रवाई को रोका जा सके। किन्तु इससे यह अभिप्रेत नहीं है कि न्यायालय को चाहिए कि वह किराया अधिनियम के उपबन्धों का उल्लंघन करने में उसकी सहायता करे जिससे कि वह परिसर का अनुचित और अननुज्ञेय उपयोग के लिए धन कमा सके और यही बात समापक ने करनी चाही थी और न्यायालय ने समापक को ऐसा करने के लिए सहायता दी थी। हमारी राय में यह पूर्णत: अननुज्ञेय है। विद्वान् कम्पनी न्यायाधीश समापक को ऐसा करार करने के लिए प्राधिकृत नहीं कर सकता था, और इसी कारण से उसका आदेश अपास्त किए जाने के लायक है।

10. खण्ड न्यायपीठ के समक्ष वाली अपील में इस पहलू की परीक्षा

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

की ही नहीं गई क्योंकि यह कथन किया गया है कि अपील की सुनवाई करने वाली न्यायपीठ के समक्ष इस पहलू के सम्बन्ध में कोई भी दलील नहीं दी गई है। हमने जिस मुद्दे की परीक्षा की है, वह इस मामले की जड़ तक जाता है और इसी कारण से हम यह अतात्विक समझते हैं कि इस मुद्दे की परीक्षा अपील की सुनवाई के समय की गई थी।

11. विद्वान् कम्पनी न्यायाधीश को ऐसे परिसर के कब्जे का अतिधारण करने की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती थी जिसकी आवश्यकता परिसमापन संबंधी कार्यवाहियों को दक्षता के साथ चलाने के लिए नहीं थी। उसके लिए जो एकमात्र रास्ता खुला हुआ था, वह यह था कि वह समापक को यह निदेश देता कि वह मकान-मालिक को (परिसर का) कब्जा अभ्यर्पित कर देता और किराया देने के आवर्ती दायित्व से बचता। इस निर्णय को समाप्त करने के पूर्व हम इस एक दलील की ओर ध्यान देना चाहते हैं जो कि प्रत्यर्थियों की ओर से पेश की गई थी। यह कहा गया कि समापनाधीन कम्पनी के लेनदार और सदस्यों ने बहुत नुकसान उठाया है और यदि समापक को द्वितीय प्रत्यर्थी के साथ करार करने की इजाजत दे दी गई होती, तो उससे अच्छी रकम मिलती जो कि कम्पनी के लेनदारों और सदस्यों की कठिनाइयों को कम करने में सहायक होती। समापनाधीन कम्पनी का लेखा हमारे ध्यान में नहीं लाया गया और न ही हम विधि के अतिक्रमण की इजाजत दे सकते हैं, ऐसे कार्य का उद्देश्य कितना ही प्रशंसनीय क्यों न हो। तथापि हमें अपीलार्थियों की ओर से किए गए कथन को अवश्य ही उस समय अभिलिखित करना चाहिए था जबकि हम पूर्वोक्त दलील की परीक्षा कर रहे थे। यह कहा गया कि द्वितीय प्रत्यर्थी को 2,500 रुपए प्रति मास न्यायालय के निदेशाधीन प्रतिकर के रूप में देना था। उससे 30,000 रुपए प्रति वर्ष की आय समापक को हुई होती और लागत, खर्चे तथा कर की कटौती करने के बाद समापक कम-से-कम 25,000 रुपए प्रति वर्ष वसूल करने में समर्थ हो सकता था। अपीलार्थी के विद्वान् काउन्सेल ने यह दलील दी कि छह के गुणक को अपनाते हुए और यह उपधारणा करते हुए कि मोटे तौर से वह कालावधि छह वर्ष की थी जिसके लिए करार वर्षानुवर्ष नवीकृत किया गया होता, अपीलार्थियों ने न्यायालय में 1,50,000 रुपए की रकम जमा करने के लिए बिना शर्त प्रस्ताव रखा जो कि इस न्यायालय के विवेकाधिकार के अनुसार समापनाधीन कम्पनी के लेनदारों के बीच वितरित की जानी थी। हमने अपील का निपटारा करने वाले अपने आदेश में इस प्रस्थापना के सम्बन्ध में अभिलिखित कर दिया था। हमें अब इत्तिला दी गई

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

है कि वह रकम जमा कर दी गई है। तदनुसार समापक को यह निदेश दिया जाता है कि वह कम्पनी के लेनदारों के नाम, पता और उसके द्वारा स्वीकार किए गए दावों सहित उसके लेनदारों की सूची आज की तारीख से चार सप्ताह के भीतर उस समय प्रस्तुत करे जिस समय कि वह मामला सुनवाई के लिए पेश किया जाए।

12. ये ही कारण हैं जिन्होंने हमें यह अपील मंजूर करने तथा वह आदेश, जो इस निर्णय के प्रारम्भ में प्रोद्धृत किया गया है, करने के लिए प्रेरित किया।

अपील मंजूर की गई।

श्री/

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वेलकम होटल और अन्य

बनाम

आन्ध्र प्रदेश राज्य और अन्य

(Welcome Hotel and Others

v.

State of Andhra Pradesh and Others)

(22 अगस्त, 1983)

(न्यायाधिपति डी० ए० देसाई और ओ० चिन्नप्पा रेड्डी)

आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955(1955 का 10)—धारा 2 (क)—"खाद्य पदार्थ" पद के अन्तर्गत 'पकाया हुआ भोजन' भी है।

आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955(1955 का 10)—धारा 3—आन्ध्र प्रदेश कैटरिंग एस्टैब्लिशमेंट्स (फिक्सेशन एण्ड डिस्प्ले आफ प्राईसिज आफ फूड-स्टफ्स) आर्डर, 1978—खण्ड 3—खाद्य मदों की कीमत—कतिपय खाद्य मदों की अधिकतम कीमत नियत की जानी—अधिकतम कीमत नियत किए जाने में मनमानेपन का दोष नहीं है।

संविधान, 1950—अनुच्छेद 32—उक्त अनुच्छेद के अधीन पिटीशन फाइल किया जाना—सारभूत तथ्यों को छिपाते हुए पिटीशनरों द्वारा स्थगन आदेश की मांग की जाना-न्यायालय द्वारा इस पर विचार नहीं किया जाना चाहिए।

प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 की धारा 3 के साथ पठित कृषि और सिंचाई मंत्रालय की 9 जून, 1978 की अधिसूचना द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए आन्ध्र प्रदेश कैटरिंग एस्टैब्लिशमेंट्स (फिक्सेशन एण्ड डिस्प्ले आफ प्राइसिज आफ फूडस्टफ्स) आर्डर, 1978 तारीख 8 सितम्बर, 1978 को अधिनियमित और उद्घोषित किए जाने पर जिसके द्वारा भोजनालय से सम्बन्धित स्थापनों और उनके द्वारा

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

परोसे जाने वाले समस्त खाद्य पदार्थों की कीमत प्रदर्शित करने की बाध्यता अधिरोपित किए जाने और साथ ही साथ 7 खाद्य मदों की कीमत नियत कर दिए जाने पर जो आन्ध्र प्रदेश के गरीब लोगों की व्यंजन-सूची में आती हैं, आन्ध्र प्रदेश के होटल मालिकों में खलबली मच गई। 1978 वाले आदेश से उपाबद्ध अनुसूची में जिन7 मदों के नाम गिनाए गए थे, उनमें इडली, बड़ा, उपमा, सादा डोसा, पूरी, काफी-चाय, और चावल की प्लेट (जिसे संक्षेप में अनुसूचित मदें कहा गया है) को सम्मिलित किया गया। आदेश के खण्ड 3 में अनुसूचित मदों की अधिकतम कीमत विहित की गई और खण्ड 4 द्वारा अंग्रेजी तथा क्षेत्र की मुख्य भाषा में उस स्थापन द्वारा विक्रय के लिए प्रस्तुत किए जाने वाले प्रत्येक खाद्य पदार्थ का भार या माप और कीमत प्रदर्शित करने की बाध्यता अधिरोपित की गई। तारीख 11 दिसम्बर, 1980 के संशोधनकारी आदेश द्वारा अनुसूची और उसमें अधिकथित दरें उपांतरित कर दी गईं। संशोधन द्वारा कीमतों में वृद्धि कर दी गई। पूर्ववर्ती आदेश का स्थान लेने वाले इस नए आदेश की उपेक्षा करते हुए पिटीशनरों ने इस न्यायालय का आश्रय लिया और 5 सितम्बर, 1978 और 11 दिसम्बर, 1980 के आदेश को लागू किए जाने के विरुद्ध एकपक्षीय स्थगन आदेश प्राप्त कर लिया। वस्तुतः न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किए जाने और पूर्ववर्ती आदेशों को स्थगित किए जाने के बावजूद भी 5 जनवरी, 1981 वाला आदेश स्थगित नहीं किया गया जिसे परिणामस्वरूप पिटीशनर कीमत नियत करने वाले आदेश को एक किनारे रखकर किसी सरकारी कार्यवाही द्वारा हस्तक्षेप किए बिना, मनमानी कीमत वसूल करते रहे। उच्च न्यायालय के स्थगन आदेश के विरुद्ध अनुच्छेद 32 के अधीन रिट पिटीशन फाइल किए गए। पिटीशन खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित—आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 में प्रयोग किए गए "खाद्य पदार्थ" पद के अन्तर्गत 'पकाया हुआ भोजन' भी आता है। "खाद्य पदार्थ" पद दो शब्दों से बना है 'खाद्य' और 'पदार्थ'। अन्य शब्दों में जो वस्तु खाद्य के रूप में प्रयोग की जाए वह खाद्य पदार्थ है। इसलिए खाद्य पदार्थ वह तत्व है जो जीवन के अनुक्षरण और ऊतकों की क्षतिपूर्ति के लिए आवश्यक है। यदि कच्चे खाद्य को उपभोज्य बनाने के लिए उसे पकाने की प्रक्रिया में कुछ परिवर्तन हो जाता है, तो भी वह खाद्य पदार्थ बना रहता है। आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन, प्रदाय और वितरण तथा उसके व्यवसाय और वाणिज्य को नियन्त्रित करने के लिए अधिनियमित किया गया था। इसका उद्देश्य वैसा ही है जैसा कि

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आवश्यक प्रदाय (अस्थायी शक्तियां) अधिनियम, 1946 वाले अधिनियम का था और इसलिए 1955 वाले अधिनियम में प्रयुक्त "खाद्य पदार्थ" अभिव्यक्ति का भी वही अर्थान्वयन किया जाना चाहिए। यदि ऐसा किया जाता है तो 'खाद्य पदार्थ' अभिव्यक्ति के अन्तर्गत स्पष्ट रूप से पका हुआ भोजन भी सम्मिलित किया जाएगा। (पैरा 5 और 6)

यांत्रिक तरीके से कीमत नियत करने की दलील को इस संक्षिप्त आधार पर नामंजूर किया गया कि पिटीशनर केवल अनुसूचित मदों को ही नहीं बेचते बल्कि उनके बड़े-बड़े प्रतिष्ठान हैं, जिनमें विभिन्न स्वाद और विशेषताओं वाले व्यंजन परोसे जाते हैं। किसी भी कीमत नियन्त्रित करने वाले आदेश में किसी स्थापन को परोसी जाने वाली या बेची जाने वाली प्रत्येक इकाई की बाबत लाभ कमाने की गारंटी नहीं दी जा सकती। व्यवसाय और वाणिज्य में उसका समूचा चित्र सामने रखना होगा और उसकी परीक्षा करनी पड़ेगी। पिटीशनरों ने यह नहीं दर्शित किया है कि उनके समस्त आगमों में आक्षेपित आदेश उद्घोषित किए जाने की तारीख से उन्हें कितना नुकसान हुआ है और ऐसी स्थिति कभी भी फलीभूत नहीं हुई क्योंकि 1978 वाला आदेश दो वर्ष की अवधि तक निलम्बित रह कर भी जीवित रहा और जिस समय 5 जनवरी, 1981 वाला नवीनतम आदेश उद्घोषित किया गया, उस समय भी पिटीशनरों द्वारा एकपक्षीय आदेश प्राप्त करके उसे न्यायालय के माध्यम से जीवित रखा गया। (पैरा 9)

अवलम्बित निर्णय

		पैरा
[1979]	[1979] 1 उम० नि० प० 1326 = [1978] 3 एस० सी० आर० 293 : प्राग आइस एण्ड आयल मिल्स और अन्य बनाम भारत संघ (Prag Ice & Oil Mills and Another *v.* Union of India);	9
[1952]	[1952] एस० सी० आर० 877 : मुम्बई राज्य बनाम वीर कुमार गुलाब चन्द शाह (State of Bombay *v.* Virkumar Gulabchand Shah).	5

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मूल अधिकारिता : 1981 के रिट पिटीशन संख्या 43, 51-53, 415-18 1983 के रिट पिटीशन सं० 5465-5562, 1981 के रिट पिटीशन सं० 1751-52 और 1983 के रिट पिटीशन सं० 7763-7890.

भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन किए गए रिट पिटीशन ।

पिटीशनरों की ओर से	सर्वश्री एल० एम० सिंघवी, बी० कान्ताराव, लक्ष्मी कान्त पाण्डे और जे० ईश्वर प्रसाद
प्रत्यर्थियों की ओर से	श्री एम० एस० गणेश, श्रीमती लता कृष्णमूर्ति और श्री टी० वी० एस० एन० चारी

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति डी० ए० देसाई ने दिया ।

न्यायाधिपति देसाई—

क्या इन पिटीशनों में संविधान के अनुच्छेद 32 से पिटीशनरों को ऐसी सहायता मिलनी चाहिए जिससे कि आन्ध्र प्रदेश के गरीब लोग अपने बुनियादी साधारण नाश्ते से सफलतापूर्वक वंचित किए जा सकें ? होटल मालिक अपनी कमाई में न्यूनतम कमी की कल्पना से भी बेचैन हो जाते हैं और अनुच्छेद 32 के अधीन रिट पिटीशन और एकपक्षीय स्थगन आदेश का सुलभ आश्रय पाने के लिए सक्रिय हो उठते हैं, जो अपने आप में एक सफलता है । भले ही अन्ततः पिटीशन विफल क्यों न हो जाए, क्योंकि इस दौरान वह उपाय जिससे उनकी कमाई प्रभावित हो सकती थी, निलम्बित होकर भी जीवित रहता है और बिखरे हुए उपभोक्ताओं से उन्हें बराबर लाभ होता रहता है जिसका प्रतिदाय नहीं होता और इस प्रकार दण्डाभाव में होटल मालिक अन्यायपूर्ण रीति में धन संग्रह करते रहते हैं । यह मामला इस मुद्दे पर पर्याप्त रूप से प्रकाश डालता है ।

2. प्रथम प्रत्यर्थी, आन्ध्र प्रदेश सरकार द्वारा आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 (जिसे संक्षेप में 1955 का अधिनियम कहा गया है) की धारा 3 के साथ पठित कृषि और सिंचाई मंत्रालय की 9 जून, 1978 की अधिसूचना द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए आन्ध्र प्रदेश कंटरिंग एस्टैबलिस्मेंट्स (फिक्सेशन एण्ड डिस्पले आफ प्राइसिज़ आफ फूड-स्टफ्स)

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आर्डर, 1978 (जिसे संक्षेप में 1978 का आदेश कहा गया है) तारीख 8 सितम्बर, 1978 को अधिनियमित और उद्घोषित किए जाने पर जिसके द्वारा भोजनालय से सम्बन्धित स्थापनों पर उनके द्वारा परोसे जाने वाले समस्त साद्य पदार्थों की कीमत प्रदर्शित करने की बाध्यता अधिरोपित किए जाने पर और साथ ही साथ 7 खाद्य मदों की कीमत नियत कर दिए जाने पर जो आन्ध्र प्रदेश राज्य के गरीब लोगों की व्यंजन-सूची में आती हैं, आन्ध्र प्रदेश के होटल मालिकों में खलबली मच गई। 1978 वाले आदेश से उपाबद्ध अनुसूची में जिन 7 मदों के नाम गिनाए गए थे, उनमें इडली, बड़ा, उपमा, सादा डोसा, पूरी, काफी-चाय और चावल की प्लेट (जिसे संक्षेप में अनुसूचित मदें कहा गया है) को सम्मिलित किया गया। आदेश के खण्ड 3 में अनुसूचित मदों की अधिकतम कीमत विहित की गई और खण्ड 4 द्वारा अंग्रेजी तथा क्षेत्र की मुख्य भाषा में उस स्थापन द्वारा विक्रय के लिए प्रस्तुत किए जाने वाले प्रत्येक खाद्य पदार्थ का भार या माप और कीमत प्रदर्शित करने की बाध्यता अधिरोपित की गई। अनुसूची में पारिणामिक उपबन्ध भी किए गए जैसे निदेश जारी करने की शक्ति, जानकारी मांगने, प्रवेश करने, तलाशी लेने और अभिगृहीत करने की शक्ति तथा छूट देने और साथ ही अनुसूची को संशोधित करने की शक्ति भी दी गई थी। तारीख 3 अक्तूबर, 1978 को एक स्पष्टकारी अधिसूचना जारी की गई जिसमें कतिपय निदेश किए गए। तारीख 11 दिसम्बर, 1980 के संशोधनकारी आदेश द्वारा अनुसूची और उसमें अधिकथित दरें उपांतरित कर दी गई। संशोधन द्वारा कीमतों में वृद्धि कर दी गई। ऐसा प्रतीत होता है कि एक ओर नागरिक संभरण तथा श्रम मंत्री तथा दूसरी ओर होटल मालिकों के बीच कुछ बात-चीत हुई, जिसके परिणामस्वरूप 5 जनवरी, 1981 को एक अधिसूचना जारी की गई (जिसे संक्षेप में 1981 का आदेश कहा गया है) जिसमें अनुसूचित मदों के अधिकतम मूल्य को और बढ़ा दिया गया। और अनुसूचित मदों को 7 से घटाकर 6 कर दिया गया, जिसमें से चावल की प्लेट को हटा दिया गया पूर्ववर्ती आदेश का स्थान लेने वाले इस नए आदेश की उपेक्षा करते हुए पिटीशनरों ने इस न्यायालय का आश्रय लिया और 5 सितम्बर, 1978 और 11 दिसम्बर, 1980 के आदेश को लागू किए जाने के विरुद्ध एकपक्षीय स्थगन आदेश प्राप्त कर लिया। वस्तुतः न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किए जाने और पूर्ववर्ती आदेशों को स्थगित किए जाने के बावजूद भी 5 जनवरी, 1981 वाला आदेश स्थगित नहीं किया गया जिसके परिणामस्वरूप पिटीशनर कीमत नियत करने वाले आदेश को

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

एक किनारे रखकर किसी सरकारी कार्यवाही द्वारा हस्तक्षेप किए बिना, मनमानी कीमत वसूल करते रहे ।

3. श्री एल० एम० सिंघवी ने, जो कि पिटीशनरों की ओर से आगे आए, दो निवेदन किये जिनका आक्षेपित आदेशों की विधिमान्यता या वैधता से कोई संबंध नहीं है । उन्होंने यह निवेदन किया कि न्यायालय को चाहिए कि वह राज्य सरकार को ऐसा निदेश जारी करे कि वह उत्पादों की कीमत और ऊपरी-व्ययों की पुनः परीक्षा करे जिससे अनुसूचित खाद्य वस्तुओं की ऐसी अधिकतम कीमत सुनिश्चित की जा सके जिससे लागत पर युक्ति-युक्त लाभ हो सके । ऐसा करना व्यवसाय करने के मूल अधिकार पर युक्तियुक्त निर्बन्धन होगा और अनुच्छेद 19(1)(छ) के अनुकूल होगा । इसके बाद उन्होंने यह निवेदन किया कि 1978 और 1981 वाले आदेशों में कतिपय निदेश ऐसे हैं, जिनको पूरा किया जाना असंभव है और इसलिए इसके पहले कि उन्हें शर्तों का पालन करने के लिए मजबूर किया जाए, उनकी सुनवाई की जानी चाहिए । आक्षेपित आदेश की विधिमान्यता पर इन दोनों निवेदनों में से किसी का कोई प्रभाव नहीं पड़ता । तथापि यह उल्लेख किया जा सकता है कि कैसे पिटीशनर ने सारभूत तथ्यों को दबाते हुए एकपक्षीय स्थगन आदेश प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की । श्री डी० मुरली कृष्णन्, निदेशक, नागरिक आपूर्ति द्वारा फाइल किए गए प्रति-शपथपत्र में यह कथन किया गया कि 11 दिसम्बर, 1980 का आदेश जारी किए जाने के पश्चात् होटल-मालिकों ने कुछ आंदोलन किया जिसके परिणामस्वरूप नागरिक आपूर्ति विभाग के मंत्री महोदय ने होटल-मालिकों की एक बैठक बुलाई । इस बैठक का जो परिणाम निकला उसे प्रति-शपथपत्र से उद्धृत किया जा सकता है—

> "इसलिए नागरिक आपूर्ति विभाग के मंत्री ने 31-12-1980 को आन्ध्र प्रदेश राज्य के होटल-मालिकों के प्रतिनिधियों और संयुक्त जिलाधीशों की एक बैठक हैदराबाद में बुलाई । उस बैठक में समस्त अन्तर्ग्रस्त मुद्दों पर सविस्तार विचार-विमर्श हुआ । लम्बी बहस के पश्चात् जिले के होटल-मालिक बहुमत से इस बात पर सहमत हुए कि भोजन को छोड़कर 6 खाद्य मदों की कीमत घटा दी जाए और इस प्रभाव का एक वचनबंध होटल-मालिकों द्वारा 1 जनवरी, 1981 को 1-30 बजे पूर्वाह्न हस्ताक्षरित किया गया ।"

इस वचनबंध की एक प्रति प्रति-शपथपत्र के उपाबंध 'ख' पर संलग्न है

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह भी उपबंध किया गया है कि होटल मालिकों की सहमति से नियत की गई अनुसूचित मदों की दरों का तीन मास के पश्चात् पुनर्विलोकन किया जाएगा। अब जो मांग की गई है वह यह है कि राज्य सरकार कीमतों के निवेश और ऊपरी-व्यय की परीक्षा करे और अनुसूचित मदों की अधिकतम कीमत दुबारा अवधारित की जानी चाहिए जो कुल मिलाकर राज्य सरकार और होटल-मालिकों के बीच हुए समझौते का अभिन्न अंग है। पिटीशनरों ने पिटीशन में न्यायालय से इस सारभूत तथ्य को छुपाते हुए 12 जनवरी, 1981 को एकपक्षीय स्थगन आदेश प्राप्त कर लिया और यह कार्य ऐसा था जिसमें सारभूत तथ्य को दबाया गया था, जिसके द्वारा इस न्यायालय से पिटीशनर किसी भी अनुतोष के हकदार नहीं रह गए। इसके अतिरिक्त कीमत नियत करने से सम्बन्धित किसी भी उपाय में युक्तियुक्त अन्तराल पर पुनर्विलोकन की बात अस्पष्ट है।

4. दूसरा निवेदन जिसमें यह कहा गया कि पिटीशनरों की सुनवाई की जाए जिससे वे इस बात का उल्लेख कर सकें कि आदेश की कुछ शर्तों का पालन किया जाना असंभव क्यों था, इस निवेदन को अस्वीकार किया जाता है। यदि दलील का मुख्य आधार अनुसूचित मदों की अधिकतम कीमत थी जिसे विचार-विमर्श के माध्यम से तय किया जाना था, तो यह दलील स्वीकार कर पाना संभव नहीं है कि पिटीशनरों ने आक्षेपित आदेश की कुछ शर्तों को पूरा करने की संभावना के बारे में अपनी कठिनाइयां नहीं रखी होंगी। इस संबंध में उपाबंध 'ख' वाले करार में लेशमात्र भी संकेत नहीं किया गया है और आक्षेपित आदेश में विहित शर्तों में हमें कोई भी बात ऐसी नहीं मिलती जो बहुत असामान्य या असंभाव्य हो।

5. श्री बी० कान्ता राव ने, जो कि पिटीशनरों में से कुछ की ओर से उपस्थित हुए, इस बात पर जोर दिया कि राज्य सरकार पके हुए खाने की बाबत कीमत नियंत्रित करने वाला कोई भी उपाय लागू करने में सक्षम नहीं है, क्योंकि आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 जो आवश्यक वस्तुओं के सम्बन्ध में आदेश जारी करने की शक्ति प्रदान करता है, उसमें पके हुए भोजन की बाबत आदेश जारी करने की कोई शक्ति नहीं दी गई है। आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 की धारा 3 द्वारा केन्द्रीय सरकार को यह शक्ति प्रदान की गई है कि वह आदेश द्वारा आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन, प्रदाय और वितरण तथा उसमें व्यापार और वाणिज्य के विनियमन या प्रतिषेध के लिए उपबंध कर सकेगी, जिससे कि उनका साम्यापूर्ण वितरण और उचित दर की दुकानों पर उपलभ्यता सुनिश्चित रहे। अधिनियम की

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

धारा 3 द्वारा दी गई शक्तियों में आवश्यक वस्तुओं की कीमत नियत करने की शक्ति अस्पष्ट है और जो बात धारा 3(1) में अस्पष्ट है, उसे धारा 3 की उपधारा (2) के खण्ड (ग) में स्पष्ट कर दिया गया है, जिसमें यह उपबंध किया गया है कि धारा 3(1) के अधीन किए गए आदेश में निम्नलिखित उपबंध किया जाएगा—(ग) ऐसी कीमत नियंत्रित करना जिस पर किसी आवश्यक वस्तु का क्रय या विक्रय किया जा सकेगा। धारा 2 के खण्ड (क) में 'आवश्यक वस्तु' की परिभाषा दी गई है जिसका अर्थ है निम्नलिखित मदों में से कोई जिनमें··· ··· (5) खाद्य पदार्थ जिनके अन्तर्गत खाद्य तिलहन और तेल भी हैं। अब निवेदन यह है कि 'खाद्य पदार्थ' शब्दों का जो अर्थ उसके व्युत्पत्तिक और व्याकरणिक दोनों ही रूपों में निकलता है वह है कच्चा खाद्य पदार्थ या जिसे समुचित रूप से खाद्यान जैसे गेहूं, चावल, ज्वार, बाजरा, मक्का इत्यादि कहा जा सकता है, किन्तु इसके अन्तर्गत पकाया हुआ भोजन जो कि विनाशवान वस्तु है, सम्मिलित नहीं है। 'खाद्य पदार्थ' शब्द का इतना संकीर्ण अर्थ दिया जाना हमारी दृष्टि में न्यायोचित नहीं है। यदि धारा 3 द्वारा कच्चे खाद्य पदार्थ जैसे चावल, गेहूं आदि की कीमत नियंत्रित करने की शक्ति दी गई है, तो हमें इस बात में कोई औचित्य नहीं दिखाई देता कि इसके अन्तर्गतऐ से कच्चे खाद्य पदार्थों से बनाई गई वस्तुओं की कीमत को विनियमित करने की शक्ति न हो। 'सलाद',' मिर्च' और 'मसाले' ऐसे शब्द हैं जो खाद्य वस्तुओं की भिन्न-भिन्न मदें हैं, किन्तु खाद्य पदार्थ एक सामान्य अभिव्यक्ति है जिसका निर्वचन करते हुए इसके अन्तर्गत मिर्च और मसालों को भी सम्मिलित किया गया था। **मुम्बई राज्य बनाम वीर कुमार गुलाब चन्द शाह**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने आवश्यक प्रदाय (अस्थायी शक्तियां) अधिनियम, 1946 की धारा 2(क) के साथ पठित स्पाइसिज़ (फारवर्ड कान्ट्रेक्ट प्राहिब्शन) आर्डर, 1944 के खण्ड (3) में प्रयुक्त 'खाद्य पदार्थ' अभिव्यक्ति का अर्थान्वयन करते हुए इसके अन्तर्गत हल्दी को भी सम्मिलित किया था। 'खाद्य पदार्थ' अभिव्यक्ति की परिभाषा को आक्सफोर्ड इंग्लिश शब्द कोश, वैबस्टर इण्टरनेशनल शब्द कोश और इस विषय से सम्बद्ध कतिपय विनिश्चयों की परीक्षा करने के पश्चात् इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि 'खाद्य' और 'खाद्य पदार्थ' पद संकीर्ण और व्यापक दोनों ही अर्थों में प्रयोग किए जा सकते हैं और किसी मामले विशेष में कौन-सा अर्थ उचित होगा इसका अवधारण मामले की परिस्थितियों और उसकी पृष्ठभूमि के आधार पर ही किया जा सकता है।

[1] [1952] एस० सी० आर० 877.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आवश्यक प्रदाय (अस्थायी शक्तियां) अधिनियम, 1946 को अधिनियमित किए जाने के उद्देश्य और आशय की परीक्षा करने के पश्चात् इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि यदि हल्दी समाज के जीवन के लिए आवश्यक वस्तु है, तो इसे 'खाद्य पदार्थ' अभिव्यक्ति के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाना चाहिए। तदनुसार, यह अभिनिर्धारित किया गया कि 1946 वाले अधिनियम में 'खाद्य पदार्थ' अभिव्यक्ति का प्रयोग व्यापक अर्थ में किया गया था। यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन, प्रदाय और वितरण तथा उसके व्यवसाय और वाणिज्य को नियंत्रित करने के लिए अधिनियमित किया गया था। इसका उद्देश्य वैसा ही है जैसा कि 1946 वाले अधिनियम का था और इसलिए 1955 वाले अधिनियम में प्रयुक्त 'खाद्य पदार्थ' अभिव्यक्ति का भी वही अर्थान्वयन किया जाना चाहिए। यदि ऐसा किया जाता है तो 'खाद्य पदार्थ' अभिव्यक्ति के अन्तर्गत स्पष्ट रूप से पका हुआ भोजन भी सम्मिलित किया जाएगा।

6. इसके अतिरिक्त, 'खाद्य' अभिव्यक्ति को सामान्यतः किसी जीव के शरीर द्वारा शोषित या ग्रहण किया गया पोषक पदार्थ समझा गया है जो कि उसके जीवन-शक्ति की प्रक्रिया को बनाए रखने में उसके विरुद्ध कार्य-शक्ति और क्षतिपूर्ति के प्रयोजन के लिए कार्य करता है। मनुष्य जो कुछ ग्रहण करता है उसे भोजन का नाम दिया गया है और पशु जिस चीज को ग्रहण करता है उसे पशु चारा का नाम दिया गया है। दोनों के बीच जो अन्तर है उसे ध्यान में रखना है। 'खाद्य पदार्थ' अभिव्यक्ति दो पदों से मिलकर बनी है, 'खाद्य' और 'पदार्थ'। दूसरे शब्दों में, जो पदार्थ खाद्य के रूप में ग्रहण किया जाता है उसे खाद्य पदार्थ कहते हैं। इसलिए खाद्य पदार्थ वह सामग्री है जो जीवन और वृद्धि की प्रक्रिया की पद्धति को बनाए रखने और ऊतकों के विनष्ट होने से उनकी कमी को पूरा करने के लिए ग्रहण किया जाता है। यदि कच्चे खाद्य पदार्थ में मनुष्य द्वारा उपभोज्य बनाए जाने की दृष्टि से पकाने की प्रक्रिया के दौरान कुछ परिवर्तन हो जाता है, तो भी उससे जो कुछ प्राप्त होता है वह और कुछ नहीं बल्कि खाद्य पदार्थ ही है। यदि कच्चा चावल खाद्य पदार्थ है तो क्या उसे पानी में उबाल देने पर वह खाद्य पदार्थ नहीं रह जाता? जिस प्रकार चीनियों ने दुर्घटनावश उस झोंपड़ी में आग लग जाने के बाद जिसमें सुअर थे, कच्चे खाद्य के स्थान पर पके हुए खाद्य के उपभोग का आनन्द पाया, उसी प्रकार श्री कान्ता राव द्वारा किए गए निवेदन से हमें शताब्दियों पीछे जाना होगा और ऐसा करने

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

में आधुनिक पाक् विद्या की बदनामी होगी और 1955 वाले अधिनियम में एक अन्य अभिव्यक्ति 'खाद्य फसल' को परिभाषित किया गया है इसलिए 1955 वाले अधिनियम में उपयुक्त 'खाद्य पदार्थ' अभिव्यक्ति के अन्तर्गत पकाया हुआ भोजन भी आता है। इसलिए श्री कान्ता राव की दलील को मानने से इनकार किया जाता है।

7. इसके बाद यह दलील दी गई कि आक्षेपित आदेश के अधीन गिनाई गई अनुसूचित मदों की अधिकतम कीमत आर्थिक रूप से अलाभकर है और वह निवेश तथा ऊपरी-व्ययों की कीमत तथा उनकी लागत पर युक्ति-युक्त लाभ की वैज्ञानिक रूप से परीक्षा किए बिना निर्धारित की गई है, इसलिए अधिकतम कीमत नियत किए जाने में मनमानेपन का दोष है और इसे असांविधानिक तथा अनुच्छेद 14 का उल्लंघनकारी घोषित किया जाना चाहिए। इस निवेदन की पैरवी करते समय पिटीशनरों तथा राज्य दोनों ने ही हमें अपने-अपने पक्षों द्वारा निवेश तथा ऊपरी-व्ययों को दर्शित करने वाले आंकड़ों की भूल-भुलय्या में भटकाने का प्रयास किया गया। हम लागत लेखाकार के कारबार के झमेले में फंसना नहीं चाहते क्योंकि न ही हम इस विषय के विशेषज्ञ हैं और न ही हम इस पचड़े में पड़ना चाहते हैं। आगे यह तर्क दिया गया कि निवेश की कीमतें इस कदर बढ़ती गईं कि आक्षेपित आदेश द्वारा अवधारित अधिकतम कीमतें अलाभकर हो गईं। इस मंदी के लिए पिटीशनर अपना भला मनाएं कि नागरिक आपूर्ति मंत्री और उनके बीच हुए 31 दिसम्बर, 1980 वाले करार में इस तथ्य को करार का एक अभिन्न अंग बनाया गया था कि आक्षेपित आदेश द्वारा नियत अधिकतम कीमत की करार की तारीख से तीन मास के अवसान के पश्चात् पुनः परीक्षा की जाएगी। पिटीशनर इस करार पर अमल करने के बजाए केवल 12 दिनों के भीतर ही इस न्यायालय में पहुंचे और इस तथ्य को पूर्णतः छुपाते हुए एकपक्षीय आदेश प्राप्त कर लिया कि इन पिटीशनों के आक्षेपित आदेश 5 जनवरी, 1981 वाले नवीनतम आदेश द्वारा पहले ही बदल दिया गया है। पिटीशनर, जिन्होंने कि इस तरह का व्यवहार किया है, इस न्यायालय द्वारा किसी प्रकार से विचार किए जाने के हकदार नहीं हैं।

8. इस बात को स्पष्ट करने के लिए कि न्यायालय वस्तुओं की कीमत का वैज्ञानिक रूप से ढांचा तैयार करने के लिए उपयुक्त संस्था नहीं है, यह उल्लेख किया जा सकता है कि पिटीशनरों ने अपनी कीमत के ढांचे की सारणी में प्रत्येक अनुसूचित मद की बाबत 25 प्रतिशत मजदूरी भी जोड़ दी

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

है। सात मदों के लिए कुल मजदूरी जोड़ दिए जाने पर, मजदूरी का बिल 175 % हो जाता है और इसके साथ ही साथ अन्य ऊपरी-व्ययों की बात भी सच है। इसके साथ पिटीशनरों द्वारा अपने स्थापनों में बेची जाने वाली खाद्य की अन्य अनेक मदों को भी जोड़ दीजिए तो उनके दावे की विफलता स्पष्ट हो जाती है।

9. इसके बावजूद, हम यांत्रिक तरीके से कीमत नियत करने की दलील को इस संक्षिप्त आधार पर नामंजूर करते हैं कि पिटीशनर केवल अनुसूचित मदों को ही नहीं बेचते बल्कि उनके बड़े-बड़े प्रतिष्ठान हैं जिनमें विभिन्न स्वाद और विशेषताओं वाले व्यंजन परोसे जाते हैं। किसी भी कीमत नियंत्रित करने वाले आदेश में किसी स्थापन को परोसी जाने वाली या बेची जाने वाली प्रत्येक इकाई की बाबत लाभ कमाने की गारंटी नहीं दी जा सकती। व्यवसाय और वाणिज्य में उसका समूचा चित्र सामने रखना होगा और उसकी परीक्षा करनी पड़ेगी। पिटीशनरों ने यह नहीं दर्शित किया है कि उनके समस्त आगमों में आक्षेपित आदेश उद्घोषित किए जाने की तारीख से उन्हें कितना नुकसान हुआ है और ऐसी स्थिति कभी भी फलीभूत नहीं हुई क्योंकि 1978 वाला आदेश दो वर्ष की अवधि तक निलम्बित रह कर भी जीवित रहा और जिस समय 5 जनवरी, 1981 वाला नवीनतम आदेश उद्घोषित किया गया, उस समय भी पिटीशनरों द्वारा एकपक्षीय आदेश प्राप्त करके उसे न्यायालय के माध्यम से जीवित रखा गया और हम इस दलील को इस न्यायालय की सात न्यायाधीशों की सांविधानिक न्यायपीठ द्वारा **प्राग ब्राइस एण्ड आयल मिल्स और अन्य** बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले में अधिकथित अतिरिक्त कारणों से अस्वीकार करते हैं जिसमें न्यायाधिपति चन्द्रचूड़ ने निम्नलिखित अवलोकन किया था—

> "अन्तिम रूप से विश्लेषण करने पर, कीमत नियतन की प्रक्रिया को निश्चित रूप से कार्यपालिका के निर्णय पर छोड़ना पड़ेगा और जब तक कि यह बात स्पष्ट न हो कि व्यावहारियों के किसी वर्ग के विरुद्ध शत्रुतापूर्ण विभेद किया गया है, कीमत नियतन के प्रक्रियात्मक आधार को साधारण मामले में विधिमान्य स्वीकार करना होगा।"

इस न्यायालय द्वारा एतद्पूर्व उद्धृत प्रस्थापना से अब तक के किसी भी मामले में भिन्न विचार नहीं प्रकट किया गया।

---

1 [1979] 1 उम० नि० प० 1326=[1978] 3 एस० सी० आर० 293-325.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

10. निष्कर्ष पर पहुंचने से पूर्व हम पिटीशनरों द्वारा प्राप्त किए गए अनुसूचित लाभ की ओर संकेत करना चाहेंगे जो कि उन्होंने इस सारभूत तथ्य को छुपाते हुए एकपक्षीय स्थगन आदेश के माध्यम से प्राप्त किया है कि पूर्ववर्ती आदेश को पश्चात्वर्ती आदेश द्वारा बदला जा चुका है और पूर्ववर्ती आदेश तथा पश्चात्वर्ती आदेश दोनों ही उनकी सहमति से जारी किए गए हैं। रिट पिटीशन सं० 43/81 में उसके एक खण्ड में निम्नलिखित याचना की गई है—

> "परमादेश की रिट या अन्य उपयुक्त रिट या आदेश जारी किया जाए और आन्ध्र प्रदेश राज्य के शासनादेश सं० 548 तारीख 8-9-1978 और शासनादेश सं० 626 तारीख 11-12-1980 और आक्षेपित आदेश के अनुसरण में द्वितीय प्रत्यर्थी-कलक्टर द्वारा जारी की गई अधिसूचना तारीख 16-12-1980 को विधि-विरुद्ध, असांविधानिक और शून्य घोषित किया जाए और उसे अभिखंडित कर दिया जाए।"

दलील का आधार राज्य सरकार द्वारा प्रयोग की गई शक्ति नहीं था बल्कि राज्य सरकार को दी गई शक्तियों का प्रयोग करते हुए उसके द्वारा नियत की गई अधिकतम कीमत थी। अधिकतम कीमत 5 जनवरी, 1981 वाले आदेश के अनुसार विनियमित की जानी थी और 12 जनवरी, 1981 को एकपक्षीय स्थगन आदेश के लिए इस न्यायालय में आवेदन करने के पश्चात् भी यह तथ्य तो बना ही रहता है कि 5 जनवरी, 1981 वाले नवीनतम आदेश ने पूर्वतर आदेश का स्थान ले लिया है, इस तथ्य को न्यायालय से छुपाया गया और यह विचित्र बात है कि राज्य सरकार ने 5 जनवरी, 1981 वाली अपनी नवीनतम अधिसूचना पर जोर क्यों नहीं दिया क्योंकि न्यायालय द्वारा उसके प्रयोग को स्थगित नहीं किया गया था। तथापि गरीबों की भोजन-सूची की कीमत को नियत करने वाली समस्त अधिसूचना को निलंबित रखकर भी जीवित रखा गया और होटल-मालिकों को पूरी छूट रही कि वे अपनी-अपनी लालच के अनुसार मनमानी कीमत वसूल करते रहें। अब हम इन पिटीशनों को खारिज करते हैं और स्थगन आदेश को समाप्त करते हैं। अधिकतम कीमत नियत करने वाले अधिसूचना का पुनर्विलोकन किया जाएगा और उसे प्रवृत्त किया जा सकता है। किन्तु इसी बीच आन्ध्र प्रदेश राज्य के गरीब लोगों को अपनी सीधी-सादी भोजन-सूची के लिए भी अपनी कठिन कमाई को व्यय करना पड़ा और आक्षेपित अधिसूचना द्वारा नियत की गई अधिकतम कीमत और होटल-मालिकों द्वारा वसूल की गई कीमत के बीच

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अन्तर का अनुचित लाभ होटल-मालिक उठाते रहे और अनुचित रूप से उन्हें न्यायालय की सहायता से संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन अपनी सांविधानिक शक्तियों का प्रयोग करते हुए धन संग्रह का लाभ दिया गया और इस अनुचित तरीके से एकत्र किए गए धन से उन्हें वंचित करने का कोई रास्ता नहीं है। न्याय, जिसके अन्तर्गत सामाजिक-आर्थिक न्याय भी है, उपलब्ध कराने के लिए स्थापित न्यायालय ने दुर्भाग्यवश इस प्रकार धन एकत्र किए जाने में सहायता पहुंचाई और इसके बावजूद भी हम बेबस हैं।

11. इसमें इसके पूर्व विचार किए गए कारणों से पिटीशनरों की ओर से पैरवी की गई दलीलों में हमें कोई गुण नहीं दिखाई देता और इसलिए पिटीशन विफल होते हैं और खर्चे सहित खारिज किए जाते हैं।

पिटीशन खारिज किए गए।

द्वि०/

———

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

10. निष्कर्ष पर पहुंचने से पूर्व हम पिटीशनरों द्वारा प्राप्त किए गए अनुसूचित लाभ की ओर संकेत करना चाहेंगे जो कि उन्होंने इस सारभूत तथ्य को छुपाते हुए एकपक्षीय स्थगन आदेश के माध्यम से प्राप्त किया है कि पूर्ववर्ती आदेश को पश्चात्वर्ती आदेश द्वारा बदला जा चुका है और पूर्ववर्ती आदेश तथा पश्चात्वर्ती आदेश दोनों ही उनकी सहमति से जारी किए गए हैं। रिट पिटीशन सं० 43/81 में उसके एक खण्ड में निम्नलिखित याचना की गई है—

> "परमादेश की रिट या अन्य उपयुक्त रिट या आदेश जारी किया जाए और आन्ध्र प्रदेश राज्य के शासनादेश सं० 548 तारीख 8-9-1978 और शासनादेश सं० 626 तारीख 11-12-1980 और आक्षेपित आदेश के अनुसरण में द्वितीय प्रत्यर्थी-कलक्टर द्वारा जारी की गई अधिसूचना तारीख 16-12-1980 को विधि-विरुद्ध, असांविधानिक और शून्य घोषित किया जाए और उसे अभिखंडित कर दिया जाए।"

दलील का आधार राज्य सरकार द्वारा प्रयोग की गई शक्ति नहीं था बल्कि राज्य सरकार को दी गई शक्तियों का प्रयोग करते हुए उसके द्वारा नियत की गई अधिकतम कीमत थी। अधिकतम कीमत 5 जनवरी, 1981 वाले आदेश के अनुसार विनियमित की जानी थी और 12 जनवरी, 1981 को एकपक्षीय स्थगन आदेश के लिए इस न्यायालय में आवेदन करने के पश्चात् भी यह तथ्य तो बना ही रहता है कि 5 जनवरी, 1981 वाले नवीनतम आदेश ने पूर्वतर आदेश का स्थान ले लिया है, इस तथ्य को न्यायालय से छुपाया गया और यह विचित्र बात है कि राज्य सरकार ने 5 जनवरी, 1981 वाली अपनी नवीनतम अधिसूचना पर जोर क्यों नहीं दिया क्योंकि न्यायालय द्वारा उसके प्रयोग को स्थगित नहीं किया गया था। तथापि गरीबों की भोजन-सूची की कीमत को नियत करने वाली समस्त अधिसूचना को निलंबित रखकर भी जीवित रखा गया और होटल-मालिकों को पूरी छूट रही कि वे अपनी-अपनी लालच के अनुसार मनमानी कीमत वसूल करते रहें। अब हम इन पिटीशनों को खारिज करते हैं और स्थगन आदेश को समाप्त करते हैं। अधिकतम कीमत नियत करने वाले अधिसूचना का पुनर्विलोकन किया जाएगा और उसे प्रवृत्त किया जा सकता है। किन्तु इसी बीच आन्ध्र प्रदेश राज्य के गरीब लोगों को अपनी सीधी-सादी भोजन-सूची के लिए भी अपनी कठिन कमाई को व्यय करना पड़ा और आक्षेपित अधिसूचना द्वारा नियत की गई अधिकतम कीमत और होटल-मालिकों द्वारा वसूल की गई कीमत के बीच

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अन्तर का अनुचित लाभ होटल-मालिक उठाते रहे और अनुचित रूप से उन्हें न्यायालय की सहायता से संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन अपनी सांविधानिक शक्तियों का प्रयोग करते हुए धन संग्रह का लाभ दिया गया और इस अनुचित तरीके से एकत्र किए गए धन से उन्हें वंचित करने का कोई रास्ता नहीं है। न्याय, जिसके अन्तर्गत सामाजिक-आर्थिक न्याय भी है, उपलब्ध कराने के लिए स्थापित न्यायालय ने दुर्भाग्यवश इस प्रकार धन एकत्र किए जाने में सहायता पहुंचाई और इसके बावजूद भी हम बेबस हैं।

11. इसमें इसके पूर्व विचार किए गए कारणों से पिटीशनरों की ओर से पैरवी की गई दलीलों में हमें कोई गुण नहीं दिखाई देता और इसलिए पिटीशन विफल होते हैं और खर्चे सहित खारिज किए जाते हैं।

पिटीशन खारिज किए गए।

द्वि०/

———

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

स्वरूप वेजिटेबल्स प्रोडक्ट्स इंडस्ट्रीज (मैसर्स) और अन्य

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

[(M/s.) Swaroop Vegetables Products Industries and Others

v.

State of Uttar Pradesh and Others]

(19 अगस्त, 1983)

(न्यायाधिपति एस० मुर्तजा फजल अली, ए० वरदराजन और एस० पी० ठक्कर)

उत्तर प्रदेश इलेक्ट्रिसिटी (ड्यूटी) अधिनियम, 1952(1952 का 33)—धारा 3(1) और 4(1)—शुल्क दायित्व—धारा 4(1) (ग) के साथ पठित धारा 3(1) (ग) के अधीन विद्युत जनन के अपने निजी स्रोत से किसी व्यक्ति द्वारा उपभुक्त ऊर्जा पर विद्युत शुल्क देने के दायित्व से इस आधार पर छूट नहीं दी जा सकती कि वह व्यक्ति धारा 4(1) (क) के साथ पठित धारा 3(1) (क) में इंगित स्रोतों से भी ऊर्जा खरीदता है।

संविधान, 1950—अनुच्छेद 14 [सपठित उत्तर प्रदेश इलेक्ट्रिसिटी (ड्यूटी) अधिनियम, 1952, धारा 3(4) तथा उसके अधीन निकाली गई अधिसूचना तारीख 17-3-1973]—अधिसूचना की विधिमान्यता—प्रोत्साहन की कसौटी के रूप में तारीख नियत की जानी—बिजली की कमी की दृष्टि से तथा औद्योगिक उत्पादन बढ़ाने के लिए नियत एक तारीख के बाद लगाये गए बिजली जनन के अपने निजी स्रोत से बिजली का उपयोग करने वाले लोगों को विद्युत शुल्क से छूट दी जानी—उस तारीख के पहले से बिजली जनन के अपने स्रोत से बिजली का उपयोग करने वाले लोगों को यह छूट न दी जानी—राज्य की ऐसी कार्रवाई से छूट देने के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए अनुच्छेद 14 का उल्लंघन नहीं होता, फलतः प्रश्नगत अधिसूचना विधिमान्य है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

शेरवानी शुगर सिन्डीकेट प्राइवेट लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य वाले मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के खण्ड न्यायपीठ ने यह दलील स्वीकार कर ली थी कि चूंकि पिटीशनर कंपनी के पास उर्जा जनन का अपना स्रोत था और वह धारा 3 (1) (ग) और धारा 3 (1) (ख) में उपदर्शित किसी अन्य स्रोत से भी उर्जा खरीदती है, इसलिए पिटीशनर कंपनी प्रदाय के अपने स्रोत से उत्पन्न उर्जा पर शुल्क देने के लिए दायी नहीं थी। उत्तर प्रदेश राज्य ने उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए उपयुक्तता प्रमाण-पत्र (1977 की सिविल अपील सं० 1312) द्वारा अपील के माध्यम से इस विनिश्चय की वैधता और विधिमान्यता को चुनौती दी है। इसी बीच मैसर्स देवरिया शुगर मिल्स लिमिटेड ने भी एक ऐसे ही अभिवाक् पर 1975 के सिविल प्रकीर्ण रिट पिटीशन सं० 9990 के रूप में इलाहाबाद उच्च न्यायालय में समावेदन किया। यह मामला इलाहाबाद उच्च न्यायालय के एक दूसरे खण्ड न्यायपीठ के समक्ष आया। इस न्यायपीठ की राय थी कि शेरवानी सिन्डीकेट वाले मामले के विनिश्चय पर फिर से विचार किया जाना चाहिए, इसलिए वह मामला पूर्ण न्यायपीठ को भेज दिया गया। पूर्ण न्यायपीठ की राय थी कि शेरवानी वाले मामले में अपनाया गया मत सही नहीं है और उसने मैसर्स देवरिया शुगर मिल्स द्वारा फाइल किया गया रिट पिटीशन खारिज कर दिया तथा यह मत अपनाया कि विद्युत उपभोक्ता प्रदाय के अपने स्रोत से ऊर्जा के उपभोग पर विद्युत शुल्क देने के लिए दायी है, चाहे उसने धारा 3 (1) (क) और (ख) में उपदर्शित किसी अन्य स्रोत से विद्युत खरीदी हो या नहीं। पूर्ण न्यायपीठ के इस विनिश्चय की दृष्टि से, इस प्रकार के प्रश्न उठाने वाली कंपनियों द्वारा संस्थित पिटीशन इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा खारिज कर दिए गए। ये कंपनियां उच्चतम न्यायालय द्वारा दी गई विशेष इजाजत से 6 पृथक् अपीलों के रूप में उच्चतम न्यायालय में आई हैं। सिविल अपील सं० 1312/1977 मंजूर करते हुए और शेष अपीलें खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित—उत्तर प्रदेश इलेक्ट्रिसिटी (ड्यूटी) अधिनियम, 1952 की धारा 3 (1) (ग) के पढ़ने मात्र से यह प्रकट हो जाता है कि शुल्क किसी व्यक्ति द्वारा विद्युत जनन के अपने निजी स्रोत से उपभुक्त ऊर्जा पर उद्ग्रहण किया जाता है चाहे कुछ और हो या नहीं। धारा 3 (1) (ग) या धारा 4 (1) (ग) में कोई अध्यारोही खण्ड या शर्त समाविष्ट नहीं है। यह तथ्य कि जनन के अपने स्रोत से विद्युत का उपयोग करने वाला किसी अन्य स्रोत से भी विद्युत खरीदता है, उक्त उपबन्धों द्वारा अधिरोपित दायित्व

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

की दृष्टि से सर्वथा असंगत बात है। यह समझ लिया जाए कि शुल्क उद्ग्रहण ऊर्जा के उपयोग पर किया जाता है, कर आरोपण ऊर्जा के उपभोग पर होता है, विद्युत किस स्रोत से ली गई है, यह सर्वथा असंगत बात है। यदि कोई व्यक्ति, जिसके पास ऊर्जा का अपना स्रोत है, धारा 3 (1) (ग) में उपदर्शित किसी अन्य स्रोत से भी ऊर्जा खरीदता है तो वह उस सीमा तक धारा 3 (1) (क) के अन्तर्गत आएगा, जहां तक वह ऐसे स्रोत से बिजली खरीदता है और उसी प्रकार धारा 3 (1) (ग) के अन्तर्गत आएगा जहां तक वह जनन के अपने स्रोत से ऊर्जा का उपभोग करता है। वह दोनों उपबन्धों के अन्तर्गत संयुक्त दृष्टि से आएगा। यही तर्क धारा 4 (1) के खण्ड (क), (ख) और (ग) के संदर्भ में लागू होता है। किसी व्यक्ति को शुल्क संदाय से छूट देने का मात्र इसलिए कोई तर्कसंगत आधार नहीं है कि विद्युत जनन का उसका अपना साधन है और वह अन्य स्रोतों से भी विद्युत खरीदता है। वस्तुतः ऐसा करना अतर्कसंगत होगा और इससे एक दोष पैदा हो जाएगा। यदि वह अपनी ऊर्जा पैदा करता है तो वह उस दशा में क्यों संदाय करे और यदि वह अन्य स्रोत से भी विद्युत खरीदता है तो मात्र इस आधार पर छूट क्यों दी जाए? शुल्क उद्ग्रहण कराधान के एक उपाय के रूप में किया जाता है जिससे कि अतिरिक्त राजस्व एकत्र किया जा सके। (पैरा 4)

चूंकि कर लगाने की दशा ऊर्जा के उपभोग पर निर्भर करती है; इसलिए वह स्रोत जिससे विद्युत प्राप्त की जाए, सर्वथा असंगत हो जाएगा। धारा 3 (1) और धारा 4 (1) को एक साथ पढ़ना होगा और एक सामंजस्य पूर्ण सार्थक ढंग से इसका निर्वचन करना होगा अन्यथा वह विधायी आशय विफल हो जाएगा जो पूरी तरह स्पष्ट है, जबकि ऐसा अनपेक्षित अर्थान्वयन करके यह उपबन्ध अतार्किक और मनमाना होने के आरोप से दूषित हो जाएगा। किसी व्यक्ति द्वारा जनन के उसके अपने स्रोत से उपभुक्त ऊर्जा की बाबत शुल्क देना होगा और इस बात का ध्यान नहीं रखा जायेगा कि उसने धारा 3 (1) (क) और धारा 4 (1) (क) में उपदर्शित किसी अन्य स्रोत से भी विद्युत खरीदी है। (पैरा 5)

अधिसूचना से प्रत्यक्षतः यह काफी स्पष्ट हो जाता है कि छूट सामान्यतः औद्योगिक उत्पादन को बढ़ावा देने की तथा राज्य में विद्यमान विद्युत की भारी कमी की दृष्टि से दी जा रही है। यह स्पष्ट है कि विद्युत ऊर्जा प्रदाय के स्रोतों को बढ़ावा देने की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए उन व्यक्तियों को छूट देकर प्रोत्साहन उपबन्धित करना आवश्यक हो गया,

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जिन्होंने ऊर्जा जनन का अपना निजी स्रोत लगाया है। चूंकि बिजली की भारी कमी महसूस की जा रही थी, इसलिए उपभोक्ताओं को इसके लिए प्रोत्साहित करने की आवश्यकता थी कि वे ऊर्जा के अपने साधन जुटाएं जिससे कि विद्युत जनन के वर्तमान साधनों पर भार कम हो जाए या हल्का हो जाए। प्रकट है कि यह उद्देश्य उन उपभोक्ताओं को भविष्यलक्षी रूप से छूट देकर प्राप्त किया जा सकता है, जिन्होंने छूट के उपबन्ध के अधीन रियायत दिए जाने पर ऊर्जा जनन का अपना स्रोत लगाया है। जिन व्यक्तियों के पास ऊर्जा जनन का अपना स्रोत पहले से था, उन्हें पहले से अधिष्ठापित विद्युत जनन के स्रोत की बाबत ऐसे किसी प्रोत्साहन की जरूरत नहीं थी। यदि वे ऊर्जा जनन के अपने स्रोत को और अधिक बढ़ाना चाहते थे तो उसी अधिसूचना में विनिर्दिष्ट तारीख के बाद अधिष्ठापित जनन के अतिरिक्त स्रोत की बाबत छूट के लिए वे भी हकदार थे। अतः वर्गीकरण तर्कसंगत, सप्रयोजन एवं सार्थक है, और इसका उद्देश्य छूट देने का वास्तविक प्रयोजन सारतः पूरा करना है। ऐसी स्थिति में, अनुच्छेद 14 का सहारा लेकर अधिसूचना के उस भाग की आलोचना नहीं की जा सकती जिसके द्वारा अधिष्ठापन की तारीख छूट के लिए अर्हता प्राप्त करने की पूर्व शर्त बनाई गई है। (पैरा 6)

इसके विरुद्ध, जिन व्यक्तियों ने विद्युत जनन का अपना निजी स्रोत अर्जित कर लिया था, उन्हें वैसा करने के लिए जो वे पहले कर चुके थे; रियायत या छूट के रूप में कोई भूतलक्षी प्रोत्साहन देना जरूरी नहीं था। उन्हें छूट देकर वर्तमान संसाधनों को कोई बढ़ावा नहीं मिलता। इन परिस्थितियों में हमारी राय है कि उच्च न्यायालय ने इस निमित्त रिट पिटीशनरों द्वारा दिए गए अभिवाक् को नामंजूर करके पूरी तरह न्यायोचित कार्य किया। (पैरा 7)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[1974] 1974 का सिविल प्रकीर्ण रिट पिटीशन सं० 3039 :
शेरवानी शुगर सिन्डीकेट प्राइवेट लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य
(Sherwani Sugar Syndicate Private Limited *v.* State of Uttar Pradesh). 2

सिविल अपीली अधिकारिता : 1976 की सिविल अपील सं० 1312 (इसके साथ ही 1979 की सिविल अपील सं० 519, 1146, 537, 2639 और 1980 की

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सिविल अपील सं० 773 तथा 2032 की सुनी गईं।

सिविल रिट पिटीशन सं० 3039/74, 89/76, 760/75, 759/75, 442/76, 2630/77 और 547/75 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के तारीख 8-10-74, 9-11-78, 22-12-78 और 5 मार्च, 1980 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध प्रमाण-पत्र और विशेष इजाजत पिटीशन द्वारा अपील।

हाजिर होने वाले अपीलार्थियों की ओर से — सर्वश्री पी० आर० मृदुल, जी० एल० सांघी, प्रवीन कुमार, और एच० के० पुरी

हाजिर होने वाले प्रत्यर्थियों की की ओर से — श्री एस० सी० मनचन्दा, श्रीमती शोभा दीक्षित, सर्वश्री प्रदीप मिश्र और सुधीर कुलश्रेष्ठ

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति एम० पी० ठक्कर ने दिया।

न्यायाधिपति ठक्कर—

अपीलों के इस समूह में मुख्य विवाद इस प्रश्न आधारित है कि क्या उत्तर प्रदेश में विद्युत ऊर्जा के उपभोग पर विद्युत शुल्क ऐसे व्यक्ति द्वारा संदेय है, जिसके पास जनन का अपना स्रोत है और जो किसी अनुज्ञप्तिधारी या बोर्ड, या राज्य सरकार, या केन्द्रीय सरकार से भी विद्युत ऊर्जा खरीदता है। दलील उत्तर प्रदेश इलेक्ट्रिसिटी (ड्यूटी) अधिनियम 1952 की धारा 3 (1) और 4 (1) के संदर्भ में दी गई है। विद्युत ऊर्जा उपभोक्ताओं की ओर से यह दलील दी गई है कि जब कि अधिनियम की धारा 4 (1) (ग) के साथ पठित धारा 3 (1) (ग) के अधीन विद्युत शुल्क जनन के अपने निजी स्रोत से किसी व्यक्तिद्वारा उपभुक्त विद्युत ऊर्जा पर निश्चित रूप से उद्ग्रहणीय है और संदेय है ऐसा शुल्क उस दशा में उसके द्वारा संदेय नहीं है जब वह ऊर्जा का उपभोग जनन के अपने निजी स्रोत से करता है और साथ ही किसी अनुज्ञप्तिधारी, बोर्ड राज्य सरकार अथवा केन्द्रीय सरकार से भी ऊर्जा खरीदता है।

2. सबसे पहले यह प्रश्न शेरवानी शुगर सिन्डीकेट प्राइवेट लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य[1] वाले मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के खण्ड न्यायपीठ के समक्ष उठा था। अपने 8 अक्तूबर, 1974 के निर्णय

[1] 1974 की सिविल प्रकीर्ण रिटपिटीशन सं० 3039.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

द्वारा खण्ड न्यायपीठ ने यह दलील स्वीकार कर ली थी कि चूंकि पिटीशनर कंपनी के पास ऊर्जा प्रजनन का अपना स्रोत था और वह धारा 3(1) (ग) और धारा 3 (1) (ख) में उपदर्शित किसी अन्य स्रोत से भी ऊर्जा खरीदती है, इसलिए पिटीशनर कंपनी प्रदाय के अपने स्रोत से उत्पन्न ऊर्जा पर शुल्क देने के लिए दायी नहीं थी। उत्तर प्रदेश राज्य ने उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए उपयुक्तता प्रमाण-पत्र (1977 की सिविल अपील सं० 1312) द्वारा अपील के माध्यम से इस विनिश्चय की वैधता और विधिमान्यता को चुनौती दी है। इसी बीच मैसर्स देवरिया शुगर मिल्स लिमिटेड ने भी एक ऐसे ही अभिवाक्-पर 1975 की सिविल प्रकीर्ण रिट पिटीशन सं० 9930 के रूप में इलाहाबाद उच्च न्यायालय में समावेदन किया। यह मामला इलाहाबाद उच्च न्यायालय के एक दूसरे खण्ड न्यायपीठ के समक्ष आया। इस न्यायपीठ की राय थी कि शेरवानी सिन्डीकेट वाले मामले के विनिश्चय पर फिर से विचार किया जाना चाहिए, इसलिए वह मामला पूर्ण न्यायपीठ को भेज दिया गया। पूर्ण न्यायपीठ की राय थी कि शेरवानी वाले मामले में अपनाया गया मत सही नहीं है और उसने मैसर्स देवरिया शुगर मिल्स द्वारा फाइल किया गया रिट पिटीशन खारिज कर दिया और यह मत अपनाया कि विद्युत उपभोक्ता प्रदाय के अपने स्रोत से ऊर्जा के उपभोग पर विद्युत शुल्क देने के लिए दायी है, चाहे उसने धारा 3(1)(क) और (ख) में उपदर्शित किसी अन्य स्रोत से भी विद्युत खरीदी हो या नहीं। पूर्ण न्यायपीठ के इस विनिश्चय की दृष्टि से किसी प्रकार के प्रश्न उठाने वाली कम्पनियों द्वारा संस्थित पिटीशन इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा खारिज कर दिए गए थे। ये कम्पनियां इस न्यायालय द्वारा दी गई विशेष इजाजत से 6 पृथक् अपीलों के रूप में इस न्यायालय में आई हैं।

". अधिनियम की धारा 3(1) और 4(1), जहां तक तात्विक हैं, इस प्रकार हैं—

3. "इलेक्ट्रिसिटी ड्यूटी का लगाया जाना—(1) आगे दिये गये उपबन्धों के अधीन रहते हुए :

(क) किसी लाइसेंसी, बोर्ड, राज्य सरकार या केन्द्रीय सरकार द्वारा किसी उपभोक्ता को बेची गयी एनर्जी, या

(ख) किसी लाइसेंसी या बोर्ड द्वारा वाणिज्यिक आवासिक प्रयोजनों के लिए प्रयोग किए जाने वाले भू-गृहादि में, अथवा किसी

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अन्य भू-गृहादि में अपने वर्क्स के निर्माण, बनाये रखने या चलाने से भिन्न प्रयोजनों के लिए उपभुक्त एनर्जी, या

(ग) किसी अन्य व्यक्ति द्वारा विद्युत जनन के अपने स्रोत से उपभुक्त एनर्जी, पर एक ड्यूटी (जिसे आगे "एलेक्ट्रिसिटी ड्यूटी" कहा गया है)·····लगायी जायेगी और जिसका भुगतान राज्य सरकार को किया जायेगा।.

× × × ×
× × × ×

4. एलेक्ट्रिसिटी ड्यूटी और उसके ब्याज का भुगतान :—

(1) एलेक्ट्रिसिटी ड्यूटी, ऐसी रीति से तथा ऐसी अवधि के भीतर, जो नियत की जाय, राज्य सरकार को निम्नलिखित के द्वारा दी जाएगी :—

(क) जब एनर्जी लाइसेंसी द्वारा सम्भरित या उपभुक्त की जाय तो लाइसेंसी द्वारा;

(ख) जब एनर्जी राज्य सरकार या केन्द्रीय सरकार द्वारा सम्भरित की जाय अथवा बोर्ड द्वारा सम्भरित या उपभुक्त की जाय, तो नियुक्त प्राधिकारी द्वारा, और

(ग) जब एनर्जी किसी अन्य व्यक्ति द्वारा अपने ही विद्युत जनन स्रोत से उपभुक्त की जाय; तो ऐसी एनर्जी जनित करने वाले व्यक्ति द्वारा।"

4. मूल रिट पिटीशनरों ने जिनका मत है कि विद्युत शुल्क ऐसे व्यक्ति से उद्ग्रहणीय या उसके द्वारा संदेय नहीं है जो अधिनियम की धारा 4(1)(ग) के साथ पठित धारा 3(1)(ग) के अधीन जनन के अपने स्रोत से ऊर्जा का उपभोग करता है, अधिनियम की धारा 3(1)(ग) और 4(1)(ग) में आए किसी अन्य व्यक्ति पद पर बहुत जोर दिया। दलील दी गई कि इस पद के उपयोग की दृष्टि से केवल वे उपभोक्ता जो पूरी तरह धारा 3(1)(ग) या 3(1)(ख) की परिधि से बाहर आते हैं, धारा 3(1)(ग) के अधीन विद्युत शुल्क से अहरणीय हैं। यदि कोई उपभोक्ता धारा 3(1)(क) और 3(1)(ग) या धारा 3(1)(ख) और 3(1)(ग) दोनों के अधीन आते हैं (जैसा कि तर्क दिया गया) तो ऐसे व्यक्ति से विद्युत शुल्क अहरणीय नहीं

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

होगा। यही तर्क धारा 4(1) के खण्ड (क), (ख) और (ग) के संदर्भ में उस सीमा तक दिया गया है। हमारी राय में ऐसा निवेदन बिलकुल भी मान्य नहीं है और इलाहाबाद उच्च न्यायालय के पूर्ण न्यायपीठ ने अपने विचारगर्भित निर्णय में उसे ठीक ही नामंजूर किया है। धारा 3(1)(ग) के पढ़ने मात्र से यह प्रकट हो जाता है कि शुल्क किसी व्यक्ति द्वारा विद्युत जनन के अपने निजी स्रोत से उपभुक्त ऊर्जा पर उद्ग्रहण किया जाता है चाहे कुछ और हो या नहीं। धारा 3(1)(ग) या धारा 4(1)(ग) में कोई अध्यारोही खण्ड या शर्त समाविष्ट नहीं है। यह तथ्य कि जनन के अपने स्रोत से विद्युत का उपयोग करने वाला किसी अन्य स्रोत से भी विद्युत खरीदता है, उक्त उपबन्धों द्वारा अधिरोपित दायित्व की दृष्टि से सर्वथा असंगत बात है। यह समझ लिया जाए कि शुल्क उद्ग्रहण ऊर्जा के उपयोग पर किया जाता है, कर आरोपण ऊर्जा के उपभोग पर होता है, विद्युत किस स्रोत से ली गई है यह सर्वथा असंगत बात है। यदि कोई व्यक्ति, जिसके पास ऊर्जा का अपना स्रोत है, धारा 3(1)(ग) में उपदर्शित किसी अन्य स्रोत से भी ऊर्जा खरीदता है तो वह उस सीमा तक धारा 3(1)(क) के अन्तर्गत आएगा, जहां तक वह ऐसे स्रोत से बिजली खरीदता है और उसी प्रकार धारा 3(1)(ग) के अन्तर्गत आएगा जहां तक वह जनन के अपने स्रोत से ऊर्जा का उपभोग करता है। वह दोनों उपबन्धों के अन्तर्गत संयुक्त दृष्टि से आएगा, यही तर्क धारा 4(1) के खण्ड (क), (ख) और (ग) के संदर्भ में लागू होता है। किसी व्यक्ति को शुल्क संदाय से छूट देने के लिए मात्र इसलिए कोई तर्कसंगत आधार नहीं है कि विद्युत जनन का उसका अपना साधन है और वह अन्य स्रोतों से भी विद्युत खरीदता है। वस्तुतः ऐसा करना अतर्कसंगत होगा और इससे क्या दोष पैदा हो जाएगा। यदि वह अपनी ऊर्जा पैदा करता है तो वह उस दशा में क्यों संदाय करे और यदि वह अन्य स्रोत से भी विद्युत खरीदता है तो मात्र इस आधार पर छूट क्यों दी जाए? शुल्क उद्ग्रहण कराधान के एक उपाय के रूप में किया जाता है जिससे कि अतिरिक्त राजस्व एकत्र किया जा सके, जैसा कि प्रस्तावनात्मक टिप्पण से तथा उत्तर प्रदेश गजट असाधारण तारीख 1 सितम्बर, 1952 में प्रकाशित उद्देश्यों और कारणों के कथन से लिए गए उद्धरण से प्रचुर स्पष्ट हो जाता है, जोकि निम्न प्रकार है :—

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

*"कल्याणकारी राज्य के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अगले 4 या 5 वर्षों के अन्दर इस राज्य को जो न्यूनतम विकास कार्यक्रम पूरा करना चाहिए, उसका उल्लेख योजना आयोग द्वारा तैयार की गई पंचवर्षीय योजना में किया गया है। इस योजना में विद्युत विकास योजनाओं पर 13.58 करोड़ रुपए के खर्च का उपबंध किया गया है। इतना विशाल व्यय हमारे वर्तमान स्रोतों से पूरा नहीं किया जा सकता, फिर भी जनता के कल्याण के लिए यह आवश्यक है कि खर्च किया जाए और योजना की प्रगति के मार्ग में कोई भी अड़चन न आने दी जाए। अतः अतिरिक्त संसाधनों की खोज करनी होगी। इसमें से अधिकांश राशि नए-नए कर लगाकर एकत्र की जा सकती है।

विद्युत ऊर्जा के उपयोग पर कर लगाने से उपभोक्ता पर नगण्य भार अधिरोपित होगा और यह अतिरिक्त राजस्व का एक लाभदायक स्रोत है। विधेयक इस ढंग से तैयार किया गया है जिससे यह सुनिश्चित किया जा सके कि किसी व्यक्ति द्वारा संदेय कर उसके द्वारा उपभुक्त विद्युत की मात्रा के सापेक्ष में होगा। विधेयक

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

"The minimum programme of development which this State must carry out within the next three or four years for the attainment of the objects of a welfare State is set out in the Five year Plan drawn up by the Planning Commission. This plan provides for an expenditure of 13.58 crores of rupees on power development projects. Such a huge expenditure cannot be met from our present resources. It is however essential for the welfare of the people that the expenditure should be incurred and that nothing should be allowed to stand in the way of the progress of the plan. Additional resources have therefore to be found, the bulk of which can be raised only by means of fresh taxation.

A tax on the consumption of electrical energy will impose a negligible burden on the consumer and is a fruitful source of additional revenue. The bill has been so prepared as to ensure that the tax payable by a person will be related to the quantity of electricity

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उपरोक्त उद्देश्य से पुरःस्थापित किया जा रहा है। (उत्तर प्रदेश गजट असाधारण तारीख 1 सितम्बर, 1952 में प्रकाशित उद्देश्यों और कारणों के कथन के अनुसार)।"

5. ऐसा अतर्कसंगत मार्ग अपनाकर यह उद्देश्य कैसे आगे बढ़ेगा या पूरा होगा! चूंकि कर लगाने की शक्ति ऊर्जा के उपभोग पर निर्भर करती है, इसलिए वह स्रोत जिससे विद्युत प्राप्त की जाए, सर्वथा असंगत हो जाएगा। धारा 3(1) और धारा 4(1) को एक साथ पढ़ना होगा और एक सामंजस्यपूर्ण एवं सार्थक ढंग से इसका निर्वचन करना होगा अन्यथा वह विधायी आशय विफल हो जाएगा जो पूरी तरह स्पष्ट है, जबकि ऐसा अनेपक्षित अर्थान्वयन करके यह उपबंध अतार्किक और मनमाना होने के आरोप से दूषित हो जाएगा। अतः इलाहाबाद उच्च न्यायालय के पूर्ण न्यायपीठ ने यह मत अपनाकर पूरी तरह न्यायोचित कार्य किया है। किसी व्यक्ति को जनन के उसके अपने स्रोत से उपभुक्त ऊर्जा की बाबत शुल्क देना होगा और इस बात का ध्यान नहीं रखा जाएगा कि उसने धारा 3(1)(क) और धारा 4(1)(क) में उपदर्शित किसी अन्य स्रोत से भी विद्युत खरीदी है। अतः राज्य द्वारा फाइल की गई अपील (अपील सं० 1312/77) मंजूर करनी होगी और इसलिए पूर्ण न्यायपीठ द्वारा किए गए विनिश्चय के सही होने को चुनौती देते हुए विद्युत उपभोक्ता द्वारा फाइल की गई अपीलें खारिज करनी होंगी।

6. अपीलों के समूह की 7 अपीलों में से 5 में उठाया गया अगला प्रश्न (यह सिविल अपील सं० 1312/77 और सिविल अपील सं० 1146/79 में उत्पन्न नहीं हुआ है) इस प्रकार उत्पन्न हुआ है। उत्तर प्रदेश राज्य ने 17 मार्च, 1973 की एक अधिसूचना निकाली जिसके द्वारा अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (4) के अधीन वाली शक्तियों का प्रयोग करते हुए 2 जनवरी, 1973 के बाद लगाए गए जनन के अपने स्रोत से ऊर्जा का उपभोग करने वाले व्यक्ति को विद्युत शुल्क के संदाय से छूट दी गई। हमारे समक्ष अपीलों के अपीलार्थी वे व्यक्ति हैं, जिनके पास विद्युत जनन का अपना स्रोत है किन्तु जनन यन्त्र उन्होंने 2 जनवरी, 1973 से पहले लगाया और चालू किया था। उनकी दलील है कि ऐसे व्यक्ति को छूट देना विधिपूर्ण

---

consumed by him. The bill is being introduced with the above object. Vide Statement of Objects and Reasons published in U. P. Gazettes. Extra, dt. September 1, 1952."

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नहीं हो सकता, जिसने जनन का अपना स्रोत 2 जनवरी, 1973 के बाद लगाया हो जब तक कि 2 जनवरी, 1973 से पहले लगाए गए जनन के अपने स्रोत से विद्युत का उपभोग करने वाले व्यक्तियों को भी छूट न दी जाए। दूसरे शब्दों में, तर्क दिया गया कि बिना उस तारीख का ध्यान रखे जिसको जनन का स्रोत लगाया गया था, छूट विद्युत का अपना स्रोत रखने वाले सभी व्यक्तियों को दी जाए, ताकि भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के आधार पर चुनौती का सफल मुकाबला किया जा सके। तर्क का सार है कि विद्युत जनन का उपकरण लगाए जाने की तारीख का ध्यान रखे बिना छूट सभी को दी जानी चाहिए अथवा किसी को भी नहीं जिससे कि यह उपबन्ध विभेदकारी और संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघनकारी होने के कारण असांविधानिक अभिनिर्धारित किए जाने के खतरे से बचाया जा सके। इस तर्क को उच्च न्यायालय ने बहुत ही ठीक कारण से अस्वीकार कर दिया था कि अधिसूचना से प्रत्यक्षतः यह काफी स्पष्ट हो जाता है कि छूट सामान्यतः औद्योगिक उत्पादन को बढ़ावा देने की तथा राज्य में विद्यमान विद्युत की भारी कमी की दृष्टि से दी जा रही है। यह स्पष्ट है कि विद्युत ऊर्जा प्रदाय के स्रोतों को बढ़ावा देने की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए उन व्यक्तियों को छूट देकर प्रोत्साहन उपबंधित करना आवश्यक हो गया, जिन्होंने ऊर्जा जनन का अपना निजी स्रोत लगाया है। चूंकि बिजली की भारी कमी महसूस की जा रही थी, इसलिए उपभोक्ताओं को इसके लिए प्रोत्साहित करने की आवश्यकता थी कि वे ऊर्जा के अपने साधन जुटाएं जिससे कि विद्युत जनन के वर्तमान साधनों पर भार कम हो जाए या हल्का हो जाए। प्रकट है कि यह उद्देश्य उन उपभोक्ताओं को भविष्यलक्षी रूप से छूट देकर प्राप्त किया जा सकता है, जिन्होंने छूट के उपबन्ध के अधीन रियायत दिए जाने पर ऊर्जा जनन का अपना स्रोत लगाया है। जिन व्यक्तियों के पास ऊर्जा जनन का अपना स्रोत पहले से था, उन्हें पहले से अधिष्ठापित विद्युत जनन के स्रोत की बाबत ऐसे किसी प्रोत्साहन की जरूरत नहीं थी। यदि वे ऊर्जा जनन के अपने स्रोत को और अधिक बढ़ाना चाहते थे तो उसी अधिसूचना में विनिर्दिष्ट तारीख के बाद अधिष्ठापित जनन के अतिरिक्त स्रोत की बाबत छूट के लिए वे भी हकदार थे। अतः वर्गीकरण तर्कसंगत, सप्रयोजन एवं सार्थक है, और इसका उद्देश्य छूट देने का वास्तविक प्रयोजन सारतः पूरा करना है। ऐसी स्थिति में, अनुच्छेद 14 का सहारा लेकर अधिसूचना के उस भाग की आलोचना नहीं की जा सकती जिसके द्वारा अधिष्ठापन की तारीख छूट के लिए अर्हताप्राप्त करने की पूर्व शर्त बनाई गई है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

7. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि छूट विद्युत उपभोक्ताओं को आगे आत्मनिर्भर बनने के लिए प्रोत्साहन देने की दृष्टि से तथा आगे जनन के अन्य स्रोत पर भार कम करने के उद्देश्य से दी गई थी उत्तर प्रदेश राज्य बनाम जगेश्वर[1] वाला-मामला, जिसका अवलम्ब लिया गया है, रिट पिटीशनरों द्वारा प्रस्तुत मत का समर्थन नहीं कर सकता। इसके विरुद्ध; जिन व्यक्तियों ने विद्युत जनन का अपना निजी स्रोत अर्जित कर लिया था, उन्हें वैसा करने के लिए जो वे पहले कर चुके थे, रियायत या छूट के रूप में कोई भूतलक्षी प्रोत्साहन देना जरूरी नहीं था। उन्हें छूट देकर वर्तमान संसाधनों को कोई बढ़ावा नहीं मिलता। इन परिस्थितियों में, हमारी राय है कि उच्च न्यायालय ने इस निमित्त रिट पिटीशनरों द्वारा दिए गए अभिवाक् को नामंजूर करके पूरी तरह न्यायोचित कार्य किया है।

8. परिणामस्वरूप, उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा फाइल की गई अपील (1977 की सिविल अपील सं० 1312) मंजूर की जाती है, उच्च न्यायालय का निर्णय और आदेश अपास्त किए जाते हैं और उक्त अपील को जन्म देने वाला रिट पिटीशन आद्योपांत खर्चे सहित खारिज किया जाता है।

9. शेष अपीलें खर्चे सहित खारिज की जाती हैं।

10. सभी अन्तरिम आदेश निष्प्रभाव हो जाएंगे।

सिविल अपील सं० 1312/1977 मंजूर की गई और शेष अपीलें खारिज की गईं।

कु०/

---

[1] ए० आई० आर० 1983 एस० सी० 349.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

राम नारायण अग्रवाल

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

(Ram Narayan Agarwal

v.

State of Uttar Pradesh and Others)

(23 अगस्त, 1983)

(न्यायाधिपति ए० पी० सेन, ई० एस० वेंकटरामय्या और आर० बी० मिश्र)

उत्तर प्रदेश बिक्री कर अधिनियम, 1958—धारा 8—[सपठित उत्तर प्रदेश जमींदारी, विनाश और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 और तद्धीन बनाए गए नियमों का नियम 251]—अपीलार्थी के विरुद्ध शोध्य कर का बकाया होना—बकाया का संदाय न करने पर अपीलार्थी की गिरफ्तारी का वारण्ट जारी किया जाना—इस प्रकार की गिरफ्तारी से संविधान के अनुच्छेद 14, 19 (1) (घ) और 21 का अतिक्रमण नहीं होता है किन्तु ऐसी गिरफ्तारी से व्यतिक्रमी बकाया का संदाय करने के लिए बाध्य होना चाहिए।

पिटीशनरों ने उत्तर प्रदेश बिक्री कर अधिनियम के अधीन उनके द्वारा संदेय कर के संदाय में व्यतिक्रम किया था और संबन्धित राजस्व अधिकारियों द्वारा वसूली कार्यवाहियों के दौरान पिटीशनर की गिरफ्तारी और निरोध के लिए वारंट जारी किए गए थे। पिटीशनर द्वारा, अपनी गिरफ्तारी और निरोध को संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन उच्चतम न्यायालय में चुनौती दी गई। रिट पिटीशन भागतः मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित—सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 51 के अधीन प्रक्रिया उत्तर प्रदेश बिक्री कर अधिनियम की धारा 33 और उत्तर प्रदेश भूमि व्यवस्था अधिनियम की धारा 341 के दृष्टिकोण से उत्तर प्रदेश भूमि व्यवस्था अधिनियम की धारा 281 के अधीन गिरफ्तारी के वारंट को जारी करने के लिए लागू होगी। निस्संदेह उत्तर प्रदेश बिक्री कर अधिनियम

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

की धारा 33 का परन्तुक यह कथित करता है कि उस धारा के अधीन प्रदत्त शक्तियों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना कलक्टर को डिक्री के अधीन शोध्य रकम की वसूली के प्रयोजन के लिए सिविल न्यायालय की शक्तियां भी होंगी । यह परन्तुक उत्तर प्रदेश भूमि व्यवस्था अधिनियम की धारा 281 और तद्धीन बनाए गए नियमों के अधीन कलक्टर की शक्ति पर और कोई निर्बन्धन नहीं अधिरोपित करता । यह केवल कलक्टर को यदि वह ऐसा करना चाहे तो सिविल प्रक्रिया संहिता के अधीन शक्तियों का प्रयोग करने के लिए सशक्त करता है । उत्तर प्रदेश भूमि व्यवस्था अधिनियम की धारा 291 और तद्धीन बनाए गये नियमों द्वारा विहित प्रक्रिया किसी व्यतिक्रमी की गिरफ्तारी और निरोध की आदेशिका पर एक पूर्ण संहिता है और इसे सिविल प्रक्रिया संहिता के किन्हीं भी उपबन्धों द्वारा उपांतरित नहीं किया गया है । यह बात ध्यान देने की है कि जहां कि सिविल प्रक्रिया संहिता में उल्लिखित निष्पादन से सम्बन्धित प्रक्रिया स्वीकार करनी होती है उत्तर प्रदेश भूमि व्यवस्था अधिनियम ने धारा 282 (2) में एक स्पष्ट निर्देश बनाया है जो इस बात का उपबन्ध करके जंगम सम्पत्ति की कुर्की और विक्रय के बारे में है कि धारा 282 के अधीन प्रत्येक कुर्की और विक्रय सिविल न्यायालय की डिक्री के निष्पादन में जंगम सम्पति की कुर्की और विक्रय के लिये तत्समय प्रवृत्त विधि के अनुसार होगी । उत्तर प्रदेश भूमि व्यवस्था अधिनियम की धारा 282 (2) में सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 60 का निर्देश है जो सम्पत्ति की कतिपय किस्मों को कुर्की और विक्रय से मुक्त करती है । गिरफ्तारी और निरोध की प्रक्रिया को प्रशासित करने वाला इस प्रकार का कोई उपबन्ध नहीं है । उत्तर प्रदेश भूमि व्यवस्था अधिनियम की धारा 341 में यह कथित है कि जब तक अधिनियम के द्वारा या के अधीन स्पष्टतया अन्यथा अधिकथित न हो, सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबन्ध उस अधिनियम के अधीन कार्यवाहियों को लागू होंगे । जैसा कि पहले उल्लिखित किया जा चुका है, उत्तर प्रदेश भूमि व्यवस्था अधिनियम के और तद्धीन बनाए गये नियमों में ऐसे स्पष्ट उपबन्ध हैं जो गिरफ्तारी और निरोध की प्रक्रिया को शासित करते हैं । इसलिए सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 51 का अवलम्ब नहीं लिया जा सकता । व्यतिक्रमी को साधारणतया भू-राजस्व की बकाया की वसूली के लिए अन्य किसी आदेशिका के स्वीकार करने से पहले धारा 280 के अधीन किसी आदेश या मांग की तामील करनी करनी होगी । उत्तर प्रदेश भूमि व्यवस्था नियमों के नियम 242 में इस बात का उपबन्ध है कि साधारणतया धारा 280 के

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अधीन प्रक्रिया अर्थात् मांग का आदेश या प्रोद्धरण किसी अन्य प्रक्रिया का अवलम्ब लेने से पूर्व जारी करनी चाहिये। इससे यह पता चलता है कि साधारणतया व्यतिक्रमी को यह बता दिया जाएगा कि एक प्रमाणपत्र उससे भूराजस्व की बकाया की वसूली के लिए जारी कर दिया गया है। इस प्रश्न पर काफी उत्सुकता से विचार करने के पश्चात् न्यायालय का यह दृष्टिकोण है कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 51 के उपबन्ध शब्दशः उत्तर प्रदेश भूमि व्यवस्था अधिनियम के अधीन गिरफ्तारी और निरोध की आदेशिका को लागू नहीं होंगे। तथापि मांग का आदेश या प्रोद्धरण साधारणतया व्यतिक्रमी को उत्तर प्रदेश भूमि व्यवस्था अधिनियम की धारा 281 के अधीन गिरफ्तारी का वारंट जारी करने की कठोर प्रक्रिया का अवलम्ब लेने से पूर्व जारी की जानी चाहिए। चाहे कोई औपचारिक मांग का आदेश जारी नहीं किया गया है, उत्तर प्रदेश भूमि व्यवस्था अधिनियम की धारा 281 के अधीन जारी की जाने वाले आदेशिका के स्वरूप में यह बात स्पष्ट है कि सम्बन्धित व्यतिक्रमी को वसूली के लिए प्रमाणपत्र के जारी किए जाने की पूर्व सूचना होनी चाहिए जिससे कि वह गिरफ्तारी से बचने के लिए मांग की गई रकम का संदाय करने में समर्थ हो सके। अतः सतर्कतापूर्वक विचार करने के पश्चात् न्यायालय का यह दृष्टिकोण है कि उत्तर प्रदेश भूमि व्यवस्था अधिनियम और तद्धीन बनाए गए नियमों में अन्तर्विष्ट आक्षेपित प्रक्रिया संविधान के अनुच्छेद 15, 19 (1) (घ) और 21 की अतिक्रामी नहीं है। (पैरा 16)

यद्यपि उत्तर प्रदेश भूमि व्यवस्था नियमों के नियम 251 इस बात की अपेक्षा करता है कि ऐसे अधिकारी द्वारा जिसने की वारंट जारी किया है इस प्रश्न के बारे में जांच की जानी चाहिए कि क्या व्यतिक्रमी का निरोध उसे बकाया का या उसके काफी भाग का संदाय करने के लिए बाध्य कर सकेगा। स्वीकृत रूप से ऐसी कोई जांच इन मामले में से किसी में नहीं की गई। इसलिए पिटीशनरों को पहले से जारी किए गए गिरफ्तारी के किसी वारंट के अनुसरण में निरुद्ध नहीं किया जा सकता। इसलिए हमें वारंटों को जो इन मामलों में पहले से जारी किए गए है, अभिखंडित कहना होगा और हम यह निदेश देते हैं कि पिटीशनरों को जिनके विरुद्ध ऐसे वारंट जारी किए गए हैं, उसके अनुसरण में निरुद्ध नहीं किया जाना चाहिए। यह आदेश सम्बन्धित प्राधिकारियों को उपरोक्त विनिश्चय को ध्यान में रखते हुए नये आदेश पारित करके विधि के अनुसरण में व्यतिक्रमियों को गिरफ्तार और निरुद्ध करके बकाया की वसूली के लिए शक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव डाले

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बिना किया गया है। (पैरा 17)

	अवलम्बित निर्णय	पैरा
[1969]	[1969] इलाहाबाद ला जर्नल 257 : संगम लाल गुप्त बनाम विक्रय कर अधिकारी और अन्य (Sangam Lal Gupta *v.* Sales Tax Officer and Others) ;	15
[1957]	[1957] एस० सी० आर० 970 : कलक्टर आफ मालाबार बनाम एरिमल इब्राहीम हाजी (Collector of Malabar *v.* Erimal Ebrahim Hajee).	13

निर्दिष्ट निर्णय

[1981]	[1981) उम० नि० प० 372 = [1980] 2 एस० सी० आर० 913 : जोली जार्ज वर्गीस और एक अन्य बनाम बैंक आफ कोचीन Jolly George Verghese and Another *v.* The Bank of Cochin) ;	7
[1975]	[1975] राजस्व विनिश्चय 246 : सेठ बनारसी दास गुप्त बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (Seth Banarsi Das Gupta *v.* State of Utter Predesh and Others) ;	16
[1955]	[1955] 2 एस० सी० आर० 887 : पुरुषोतम गोविन्दजी हलाय बनाम श्री बी० एम० देसाई, अपर कलक्टर मुम्बई और अन्य Purshettam Govindji Halai *v.* Shri B. M. Desai, Additional Collector of Bombay and Others) ;	12
[1952]	[1952] एस० सी० आर० 597 : मद्रास राज्य बनाम वी० जी० राव (State of Madras *v.* V. G. Row).	8

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आरम्भिक अधिकारिता : 1980 के रिट पिटीशन सं० 1110, 2035, 4759, 6431, 1981 के रिट पिटीशन सं० 92, 140, 152, 400, 421, 497, 1366, 4719, 6931, 8054-58, 7483, 8458 और 1982 के 871-873, 2362, 2621-2 4053 तथा 5695.

भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन पिटीशन ।

पिटीशनरों की ओर से (रिट पिटीशन 497 और 4759 में) श्री अनिल बी० दीवान

पिटीशनरों की ओर से श्री० वाई० एस० चितले, श्रीमती उमा जैन, सर्वश्री आर० के० मेहता, एम० मुदगल, रमेश मेहरोत्रा, ई० सी० अग्रवाल, आर० सतीश, विजय पंडित, एस० के० गर्ग और यू० पी० सिंह, डा० मीरा अग्रवाल, श्रीमती रानी छाबड़ा और श्री बी० दत्ता

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री गोपाल सुब्रमाणियम और बी० पी० महेश्वरी ।

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति ई० एस० वेंकटरामय्या ने दिया ।

न्यायाधिपति वेंकटरामय्या—

एक सामान्य प्रश्न जो इन सभी पिटीशनों में विचार के लिए उद्भूत होता है वह पिटीशनरों के विरुद्ध उत्तर प्रदेश बिक्री कर अधिनियम, 1948 के अधीन उनके शोध्य और संदेय कर की बकाया की वसूली के लिए उत्तर प्रदेश जमींदारी विनाश और भूमि व्यवस्था अधिनियम, 1950 (जिसे इसमें इसके उत्तर प्रदेश भूमि व्यवस्था अधिनियम कहा गया है) की धारा 281 के साथ पठित धारा 279 (1) (ख) और तदधीन बनाए गए नियमों के अनुसार पिटीशनरों की गिरफ्तारी और सिविल कारागार में निरोध की कार्यवाही की विधिमान्यता के सम्बन्ध में है ।

2. यह अभिकथन किया गया है कि पिटीशनरों ने उत्तर प्रदेश बिक्री कर अधिनियम के अधीन उनके द्वारा संदेय कर के संदाय में व्यतिक्रम किया

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

था और या तो गिरफ्तारी के वारंट पिटीशनरों की गिरफ्तारी और निरोध के लिए वसूली कार्यवाहियों के दौरान सम्बन्धित राजस्व अधिकारियों द्वारा जारी किए गए थे या जारी किए जाने वाले थे। उत्तर प्रदेश बिक्री कर अधिनियम, 1948 की धारा 8 की उपधारा (8) में इस बात का उपबन्ध है कि अधिनियम के अधीन राज्य सरकार को संदेय कोई कर या अन्य शोध्य या रकम या धन, जिसे कोई व्यक्ति उसकी धारा 8 की उपधारा (3) के अधीन निर्धारण प्राधिकारी को संदाय करने के लिए अपेक्षित है या जिसके लिए वह उस धारा की उपधारा (6) के अधीन निर्धारण प्राधिकारी के प्रति व्यक्तिगत रूप से दायित्वाधीन है, भूराजस्व के बकाया के रूप में वसूलनीय होगा। उत्तर प्रदेश बिक्री कर अधिनियम, 1948 की धारा 33 में आगे इस बात का उपबन्ध है कि अधिनियम के अधीन भूराजस्व के बकाया के रूप में वसूलनीय किसी रकम के सम्बन्ध में निर्धारण प्राधिकारी कलक्टर को अपने हस्ताक्षर के अधीन शोध्य रकम को विनिर्दिष्ट करते हुए प्रमाणपत्र भेजेगा। ऐसा प्रमाणपत्र उसकी रकम के दायित्व के अस्तित्व और उस व्यक्ति का जो दायित्वाधीन है, विनिश्चायक साक्ष्य समझा जाएगा और प्रमाणपत्र की प्राप्ति पर कलक्टर ऐसे व्यक्ति से उसमें विनिर्दिष्ट रकम को उसी प्रकार से वसूल करने की कार्यवाही करेगा मानो यह भूराजस्व का बकाया हो। आगे फिर इस बात का उपबन्ध किया गया है कि धारा 33 द्वारा प्रदत्त शक्तियों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना कलक्टर प्रमाणपत्र में विनिर्दिष्ट रकम की वसूल करने के प्रयोजनों के लिए वे सभी शक्तियां रखेगा जो कलक्टर को राजस्व वसूली अधिनियम, 1890 के अधीन प्राप्त है और जो सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के अधीन डिक्री के अधीन शोध्य रकम की वसूली के प्रयोजन के लिए सिविल न्यायालय को प्राप्त हैं। धारा 33 के स्पष्टीकरण में इस बात का उपबन्ध है कि कलक्टर अभिव्यक्ति में अपर कलक्टर या राज्य में तत्समय प्रवृत्त भूराजस्व के सम्बन्ध में विधि के अधीन कलक्टर की शक्तियों के प्रयोग करने के लिए प्राधिकृत अन्य अधिकारी सम्मिलित है। उत्तर प्रदेश बिक्री कर नियम, 1948 के नियम 50 में इस बात का उपबन्ध है कि जहां कि कोई संव्यवहारी या कोई व्यक्ति कर या किसी अन्य रकम को, जो उसके द्वारा उत्तर प्रदेश बिक्री कर अधिनियम, 1948 के अधीन संदेय हो इसके बारे में नियत कालावधि के भीतर जमा करने में असफल रहता है तो भूराजस्व के बकाया के रूप में वसूल किया जाएगा। राजस्व वसूली अधिनियम, 1890 (जैसा कि उत्तर प्रदेश राज्य में प्रवृत्त है) की धारा 5 इस प्रकार पठित है—

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

*"5. अन्य लोक अधिकारियों या स्थानीय प्राधिकारियों द्वारा राजस्व की बकाया के रूप में वसूलनीय राशियों की कलक्टर द्वारा वसूली—(1) जहां कोई राशि कलक्टर से भिन्न किसी लोक अधिकारी द्वारा या किसी स्थानीय प्राधिकारी द्वारा भूराजस्व की बकाया के रूप में वसूलनीय है वहां ऐसा अधिकारी या प्राधिकारी जिले के कलक्टर को जिसमें कि उस अधिकारी या प्राधिकारी का कार्यालय स्थित है और उत्तर प्रदेश में किसी अन्य जिले को जहां कि व्यतिक्रमी है, या उसकी संपत्ति है, ऐसे प्ररूप में जैसा इस बारे में बनाए गए नियमों द्वारा विहित हो, एक प्रमाणपत्र भेज सकेगा।

(2) इस अधिनियम यथा अन्यथा उपबन्धित के सिवाय प्रमाणपत्र उसमें कथित मामलों का विनिश्चायक होगा।

(3) कलक्टर उपधारा (1) के अधीन प्रमाणपत्र प्राप्ति पर उसमें कथित रकम को वसूल करने की कार्यवाही करेगा मानो रकम उसे स्वयं संदेय हो।

(4) धारा 4 के उपबन्ध ऐसे प्रमाणपत्र के संबंध में ऐसे

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

"5. Recovery by Collectors of sums recoverable as arrears of revenue on the certificates of public officers and local authorities—(1) Where any sum is recoverable as an arrear of land revenue by any public officer other than a Collector or by any local authority such officer or authority may send to the Collector of the district in which the office of that officer or authority is situate or of any other district in Uttar Pradesh where the defaulter is or has property, a certificate in such form as may be prescribed by rules made in this behalf.

(2) Save as otherwise provided in this Act, the certificate shall be conclusive of mattes therein stated.

(3) The Collector shall, on receipt of the certificate under sub-section (1), proceed to recover the amount stated there in as the sum were payable to himself.

(4) The provisions of section 4 shall have effect in

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रभावी होगे मानो यह धारा 3 की उपधारा (1) के अधीन भेजा गया प्रमाणपत्र हो।

3. उत्तर प्रदेश राज्य में भूराजस्व की बकाया की वसूली के लिए प्रक्रिया के संबंध में सुसंगत उपबन्ध उत्तर प्रदेश भूमि व्यवस्था अधिनियम के अध्याय 10 में धारा 279 और अन्य प्रमुख उपबन्धों में पाए जाते हैं।

4. उत्तर प्रदेश भूमि व्यवस्था अधिनियम की धारा 279 विम्न प्रकार पठित है—

"279. मालगुजारी की बकाया की वसूली की रीति—

(1) मालगुजारी की बकाया निम्नलिखित रीतियों में से एक या अधिक में वसूल की जा सकेगी—

(क) किसी बाकीदार पर मांग-पत्र या उपस्थिति-पत्र तामील करके,

(ख) उस व्यक्ति की गिरफ्तारी और निरोधन से,

(ग) उसकी चल सम्पत्ति की, जिसके अन्तर्गत उपज भी है, कुर्की या नीलाम से,

(घ) उस खाते की कुर्की से जिसके संबंध में बकाया हो,

(ङ) उस खाते का विक्रय करके जिसके संबंध में बकाया हो,

(च) बाकीदार की दूसरी अचल सम्पत्ति की कुर्की और नीलाम से।

5. उत्तर प्रदेश भूमि व्यवस्था अधिनियम की धारा 279 की उपधारा (1) का खण्ड (ख) जो ऊपर निर्दिष्ट है किसी व्यक्ति को जिसने व्यतिक्रम किया है, गिरफ्तार या निरोध करके भूराजस्व की वसूली को प्राधिकृत करता है। उत्तर प्रदेश भूमि व्यवस्था अधिनियम की धारा 281 निम्न प्रकार पठित है—

"281. गिरफ्तारी और निरोधन—कोई भी मालगुजारी का बाकीदार गिरफ्तार किया जाकर ऐसी अवधि के लिए, जो 15 दिन से अधिक न हो, निरोधन में रखा जा सकता है जब तक वह गिरफ्तारी और निरोधन का व्यय, यदि कोई हो, उक्त अवधि से पहले ही न दे दे—

---

relation to such certificate as if it were a certificate sens under sub-section (1) of section 3.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

किन्तु प्रतिबन्ध यह है कि इस धारा के अधीन किसी स्त्री या अवयस्क की गिरफ्तारी या निरोध न हो सकेगा,

प्रतिबन्ध यह भी है कि कोई भी व्यक्ति उस खाते की बकाया के लिए, जिसका वह भूमिधर या सीरदार नहीं है, केवल इसलिए गिरफ्तार या निरुद्ध नहीं हो सकेगा कि धारा 243 के अधीन मालगुजारी के भुगतान का उसका संयुक्त दायित्व है।"

6. उत्तर प्रदेश जमींदारी विनाश और भूमि सुधार नियम, 1952 (जिसे इसमें इसके पश्चात् उत्तर प्रदेश भूमि सुधार नियम कहा गया है) के नियम 247 से 253 तक जो राज्य सरकार ने उत्तर प्रदेश भूमि व्यवस्था अधिनियम द्वारा प्रदत्त शक्ति के प्रयोग में विरचित किए है, व्यतिक्रमी से गिरफ्तारी और निरोध के द्वारा भूराजस्व के बकाया को वसूल करते समय अपनाई जाने वाली प्रक्रिया अन्तर्विष्ट है। इस निर्णय के प्रयोजन के लिए नियम 247, 247(क), 247(ख) और 251 को उपवर्णित करना पर्याप्त होगा। वे इस प्रकार पठित हैं—

*"247. धारा 271 के अधीन आदेशिका (गिरफ्तारी और निरोध) कलक्टर उपखण्ड के प्रभारी सहायक कलक्टर या तहसीलदार द्वारा जारी की जा सकती है। यदि तहसीलदार ऐसी आदेशिका को जिले के भीतर एक अन्य तहसील में रहने वाले व्यतिक्रमी के विरुद्ध जारी करता है तो वह ऐसा या तो सीधे या ऐसी अन्य तहसील के तहसीलदार के माध्यम से कर सकता है।

247(क) गिरफ्तारी के वारंट नियम 244 में निर्दिष्ट आदेशिका तामीलकर्ताओं में से किसी एक या अमीन या किसी अन्य

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

"247. Process under section 281 (arrest and detention) may be issued by the Collector, the Assistant Collector, in charge of the sub-division, or the tahsildar. If the tahsildar issues such process against a defaulter residing in another tahsil within the district, he may do so either direct or through the tahsildar of such other tahsil.

247-A. The warrant of arrest may be executed by any of the process-servers referred to in Rule 244 of an

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अधिकारी द्वारा निष्पादित किए जा सकते हैं जिनका नाम गिरफ्तारी के वारंट में प्रविष्ट है, जहां कि वारंट को निष्पादित करने के लिए प्राधिकृत व्यक्ति आदेशिका तामील करता है, जिसने सरकार को कोई प्रतिभूति पेश नहीं की है तो ऐसे आदेशिका तामीलकर्ता के साथ अमीन प्रतिनियुक्त किया जाएगा।

247(ख)(1). जहां कि व्यतिक्रमी अपनी गिरफ्तारी के समय गिरफ्तारी के वारंट में विनिर्दिष्ट बकाया की सम्पूर्ण रकम नियम 248 में निर्दिष्ट आदेशिका शुल्क के साथ आदेशिका तामीलकर्ता को, अमीन को या अधिकारी को, जैसा भी मामला हो, जो ऐसी बकाया और आदेशिका शुल्क को प्राप्त करने के लिए उक्त वारंट में सशक्त है अपनी गिरफ्तारी के समय संदत्त कर देता है तो वह गिरफ्तार नहीं किया जाएगा और यदि गिरफ्तार कर लिया गया है तो छोड़ दिया जाएगा और इस प्रकार संदत्त रकम के लिए रसीद उसी स्थान पर जेड० ए० प्ररूप 64 में आदेशिका तामीलकर्ता, अमीन या अधिकारी द्वारा जैसा भी मामला हो, उसको जारी की जाएगी।

(2) बकाया की रकम और आदेशिका शुल्क जो व्यतिक्रमी द्वारा संदत्त किया जाएगा जैसा कि भूराजस्व संगृहीत किया जाता

Amin or any other officer whose name is entered in the warrant of arrest. Where the person authorised to execute the warrant is a process-server who has not furnished any security to Gevernment, an amin shall be deputed to accompany suche process-server.

247-B(1) Where a defaulter at the time of his arrest pays the entire amount of arrears specified in the warrant of arrest along with the process fee referred to in Rule 248 to the process-server, the Amin or the Officer, as the case may be, empowered in the said warrant to receive such arrears and process fee, he shall not be arrested, and if arrested shall be released and a receipt for the amount so paid shall be issued to him on the spot in Z. A. Form 64 by the process-server, Amin or officer, as the case may be.

(2) The amount of arrears and the process fee paid by the defaulter shall immediately be deposited in the

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

है, और जमा किया जाता है। उपरोक्त रकम के संदाय का तथ्य तथा व्यतिक्रमी को जारी की गई रसीद का रसीद नम्बर और बुक नम्बर का निर्देश भी वारंट पर नोट कर दिया जाएगा जिसे गिरफ्तारी वारट जारी करने वाले अधिकारी के समक्ष रखा जाएगा जो इस बात को सुनिश्चित करेगा कि वारंट पर लिखी गई रकम तहसील में सम्यक् रूप से जमा कर दी गई है।

251(1). जब कभी तहसीलदार किसी व्यतिक्रमी को गिरफ्तार करवाएगा तो वह बिना विलम्ब के इस तथ्य को कलक्टर और उपखण्ड के प्रभारी सहायक कलक्टर की सूचना के लिए रिपोर्ट करेगा।

(2) गिरफ्तारी के बाद व्यतिक्रमी को बिना विलम्ब के उस अधिकारी के समक्ष लाया जाएगा जिसने गिरफ्तारी का वारंट जारी किया है और उसे उस समय तक अभिरक्षा में निरुद्ध नहीं किया जाएगा जब तक कि इस बात पर विश्वास करने का कोई कारण न हो कि निरोध की आदेशिका बकाया के संपूर्ण या सारभूत के संदाय के लिए उसे बाध्य कर देगी। यदि निरोध का आदेश पारित किया

---

tahsil in the same manner as a land revenue collection is deposited. The fact of payment of the aforesaid amounts as also the reference of the Receipt No. and Book No. of the receipt issued to the defaulter shall also be noted down on the warrant which shall then be put up before the officer issuing the warrant of arrest who shall ensure that the amount noted on the warrant have been duly deposited in the Tahsil.

251(1). Whenever a tahsildar causes a defaulter to be arrested he shall without delay report the fact for the information of the Collector and Assistant Collector in chage of the sub-division.

(2) After arrest a defaulter shall be brought without delay before the officer, who issued the warrant and shall not be detained in custody unless there is reason to believe that the process of detention will compel the payment of the whole or a substantial portion of the arrear. If an order for detention is passed, it shall

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गया है तो यदि बकाया का शुल्क संदाय नहीं किया जाता उसमें वह तारीख विनिर्दिष्ट की जाएगी जिसको कि निरोध समाप्त हो जाएगा।

(3) यदि अधिकारी जिसने वारंट जारी किया है यह उचित समझता है जिस समय व्यतिक्रमी को उसे निरुद्ध करने की अपेक्षा बकाया का संदाय करने के लिए और समय दिए जाने के लिए जब उसके समक्ष व्यतिक्रमी को किया जाता है तो वह व्यतिक्रमी को नियत कालावधि के भीतर बकाया के संदाय के उसके वचन देने पर व्यतिक्रमी को छोड़ सकेगा। यदि फिर व्यतिक्रमी को गिरफ्तार करना आवश्यक हो तो जेड० ए० प्ररूप 70 में नया वारंट तुरन्त जारी कर दिया जाएगा और उस पर पृथक् शुल्क उद्गृहीत कर दिया जाएगा। जब वारंट एक बार व्यतिक्रमी की गिरफ्तारी के द्वारा निष्पादित कर दिया गया है तो उस वारंट को दूसरी बार निष्पादित नहीं किया जा सकता।"

7. हमारे समक्ष पिटीशनरों की ओर से दी गई प्रथम दलील यह है कि ऊपर उल्लिखित कर वसूली कार्यवाहियों के क्रम में व्यतिक्रमी की गिरफ्तारी और निरोध की आदेशिका संविधान के अनुच्छेद 14, 19(1)(छ) और 21 के विरुद्ध है। यह दलील दी गई है कि उक्त प्रक्रिया मनमानी, अयुक्तियुक्त और गलत है। उपरोक्त दलील के समर्थन में इन्टरनेशनल कावनेट आन सिविल एण्ड पोलिटिकल राइट्स के अनुच्छेद 1-1 का जो इस प्रकार पठित है "किसी भी व्यक्ति को केवल संविदात्मक बाध्यता को पूरा करने के असमर्थित आधार पर कारावसित नहीं किया जाएगा" और जोली

---

specify the date on which the detention will cease if the arrear is not sooner paid.

(3) If the officer who issued the warrant sees fit, when the defaulter is produced before him to give him further time, to pay the arrears, instead of detaining him, he may release the defaulter on his undertaking to pay the arrear within the period fixed. Form 70 shall invariabl be issued, and a separate fee levied. When a warrant has been once executed by the arrest of the defaulter the same warrant cannot be executed a second time."

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जार्ज वर्गीस और एक अन्य बनाम बैंक ऑफ कोचीन[1] के मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय का अवलम्ब लिया गया है। जहां तक कि ऊपर निर्दिष्ट अन्तरराष्ट्रीय प्रसंविदा का सम्बन्ध है, यह मत व्यक्त किया गया था कि यह अभी तक हमारी राष्ट्रीय विधि का भाग नहीं बना है और द्वितीयतः यह संविदात्मक बाध्यता के अधीन शोध्य ऋण के संबंध में है। हमारे समक्ष यहां एक ऐसा मामला है जिसमें कानून के अधीन संदेय सार्वजनिक शोध्य अन्तर्वलित है। इंग्लैंड में भी जहां कि ऋणी की गिरफ्तारी और निरोध की प्रक्रिया को अन्य प्रकार के ऋणों के मामले में समाप्त कर दिया गया है; इसे अभी भी निर्वाह आदेशों और कतिपय करके दायित्वों के मामले में बनाए रखा गया है। (देखिए एडमिनिस्ट्रेशन आफ जस्टिस ऐक्ट, 1970 के साथ पठित डेटर्स ऐक्ट, 1878 द्वारा यथा संशोधित डेटर्स ऐक्ट, 1869)। जहां कि जोली जार्ज वर्गीस के मामले[1] में इस न्यायालय के विनिश्चय का संबंध है, यह बात ध्यान देने की है कि यह सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 51 के अधीन एक मामला था। तथापि इस बात में कोई संदेह नहीं है कि जैसे कि उस मामले में मत व्यक्त किया गया था, गिरफ्तारी का वारंट जारी करने वाले प्राधिकारी द्वारा अंगीकृत प्रक्रिया सही और युक्तियुक्त होनी चाहिए। किन्तु न्यायालय ने इस प्रश्न को कि क्या सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 51 असांविधानिक थी अथवा नहीं खुला छोड़ दिया था।

8. अब हम आक्षेपित उपबन्ध की विधिमान्यता की परीक्षा करेंगे। उत्तर प्रदेश भूमि सुधार अधिनियम की धारा 279 में विभिन्न प्रक्रियाएं विहित हैं जिसके ऊपर भूराजस्व का बकाया है और उसकी उपधारा (1) के खण्ड (ख) में ऐसी प्रक्रियाओं में से एक स्वयं व्यतिक्रमी की गिरफ्तारी और निरोध विहित करती है। इस प्रश्न के अवधारण के सम्बन्ध में कि क्या संविधान के अनुच्छेद 19(1)(घ) के अधीन गारंटीकृत मूल अधिकार पर कानूनी उपबन्ध द्वारा अधिरोपित निर्बन्धन युक्तियुक्त है अथवा नहीं, अब इसके बारे में सुनिश्चित सिद्धांत है। इस न्यायालय के बहुत से विनिश्चयों द्वारा यह तय कर दिया गया है कि निर्बन्धन मनमाना या स्वरूप में अत्यधिक नहीं होना चाहिए जिससे कि यह सामान्य जनता की अपेक्षा के परे हो। न्यायालय को संविधान के अनुच्छेद 19(1)(घ) में अन्तर्विष्ट स्वतंत्रता और संरक्षित किए जाने वाले सामाजिक हित के बीच संतुलन रखना चाहिए।

[1] [1980] 2 एस० सी० आर० 913=[1981] 1 उम० नि० प० 372.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इस संबंध में कोई भी सार्वभौमिक नियम अधिकथित नहीं किया जा सकता। बदलती हुई सामाजिक परिस्थितियां मानव जीवन के मूल्य, अभिभावी सामाजिक दर्शन और सभी परिवर्ती परिस्थितियां ध्यान में रखी जानी चाहिएं। इस प्रकार के मामले में जहां कि सार्वजनिक शोध्य संगृहीत किए जाने हैं अनुशासनहीन व्यतिक्रमी को जिसके पास संदाय करने के साधन हैं या जिसने कपटपूर्वक छिप करके अपनी आस्तियों को छिपाकर शोध्य को संदाय करने के विरुद्ध कार्यवाही किए जाने के लिए आश्रय दिया है कुछ प्रपीड़न आवश्यक है। पूर्व के विनिश्चयों में से एक विनिश्चय अर्थात् मद्रास राज्य बनाम वी० जी० राव[1] के मामले से इस न्यायालय ने पृष्ठ 607 पर इस प्रकार मत व्यक्त किया था—

> "इस बात को ध्यान में रखना.....महत्वपूर्ण है कि युक्ति-युक्तता का मानदण्ड, जहां पर कि विहित किया गया हो, प्रत्येक आक्षेपित व्यष्टिक कानून पर लागू किया जाना चाहिए और कोई सारभूत या युक्तियुक्तता की साधरण पद्धति सभी मामलों को लागू होने के लिए अधिकथित नहीं की जा सकती। अधिकार का स्वरूप जिसके बारे में अतिलंघन किए जाने का अभिकथन किया गया है अधिरोपित निर्बन्धनों का अन्तर्निहित प्रयोजन उसके द्वारा उपचार किए जाने वाले दोष की अत्यावश्यकता का विस्तार अधिरोपण की असमानता उस समय अभिभावी परिस्थितियां सभी न्यायिक निर्णय के भीतर आती हैं। ऐसे विनिश्चायक तथ्य का मूल्यांकन करते समय और स्वयं अपनी धारणा बनाते समय कि युक्तियुक्त क्या है, किसी दिए गए मामले की सभी परिस्थितियों में यह बात अत्यावश्यक है कि सामाजिक दर्शन और विनिश्चय में भाग लेने वाले न्यायाधीशों के मूल्य का मानदण्ड एक महत्वपूर्ण काम करता है। और ऐसे मामलों में विधायी निर्णयों के साथ उनके निर्वचन केवल उनके दायित्व के भाव द्वारा दिए जाते हैं और आत्म निर्बन्धन और गम्भीर आक्षेप, कि संविधान न केवल लोगों के लिए उनके समझ के अनुसार काम करने के लिए है किन्तु सभी के लिए है और लोगों के निर्वाचित प्रतिनिधियों के बहुमत ने इन निर्बन्धनों को अधिरोपित करने में प्राधिकृत करते समय उन्हें युक्तियुक्त समझा था।"

9. इस दृष्टिकोण का पश्चात्वर्ती बहुत से मामलों अनुसरण किया

[1] [1952] एस० सी० आर० 597.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गया है। विधि आयोग ने सन् 1973 में पेश की गई 54वीं रिपोर्ट में ऊपर निर्दिष्ट अन्तरराष्ट्रीय प्रसंविदा के दृष्टिकोण से सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 51 में अन्तर्विष्ट सिविल न्यायालय द्वारा पारित डिक्री के निष्पादन में निर्णीत ऋणी की गिरफ्तारी और निरोध के लिए उपबन्धों की विस्तार में परीक्षा करने के पश्चात् यह मत व्यक्त किया था कि वसूली की यह पद्धति छोड़ी नहीं जानी चाहिए। अपनी रिपोर्ट में विधि आयोग ने यह मत व्यक्त किया था--

"धारा 51(ख) में स्थिति—

1-ङ12. शायद यह दलील दी जा सकती है कि धारा 51 परन्तुक खण्ड (ख) में की स्थिति में निर्णीत ऋणी का कारावास कठिनाई पैदा कर देता है। वह खण्ड उस समय लागू होता है जहां कि निर्णीत ऋणी (i) के पास साधन है और वह संदाय करने से मना करता है या उसकी उपेक्षा करता है या (ii) उसके पास साधन हैं और उसने संदाय करने से मना किया है या उपेक्षा की है। किसी भी मामले में अनिवार्य शर्त साधन होना है। जिसके साथ संदाय करने में असफलता या उपेक्षा समकालिक है। यदि ऐसे मामले में कारावास दिया जाता है तो यह केवल संदाय न करने पर ही नहीं है न ही संदाय करने की मात्र असमर्थता है किन्तु ऐसे मामलों तक सीमित है जहां कि व्यक्ति संदाय करने में समर्थ है और बेईमानी से संदाय करने में व्यतिक्रम करता है।

1 ङ 13. इस प्रकार से यह देखा जा सकता है कि गिरफ्तारी के उपबन्ध अन्तरराष्ट्रीय प्रसंविदा में उपबन्ध का अतिक्रमण नहीं करते चूंकि वे केवल संविदा को पूना न करने के बारे में ही आधारित नहीं हैं। इसके पश्चात् प्रसंविदा के उनके बने रहने के अतिरिक्त वे सिद्धांत पर न्यायोचित हैं क्योंकि वह व्यवहार जो उनके प्रवर्तन को आकर्षित करता है बेईमानी है। तकनीकी रूप से कोई अपराध नहीं किया गया चूंकि शारीरिक रूप से डिक्रीदार का कोई शारीरिक क्षति नहीं हुई है या समाज को कोई सीधी क्षति नहीं पहुंची हैं किन्तु जब किसी व्यक्ति के पास संदाय करने के साधन हैं, किसी अन्य व्यक्ति को उसके विधिपूर्ण शोध्यों से वंचित करना ऐसी विशेष परिस्थितियों में जिसमें धारा 51, परन्तुक अन्ततः समाज को क्षति कारित करने के लिए सीमित है जो किसी अन्य सदस्य के बेईमानी व्यवहार के

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कारण उस समय दुख भोगता है यदि कोई व्यष्टिक सदस्य दुख भोगता है।

वर्तमान विधि काफी निर्बन्धात्मक है।

1-ङ 14. इसलिए हमारा यह दृष्टिकोण है कि जहां तक कि ऐसे मामलों का सम्बन्ध है जिनमें गिरफ्तारी का आदेश दिया जा सकता है तो भारत में विधि केवल दो मामलों को छोड़कर जिन पर हम हाल में चर्चा करेंगे पर्याप्त रूप से निर्बन्धनात्मक है। इसलिए निष्पादन की इस पद्धति को पूर्णतया समाप्त नहीं किया जाना चाहिए।

धारा 51 जो ऐसी धारा है जो रकम के संदाय के लिए डिक्रियों के निष्पादन में गिरफ्तारी पर चर्चा करती है के परन्तुक में उल्लिखित स्थितियां—वे परिस्थितियां हैं जो निर्णीत ऋणी की ओर से कपट या चोरी-छिपे उद्देश्य को उपदर्शित करती हैं। ऋण या अन्य धनिक बाध्यता के संदाय की बाध्यता को पूरा करने की असमर्थता के कारण ही कारावास नहीं होता।"

10. पूर्वगामी बातें यह दर्शाती हैं कि समकालिक भारतीय परिस्थितियों में किसी निर्णीत ऋणी और व्यतिक्रमी की, उससे शोध्य रकम के संदाय को प्रवृत्त करने के लिए, गिरफ्तारी और निरोध की प्रक्रिया बिल्कुल अयुक्तियुक्त नहीं है। यदि ऐसे काफी अभ्युपाय हैं जो आदेशिका को युक्तियुक्त मानदण्डों के अनुरूप बना देते हैं। इसे असांविधानिक नहीं माना जा सकता।

11. उत्तर प्रदेश भूमि व्यवस्था अधिनियम की धारा 281 में में अधिकतम कालावधि विहित है जिसके लिए किसी व्यतिक्रमी को भूराजस्व के गैर संदाय के लिए निरुद्ध किया जा सकता है 15 दिनों की है जब तक कि बकाया [जिसमें धारा 279 (2) के अधीन वसूलनीय कोई खर्चे, यदि कोई हों, भी सम्मिलित हैं] शीघ्र संदत्त नहीं कर दिए जाते। किसी नारी अथवा अवस्यक को राज्य की बकाया की वसूली के लिए गिरफ्तार अथवा निरुद्ध नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार से ऐसे व्यतिक्रमी को जो प्रश्नगत धृति का भूमिदार नहीं है, गिरफ्तार या निरुद्ध नहीं किया जा सकता जब कि बकाया उक्त धृति के सम्बन्ध में हों जिसके लिए संदाय के लिए वह संयुक्त रूप से दायित्वाधीन है। इसलिए गिरफ्तारी और निरोध की

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आदेशिका के सम्बन्ध में विधि द्वारा विहित प्रथम अभ्युपाय निरोध की कालावधि से सम्बन्धित है और कुछ व्यक्तियों को गिरफ्तार और निरोध किये जाने से छूट देने के बारे में है। प्रश्नगत विधि द्वारा विहित द्वितीय अभ्युपाय उत्तर प्रदेश भूमि व्यवस्था नियमों के नियम 251 में अन्तर्विष्ट है। नियम 251 का उपनियम (1) इस बात की अपेक्षा करता है कि जब कभी गिरफ्तारी की आदेशिका तहसीलदार द्वारा जारी की जाती है तो तहसीलदार को बिना विलम्ब के सम्बन्धित कलक्टर और सहायक कलक्टर को तथ्य की रिपोर्ट करनी चाहिए। नियम 251 का उपनियम (2) इस बात की अपेक्षा करता है कि व्यतिक्रमी को, जिसे गिरफ्तार किया गया है, बिना बिलंब के उस अधिकारी के समक्ष पेश किया जाए जिसने वारंट जारी किया है और ऐसे व्यतिक्रमी को तब तक अभिरक्षा में निरुद्ध नहीं किया जाना चाहिए जब तक कि इस बात पर विश्वास करने का कारण न हो कि निरोध की प्रक्रिया सम्पूर्ण या बकाया के काफी भाग के संदाय के लिए बाध्य कर सकेगी। इस उपनियम के अधीन इस प्रश्न के बारे में जांच-पड़ताल करना आवश्यक है कि क्या व्यतिक्रमी का निरोध बकाया या उसके महत्वपूर्ण भाग के संदाय का उत्पादक होगा। इसलिए संबंधित अधिकारी से यह अपेक्षा की जाती कि वह इस बात का विनिश्चय करे कि वह अपने समक्ष सामग्री के आधार पर और दिए गए साक्ष्य के आधार पर या व्यतिक्रमी द्वारा दी गई दलील पर अपने समक्ष सामग्री पर इस बात का विनिश्चय करे कि क्या उसे निरुद्ध करने का कोई औचित्य है और केवल इसके पश्चात् ही जब कि वह इस बात से संतुष्ट हो जाता है कि व्यतिक्रमी का निरोध उसे बकाया के संपूर्ण अथवा काफी भाग का संदाय करने के बाध्य कर देगा तो वह उसके निरोध का आदेश दे सकता है। यदि वह इस प्रकार से संतुष्ट नहीं है तो अधिकारी उसे छोड़ने की बाध्यता के अधीन है। नियम 251 का उपनियम (3) भी उस अधिकारी को जिसने वारंट जारी किया है इस बात के लिए सशक्त करता है कि यदि वह ऐसा करना उचित समझे तो व्यतिक्रमी को नियत कालावधि के भीतर बकाया का संदाय करने का वचन देने पर छोड़ दे और यदि आवश्यक हो तो फिर व्यतिक्रमी की गिरफ्तारी का निदेश दे।

12. पिटीशनरों की ओर से यह दलील दी गई है कि चूंकि उत्तर प्रदेश भूमि व्यवस्था नियमों के नियम 251 के अधीन व्यतिक्रमी की गिरफ्तारी और अधिकारी के समक्ष उसको पेश किए जाने के पश्चात् न कि उसकी गिरफ्तारी से पूर्व एक जांच का अनुध्यात करता है और चूंकि ऐसी प्रक्रिया

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अन्य राज्यों में या सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 51 में प्रवृत्त तत्स्थानी विधियों में अन्तर्विष्ट उपबन्धों के अनुरूप नहीं है, जो गिरफ्तारी के वारंट के जारी से पूर्व जांच की अपेक्षा करती है नियम 251 को असांविधानिक अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए। यहां पर यह मत व्यक्त करना आवश्यक है कि प्रत्येक राज्य अपनी सार्वजनिक मांगों की वसूली के लिए अपना स्वयं का तन्त्र चलाने के अपने अधिकार के भीतर है और एक राज्य से संबंधित कोई व्यक्ति इस बात का परिवाद नहीं कर सकता कि उसके राज्य की विधि पड़ौसी राज्य की विधि की अपेक्षा अधिक कठोर है या सिविल प्रक्रिया संहिता द्वारा डिक्रियों के निष्पादन के लिए विहित प्रक्रिया की अपेक्षा कठिन है (देखिए **परषोत्तम गोविन्दजी हलाय बनाम श्री बी० एम० देसाई, अपर कलक्टर, मुम्बई और अन्य**)[1] यहां पर हम इस बात की परीक्षा करने से सम्बन्धित नहीं है कि क्या मनमानी गिरफ्तारी के विरुद्ध अभ्युपाय सिविल प्रक्रिया संहिता या किसी अन्य विधि में अन्तर्विष्ट अभ्युपायों का तत्स्थानी है। मुख्य रूप से हमारा सम्बन्ध इस प्रश्न से है कि क्या उत्तर प्रदेश भूमि व्यवस्था नियमों के नियम 251 में अन्तर्विष्ट अभ्युपाय उचित, युक्तियुक्त और गैर-मनमाने हैं और बकाया के स्वरूप को ध्यान में रखते हुए और हमारे समाज की अभिभावी परिस्थितियों और अन्य सुसंगत मामलों को देखते हुए न्यूनतम सांविधानिक अपेक्षाओं को पूरा करते हैं। इस मामले में हमारा संबंध ऐसे शोध्यों के संदाय के लिए विहित कालावधि की समाप्ति के पश्चात् सार्वजनिक शोध्यों की वसूली के लिए न्यायोचित प्रक्रिया से सम्बन्धित है। यह देखने में आया है कि व्यतिक्रमी को सम्बन्धित अधिकारी का समाधान करने के लिए पर्याप्त अवसर होता है कि उसके निरोध का आदेश देने में कोई औचित्य नहीं है।

13. न्यायालय को **कलक्टर आफ मालाबार बनाम एरिमल इब्राहीम हाजी**[2] के मामले में इसी प्रकार के प्रश्न पर विचार करने का अवसर मिला था। उस मामले में आयकर अधिकारी ने आयकर अधिनियम की धारा 46 (2) के अधीन कलक्टर को निर्धारिती से आयकर के बकाया की वसूली के लिए एक प्रमाणपत्र भेजा था मानों वह भूराजस्व की बकाया हों। कलक्टर ने मद्रास रेवेन्यू रिक्वरी ऐक्ट, 1864 की धारा 48 के अधीन कार्यवाही की थी और निर्धारिती को गिरफ्तार करके जेल में निरुद्ध कराया था। बन्दी-प्रत्यक्षीकरण की रिट के लिए पिटीशन पर मद्रास उच्च

[1] [1955] 2 एस० सी० आर० 887.

[2] [1957] एस० सी० आर० 970.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करते हुए निर्धारिती को छोड़ने का आदेश दिया था कि मद्रास रेवेन्यू रिकवरी ऐक्ट, 1864 की धारा 48 और भारतीय आयकर अधिनियम, 1922 की धारा 46 अधिकारातीत थी। कलक्टर ने इस न्यायालय में अपील की थी। अपील को मंजूर करते हुए इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि आक्षेपित उपबन्ध संविधान के अनुच्छेद 14, 19, 21 और 22 के अतिक्रमणकारी नहीं थे। न्यायालय ने निर्धारिती के इस अभिवाक् को भी नामंजूर कर दिया था कि गिरफ्तारी दण्ड स्वरूप थी और यह अभिनिर्धारित किया था कि यह केवल प्रपीड़ात्मक प्रक्रिया थी जो कर की बकाया को वसूल करने के लिए प्रयोग की जाती है। इस न्यायालय ने पृष्ठ 978-979 पर इस प्रकार मत व्यक्त किया था—

> "सम्पूर्ण धारा में इस प्रकार का कोई भी सुझाव नहीं है कि गिरफ्तारी केवल व्यतिक्रम के कारण दण्ड स्वरूप है। कलक्टर को व्यमिक्रमी की गिरफ्तारी की आदेशिका देने से पूर्व न केवल इस बात के लिए अपना समाधान कर लेना चाहिए कि बकाया व्यतिक्रमी की सम्पत्ति की बिक्री के द्वारा समाप्त नहीं हो सकती किन्तु कलक्टर के पास इस बात का विश्वास करने का भी कारण होना चाहिए कि व्यतिक्रमी जानबूझकर संदाय को रोक रहा है और संदाय से बचने के लिए कपटपूर्ण व्यवहार का दोषी है। जब रकम के रूप में संदाय जो विधि की प्रक्रिया द्वारा वसूली की जानी है, न कि स्वतः संदाय के द्वारा, विभिन्न प्रकार की मात्राओं में प्रपीड़न का तत्व आवश्यक रूप से शोध्य रकम की वसूली की रीति में सभी प्रक्रमों पर पाया जाना आवश्यक होना चाहिए। प्रपीड़ात्मक तत्व शायद उसके कठोरतम स्वरूप में व्यतिक्रमी को उसके शोध्यों का संदाय करने के लिए गिरफ्तारी का कार्य है। जब कि कलक्टर के पास इस बात का विश्वास करने का कारण है कि संदाय को रोकना जानबूझकर किया गया है या कि व्यतिक्रमी संदाय से बचने के लिए कपटपूर्ण व्यवहार का दोषी है तो स्पष्टतया इस बात की धारणा की जा सकती है व्यतिक्रमी संदाय कर सकता है किन्तु वह जानबूझकर उसे रोक रहा है या कपटपूर्ण रूप से संदाय से बच रहा है। अधिनियम में कई धाराएं हैं (अर्थात् धारा 16, 18 और 21) जो असंदिग्ध भाषा में किए जाने वाले कतिपय कार्यों के लिए सजा देना विहित करते हैं। इसलिए यह बात स्पष्ट है कि जहां कि अधिनियम का आशय सजा

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अधिरोपित करना है, या कोई अपराध सृजित करना है, तो यह ऐसी भाषा नियोजित करता है जो धारा 48 में पाई जाने वाली भाषा से पूर्णतया भिन्न है। इसलिए हमारी यह राय है कि जहां कि उसके उपबन्धों का अनुपालन करने के पश्चात् धारा 48 के अधीन कोई गिरफ्तारी की गई है तो गिरफ्तारी किए गए अपराध के लिए नहीं है या किसी संदाय में व्यतिक्रम के लिए सजा नहीं है। गिरफ्तारी की रीति शोध्य रकम की वसूली के लिए रीति से भिन्न कोई रीति नहीं है।"

14. उपरोक्त मामले में अन्तर्वलित विधान का क्रम चाहे इस मामले में अन्तर्वलित विधि के क्रम से थोड़ा सा भिन्न था, उपरोक्त मत इस प्रश्न पर विचार करने के लिए सुसंगत दिखाई देते हैं कि क्या गिरफ्तारी और निरोध की आदेशिका का राजस्व की बकाया को वसूल करने के लिए पूर्णतया प्रयोग किया जा सकता है।

15. इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने (न्यायाधीश आर० एस० पाठक के माध्यम से) (जैसे कि वे उस समय थे) संगम लाल गुप्त बनाम विक्रय कर अधिकारी और अन्य[1] के मामले में इसी प्रकार के उपबन्धों पर, जिन्हें उत्तर प्रदेश भूमि राजस्व अधिनियम, 1901 के अधीन प्रख्यापित किया गया था, विचार करते समय दृष्टिकोण अपनाया था कि उपरोक्त उपबन्ध ऐसे व्यतिक्रमियों की स्वतन्त्रता पर अयुक्तियुक्त निर्बन्धन अधिरोपित करने वाले नहीं हैं जिन्हें उनसे शोध्य राजस्व की वसूली के क्रम में उपरोक्त उपबन्धों के अनुसरण में गिरफ्तारी और निरोध के आदेश दिए गए थे। सम्बन्धित प्राधिकारी सार्वजनिक शोध्यों की वसूली के प्रयोजन के लिए उत्तर प्रदेश भूमि व्यवस्था अधिनियम की धारा 279 में उल्लिखित कई प्रक्रियाओं में से कोई एक या अधिक प्रक्रियाओं को अंगीकृत करने में प्रत्येक मामले में अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करने के लिए आशयित है।

16. अनुकल्पतः यह दलील दी गई कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 51 के अधीन प्रक्रिया शब्द से उत्तर प्रदेश बिक्री कर अधिनियम की धारा 33 और उत्तर प्रदेश भूमि-व्यवस्था अधिनियम की धारा 341 के दृष्टिकोण से उत्तर प्रदेश भूमि व्यवस्था अधिनियम की धारा 281 के अधीन गिरफ्तारी के वारंट को जारी करने के लिए लागू होगी। निस्संदेह उत्तर प्रदेश बिक्री कर अधिनियम की धारा 33 का परन्तुक यह कथित करता है

[1] [1969] इलाहाबाद ला जर्नल 257.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कि उस धारा के अधीन प्रदत्त शक्तियों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना कलक्टर को डिक्री के अधीन शोध्य रकम की वसूली के प्रयोजन के लिए सिविल न्यायालय की शक्तियां भी होंगी यह परन्तुक उत्तर प्रदेश भूमि व्यवस्था अधिनियम की धारा 281 और तद्धीन बनाए गए नियमों के अधीन कलक्टर की शक्ति पर और कोई निर्बन्धन नहीं अधिरोपित करता। यह केवल कलक्टर को यदि वह ऐसा करना चाहे तो सिविल प्रक्रिया संहिता के अधीन शक्तियों का प्रयोग करने के लिए सशक्त करता है। उत्तर प्रदेश भूमि व्यवस्था अधिनियम की धारा 281 और तद्धीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित प्रक्रिया किसी व्यतिक्रमी की गिरफ्तारी और निरोध की आदेशिका पर एक पूर्ण संहिता है और इसे सिविल प्रक्रिया संहिता के किन्हीं भी उपबन्धों द्वारा उपांतरित नहीं किया गया है। यह बात ध्यान देने की है कि जहां कि सिविल प्रक्रिया संहिता में उल्लिखित निष्पादन से सम्बन्धित प्रक्रिया स्वीकार करनी होती है उत्तर प्रदेश भूमि व्यवस्था अधिनियम ने धारा 282 (2) में एक स्पष्ट निर्देश बनाया है जो इस बात का उपबन्ध करके जंगम सम्पत्ति की कुर्की और विक्रय के बारे में है कि धारा 282 ध अधीन प्रत्येक कुर्की और विक्रय सिविल न्यायालय की डिक्री के निष्पादन में जंगम सम्पत्ति की कुर्की और विक्रय के लिए तत्समय प्रवृत्त विधि के अनुसार होगी। उत्तर प्रदेश भूमि व्यवस्था अधिनियम की धारा 282 (2) में सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 60 का निर्देश है जो सम्पत्ति की कतिपय किस्मां को कुर्की और विक्रय से मुक्त करती है। गिरफ्तारी और निरोध की प्रक्रिया को प्रशासित करने वाला इस प्रकार का कोई उपबन्ध नहीं है। उत्तर प्रदेश भूमि व्यवस्था अधिनियम की धारा 341 में यह कथित है कि जब तक अधिनियम के द्वारा या अधिनियम के अधीन स्पष्टतया अन्यथा उपबन्धित न हो, सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबन्ध उस अधिनियम के अधीन कार्यवाहियों को लागू होंगे। जैसा कि पहले उल्लिखित किया जा चुका है, उत्तर प्रदेश भूमि व्यवस्था अधिनियम में और तद्धीन बनाए गए नियमों में ऐसे स्पष्ट उपबन्ध हैं जो गिरफ्तारी और निरोध की प्रक्रिया को शसित करते हैं। इसलिए सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 51 का अवलम्ब नहीं लिया जा सकता। यहां पर हम यह मत व्यक्त कर दें कि व्यतिक्रमी को साधारणतया भूराजस्व की बकाया की वसूली के लिए अन्य किसी आदेशिका के स्वीकार करने से पहले धारा 280 के अधीन किसी आदेश या मांग की तामील करनी होगी। उत्तर प्रदेश भूमि व्यवस्था नियमों के नियम 242 में इस बात का उपबन्ध है कि साधारणतया धारा 280 के अधीन प्रक्रिया अर्थात् मांग का

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आदेश या प्रोद्धरण किसी अन्य प्रक्रिया का अवलम्ब लेने से पूर्व जारी करनी चाहिए। इससे यह पता चलता है कि साधारणतया व्यतिक्रमी को यह बता दिया जाएगा कि एक प्रमाणपत्र उससे भूराजस्व की बकाया वसूली के लिए जारी कर दिया गया है। इस प्रश्न पर काफी उत्सुकता से विचार करने के पश्चात् हमारा यह दृष्टिकोण है कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 51 के उपबन्ध शब्दशः उत्तर प्रदेश भूमि व्यवस्था अधिनियम के अधीन गिरफ्तारी और निरोध की आदेशिका को लागू नहीं होंगे। **सेठ बनारसी दास गुप्त बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**[1] के मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय का विनिश्चय जिसमें यह कहा गया है कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 51 के अधीन प्रक्रिया ऐसे मामले को लागू होगी शब्दशः कोई सही विधि अधिकथित नहीं करती, तथापि हम इस बात को स्पष्ट कर देना चाहते है कि मांग का आदेश या प्रोद्धरण साधारणतया व्यतिक्रमी को उत्तर प्रदेश भूमि व्यवस्था अधिनियम की धारा 281 के अधीन गिरफ्तारी का वारंट जारी करने की कठोर प्रक्रिया का अवलम्ब लेने से पूर्व जारी की जानी चाहिए। चाहे कोई औपचारिक मांग का आदेश जारी नहीं किया गया है, उत्तर प्रदेश भूमि व्यवस्था अधिनियम की धारा 281 के अधीन जारी की जाने वाली आदेशिका के स्वरूप में यह बात स्पष्ट है कि संबंधित व्यतिक्रमी को वसूली के लिए प्रमाणपत्र के जारी किए जाने की पूर्व सूचना होनी चाहिए जिससे कि वह गिरफ्तारी से बचने के लिए मांग की गई रकम का संदाय करने में समर्थ हो सके। हमारे समक्ष दी गई दलीलों पर सतर्कतापूर्वक विचार करने के पश्चात् हमारा यह दृष्टिकोण है कि उत्तर प्रदेश भूमि व्यवस्था अधिनियम और तद्धीन बनाए गए नियमों में अन्तर्विष्ट आक्षेपित प्रक्रिया संविधान के अनुच्छेद 14, 19 (घ) और 21 का अतिक्रामी नहीं है।

17. तथापि ऐसा प्रतीत होता है कि पिटीशनरों की ओर से रखा गया अगला प्रश्न एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। यद्यपि उत्तर प्रदेश भूमि व्यवस्था नियमों का नियम 251 इस बात की अपेक्षा करता है कि ऐसे अधिकारी द्वारा जिसने कि वारंट जारी किया है इस प्रश्न के बारे में जांच की जानी चाहिए कि क्या व्यतिक्रमी का निरोध उसे बकाया का या उसके काफी भाग का संदाय करने के लिए बाध्य कर सकेगा। स्वीकृति रूप से ऐसी कोई जांच इन मामलों में से किसी में नहीं की गई। इसलिए पिटीशनरों को पहले से जारी किए गए गिरफ्तारी के किसी वारंट के अनुसरण में निरुद्ध नहीं किया जा सकता इसलिए हमें इन वारंटों को जो इन मामलों में पहले से जारी

[1] [1975] राजस्व विनिश्च : 46.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

किए गए हैं, अभिखंडित करना होगा और हम यह निदेश देते हैं कि पिटीशनरों को जिनके विरुद्ध ऐसे वारंट जारी किए गए हैं, उनके अनुसरण में निरुद्ध नहीं किया जाना चाहिए। तदनुसार हम आदेश करते हैं। यह आदेश संबंधित प्राधिकारियों की उपरोक्त विनिश्चय को ध्यान में रखते हुए नए आदेश पारित करके विधि के अनुसरण में व्यतिक्रमियों को गिरफ्तार और निरुद्ध करके बकाया की वसूली के लिए शक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना किया गया है।

18. यह कहा गया है कि इन पिटीशनों में से कुछ पिटीशनों में पिटीशनरों ने अपील फाइल की हुई है, या उत्तर प्रदेश बिक्री की अधिनियम के अधीन निर्धारण के आदेशों के विरुद्ध कुछ अन्य पिटीशनें फाइल की हुई हैं और कि ऐसी अपीलें या पिटशनें अभी भी लंबित हैं। हम उन अपीलों पर या अन्य पिटीशनों पर गुणागुण पर कोई राय अभिव्यक्ति नहीं करते। उन्हें सम्बन्धित प्राधिकारियों द्वारा विधि के अनुसरण में निष्पादित किया जाएगा।

19. तदनुसार पिटीशन भागतः मंजूर किए जाते हैं, खर्चे के कोई आदेश नहीं।

रिट पिटीशन भागतः मंजूर किए गए।

स०/

———

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बेगुल्ला बापी राजू और अन्य

बनाम

आन्ध्र प्रदेश राज्य

(Begulla Bapi Raju and Others

v.

State of Andhra Pradesh

चिन्नम नागभूषणम् और अन्य

बनाम

आन्ध्र प्रदेश राज्य

(Chinnam Nagabhushnam and others

v.

State of Andhra Pradesh)

चिन्नम शिवराम प्रसाद

बनाम

भूमि सुधार अधिकरण, कोव्वुर और अन्य

(Chinnam Sivaramprasad

v.

Land Reforms Tribunal, Kovvur and Others)

तथा

काज़ा सीतारामचन्द्र राव

बनाम

आन्ध्र प्रदेश राज्य और एक अन्य

(Kaza Seetharamchandra Rao

v.

State of Andhra Pradesh and Another)

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(23 अगस्त, 1983)

(न्यायाधिपति ए० पी० सेन, ई० एस० वेंकटरामय्या और आर० बी० मिश्र)

आन्ध्र प्रदेश लैण्ड रिफार्म्स (सीलिंग आन एग्रीकल्चरल होल्डिंग्स) ऐक्ट, 1973—धारा 3(i) स्पष्टीकरण, 3(च), 4, 5 और 7 (सपठित संविधान, 1950 का अनुच्छेद 14)—"कौटुम्बिक एकक"—'कौटुम्बिक एकक' की परिधि के भीतर विभक्त अवयस्क पुत्र भी शामिल है, वास्तव में उसमें विभक्त अवयस्क पुत्र कौटुम्बिक एकक का उसी प्रकार अंग होता है, जैसे कि पिता से अविभक्त पुत्र 1 चूंकि भूमि सुधार संबंधी विधि इस दृष्टि से अधिनियमित की गई है जिससे धनी और निर्धन व्यक्तियों के बीच की असमानता कम की जा सके, इसलिए इससे संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन नहीं होता।

आन्ध्र प्रदेश लैण्ड रिफार्म्स (सीलिंग आन एग्रीकल्चरल होल्डिंग्स) ऐक्ट, 1973—धारा 3 (झ)—जोत—एक ही भूमि, अन्तरक और अन्तरिती, दोनों की ही हो सकती है।

पिटीशनर सं० 2 और 3, प्रथम पिटीशनर के पुत्र हैं। पिटीशनर सं० 2 अब भी अवयस्क है और पिटीशनर सं० 3 ने अभी-अभी हाल में वयस्कता प्राप्त की। प्रथम पिटीशनर और तृतीय पिटीशनर ने अपनी सम्पत्ति का विभाजन तारीख 12 अप्रैल, 1960 वाले अपने रजिस्ट्रीकृत विभाजन-विलेख के बल पर माप और सीमांकन करके किया था और तब से उनके अपने-अपने हिस्सों में आने वाली भूमियां उनके अलग-अलग कब्जों में बनी रही थीं। तारीख 11 अप्रैल, 1969 वाले दूसरे विभाजन-विलेख के जरिए, प्रथम पिटीशनर और द्वितीय पिटीशनर ने उन सम्पत्तियों का और विभाजन किया जो कि उनके बीच हुए प्रथम विभाजन में प्रथम पिटीशनर के हिस्से में थीं। 10 जनवरी, 1970 को तृतीय पिटीशनर ने 'प' ग्राम की 12 एकड़ भूमि एक व्यक्ति को बेच दी। 10 अप्रैल, 1970 को उसने विक्रय करार के अधीन 'प' ग्राम के 10.22 एकड़ और 10.00 एकड़ क्षेत्र 'ज' नाम के अन्य व्यक्ति को 80,000 रुपए में बेच दिए और क्रेता को उनका कब्जा दे दिया गया। 12 जून, 1970 को प्रथम पिटीशनर ने 'प' ग्राम का 22.63 एकड़ क्षेत्र विक्रय करार के अधीन तीसरे व्यक्ति को बेच दिया। पुनः 16 जून, 1970 को तृतीय पिटीशनर ने विक्रय करार के अधीन 'प' ग्राम का 8.00 एकड़

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

क्षेत्र चौथे व्यक्ति को बेच दिया। राज्य सरकार ने जो अधिसूचना निकाली थी, उसके बल पर आन्ध्र प्रदेश अधिनियम पहली जनवरी, 1975 को प्रवृत्त हुआ। पहली अप्रैल, 1975 तक सभी तीनों पिटीशनरों ने अधिनियम की धारा 8 के अनुसार इस आधार पर अलग-अलग घोषणाएं फाइल कीं कि अलग हुए अवयस्क पुत्र 'कौटुम्बिक एकक' गठित नहीं करते और उनकी जोतों को पिता की जोत के साथ नहीं जोड़ा जा सकता और विक्रय करार या दान-विलेख के अधीन बाहरी व्यक्तियों को जो भूमि अन्तरित की गई थी, उसे पिटीशनरों की जोत में शामिल नहीं किया जाना चाहिए। तथापि, भूमि सुधार अधिकरण ने प्रश्नगत जोत को इस आधार पर 'कौटुम्बिक एकक' का जोत के रूप में माना कि विभक्त अवयस्क पुत्र भी 'कौटुम्बिक एकक' गठित करते हैं और विक्रय करारों या दान-विलेख के अधीन विभिन्न व्यक्तियों को अन्तरित जोत का भाग 'कौटुम्बिक एकक' की जोत का हिस्सा था। तदनुसार, 27 सितम्बर, 1976 को अधिकरण ने यह घोषणा की कि 'कौटुम्बिक एकक' के कब्जे में जो भूमि है, वह अधिकतम सीमा से अधिक है। पिटीशनरों ने भूमि सुधार अपील अधिकरण के समक्ष अपील फाइल की। तत्पश्चात् अपील अधिकरण ने अपील भागतः मंजूर कर ली। पिटीशनरों ने फिर भी व्यथित होने के कारण आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय में पुनरीक्षण फाइल किया। उच्च न्यायालय ने 7 जुलाई, 1978 को उसे खारिज कर दिया। अतः पिटीशनरों ने उच्च न्यायालय के आदेश को चुनौती देने के लिए विशेष इजाजत लेकर पिटीशन फाइल किया है। पिटीशन खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित--यह परिस्थिति कि कौटुम्बिक एकक के संघटक सदस्य द्वारा धृत भूमि पृथक् सम्पत्ति तथा स्त्रीधन सम्पत्ति है, किसी भी प्रकार से अधिकतम क्षेत्र का अवधारण करने के प्रयोजनार्थ जो कौटुम्बिक एकक बनाए रख सकता है, कोई भी महत्व का विषय नहीं है। प्रत्यर्थी, उसकी पत्नी और अवयस्क पुत्र और अवयस्क अविवाहित पुत्रियां, यदि कोई हों तो, सभी कौटुम्बिक एकक के संघटक सदस्य हैं और ऐसे अधिकतम क्षेत्र का जो कि कौटुम्बिक एकक को अनुज्ञेय है, अवधारण करने के प्रयोजनार्थ उनके द्वारा धृत सभी भूमियों को एक ही साथ रखना होगा। उनके द्वारा धृत भूमि में उनके हित की प्रकृति या स्वरूप उस अधिकतम क्षेत्र की जो कि कौटुम्बिक एकक बनाए रख सकेगा, संगणना करने के लिए असंगत हैं। अतः स्पष्टीकरण के साथ-साथ कौटुम्बिक एकक की परिभाषा से तनिक भी सन्देह नहीं रह जाता है कि विभक्त अवयस्क पुत्र कौटुम्बिक एकक का उतना ही

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सदस्य रहता है जितना कि अपने पिता के साथ अविभक्त पुत्र रहता है। (पैरा 17)

क्या आन्ध्र प्रदेश लण्ड रिफार्म्स (सीलिंग आन एग्रीकल्चरल होल्डिंग्स) ऐक्ट, 1973 की धारा 3(च) के अधीन कौटुम्बिक एकक की परिभाषा से संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण होता है? यह कहा गया है कि किसी व्यष्टि की बजाय कुटुम्ब को इकाई मानना इसलिए आवश्यक समझा गया था कि उससे असद्भाविक विभाजन और अन्तरण करके विधि के अपवंचन के क्षेत्र को कम किया जा सकेगा, क्योंकि ऐसे संव्यवहार प्रायः कुटुम्ब के सदस्यों के पक्ष में ही किए जाते हैं और यह कि सामान्य तौर पर हमारे देश में ग्रामीण कृषि-व्यवस्था में कुटुम्ब प्रमुख इकाई होता है और इसलिए अधिकतम सीमा भूमि पर व्यक्तिगत रूप से कृषि करने की कुटुम्ब की क्षमता से संबंधित होनी चाहिए। यह कहा गया है कि इन सब पहलुओं को ध्यान में रखते हुए कुटुम्ब की संकल्पना को कृत्रिम रूप से परिभाषित किया गया था और अधिकतम सीमा नियत करने के लिए दोहरा मापदण्ड—एक प्रमुख इकाई के लिए और दूसरा कुटुम्ब के साथ रहने वाले वयस्क पुत्र के लिए-अपनाया गया था। वस्तुतः धारा 4(3) की तरह के उपबन्ध का, जिसमें उस दशा में किसी कुटुम्ब के अनुज्ञेय क्षेत्र में वृद्धि करने का उपबन्ध किया गया है, जबकि वयस्क पुत्रों के स्वामित्वाधीन कोई अपनी भूमियां न हों और वे कोई अपनी भूमियां धारित न करते हों, अपितु वे कुटुम्ब के साथ रह रहे हों, एक गुण यह है कि इससे प्रत्येक कुटुम्ब की दशा में चाहे उसे कोई भी स्वीय विधि लागू होती हो, ऐसी वृद्धि सुनिश्चित की गई है तथा स्वीय विधि की विभिन्न पद्धतियों से शासित होने वाले वयस्क पुत्रों के बीच कोई प्रभेद नहीं किया गया है। जहां तक कुटुम्ब से पृथक् रहने वाले अवयस्क पुत्र का सम्बन्ध है, उसे ठीक ही एक पृथक् इकाई माना गया है जिसे अधिनियम की धारा 9 के अधीन अपनी जोत की बाबत एक पृथक् घोषणा फाइल करनी होगी और चूंकि वह पृथक् रह रहा है, इसलिए वह कुटुम्ब की भूमि को निजी रूप से जोतने में कुटुम्ब की क्षमता में कोई योगदान नहीं करेगा। अतः कुटुम्ब की प्रमुख इकाई के अनुज्ञेय क्षेत्र में वृद्धि करने के लिए कोई औचित्य नहीं है। पेश की गई सामग्री और सांविधानिकता के बारे में प्रारम्भिक उपधारणा के आधार पर इस निवेदन में काफी बल प्रतीत होता है कि किसी अधिनियमिति को, विशेष रूप से ऐसी अधिनियमिति को जो कि कृषि सुधार के सम्बन्ध में हो जिसे धनी और निर्धनों के बीच समता लाने या जिसे उनके बीच असमता को कम करने के स्पष्ट प्रयोजन के लिए

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अधिनियमित किया गया हो, केवल इस कारण से कि उसमें उस बाबत कोई उपबन्ध नहीं किया गया है जिसे कि एक आपवादिक मामला या बहुत कम घटित होने वाली आकस्मिकता माना गया हो, इस आधार पर अभिखण्डित करना सम्भव नहीं है कि उससे संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण होता है। (पैरा 19)

यह दलील गलत है कि चूंकि आन्ध्र प्रदेश अधिनियम की धारा 3(झ) अयुक्तियुक्त है, इसलिए वह अधिकारातीत है, क्योंकि वह अन्तरक तथा अन्तरिती की भूमि नहीं हो सकती। एक ही भूमि आन्ध्र प्रदेश अधिनियम की धारा 3(झ) में दी गई 'धारित' पद की परिभाषा को देखते हुए अन्तरक तथा अन्तरिती की हो सकती है और वह मत अधिनियम के उपबन्धों के आधार पर पूर्णतः न्यायोचित है। इस दलील को स्वीकार नहीं किया जा सकता कि इस मामले पर पुनर्विचार की आवश्यकता है। (पैरा 21)

अनुसरित निर्णय

पैरा

[1983] [1983] 3 उम० नि० प० 824=ए० आई० आर० 1983 एस० सी० 632 : महाराष्ट्र राज्य बनाम व्यासेन्द्र (State of Maharashtra *v.* Vyasendra); 17

[1983] [1983] 1 उम० नि० प० 464=ए० आई० आर० 1982 एस० सी० 913 : आन्ध्र प्रदेश राज्य बनाम मोहम्मद असर्फुद्दीन (State of Andhra Pradesh *v.* Mohd. Ashrafuddin). 20, 21

निर्दिष्ट निर्णय

[1982] [1982] 3 उम० नि० प० 1121= (1982) 1 एस० सी० सी० 206 : ए० वी नछाने बनाम भारत संघ (A. V. Nachane *v.* Union of India); 22

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

[1981] [1981] 2 उम० नि० प० 1186=[1980] 3 एस० सी० आर० 1181 :
सेठ नन्द लाल और एक अन्य बनाम हरियाणा राज्य और अन्य
(Seth Nand Lal and Another *v.* State of Haryana and Others); 19

[1981] [1981] 2 उम० नि० प० 1114=[1980] 3 एस० सी० आर० 1143 :
थुमाटी वेंकय्या बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य और अन्य
(Tumati Venkaiah *v.* State of Andhra Pradesh and Others); 7. 10

[1979] [1979] 1 उम० नि० प० 243=[1978] 2 एस० सी० आर० 621 :
मेनका गांधी बनाम भारत संघ
(Maneka Gandhi *v.* Union of India); 22

[1978] (1978) आन्ध्र ला जर्नल खंड-2 114 :
कनुरू वेंकटकृष्ण राव बनाम प्राधिकृत भूमि सुधार अधिकारी, बान्द्र और अन्य
(Kanuru Venkatakrishna Rao *v.* The Authorised Officer, Land Reforms, Bandar and Others); 16

[1960] [1960] 3 एस० सी० आर० 499 :
सन्त राम वाला मामला
(Sant Ram's case). 22

सिविल अपीली अधिकारिता : 1979 के विशेष इजाजत पिटीशन (सिविल) सं० 1671, 2631, 3322-23, 3904, 4418, 9796, 9127, 1978, के 6639-40, 6794, 5121-

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

22, 1979 का 10403, 1980 का 3799 और 1979 का 1183.

1976 के सिविल पुनरीक्षण पिटीशन सं० 1991, 1977 के 403, 1612, 1268, 1275, 4436, 1978 के 2571, 7175, 7174, 70, 1907, 564, 1036, 1126, 1979 के 1686 और 1977 के 1387 और 2677 में आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के तारीख 6-7-77, 19-12-77, 20-12-77, 20-4-78, 28-2-78, 4-7-79, 8-6-78, 7-7-78, 12-7-78, 9-8-79, 18-1-78 और 13-10-77 वाले निर्णय और आदेश के विरुद्ध किए गए पिटीशन ।

तथा

1982 का रिट पिटीशन सं० 4789

और

1978 का रिट पिटीशन सं० 4703

भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन किए गए रिट पिटीशन ।

पिटीशनरों की ओर से — सर्वश्री एम० एन० फड़के, जी० वी० शास्त्री, पी० राम रेड्डी, ए० सुब्बा राव; बी० पारथसार्थी, टी० वी० एस० एन० चारी, बी० कान्ता राव, के० आर० चौधरी, ए० वी० वी० नायर, श्रीमती वी० डी० खन्ना और श्री वी० एम० फड़के

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति आर० बी० मिश्र ने दिया ।

न्यायाधिपति मिश्र—

आन्ध्र प्रदेश लैण्ड रिफार्म्स (सीलिंग आन एग्रीकल्चरल होल्डिंग्स) ऐक्ट [आन्ध्र प्रदेश भूमि सुधार (कृषि जोतों पर अधिकतम सीमा) अधिनियम], 1973 (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'आन्ध्र प्रदेश अधिनियम' के रूप में निर्दिष्ट किया गया है) के अधीन वाली कार्यवाहियों से उत्पन्न ये विशेष इजाजत पिटीशन और रिट पिटीशन आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

निर्णय के विरुद्ध किए गए हैं और इनमें विधि के समान प्रश्न उत्पन्न हुए हैं। अतः उनका निपटारा एक ही निर्णय द्वारा किया जा रहा है। 1978 का विशेष इजाज़त पिटीशन सं० 6794, चिन्नम नागभूषणम् और अन्य बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य वाले मामले के तथ्यों के प्रति इस दृष्टि से निर्देश करना पर्याप्त होगा जिससे कि इन मामलों में जो संविवाद है उसके मुद्दे को सामने लाया जा सके।

2. चिन्नम जगनमोहनराव और चिन्नम शिवराम प्रसाद, पिटीशनर सं० 2 और 3, प्रथम पिटीशनर चिन्नम नागभूषणम् के पुत्र हैं। पिटीशनर सं० 2 अब भी अवयस्क है और पिटीशनर सं० 3 ने अभी-अभी हाल में वयस्कता प्राप्त की। प्रथम पिटीशनर और तृतीय पिटीशनर ने अपनी सम्पत्ति का विभाजन तारीख 12 अप्रैल, 1960 वाले अपने रजिस्ट्रीकृत विभाजन-विलेख के बल पर माप और सीमांकन करके किया था और तब से उनके अपने-अपने हिस्सों में आने वाली भूमियां उनके अलग-अलग कब्जों में बनी रही थीं। तारीख 11 अप्रैल, 1969 वाले दूसरे विभाजन-विलेख के जरिए, प्रथम पिटीशनर और द्वितीय पिटीशनर ने उन सम्पत्तियों का और विभाजन किया जो कि उनके बीच हुए प्रथम विभाजन में प्रथम पिटीशनर के हिस्से में थीं। 10 जनवरी, 1970 को तृतीय पिटीशनर ने पंगिडीगुडम ग्राम के 12 एकड़ क्षेत्र को पी० पट्टाभी नाम के एक व्यक्ति को बेच दिया। 10 अप्रैल, 1970 को उसमे विक्रय करार, प्रदर्श ए-9 के अधीन पंगिडीगुडम ग्राम के 10.22 एकड़ और 10.00 एकड़ क्षेत्र जी० वीराजू को 80,000 रुपए में बेच दिए और क्रेता को उनका कब्जा दे दिया गया। 12 जून, 1970 को प्रथम पिटीशनर ने पंगिडीगुडम ग्राम का 22.63 एकड़ क्षेत्र विक्रय-करार, प्रदर्श ए-12 के अधीन बी० अप्पा राव नाम के एक व्यक्ति को बेच दिया। पुनः 16 जून, 1970 को तृतीय पिटीशनर ने विक्रय करार, प्रदर्श ए-10 के अधीन पंगिडीगुडम ग्राम का 8.00 एकड़ क्षेत्र बी० बालाराम सिंह को बेच दिया।

3. राज्य सरकार ने जो अधिसूचना निकाली थी, उसके बल पर आन्ध्र प्रदेश अधिनियम, पहली जनवरी, 1975 को प्रवृत्त हुआ। पहली अप्रैल, 1975 तक सभी तीनों पिटीशनरों ने अधिनियम की धारा 8 के अनुसार इस आधार पर अलग-अलग घोषणाएं फाइल कीं कि अलग हुए अवयस्क पुत्र 'कौटुम्बिक एकक' गठित नहीं करते और उनकी जोतों को पिता की जोत के साथ नहीं जोड़ा जा सकता और विक्रय-करार या दान-

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विलेख के अधीन बाहरी व्यक्तियों को जो भूमि अन्तरित की गई थी, उसे पिटीशनरों की जोत में शामिल नहीं किया जाना चाहिए। तथापि, भूमि सुधार अधिकरण ने प्रश्नगत जोत को इस आधार पर 'कौटुम्बिक एकक' की जोत के रूप में माना कि विभक्त अवयस्क पुत्र भी 'कौटुम्बिक एकक' गठित करते हैं और विक्रय करारों या दान-विलेख के अधीन विभिन्न व्यक्तियों को अन्तरित जोत का भाग 'कौटुम्बिक एकक' की जोत का हिस्सा था। तदनुसार, 27 सितम्बर, 1976 को अधिकरण ने यह घोषणा की कि 'कौटुम्बिक एकक' के कब्जे में जो भूमि है, वह अधिकतम सीमा से अधिक है। पिटीशनरों ने भूमि सुधार अपील अधिकरण के समक्ष अपील फाइल की। तत्पश्चात् अपील अधिकरण ने अपील भागतः मंजूर कर ली। पिटीशनरों ने फिर भी व्यथित होने के कारण आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय में पुनरीक्षण फाइल किया। उच्च न्यायालय ने 7 जुलाई, 1978 को उसे खरिज कर दिया। अब पिटीशनरों ने उच्च न्यायालय के आदेश को चुनौती देने के लिए विशेष इजाजत लेकर पिटीशन फाइल किया है।

4. पिटीशनरों की ओर से उपस्थित होते हुए श्री एम० एन० फड़के ने निम्नलिखित दलीलें पेश की हैं—

1. विभक्त अवयस्क पुत्र, 'कौटुम्बिक एकक' का सदस्य नहीं है और इसी कारण से उसकी सम्पत्ति उसके पिता की सम्पत्ति के साथ नहीं जोड़ी जा सकती।

2. कुछ भू-खण्ड दुर्भिक्षोन्मुख क्षेत्र में आते हैं और इसी कारण से पिटीशनर को 12-1/2 प्रतिशत का फायदा मिलना चाहिए।

3. जैसा कि उच्च न्यायालय ने निर्वचन किया था, धारा 3(च) के अधीन 'कौटुम्बिक एकक' की जो परिभाषा दी गई है, उससे संविधान के अनुच्छेद 14 का भी अतिक्रमण होता है।

4. बाहरियों को विभिन्न अन्तरण विलेखों के अधीन पिटीशनरों ने जो भूमि अन्तरित की है, जिनके कब्जे में वह भूमि आई थी, उसे पिटीशनरों की जोत में शामिल नहीं किया जा सकता।

5. (क) चूंकि आन्ध्र प्रदेश अधिनियम की धारा 3(च) तथा उसके स्पष्टीकरण से संविधान के अनुच्छेद 21 का उल्लंघन होता है, इसलिए उससे संविधान के आधारभूत ढांचे का भी अतिक्रमण होता है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

5. (ख) जीवन और जीविका का चोली-दामन का साथ है और इसी कारण से भूमि के अवयस्क पुत्रों को (उससे) वंचित करने के कार्य से संविधान के अनुच्छेद 21 का उल्लंघन होता है जिसके अधीन न केवल अस्तित्व के सम्बन्ध में, बल्कि गरिमा के साथ जीवन जीने के सम्बन्ध में भी अनुध्यात है ।

5. पक्षकारों के काउन्सेल ने जो दलील दी थी, वह 23 मार्च, 1983 को समाप्त हो गई और उस समय हमने अपना निर्णय उद्घोषित किया था। तथापि श्री फड़के को लिखित दलीलें पेश करने के लिए दो सप्ताह का समय दिया गया था और उपर्युक्त मामले में दुर्भिक्षोन्मुख क्षेत्रों के सम्बन्ध में अधिसूचना फाइल करने के लिए तीन सप्ताह का समय दिया गया था। लिखित दलीलें पेश करने के लिए जो समय दिया गया था, उसे 14 अप्रैल 1983 तक बढ़ा दिया गया। तथापि पिटीशनर दुर्भिक्षोन्मुख क्षेत्र के संबंध में निश्चित अधिसूचना प्राप्त नहीं कर सके, इसीलिए उन्होंने अपनी लिखित दलीलों में इस समय उक्त दलील वापस लेने की अनुज्ञा चाही है और साथ-साथ इस बात की स्वतन्त्रता भी चाही है कि वे समुचित प्राधिकारी के समक्ष उसे उस समय पेश कर सकें जब कभी भी उक्त अधिसूचना उपलभ्य हो ।

6. पिटीशनरों के विद्वान् काउन्सेल द्वारा उठाए गए मुद्दे के सम्बन्ध में प्राप्त करने के पूर्व, यह बात बताई जा सकती है कि आन्ध्र प्रदेश विधान-मण्डल ने पहली जनवरी, 1973 को आन्ध्र प्रदेश अधिनियम अधिनियमित किया था। उसके तुरन्त बाद आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के समक्ष विभिन्न आधारों पर उसकी सांविधानिक विधिमान्यता को चुनौती दी गई थी। किन्तु उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ ने उस चुनौती को अस्वीकार कर लिया था और उसने 1 अप्रैल, 1973 को यह अभिनिर्धारित किया था कि वह अधिनियम सांविधानिक रूप से विधिमान्य है। तथापि अधिनियम को कार्यान्वित करने के लिए प्रभावी कदम पहली जनवरी, 1975 तक नहीं उठाए जा सके ।

7. आन्ध्र प्रदेश सीलिंग आफ एग्रीकल्चरल होल्डिंग्स (अमेंडमेंट) ऐक्ट, [आन्ध्र प्रदेश कृषि जोतों पर अधिकतम सीमा (संशोधन) अधिनियम] 1977 पहली जनवरी, 1975 से भूतलक्षी प्रभाव से अधिनियमित किया गया जिसमें अन्य उपबन्धों के बीच धारा 4क अन्तःस्थापित की गई थी। जैसे ही संशोधन अधिनियम पारित किया गया, वैसे ही भूमि-धारकों ने इस न्यायालय में आन्ध्र प्रदेश अधिनियम की सांविधानिक विधिमान्यता को

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पुनः चुनौती देते हुए रिट पिटीशन फाइल करके मुकदमेबाज़ी का दूसरा दौर आरम्भ किया। जो आधार अपनाए गए थे, उनमें से एक यह था कि नगर भूमि (अधिकतम सीमा और विनियमन) अधिनियम, 1976 (जिसे इसमें इसके पश्चात् केन्द्रीय अधिनियम कहा गया है) को अधिनियमित किए जाने के कारण आन्ध्र प्रदेश अधिनियम शून्य और अप्रवर्तनीय हो गया है। इन मामलों में जो अन्य आधार अपनाया गया था वह यह था कि 'कौटुम्बिक एकक' की परिभाषा से संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण हुआ है। तथापि अनुच्छेद 14 के अधीन विभेद का जो आधार था, उसे न्यायालय ने अस्वीकार कर दिया। आन्ध्र प्रदेश अधिनियम के उपबन्धों के निर्वचन को अन्तर्ग्रस्त करने वाले कतिपय अन्य प्रश्न इन्हीं रिट पिटीशनों में उठाए गए किन्तु इस न्यायालय ने **थुमाटी वेंकय्या बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया था कि भूमि-धारक फालतू भूमि अवधारित करने वाले आदेशों के विरुद्ध स्वयं द्वारा फाइल की गई अपीलों में अन्य प्रश्न उठा सकते हैं। इस न्यायालय ने सम्पूर्ण आन्ध्र प्रदेश अधिनियम को अविधिमान्य नहीं ठहराया किन्तु केवल उन उपबन्धों को ही अविधिमान्य ठहराया जो कि केन्द्रीय अधिनियम के उपबन्धों के विरुद्ध पाए गए थे।

8. भूमि-धारकों की ओर से आन्ध्र प्रदेश अधिनियम के किन्हीं उपबंधों की सांविधानिक विधिमान्यता को चुनौती देने की यह तीसरी कोशिश है।

9. श्री फड़के ने जो मुद्दे पेश किए हैं, वे सभी उच्चतम न्यायालय के इस या उस विनिश्चय की परिधि के भीतर आ जाते हैं। तथापि श्री फड़के ने उन मामलों का प्रभेद इस आधार पर करने की कोशिश की कि ऐसे विनिर्दिष्ट अभिवाकों पर, जिन्हें उठाने की इस पिटीशन में उसने कोशिश की है, उन विनिश्चयों में वास्तव में विचार नहीं किया गया है और इसी कारण से उसे यह दलील पेश करने से प्रविरत नहीं किया जा सकता जो कि उन विनिश्चयों के न रहने के कारण स्पष्ट थे। हम प्रथम आधार को पहले लेंगे।

10. **थुमाटी वेंकय्या वाले मामले**[1] में इस न्यायालय ने, जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, यह स्पष्ट किया था कि वह आन्ध्र प्रदेश अधिनियम की सांविधानिक विधिमान्यता की ही परीक्षा करेगा और भूमि-धारक फालतू भूमि का अवधारण करने वाले आदेशों के विरुद्ध उनके द्वारा फाइल किए गए पिटीशनों में अन्य प्रश्नों के सम्बन्ध में विवाद उठा सकते

[1] [1981] 2 उम० नि० प० 1114=[1980] 3 एस०सी०आर० 1143.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हैं। पूर्वोक्त मत के होते हुए, न्यायालय ने इस प्रश्न पर विचार किया कि क्या विभक्त अवयस्क पुत्र 'कौटुम्बिक एकक' के सदस्य के रूप में समझा जाएगा या नहीं समझा जाएगा, जैसा कि न्यायालय द्वारा व्यक्त निम्नलिखित मत से स्पष्ट होगा—

> "भूमि-धारकों की ओर से दी गई अगली दलील यह है कि आन्ध्र प्रदेश अधिनियम के सुसंगत उपबंधों के उचित अर्थान्वयन के आधार पर, कोई विभक्त अवयस्क पुत्र उस अधिनियम की धारा 3(च) में यथा-परिभाषित कौटुम्बिक एकक में सम्मिलित नहीं किया जा सकता है।"

और अन्त में न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया—

> "अतः हम यह समझने में असमर्थ हैं कि किसी विभक्त अवयस्क पुत्र को कौटुम्बिक एकक से किस प्रकार अपवर्जित किया जा सकता है। ऐसा करना आन्ध्र प्रदेश अधिनियम की धारा 3(च) और 4 के उपबन्धों की अवहेलना करना होगा।"

11. इस प्रक्रम में अधिनियम के कतिपय तात्विक उपबन्धों के प्रति निर्देश करना इस दृष्टि से सुसंगत होगा जिससे कि इन दलीलों को समझा जा सके—

> *"3. इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो—
>
> (च) 'कौटुम्बिक एकक' से अभिप्रेत है—
>
> (i) किसी ऐसे व्यष्टि की दशा में जिसका पति या जिसकी पत्नी अथवा जिसके पति या जिसकी पत्नियां हैं, ऐसा व्यष्टि, उसका पति या उसकी पत्नी अथवा उसके पति या उसकी पत्नियां और उनके

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

> "3. In this Act, unless the context otherwise requires—
>
> (f) 'family unit' means—
>
> (i) in the case of an individual who has a spouse or spouses, such individual, the spouse

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अवयस्क पुत्र तथा उनकी अवयस्क अविवाहित पुत्रियां; यदि कोई हों;

(ii) ऐसे व्यष्टि की दशा में जिसका पति या जिसकी पत्नी नहीं है, ऐसा व्यष्टि और उसके अवयस्क पुत्र और अवयस्क अविवाहित पुत्रियां;

(iii) ऐसे व्यष्टि की दशा में जो विच्छिन्न-विवाह पति है और जिसने पुनर्विवाह नहीं किया है, ऐसा व्यष्टि और उसके अवयस्क पुत्र तथा अविवाहित अवयस्क पुत्रियां, चाहे वे उसकी अभिरक्षा में हों या न हों; और

(iv) जहां कोई व्यष्टि तथा उसका पति या उसकी पत्नी, दोनों की मृत्यु हो चुकी हो, वहां उनके अवयस्क पुत्र और अविवाहित अवयस्क पुत्रियां।

स्पष्टीकरण—जहां कोई अवयस्क पुत्र विवाहित हो, वहां उसकी पत्नी, तथा उनकी संतानें यदि कोई हों, भी उस कौटुम्बिक एकक के सदस्य समझे जाएंगे जिसका कि वह अवयस्क पुत्र सदस्य है।"

---

or spouses and their minor sons and their unmarried minor daughters, if any;

(ii) in the case of an individual who has no spouse such individual and his or her minor sons and unmarried minor daughters;

(iii) in the case of an individual who is a divorced husband and who has not remarried, such individual and his minor sons and unmarried minor daughters, whether in his custody or not; and

(iv) where an individual and his or her spouse are both dead, their minor sons and unmarried minor daughters.

Explanation—Where a minor son is married his wife and their off-spring, if any, shall also be deemed to be members of the family unit of which the minor son is a member."

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

12. धारा 3(ण) में 'व्यक्ति' की परिभाषा इस प्रकार की गई है उसके अन्तर्गत अन्य बातों के साथ व्यष्टि और कौटुम्बिक एकक आते हैं। धारा 10 ऐसी मुख्य धारा है जो कि भूमि की जोत पर अधिकतम सीमा यह उपबन्ध करते हुए अधिरोपित करती है कि यदि किसी व्यक्ति की जोत की सीमा अधिकतम सीमा क्षेत्र से अधिक है, तो ऐसा व्यक्ति अधिक धृत भूमि को अभ्यर्पित करने के दायित्वाधीन होगा। अतः यदि कोई व्यष्टि या कौटुम्बिक एकक अधिकतम सीमा क्षेत्र से अधिक भूमि धारण करता है, तो उसे फालतू भूमि राज्य सरकार को अभ्यर्पित करनी होगी। अधिकतम सीमा क्षेत्र के विस्तार के बारे में आन्ध्र प्रदेश अधिनियम की धारा 4(1) में उपबंधित है जो कि निम्नलिखित रूप में है—

*"4(1) पांच से अनधिक सदस्यों के कौटुम्बिक एकक की दशा में, अधिकतम सीमा-क्षेत्र एक मानक जोत के बराबर भूमि होगा।

(2) पांच सदस्यों से अधिक के कौटुम्बिक एकक की दशा में, अधिकतम सीमा-क्षेत्र एक मानक जोत के बराबर भूमि तथा पांच से अधिक होने वाले ऐसे प्रत्येक सदस्य के लिए एक मानक जोत के 1/5 भाग के बराबर अतिरिक्त भूमि होगा किन्तु ऐसा इस प्रकार होगा कि अधिकतम सीमा-क्षेत्र दो मानक जोतों से अधिक नहीं होगा।

(3) ऐसे प्रत्येक व्यष्टि की दशा में जो कि कौटुम्बिक एकक का सदस्य न हो और किसी अन्य व्यक्ति की दशा में अधिकतम सीमा-

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

"4(1) The ceiling area in the ease of a family unit consisting of not more than five members shall be an extent of land equal to one standard holding.

(2) the ceiling area in the case of a family unit consisting of more than five members shall be an extent of land equal to one standard holding plus an additional extent of one-fifth of one standard holding for every such member in excess of five, so however, that the ceiling area shall not exceed two standard holdings.

(3) The ceiling are in the case of every individual who is not a member of a family unit, and in the case

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

क्षेत्र एक मानक जोत के बराबर भूमि होगा।

स्पष्टीकरण---कौटुम्बिक एकक की दशा में, अधिकतम सीमा-क्षेत्र कौटुम्बिक एकक के प्रत्येक सदस्यों द्वारा धारित भूमि के कुल योग को लागू किया जाएगा।"

13. इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाएगा कि अधिकतम सीमा-क्षत्र किसी ऐसे व्यष्टि की दशा में जो कि कौटुम्बिक एकक का सदस्य नहीं है, एक मानक जोत के बराबर है और उसी प्रकार से ऐसे कौटुम्बिक एकक की दशा में जिसमें पांच से अनधिक सदस्य हों, अधिकतम सामा-क्षेत्र वही है। किन्तु यदि कौटुम्बिक एकक में पांच सदस्यों से अधिक व्यक्ति हों, तो अधिकतम सीमा-क्षेत्र कौटुम्बिक एकक के प्रत्येक अतिरिक्त सदस्य के लिए एक मानक जोत के 1/5 के बराबर बढ़ा दिया जाएगा। किन्तु वह दो मानक जोतों की अधिकतम सीमा के अध्यधीन रहेगा। धारा 4 में जोड़े गए स्पष्टीकरण को देखते हुए कौटुम्बिक एकक के सभी सदस्यों द्वारा धारित भूमि कौटुम्बिक एकक के जोत की संगणना करने के प्रयोजनार्थ जोड़ दी जाएगी। अतः यह स्पष्ट है कि जहां कौटुम्बिक एकक में पिता, माता और अवयस्क पुत्र और पुत्रियां हों, वहां इन व्यक्तियों द्वारा धारित भूमि को साथ-साथ जोड़ दिया जाएगा और उसके बाद अधिकतम सीमा-क्षेत्र सकल जोत को लागू किया जाएगा। विभक्त अवयस्क पुत्र और अविभक्त अवयस्क पुत्र के बीच कौटुम्बिक एकक की परिभाषा में कोई भी प्रभेद नहीं किया गया है। दोनों का आधार एक ही है और विभक्त अवयस्क पुत्र उसी प्रकार से कौटुम्बिक एकक का सदस्य होता है जिस प्रकार कि अविभक्त अवयस्क पुत्र। कौटुम्बिक एकक से अविभक्त कुटुम्ब का भ्रम नहीं होना चाहिए।

14. श्री फड़के की दलील यह है कि जैसा कि आन्ध्र प्रदेश अधिनियम की धारा 3 में दिया गया है, विभिन्न पदों की परिभाषा इन शब्दों से आरम्भ होती है "इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो"। विद्वान् काउन्सेल के मतानुसार 'संदर्भ से अन्यथा' इस बात की अपेक्षा करता है कि धारा 3(च) में आए हुए 'अवयस्क' शब्द की परिधि के भीतर

---

of an other person shall be an extent of land equal to one standard holding.

Explanation—In the case of a family unit, the ceiling area shall be applied to the aggregate of the lands held by all the members of the family unit."

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विभक्त अवयस्क पुत्र नहीं आ सकता। विद्वान् काउन्सेल ने यह दलील दी कि धारा 4(2) में कौटुम्बिक एकक की अधिकतम सीमा-क्षेत्र के बारे में उपबन्ध किया गया है और धारा 4(3) में किसी ऐसे व्यष्टि के जो कि कौटुम्बिक एकक का सदस्य नहीं है, अधिकतम सीमा-क्षेत्र के बारे में उपबंध किया गया है। काउन्सेल ने यह निवेदन किया है कि विभक्त अवयस्क पुत्र व्यष्टि नहीं होता और कौटुम्बिक एकक का सदस्य नहीं रह जाता, क्योंकि विभाजन का प्रभाव न केवल सम्पत्ति का विभाजन होता है, बल्कि अविभक्त कुटुम्ब की सदस्यता से पूर्णतः सम्बन्ध-विच्छेद होता है। इस प्रकार ऐसा अवयस्क जो कि विभाजन-विलेख के अधीन विभक्त हो गया है, कौटुम्बिक एकक का सदस्य नहीं हो सकता, बल्कि वह व्यष्टि हो जाता है।

15. काउन्सेल ने अपनी दलील के समर्थन में आन्ध्र प्रदेश अधिनियम की धारा 5 के खण्ड (3) और (4) के प्रति निर्देश किया। खण्ड (3) में ऐसे व्यष्टि की जोत के सम्बन्ध में उपबन्ध किया गया है जो कि कौटुम्बिक एकक का सदस्य नहीं है, किन्तु जो अविभक्त कुटुम्ब का सदस्य है, और वह इस प्रकार है—

> *"(3) किसी ऐसे व्यष्टि की जो कि कौटुम्बिक एकक का सदस्य नहीं है, किन्तु जो अविभक्त कुटुम्ब का सदस्य है, जोत की संगणना करने में अविभक्त कुटुम्ब द्वारा धारित भूमि में ऐसे व्यष्टि का हिस्सा हिसाब में लिया जाएगा और पृथक् रूप से उसके द्वारा धारित किन्हीं भूमियों, यदि कोई हों, के साथ जोड़ दिया जाएगा और इस प्रयोजन के लिए ऐसे हिस्से के बारे में यह समझा जाएगा कि वह उस भूमि की सीमा है जो कि ऐसे व्यष्टि को उस दशा में आबंटित की गई होती, यदि अविभक्त कुटुम्ब द्वारा धारित भूमियों का विभाजन हो गया होता।"

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

> "(3) In computing the holding of an individual who is not a member of a family unit, but is a member of a joint family, the share of such an individual in the lands held by the joint family shall be taken into account and aggregated with the lands, if any, held by him separately and for this purpose, such share shall be deemed to be the extent of land which would be allotted to such individual had there been a partition of the lands held by the joint family."

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

खण्ड (4) में कौटुम्बिक एकक के ऐसे सदस्य के बारे में उपबन्ध किया गया है जो कि अविभक्त कुटुम्ब का ही सदस्य है और वह निम्नलिखित रूप में है—

> *"(4) कौटुम्बिक एकक के ऐसे सदस्य की जो कि अविभक्त कुटुम्ब का भी सदस्य है, जोत की संगणना करने में, अविभक्त कुटुम्ब द्वारा धारित भूमियों में ऐसे सदस्य का हिस्सा हिसाब में लिया जाएगा और पृथक् रूप से उसके द्वारा धारित किन्हीं भूमियों के साथ, यदि कोई हों तो, जोड़ दिया जाएगा और इस प्रयोजन के लिए ऐसे हिस्से के बारे में यह समझा जाएगा कि वह ऐसी भूमि की सीमा है जो कि ऐसे सदस्य को उस दशा में आबंटित की गई होती, यदि अविभक्त कुटुम्ब द्वारा धारित भूमियों का विभाजन हो गया होता।"

इन खण्डों के आधार पर पिटीशनरों की ओर से यह दलील देने की कोशिश की गई है कि अविभक्त कुटुम्ब की जोत की संगणना में विधिक सत्ता के रूप में मान्यता दी गई है। धारा 3(च) के खण्ड (iv) के प्रति निर्देश किया गया है जिसमें यह उपबन्ध किया गया है कि जहां कोई व्यष्टि और उसका पति या उसकी पत्नी दोनों ही मृत हैं, वहां उनके अवयस्क पुत्र और अविवाहित पुत्रियां कौटुम्बिक एकक की संघटक होंगे। श्री फड़के की दलील यह है कि धारा 3(च) के खण्ड (iv) को देखते हुए, एक अनाथ, कौटुम्बिक एकक गठित करता है और वह उसका सदस्य होता है और इन उपबन्धों की रोशनी में, यदि जोत की घोषणा करने के विषय में धारा 8 के स्पष्टीकरण 1 को देखा जाए, तो यह बात स्पष्ट हो जाएगी कि उसमें यह उपबन्ध किया गया है कि "जहां कि भूमि ऐसे अवयस्क द्वारा जो कि कौटुम्बिक एकक का सदस्य नहीं है, धारित है या धारित समझी गई है, वहां वह घोषणा उसके

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

> "(4) In computing the holding of the member of a family unit who is also a member of a joint family, the share of such member in the lands held by the joint family shall be taken into account and aggregated with the lands, if any, held by him separately and for this purpose, such share shall be deemed to be the extent of land which would be allotted to such member, had there been a partition of the lands held by the joint family."

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

संरक्षक द्वारा कि जाएगी"। स्पष्टीकरण-2 में कौटुम्बिक एकक द्वारा धारित भूमि के संबंध में उपबन्ध किया गया है और कौटुम्बिक एकक की ओर से घोषणा जो करनी होती है, वह ऐसे कौटुम्बिक एकक की सम्पत्ति का प्रबन्ध करने वाले व्यक्ति द्वारा करनी होती है। काउन्सेल का कथन यह है कि चूंकि ऐसा अवयस्क कौटुम्बिक एकक का सदस्य नहीं होता, इसलिए वह अविभक्त कुटुम्ब का विभक्त सदस्य ही रह सकता है।

16. प्रत्यर्थी-राज्य के विद्वान् काउन्सेल श्री राम रेड्डी ने कनुरु वेंकटकृष्ण राव बनाम प्राधिकृत भूमि सुधार अधिकारी, बांद्र और अन्य[1] वाले मामले का अपनी इस दलील के समर्थन में अवलम्ब लिया कि विभक्त अवयस्क पुत्र कौटुम्बिक एकक का उतना ही सदस्य होता है जितना कि अविभक्त अवयस्क पुत्र। उस मामले में विद्वान् काउन्सेल की निश्चित दलील यह थी कि चूंकि कौटुम्बिक एकक की जोत को उपदर्शित करने के लिए अधिनियम में कोई भी उपबन्ध नहीं किया गया है, इसलिए अधिनियम के अन्य उपबन्ध कौटुम्बिक एकक के संबंध में लागू नहीं होंगे। उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था—

> "'व्यक्ति' पद की परिभाषा के अनुसार, कौटुम्बिक एकक भी व्यक्ति होता है। विधानमण्डल का अधिनियम के सभी उपबन्धों के सम्बन्ध में यह आशय था कि वे उसकी परिभाषा के अनुसार 'व्यक्ति' पद के अन्य प्रवर्गों, जैसे कौटुम्बिक एकक, को लागू होते हैं। अतः विधानमण्डल का कौटुम्बिक एकक के सम्बन्ध में यह आशय था कि वह भी अधिकतम सीमा और उसके अतिरिक्त अधिक भूमि, यदि कोई हो तो, के अवधारण के सम्बन्ध में अधिनियम के उपबन्धों को लागू करने के प्रयोजनार्थ जोत है। यह सच है कि वह उपबन्ध इस सम्बन्ध में विनिर्दिष्ट नहीं है कि ऐसी भूमि कौटुम्बिक एकक की जोत गठित करती है। किन्तु धारा 4 के स्पष्टीकरण में जो बात कही गई थी, उससे यह स्पष्ट है कि विधानमण्डल का कौटुम्बिक एकक की जोत के सम्बन्ध में क्या अभिप्राय था। इसकी विवक्षा बिल्कुल ही स्पष्ट है कि कौटुम्बिक एकक की जोत कौटुम्बिक एकक के सभी सदस्यों द्वारा धारित सभी भूमियों का जोड़ होता है ....।

---

[1] (1978) आन्ध्र ला जर्नल खंड 2, 114.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

स्वयं स्पष्टीकरण के जरिए विधानमण्डल का आशय वह उपबन्ध करना था।"

17. उसी प्रकार का प्रश्न 1983 की सिविल अपील सं० 4264 : महाराष्ट्र राज्य बनाम व्यासेन्द्र[1] वाले मामले में जो कि 3 मई, 1983 को खण्ड न्यायपीठ ने विनिश्चित किया था, इस न्यायालय के समक्ष अभी हाल में उत्पन्न हुआ था। महाराष्ट्र कृषि भूमि (जोतों पर अधिकतम सीमा) अधिनियम, 1961 की धारा 4 में 'कौटुम्बिक एकक' के सम्बन्ध में और उसके द्वारा धारित भूमि के सम्बन्ध में उपबन्ध किया गया है। इस प्रश्न पर विचार करते हुए माननीय मुख्य न्यायाधिपति ने न्यायालय की ओर से निर्णय देते हुए यह मत व्यक्त किया था—

"यह परिस्थिति कि कौटुम्बिक एकक के संघटक सदस्य द्वारा धारित भूमि पृथक् सम्पत्ति तथा स्त्रीधन सम्पत्ति है, उस अधिकतम क्षेत्र का अवधारण करने के प्रयोजनार्थ जो कौटुम्बिक एकक बनाए रख सकता है, किसी प्रकार से कोई भी महत्व का विषय नहीं है। प्रत्यर्थी, उसकी पत्नी उसके अवयस्क पुत्र और अवयस्क अविवाहित पुत्रियां, यदि कोई हों तो, सभी कौटुम्बिक एकक के संघटक सदस्य हैं और ऐसे अधिकतम क्षेत्र का जो कि कौटुम्बिक एकक को अनुज्ञेय है, अवधारण करने के प्रयोजनार्थ उनके द्वारा धारित सभी भूमियों को एक ही साथ रखना होगा। उनके द्वारा धारित भूमि में उनके हित की प्रकृति या स्वरूप उस अधिकतम क्षेत्र की जो कि कौटुम्बिक एकक बनाए रख सकेगा, संगणना करने के लिए असंगत हैं।"

अतः हमारी राय में स्पष्टीकरण के साथ-साथ कौटुम्बिक एकक की परिभाषा से तनिक भी सन्देह नहीं रह जाता है कि विभक्त अवयस्क पुत्र कौटुम्बिक एकक का उतना ही सदस्य रहता है जितना कि अपने पिता के साथ अविभक्त पुत्र रहता है।

18. इसके बाद हम दुर्भिक्षोन्मुख क्षेत्र से सम्बन्धित दूसरे आधार पर विचार करेंगे। प्रारम्भ में ही यह बात बताई जा सकती है कि उच्च न्यायालय के समक्ष ऐसा कोई अभिवाक् नहीं किया गया। पिटीशनरों ने आन्ध्र प्रदेश अधिनियम की धारा 5(iv) को देखते हुए दुर्भिक्षोन्मुख क्षेत्र में आने वाली भूमि मद्धे $12\frac{1}{2}$ प्रतिशत का लाभ प्राप्त करने की कोशिश की है।

[1] [1983] 3 उम० नि० प० 824=ए० आई० आर० 1983 एस० सी० 632.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

धारा 5(iv) में यह उपबन्ध किया गया है—

*"5(iv) किसी ऐसे क्षेत्र में जिसे सरकार द्वारा अधिसूचना निकालकर दुर्भिक्षोन्मुख क्षेत्र घोषित किया गया है, स्थित किसी शुष्क भूमि की दशा में मानक जोत की सीमा—

(क) नीचे दी गई सारणी के वर्ग छ या वर्ग ज के अधीन आने वाली किसी भी शुष्क भूमि की दशा में साढे बारह प्रतिशत के बराबर बढ़ा दी जाएगी;

(ख) उक्त सारणी के वर्ग 'झ' वर्ग 'ञ' या वर्ग 'ट' के अधीन आने वाली किसी भी शुष्क भूमि की दशा में बीस प्रतिशत के बराबर बढ़ा दी जाएगी।"

धारा 5 के खण्ड (iv) के उपबन्ध लागू करने की दृष्टि से पिटीशनरों को यह साबित करना होगा कि सरकार ने अधिसूचना द्वारा किसी विशिष्ट क्षेत्र को दुर्भिक्षोन्मुख क्षेत्र घोषित किया है। पिटीशनरों को अधिसूचना पेश करने का अवसर दिया गया था जो कि उन्होंने नहीं किया है और अब उन्होंने इस बात की कोशिश की है कि उन्हें विनिर्दिष्ट अधिसूचना पेश करने का अवसर तब दिया जाए जब भी वे उसे उपाप्त करने में समर्थ हो सकें। हम पिटीशनरों को अपेक्षित अधिसूचना पेश करने के लिए जबकि वे चाहें, बिना शर्त इजाजत नहीं देना चाहते। वास्तव में, उन्हें उच्च न्यायालय के समक्ष उस प्रभाव की दलील पेश करनी चाहिए थी कि उन्हें आवश्यक अधिसूचना पेश करनी चाहिए थी किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। इस न्यायालय के

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

"5(iv) In the case of any dry land situated in any area declared by the Government by notification to be a drought prone area, the extent of standard holding shall be increased—

(a) by twelve and a half per centum, in the case of any dry land falling under Class G or Class H of the Table below;

(b) by twenty per centum, in the case of any dry land falling under Class I, Class J or Class K of the said Table."

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

समक्ष भी वे सरकार द्वारा निकाली गई विनिर्दिष्ट अधिसूचना पेश करने में समर्थ नहीं हुए। इन परिस्थितियों में, दलील के लिए आवश्यक आधार के अभाव में उन्हें इस मुद्दे पर जोर देने की इजाजत नहीं दी जा सकती। हम उनके इस निवेदन को भी स्वीकार नहीं करना चाहते कि जब कभी भी वे अपनी इच्छा के अनुसार अधिसूचना पेश करना चाहें, उन्हें अपेक्षित सरकारी अधिसूचना पेश करने के लिए इजाजत दी जाए।

19. अब हम इस तीसरे आधार पर विचार करेंगे, कि जैसा कि उच्च न्यायालय ने निर्वचन किया था, धारा 3(च) के अधीन कौटुम्बिक एकक की परिभाषा से संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण होता है। यह मुद्दा सेठ नन्द लाल और एक अन्य बनाम हरियाणा राज्य और अन्य[1] वाले मामले में किए गए इस न्यायालय के विनिश्चय की परिधि के भीतर आता है और इस न्यायालय ने इस दलील को प्रथमतः इस आधार पर अस्वीकार कर दिया था कि उसे संविधान के अनुच्छेद 31क और 31ख के अधीन और अन्य बातों के कारण भी संरक्षा प्राप्त है, जैसा कि निम्नलिखित मत से स्पष्ट होता है—

> "यह कहा गया है कि किसी व्यष्टि की बजाय कुटुम्ब को इकाई मानना इसलिए आवश्यक समझा गया था कि उससे असदभाविक विभाजन और अन्तरण करके विधि के अपवंचन के क्षेत्र को कम किया जा सकेगा, क्योंकि ऐसे संव्यवहार प्रायः कुटुम्ब के सदस्यों के पक्ष में ही किए जाते हैं और यह कि सामान्य तौर पर हमारे देश में ग्रामीण कृषि-व्यवस्था में कुटुम्ब प्रमुख इकाई होता है और समस्त भूमि कुटुम्ब की एक ही जोत होती है और इसलिए अधिकतम सीमा भूमि पर व्यक्तिगत रूप से कृषि करने की कुटुम्ब की क्षमता से सम्बन्धित होनी चाहिए। यह कहा गया है कि इन सब पहलुओं को ध्यान में रखते हुए कुटुम्ब की संकल्पना को कृत्रिम रूप से परिभाषित किया गया था और अधिकतम सीमा नियत करने के लिए दोहरा मानदण्ड—एक प्रमुख इकाई के लिए और दूसरा कुटुम्ब के साथ रहने वाले वयस्क पुत्र के लिए अपनाया गया था। वस्तुतः धारा 4(3) की तरह के उपबन्ध का, जिसमें उस दशा में किसी कुटुम्ब के अनुज्ञेय क्षेत्र में वृद्धि करने का उपबन्ध किया गया है जब कि वयस्क पुत्रों के स्वामित्वाधीन कोई अपनी भूमियां न हों

[1] [1981] 2 उम० नि० प० 1186–1215=[1980] 3 एस० सी० आर 1181.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

और वे कोई अपनी भूमियां धारण न करते हों, अपितु वे कुटुम्ब के साथ रह रहे हों, एक गुण यह है कि इससे प्रत्येक कुटुम्ब की दशा में चाहे उसे कोई भी स्वीय विधि लागू होती हो, ऐसी वृद्धि सुनिश्चित की गई है तथा स्वीय विधि की विभिन्न पद्धतियों से शासित होने वाले वयस्क पुत्रों के बीच कोई प्रभेद नहीं किया गया है। जहां तक कुटुम्ब से पृथक् रहने वाले अवयस्क पुत्र का सम्बन्ध है, उसे ठीक ही एक पृथक् इकाई माना गया है जिसे अधिनियम की धारा 9 के अधीन अपनी जोत की बाबत एक पृथक् घोषणा फाइल करनी होगी और चूंकि वह पृथक् रह रहा है, इसलिए वह कुटुम्ब की भूमि को निजी रूप से जोतने में कुटुम्ब की क्षमता में कोई योगदान नहीं करेगा। अतः कुटुम्ब की प्रमुख इकाई के अनुज्ञेय क्षेत्र में वृद्धि करने लिए कोई औचित्य नहीं है। काउन्सेल ने यह कहा है कि कुटुम्ब के साथ रहने वाली अविवाहित पुत्री या पुत्रियों के मामले पर संभवतः इस दृष्टि से विचार किया गया था कि ऐसे मामले बहुत कम होंगे और यह उपधारणा की गई थी कि सामान्य अनुक्रम में पुत्री का विवाह हो जाएगा और वह अपने पति की इकाई का सदस्य बन जाएगी और इसलिए कुटुम्ब के साथ रहने वाली प्रत्येक वयस्क पुत्री के लिए अतिरिक्त भूमि देने के लिए कोई पृथक् उपबन्ध नहीं किया गया था। पेश की गई सामग्री और सांविधानिकता के बारे में प्रारम्भिक उपधारणा के आधार पर हमें इस निवेदन में काफी बल प्रतीत होता है। अतः किसी अधिनियमिति को, विशेष रूप से ऐसी अधिनियमिति को जो कि कृषि सुधार के सम्बन्ध में हो और जिसे धनी और निर्धनों के बीच समता लाने या जिसे उनके बीच असमता को कम करने के स्पष्ट प्रयोजन के लिए अधिनियमित किया गया हो, केवल इस कारण से कि उसमें उस बाबत कोई उपबन्ध नहीं किया गया है जिसे कि एक आपवादिक मामला या बहुत कम घटित होने वाली आकस्मिकता माना गया हो, इस आधार पर अभिखण्डित करना सम्भव नहीं है कि उससे संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण होता है।"

हम न्यायालय के इस मत से पूरी तरह सहमत हैं।

20. अब हम चौथे आधार पर विचार करेंगे। पिटीशनरों के विद्वान् काउन्सेल की दलील यह है कि विभिन्न विलेखों के अधीन बाहरी व्यक्तियों

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के पक्ष में पिटीशनरों द्वारा अन्तरित भूमियां उनकी जोतों में शामिल नहीं की जा सकती थीं, विशेषकर जबकि वे अन्तरण आन्ध्र प्रदेश अधिनियम की धारा 7 के उपबन्धों के विरुद्ध नहीं किए गए थे, क्योंकि वे अन्तरण 4 जनवरी, 1971 के काफी पहले ही कर दिए गए थे। यह मुद्दा पुनः आन्ध्र प्रदेश राज्य बनाम मोहम्मद अशर्फुद्दीन[1] वाले मामले में, जिसमें हम में से एक न्यायाधिपति शामिल थे, किए गए इस न्यायालय के विनिश्चय की परिधि के भीतर आता है। उस मामले में न्यायालय को आन्ध्र प्रदेश अधिनियम की धारा 3(झ) में यथा-परिभाषित 'धारित' (हैल्ड) अभिव्यक्ति का अर्थान्वयन करना पड़ा था। वह इस प्रकार है—

*"3(झ) 'जोत' से किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा,—

(i) स्वामी के रूप में;

(ii) सीमित स्वामी के रूप में;

(iii) भोग बन्धक के रूप में;

(iv) किराएदार के रूप में;

(v) जिसके कब्जे में सशर्त विक्रय बन्धक या भूमि के विक्रय के लिए की गई संविदा के भागतः अनुपालन में या अन्यथा या इनमें से एक या अधिक की हैसियत से हो,

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

"3(i) 'holding' means the entire land held by a person,—

(i) as a owner;

(ii) as a limited owner;

(iii) as a usufructuary mortgagee;

(iv) as a tenant;

(v) who is in possession by virtue of a mortgage by conditional sale or through part performance of a contract for the sale of land or otherwise or in one or more of such capacities;

[1] [1983] 1 उम० नि० प० 464 468=ए० आई० आर० 1982 एस० सी० 913.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

धारित समस्त भूमि, और 'भूमि धारित करना' अभिव्यक्ति का अर्थान्वयन तदनुसार किया जाएगा।

स्पष्टीकरण—जहां कोई भूमि एक व्यक्ति द्वारा एक हैसियत से और दूसरे व्यक्ति द्वारा अन्य किसी हैसियत से धारित की जाती है, वहां ऐसी भूमि दोनों व्यक्तियों की जोत में सम्मिलित की जाएगी।"

'धारित' अभिव्यक्ति के सम्बन्ध में विचार करते हुए न्यायालय ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया था—

"'धारित' शब्द की परिभाषा अधिनियम में नहीं दी गई है। इसलिए इस शब्द के लिए हमें शब्दकोश में दिए गए अर्थ का अनुसरण करना होगा। आक्सफोर्ड शब्दकोश में (हैल्ड) 'धारित' शब्द का अर्थ इस प्रकार दिया गया है : कब्जा रखना, स्वामी होना या धारक या किराएदार, काबिज रहना या अधिभोग। इस प्रकार 'धारित' के भीतर स्वामित्व और कब्जा दोनों ही बातें आ जाती हैं और परिभाषा के सन्दर्भ में यह सम्भव नहीं है कि 'धारित' शब्द का अर्थान्वयन केवल कब्जे के अर्थ में किया जाए। उदाहरण के लिए, जहां कोई भूमि स्वामी और किराएदार दोनों द्वारा धारित है या किसी व्यक्ति द्वारा विक्रय की संविदा के अधीन धारित की जाती है; वहां ऐसी जोत को ऐसे समस्त व्यक्तियों की जोत समझा जाएगा। इसलिए स्पष्टतः इसका यह अर्थ है कि कोई स्वामी जिसका वस्तुतः कब्जा नहीं है, उसे भी भूमि का धारक समझा जाएगा। यदि इस निमित्त कोई भी सन्देह रह जाता है, तो उसका 'जोत' पद की परिभाषा से संलग्न स्पष्टीकरण द्वारा समाधान कर दिया जाता है। इस स्पष्टीकरण से स्पष्टतः यह अनुध्यात होता है कि एक ही भूमि भिन्न-भिन्न हैसियत से धारित करने वाले दो भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की जोत हो सकती है। इस परिभाषा को ध्यान में रखते हुए प्रत्यर्थी

---

and the expression 'to hold land' shall be construed accordingly.

Explanation :—Where the same land is held by one person in one capacity and by another person in any other capacity, such land shall be included in the holding of both such persons."

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

निश्चित रूप से वह भूमि स्वामी के रूप में धारण करता है, यद्यपि उसका कब्जा नहीं है।"

21. तथापि यह फड़के की दलील यह है कि चूंकि आन्ध्र प्रदेश अधिनियम की धारा 3(झ) अयुक्तियुक्त है, इसलिए वह अधिकारातीत है। क्योंकि वह अन्तरक तथा अन्तरिती की भूमि नहीं हो सकती और यह कि **मोहम्मद अशर्फुद्दीन**[1] वाले उपर्युक्त मामले पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता है। उस मामले में अधिनियम के विभिन्न सुसंगत उपबन्धों को विचार में लिया गया था और न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला था कि एक ही भमि आन्ध्र प्रदेश अधिनियम की धारा 3(झ) में दी गई 'धारित' पद की परिभाषा को देखते हुए अन्तरक तथा अन्तरिती की हो सकती है और हमारी राय में, उस मामले में जो मत अपनाया गया था वह अधिनियम के उपबन्धों के आधार पर पूर्णत: न्यायोचित है। हम इस दलील को स्वीकार करने में असमर्थ हैं कि इस मामले पर पुनर्विचार की आवश्यकता है।

22. अब हम अन्तिम मुद्दे पर विचार करेंगे किन्तु वह बहुत अमहत्वपूर्ण नहीं है क्योंकि पिटीशनर फालतू भूमि के रूप में अपनी जोत के पर्याप्त प्रभाग से वंचित कर दिए गए हैं और उसके द्वारा जीने के उनके अधिकार को प्रभावित करने वाली उनकी जीविका से उन्हें वंचित कर दिया गया है जिससे संविधान के अनुच्छेद 21 का अतिक्रमण होता है। इस दलील के सम्बन्ध में **मेनका गांधी बनाम भारत संघ**[2] वाले मामले का जोर देकर अवलम्ब लिया गया जिसने संविधान के अनुच्छेद 21 को एक नया आयाम प्रदान किया है। उस मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि जीने का अधिकार न केवल भौतिक अस्तित्व तक ही सीमित है बल्कि उसकी परिधि के भीतर आधारिक मानव गरिमा के साथ जीने का अधिकार भी शामिल है और राज्य इस मूल्यवान अधिकार से किसी व्यक्ति को वंचित नहीं कर सकता। इसके अलावा, यह दलील दी गई कि आन्ध्र प्रदेश अधिनियम धारा 3(च) से जोड़े गए स्पष्टीकरण सहित अनुच्छेद 21 का अतिक्रमण होता है और इसी कारण से उससे संविधान के आधारभूत ढांचे का अतिक्रमण होता है। यह मुद्दा भी इस न्यायालय के दोनों विनिश्चयों की परिधि के भीतर आता है। **सन्त राम बाले**[3] मामले में, जिसमें संविधान के अनुच्छेद 21 के सम्बन्ध में इस न्यायालय के पांच न्यायाधीशों की खण्ड न्यायपीठ ने इस

[1] [1983] 1 उम० नि० प० 464-458=ए० आई० आर० 1982 एस० सी० 913.
[2] [1979] 1 उम० नि० प० 243=[1978] 2 एस० सी० आर० 621.
[3] [1960] 3 एस० सी० आर० 499.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रकार अभिनिर्धारित किया था—

> "यह दलील कि संविधान के अनुच्छेद 21 में 'प्राण' शब्द के अन्तर्गत जीविका आती है, अस्वीकृत करनी होगी।"

ए० बी० नछाने बनाम भारत संघ[1] वाले मामले में तीन न्यायाधीशों की खण्ड न्यायपीठ ने इसी मत को दोहराया था। उस मामले में जीवन बीमा निगम (संशोधन) अधिनियम, 1981 (1981 का 1) और लाइफ इंश्योरेंस कारपोरेशन आफ इण्डिया क्लास III और क्लास IV एम्प्लायज (बोनस एण्ड डियरनेस एलाउन्स) रूल्स [भारतीय जीवन बीमा निगम वर्ग III और वर्ग IV कर्मचारी (बोनस और मंहगाई भत्ता) नियम] 1981 की सांविधानिकता को अनेक आधारों पर जिसमें संविधान का अनुच्छेद 21 शामिल है, चुनौती दी गई थी और न्यायालय ने इस मामले का इस पहलू पर विचार करते हुए निम्नलिखित शब्दों में उपर्युक्त **सन्त राम वाले**[2] मामले का अनुमोदन करते हुए उद्धृत किया था—

> "जहां तक अनुच्छेद 21 का संबंध है, दलील के इस प्रथम प्रतिपादन पर कि उस अनुच्छेद में आए हुए 'प्राण' शब्द में जीविका शामिल है, विचार किया गया था और **सन्त राम वाले**[2] मामले में अस्वीकृत कर दिया गया था।"

तथापि **श्री फड़के** ने मात्र इस आधार पर इन मामलों को एक ओर रख दिया कि वे इस प्रश्न के विनिश्चय के लिए सुसंगत नहीं हैं कि क्या जीने के अधिकार के अन्तर्गत मानव गरिमा के साथ जीने का अधिकार भी शामिल है और उपर्युक्त मेनका गांधी वाले मामले के विषय में यह अवश्य ही समझा जाना चाहिए कि वह इस विषय के संबंध में विधि की सही व्याख्या है। यह दलील कि 'प्राण' के अन्तर्गत संविधान के अनुच्छेद 21 के अर्थान्तर्गत जीविका शामिल है, इन दोनों मामलों में, अस्वीकृत कर दी गई थी और **मेनका गांधी वाले**[3] मामले को उपर्युक्त **सन्त राम वाले**[2] मामले में विचार में नहीं लिया गया था। ये मामले अब भी उस विषय से संबंधित बातों को लागू होते हैं।

23. इसके अलावा पिटीशनरों को फालतू भूमि के रूप में उनकी जोत से वंचित किया गया है। किन्तु वह पद-दलित और गरीब कृषि मजदूरों को राहत देने के प्रयोजनार्थ ही किया गया था। फालतू भूमि राज्य में निहित होगी और राज्य दूसरी ओर गरीब और पद-दलित को उसे देगा और

---

[1] [1982] 3 उम० नि० प० 1121=[1982] 1 एस० सी० सी० 206.

[2] [1960] 3 एस० सी० आर० 499.

[3] [1979] 1 उम० नि० प० 243=[1978] 2 एस० सी० आर० 621.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इस प्रकार से जो वंचित होने का कार्य है, उसे निदेशक तत्वों के अनुच्छेद 39 के अधीन संरक्षा प्राप्त होगी उपर्युक्त मेनका गांधी वाला मामला[1], हमारी राय में, विचाराधीन मुद्दे के विनिश्चय के लिए सुसंगत नहीं है।

24. अन्य मामलों में पिटीशनरों के जो काउन्सेल हैं, उन्होंने श्री फड़के की उसी दलील को अपनाया है।

25. इन मामलों में अन्तर्ग्रस्त प्रश्नों पर अत्यधिक विचार करने के बाद, हमें आन्ध्र प्रदेश अधिनियम के किसी भी उपबंध में कोई भी कमजोरी दिखाई नहीं देती।

26. पूर्वगामी विवेचन के कारण विशेष इजाज़त विषयक सभी पिटीशन और रिट पिटीशनों को अवश्य ही असफल होना चाहिए। तदनुसार वे खारिज किए जाते हैं।

पिटीशन खारिज किए गए।

श्री०

---

[1] [1979] 1 उम० नि० प० 243=[1978] 2 एस० सी० आर० 621.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दीना उर्फ दीनदयाल और अन्य

बनाम

भारत संघ और अन्य

(Deena *alias* Deen Dayal and others

v.

Union of India and others)

हज़मोहिदीन और अन्य

बनाम

भारत संघ और अन्य

(Hazamohideen and others

v.

Union of India and others)

तथा

अमर सिंह और एक अन्य

बनाम

मध्य प्रदेश राज्य

(Amar Singh and another

v.

State of Madhya Pradesh)

(23 सितम्बर, 1983)

(मुख्य न्यायाधिपति वाई० वी० चन्द्रचूड़, न्यायाधिपति आर० एस० पाठक और सव्यसाची मुखर्जी)

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973(1974 का 2)—धारा 354(5) (सपठित संविधान, 1950, अनुच्छेद 14 और 21)—मृत्यु का दण्डादेश—ऐसे दण्डादेश का निष्पादन—गर्दन में फांसी लगाने की

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पद्धति—उक्त धारा के इस उपबंध से कि ऐसे व्यक्ति को जिसे मृत्यु का दण्डादेश दिया गया है, गर्दन में फांसी लगाकर तब तक लटकाए रखा जाए जब तक कि उसकी मृत्यु न हो जाए, अनुच्छेद 21 के उपबंध का अतिक्रमण नहीं होता ।

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2)—धारा 354 (5) (सपठित संविधान, 1950 अनुच्छेद 32)—मृत्यु के दण्डादेश का निष्पादन—उसकी विधिमान्यता विनिश्चित करने की अधिकारिता—जबकि विधानमण्डल का कृत्य मृत्यु के दण्डादेश के निष्पादन की पद्धति विहित करना है, न्यायालय की अधिकारिता विधानमण्डल द्वारा विहित पद्धति की सांविधानिकता के प्रश्न को विनिश्चित करना है ।

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2)—धारा 354 (5) (सपठित संविधान, 1950, अनुच्छेद 14,19 और 21)—आक्षेपित विधि पर लगाये गये निर्बन्धन की युक्तियुक्तता साबित करने का भार राज्य पर होना—धारा 354(5) की विधिमान्यता—एक ओर अनुच्छेद 14 के आधार पर और दूसरी ओर अनुच्छेद 19 और 21 के आधार पर दी गई चुनौतियों में प्रभेद की विद्यमानता—जब किसी विधि को दी गई चुनौती अनुच्छेद 19 और 21 के अतिक्रमण पर आधारित होती है, तो पिटीशनर को यह अभिवचन करना होता है कि उसे अमुक मूल अधिकार से वंचित किया गया है और जैसे ही वह यह बात दर्शित कर देता है वैसे ही यह साबित करने का भार राज्य पर हो जाता है कि आक्षेपित विधि पर लगाया गया निर्बन्धन युक्तियुक्त है और उसे अनुच्छेद 19(2) की संरक्षा प्राप्त है या यह कि विधि द्वारा स्थापित न्यायसंगत और युक्तियुक्त प्रक्रिया द्वारा ही उसके प्राण या दैहिक स्वाधीनता से उसे वंचित किया गया है ।

संविधान, 1950—अनुच्छेद 32 और 21[सपठित दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2)]—धारा 354 (5)—मृत्यु का दण्डादेश—ऐसे दण्डादेश का निष्पादन—दोषसिद्ध व्यक्ति को दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 354(5) के अधीन यथा-उपबंधित रूप में गर्दन में रस्सी से फांसी लगाकर तब तक लटकाए रखने की पद्धति पर आक्षेप किया जाना, जब तक कि उसकी मृत्यु न हो जाए—संहिता की धारा 354(5) की सांविधानिक विधिमान्यता को इस

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आधार पर दी गई चुनौती का प्रश्न कि किसी सिद्धदोष को रस्सी से फांसी पर लटकाना मृत्यु के दण्डादेश के निष्पादन की क्रूर और बर्बर पद्धति है और उससे अनुच्छेद 21 का अतिक्रमण होता है, तत्सम्बन्धी मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए अद्यतन निर्णय के बावजूद भी, अनुत्तरित और अनिर्णीत है और इसी कारण ये पिटीशन ग्रहण किए जाने के लायक हैं।

नज़ीरें—न्यायिक नज़ीरें—संविधान के अनुच्छेद 14 के संबंध में प्रतिपादित सिद्धान्त उन मामलों को लागू नहीं होते, जो अनुच्छेद 19 और 21 के अधीन उद्भूत होते हैं।

नज़ीरें—न्यायिक नज़ीरें—यदि न्यायपीठ का अल्पमत कोई ऐसा मत व्यक्त करता है जो सामाजिक रूप से संवेदनशील है, तो ऐसे मत की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

उच्चतम न्यायालय में फाइल किए गए इन रिट पिटीशनों में, पिटीशनरों को भारतीय दण्ड संहिता, 1860 की धारा 302 के अधीन हत्या के अपराध के लिए मृत्यु का दण्डादेश दिया गया था। उनमें इस बात को छोड़कर कोई भी समान बात नहीं थी कि उन्होंने हत्याएं की हैं और उनको मृत्यु का दण्डादेश दिया गया है। उन पर अधिरोपित मृत्यु का दण्डादेश इस अर्थ में अन्तिम हो गया कि उनके द्वारा फाइल किए गए विशेष इजाजत पिटीशन, अपीलें, पुनर्विलोकन पिटीशन और दया पिटीशन खारिज कर दिए गए थे, बल्कि इनमें से कुछ एक से अधिक बार खारिज कर दिए गए थे। इन रिट पिटीशनों में पिटीशनरों ने जो मुख्य प्रश्न उठाया है, उसका संबंध मृत्यु के दण्डादेश के निष्पादन के ढंग की विधिमान्यता से है। दूसरे शब्दों में, प्रश्न यह उठाया गया है कि क्या इस उपबंध से कि ऐसे व्यक्ति को जिसे मृत्यु का दण्डादेश दिया गया है, गर्दन में फांसी लगाकर तब तक लटकाए रखा जाए जब तक कि उसकी मृत्यु न हो जाए, अनुच्छेद 21 का अतिक्रमण होता है। पिटीशन खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित—प्राण निकलने के अन्तिम समय प्राण निकलने की प्रक्रिया में ही कुछ शारीरिक पीड़ा विवक्षित है। किन्तु फांसी लगाने से कम से कम पीड़ा होती है जो इस तथ्य के फलस्वरूप कल्पनीय है कि मृत्यु तत्काल हो जाएगी। "कल्पनीय" इसलिए कहा गया है क्योंकि स्वभावतः ऐसा कोई नहीं बचता जो मृत्यु दण्डादेश के निष्पादन में भोगी गई पीड़ा का प्रत्यक्ष साक्ष्य दे सके। मृतक

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कुछ नहीं बोलता । अतः पीड़ा से संबंधित प्रश्न का निर्धारण वैज्ञानिक अन्वेषणों के आधार पर और तर्क की कसौटी पर कसकर ही करना होगा । यह निष्कर्ष कि फांसी लगाने की प्रणाली इतनी पीड़ाहीन है जितना परिस्थितियों में संभव है, इससे मृत्यु के दंडादेश के निष्पादन की किसी भी अन्य विहित पद्धति से अधिक पीड़ा नहीं होती और इसमें कोई बर्बरता, यंत्रणा या अवमानता अन्तर्ग्रस्त नहीं है, तर्क पर आधारित है और विशेषज्ञ साक्ष्य द्वारा समर्थित तथा आधुनिक चिकित्सा के निष्कर्षों से समर्थित है । (पैरा 82)

मृत्यु-दण्डादेश के निष्पादन के लिए दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 354 (5) द्वारा विहित पद्धति से संविधान के अनुच्छेद 21 के उपबंध का अतिक्रमण नहीं होता । फांसी लगाने की पद्धति की यांत्रिकता में, कालान्तर में, महत्वपूर्ण सुधार हुआ है और यदि "फांसी लगाना" पद संदर्भ में अपर्याप्त नहीं है तो यह पद प्रायः एक विज्ञान के रूप में पूर्णतः प्राप्त कर चुका है । अब दुर्घटना के अवसर नाममात्र के रहे हैं यद्यपि किसी भी दुर्घटना के अवसरों का कभी भी पूर्णतः निवारण नहीं किया जा सकता । यदि ऐसा किया जा सकता तो विद्वान लोगों के शब्दकोशों में "दुर्घटना" शब्द दिखाई न देता । फांसी लगाने की पद्धति में किए गए सुधारों के संबंध में रायल कमीशन के निष्कर्षों और अन्य विशेषज्ञों द्वारा व्यक्त राय की ओर ध्यान आकर्षित किया जा सकता है । किसी सिद्धदोष के प्राण लेने के तरीके के रूप में प्राण हर इंजैक्शन का उपयोग चिकित्सा का आचार नहीं है । बिजली लगाकर मारने की पद्धति के लिए भी कोई अधिक उत्साह संभाव्य नहीं है क्योंकि अप्रैल, 1983 में अलबामा में एक व्यक्ति को मृत घोषित करने से पूर्व 1,900 वोल्ट के 30-30 सैकेंड के तीन शाट देने पड़े थे । इस वृतान्त से यह स्पष्ट है कि न तो बिजली से और न ही प्राणघातक गैस से और न ही गोली मारकर और न ही प्राणहर इंजैक्शन से फांसी लगाने की पद्धति की अपेक्षा कोई विशेष या सुभिन्न फायदा है । अतः निश्चितता से यह भी निष्कर्ष लेखबद्ध नहीं किया जा सकता कि मृत्यु दण्ड देने के लिए फांसी लगाने की पद्धति के स्थान पर इनमें से कौन सी पद्धति अपनाई जाए । (पैरा 84, 64, 77 और 78)

वैज्ञानिक और विधिक राय की एक उत्तरदायी संस्था है, जिसका मत है कि फांसी के फन्दे में लटकाना मृत्यु-दण्डादेश के निष्पादन का निर्मम तरीका नहीं है । यह पद्धति सभ्य विश्व के अधिकांश भाग में विद्यमान है । संविधान सभा के सामने मृत्यु दण्डादेश के निष्पादन का यही एकमात्र

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ढंग था और फिर भी उसने इस पद्धति के बारे में कोई असहमति व्यक्त नहीं की यद्यपि उसने संविधान के अनुच्छेद 72(1)(ग) के अधीन राष्ट्रपति की क्षमा करने की शक्ति पर विचार करते समय मृत्युदण्ड के प्रश्न पर भी विचार किया था। (पैरा 80)

किन्तु अनुच्छेद 21 की आज्ञा का सम्यक् अनुपालन करने के लिए इतना निष्कर्ष निकालना काफी नहीं है कि मृत्यु दण्ड के अन्य तरीकों में से कोई भी तरीका फांसी लगाने की पद्धति से लाभप्रद नहीं है। अन्य तरीकों में अव्यवहार्य, जटिल, मंद और अनिश्चित होने की कुछ बुराइयां हो सकती हैं। यह तस्वीर का केवल एक पक्ष है क्योंकि यह परिस्थिति कि अन्य पद्धतियां व्यवहार्य नहीं हैं, स्वतः यह सिद्ध नहीं करती कि फांसी लगाने की पद्धति मे कोई दोष नहीं है। प्रतिवादी पक्ष की कमजोरी से वादी का पक्षकथन सिद्ध नहीं हो सकता। दूसरे शब्दों में, हो सकता है कि अन्य पद्धतियों की तुलना में फांसी लगाने की पद्धति दोषपूर्ण न हो किन्तु यहां यह निर्धारित करना है कि क्या मृत्यु-दण्डादेश निष्पादित करने की पद्धति के रूप में फांसी लगाने से अपने आप में, यानि, अन्य पद्धतियों से तुलना किए बिना, अनुच्छेद 21 के सिद्धान्तों का अतिवर्तन होता है। (पैरा 79)

अन्वेषण के मुख्य बिन्दु पर अत्यन्त गहन चिन्तन करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि ऊपर विस्तारपूर्वक उल्लिखित सामग्री के आधार पर राज्य ने उस भार का निर्वहन कर दिया है जो उस पर यह साबित करने के लिए था कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 354 (5) में विहित फांसी लगाने की पद्धति संविधान के अनुच्छेद 21 में समाविष्ट गारण्टी का अतिक्रमण नहीं करती। इस समय प्रचलित फांसी लगाने की पद्धति में एक ऐसी यांत्रिकता है जिसे एक जगह जोड़ना आसान है। फांसी लगाने के कृत्य से पहले की आरम्भिक कार्रवाइयां तेज और सरल हैं तथा उनमें से ऐसी कोई बात नहीं है जिससे कैदी की आशंका अनावश्यक रूप से और अधिक तीव्र हो जाए। फांसी लगाने के दौरान होने वाली दुर्घटना के अवसरों से आसानी से बचा जा सकता है। यह पद्धति विधि के सबसे बड़े दण्ड के निष्पादन का एक तीव्र और निश्चित उपाय है। इसमें मृत्यु के लम्बी खिचने की संभावना नहीं रहती। प्रक्रिया के चालू होने के बाद अचेतनता प्रायः तत्काल हो जाती है और गर्दन के टेटुए के अलग हो जाने के फलस्वरूप कैदी तुरन्त मर जाता है। इस समय प्रचलित फांसी लगाने की पद्धति से गला घुटने की बिल्कुल भी संभावना नहीं रहती जो बहुत अल्प झटके के परिणामस्वरूप हो जाती है या शिरच्छेदन की कोई संभावना नहीं रहती जो

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बहुत लम्बे झटके के परिणामस्वरूप हो जाती है। यह पद्धति यह सुनिश्चित करने की बाध्यता के अनुरूप है कि मृत्यु दण्ड की प्रक्रिया पूरे शिष्टाचार और शालीनता से सम्पन्न की जाए और उसमें किसी प्रकार की अवमानना या बर्बरता न हो। (पैरा 81)

किसी दण्ड में होने वाली पीड़ा के प्रश्न के बारे में यह देखना विधि का काम है कि किसी भी दण्डादेश के, विशेष रूप से मृत्यु-दण्डादेश के निष्पादन से संबंधित या के आनुषंगिक विभिन्न कदमों से अपने आप दण्ड गठित न हो। यदि किसी कैदी को मृत्यु-दण्डादेश दिया जाए, तो केवल उसी दण्ड का निष्पादन करना विधिपूर्ण होगा। उसे उस दण्डादेश के निष्पादन से पहले, यहां तक कि उस दण्डादेश के निष्पादन के आवश्यक कदमों के रूप में भी मान-भंग, यंत्रणा या अपमान का शिकार नहीं बनाया जा सकता। यह कैदी को ऐसा दण्ड देने के समान होगा जो विधि द्वारा प्राधिकृत नहीं है। मानवीयता सभ्य विधियों का मन्तव्य है। अतः किसी भी प्रकार की यंत्रणा, बर्बरता, निर्ममता, मान-भंग और अपमान किसी भी दण्डादेश के निष्पादन में अनुज्ञेय नहीं है। फांसी लगाने की प्रक्रिया में इनमें से कोई भी दोष प्रत्यक्षतः अप्रत्यक्षतः या आनुषंगिक रूप से अन्तर्ग्रस्त नहीं है। (पैरा 83)

यह बात समझ में नहीं आती है कि विधिपूर्ण आदेश का निष्पादन अमूर्त रूप में, और पूर्ण रूप में विधिविरुद्ध कैसे है। यदि, समुचित मामले में, मृत्यु दण्ड देना विधिपूर्ण है तो उस दण्डादेश को समुचित ढंग से निष्पादित करना भी विधिपूर्ण होगा। निस्सन्देह, अनुच्छेद 21 दण्डादेश देने से उतना ही सुसंगत है जितना कि उसके निष्पादन के ढंग से। अतः दण्डादेश देने के विषय में दो बातें ध्यान में रखनी होंगी। मूलतः दण्डादेश अनुच्छेद 14 और 21 में विशेष रूप से अन्तर्विष्ट सांविधानिक उपबंध के अनुसार दिया जाएगा। प्रक्रिया की दृष्टि से वह पद्धति जिसके द्वारा दण्डादेश का निष्पादन विधि द्वारा अपेक्षित है, अनुच्छेद 21 के आज्ञापक उपबंध के अनुसार होगी। अनुच्छेद 21 की आज्ञा यह नहीं है कि मृत्यु दण्डादेश का निष्पादन नहीं किया जाएगा बल्कि यह कि इसका निष्पादन निर्मम, बर्बर या अपमानजनक रीति से नहीं किया जाएगा। (पैरा 85)

अतः इस तर्क के समर्थन में आठवें संशोधन से कोई समर्थन प्राप्त नहीं किया जा सकता कि यों तो मृत्युदण्ड अथवा फांसी लगाकर उस दण्डादेश को निष्पादित करने की पद्धति से इस आधार पर अनुच्छेद 21 का उल्लंघन होता है कि मृत्युदण्ड बर्बरतापूर्ण है अथवा फांसी लगाने की पद्धति

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नृशंस, अमानवीय और अपमानजनक है, फिर भी प्राणदण्ड देने के तरीके के रूप में फांसी लगाने की गंभीरता निष्ठुर नहीं है। न्यायाधीशों को यह नहीं मान लेना चाहिए कि वे समाज की आवश्यकताओं के अलौकिक अन्तर्दृष्टा हैं। इसके विपरीत जस्टिस फ्रेंक फर्टर द्वारा दी गई इस चेतावनी को ध्यान में रखना होगा : "जैसा कि इतिहास से पर्याप्त सिद्ध हैं, न्यायपालिका निजी इच्छाओं को सांविधानिक अपेक्षाओं के रूप में समझकर लोक कल्याण को गलत समझ लेती है। (पैरा 92)

निश्चित रूप से नीति संबंधी बातें विधानमण्डल के विचारार्थ हैं और इसलिए किस ढंग या पद्धति द्वारा मृत्यु दण्डादेश निष्पादित किया जाना चाहिए, यह बात विधानमण्डल द्वारा विनिश्चित किये जाने के लिए है। किसी गणतंत्र समाज में विधानमण्डल न कि न्यायालय जनता के नैतिक मूल्यों का प्रतिनिधित्व करने के लिए गठित किये जाते हैं। किन्तु विधान-मण्डल का कृत्य इस बात का उपबंध करके समाप्त हो जाता है जो वह मृत्यु दण्डादेश निष्पादित करने की सर्वोत्तम पद्धति समझता है। जहां विधानमण्डल का कृत्य समाप्त हो जाता है, वहां न्यायपालिका का कृत्य प्रारम्भ होता है। कोई दण्डादेश कार्यान्वित या निष्पादित करने के लिए विधानमण्डल द्वारा विहित पद्धति की सांविधानिकता का विनिश्चय न्यायालय ही कर सकता है। क्या वह पद्धति संविधान की आज्ञा के अनुरूप है, ऐसी बात है जो केवल न्यायिक पुनर्विलोकन के अध्यधीन ही नहीं है किन्तु वह न्यायिक कृत्य का एक वैध भाग भी है। न्यायाधीशों के रूप में हम संविधान द्वारा अधिरोपित बाध्यता की उपेक्षा नहीं कर सकते तथा इस सांत्वना के साथ अपने हाथ अलग नहीं कर सकते कि अन्ततोगत्वा जनता के चुने गए प्रतिनिधियों ने फांसी पर लटकाए जाने को अपनी रजामंदी दे दी है और इसलिए वह मृत्यु दण्डादेश निष्पादित करने की सर्वोत्तम पद्धति है। नीति के रूप में जनता के प्रतिनिधि इस बात पर विचार करते हैं कि संहिता की धारा 354 (5) द्वारा उपबंधित फांसी पर लटकाए जाने की पद्धति मृत्यु दण्डादेश निष्पादित करने के लिए कम से कम आपत्तिजनक पद्धति है। किन्तु विधानमण्डल का नीति संबंधी निर्णय, जो बात न्यायालय के विचारार्थ बिल्कुल ही छोड़ देता है, वह यह प्रश्न है कि क्या मृत्यु दण्डादेश निष्पादित करने के लिए विधि द्वारा विहित कोई विशेष पद्धति संविधान के अनुरूप है। यह पश्चात्वर्ती प्रश्न स्पष्ट रूप से न्यायालयों के विनिश्चय के लिए है। उस प्रश्न के विनिश्चय में अनिवार्य रूप से मृत्यु दण्डादेश निष्पादित करने के लिए वैकल्पिक पद्धतियों का तुलनात्मक मूल्यांकन करने पर आधारित एक मूल्य-वान निर्णय है किन्तु ऐसे किसी तुलनात्मक मूल्यांकन से अधिक न्यायालय

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

का स्पष्ट और प्राथमिक कर्त्तव्य इस बात की परीक्षा करना है कि क्या यदि विधानमण्डल द्वारा चुनी गई पद्धति कम से कम आपत्तिजनक है, तो उसके बारे में अभी भी यह आपत्ति की जा सकती है कि उसमें असम्यक् त्रास, निरादर और क्रूरता अन्तर्वलित है जैसे कि उदाहरण के लिए यथार्थ रूप से आवश्यक पीड़ा से अधिक पीड़ा कारित करना अथवा मृत्यु को लम्बा करना, या यदि कोई विशेष पद्धति ही अपनाई जाती है, तो बारम्बार उस पद्धति में असफल होना। न्यायालय का कार्य यह बतलाकर समाप्त हो जाएगा कि विधि द्वारा वर्तमान में उपबंधित पद्धति संविधान की आज्ञा के प्रतिकूल क्यों हैं, यद्यपि वह मृत्यु दण्डादेश निष्पादित करने के लिए सामान्य रूप से स्वीकृत कोई अन्य पद्धति से कम आपत्तिजनक हो। न्यायालय यह निदेश देकर विधान नहीं बनाएगा कि चूंकि धारा 354 (5) में अन्तर्विष्ट उपबंध, यदि कोई है, असांविधानिक है, तो पिटीशनरों पर अधिरोपित मृत्यु दण्डादेश विद्युत उपकरणों या गैस चैम्बर या इंजैक्शन देकर या गोली मार कर या गला घोटकर या इसके समान अन्य पद्धति द्वारा निष्पादित किया जाएगा। न्यायालय यह निदेश दे सकता है कि पिटीशनरों को अस्थायी रूप से अंधा कर दिया जाए। यह बात विधानमंडल के लिए होगी। विधि की सांविधानिकता के बारे में कोई निर्णय देना विधान बनाना नहीं है यद्यपि ऐसे निर्णय में समाज के परिवर्तनशील मानकों की बातें भी अन्तर्वलित हैं। क्रूरता और संत्रास स्थिर धारणाएं नहीं हैं। इसीलिए शरीर के किसी अंग के काटे जाने को जिसे कई शताब्दियों पहले क्रूर नहीं माना जाता था अथवा जिसे आज के युग में भी संसार के कुछ अन्य भागों में क्रूर नहीं माना जाता है, भारतीय समाज के समकालीन मानक लागू करके दण्ड के रूप में स्वीकार करना असंभव है। जिस बात को पिछले समयों में अप्रतिष्ठित या अमानवीय रूप में नहीं माना जाता था, नए बुद्धिजीवियों के लिए क्रांतिकारी हो सकता है जो तब उद्भूत होता है जब सभ्यता अग्रसर होती है। विधि की विधिमान्यता के विनिश्चय के बारे में ऐसी जागरूकता का परिणाम और प्रभाव न्यायिक कृत्य का अपृथक्करणीय भाग है। (पैरा 35)

इस प्रकार संविधान के अनुच्छेद 14 के अधीन उत्पन्न होने वाले मामलों और उसके अनुच्छेद 19 और 21 के अधीन उत्पन्न होने वाले मामलों के बीच मौलिक प्रभेद है। अनुच्छेद 19 और 21 के अतिक्रमण पर आधारित चुनौती में, पिटीशनर को निस्सन्देह यह अभिवचन करना पड़ता है, उदाहरणार्थ, निर्बाध, अबाध वाक् और अभिव्यक्ति के उसके अधिकार का अतिक्रमण हुआ है और यह कि उसे प्राण और दैहिक स्वाधीनता के उसके अधिकार से वंचित किया गया है। किन्तु यदि वह यह दर्शित कर देता है

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जो कि वास्तव में साबित करने के भार का भाग नहीं है, कि आक्षेपित विधि या कार्रवाई को यह साबित करके न्यायोचित ठहराना राज्य पर निर्भर है कि उदाहरणार्थ अबाध वाक् और अभिव्यक्ति के पिटीशनर के अधिकार से वंचित करने के कार्य को अनुच्छेद 19 के खण्ड (2) की संरक्षा प्राप्त है, क्योंकि वह खण्ड (2) में उल्लिखित विषयों के हित में उसके अधिकार पर युक्तियुक्त निर्बन्धन की प्रकृति में है, या यह कि पिटीशनर को उसके प्राण और दैहिक स्वाधीनता से विधि द्वारा स्थापित न्यायोचित, न्यायसंगत और युक्तियुक्त प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया गया है। अनुच्छेद 19 के अधीन उत्पन्न होने वाले मामलों में यह साबित करने का भार पिटीशनर पर कभी भी नहीं होता है कि निर्बन्धन युक्तियुक्त नहीं है और यह कि निर्बन्धन खण्ड (2) में उल्लिखित विषयों के हित में नहीं है। उसी प्रकार से अनुच्छेद 21 के अधीन उत्पन्न होने वाले मामलों में यह साबित करने का भार पिटीशनर पर कभी नहीं होता है कि ऐसी विधि द्वारा जो कि उसे उसके प्राण और दैहिक स्वाधीनता से वंचित करती है, विहित प्रक्रिया न्यायोचित, न्यायसंगत और युक्तियुक्त नहीं है। (पैरा 17)

ऐसा सिद्धान्त जिसमें अनुच्छेद 14 अन्तर्निहित है, यह है कि समान के साथ समान रूप से व्यवहार किया जाना चाहिए, अर्थात् यह कि "विधियों का प्रवर्तन समान परिस्थितियों में सभी व्यक्तियों पर समान रूप से किया जाना चाहिए"। यद्यपि अनुच्छेद 14 के पद प्रत्यक्षतः आत्यंतिक हैं, तथापि वह राज्य को ऐसी विधि पारित करने की अनुज्ञा देता है जो कि वर्गीकरण करती है, जब तक कि ऐसा वर्गीकरण ऐसे बोधगम्य अन्तर पर आधारित है, जिसका उस उद्देश्य से वास्तविक संबंध है, जिसे प्राप्त करना विधि द्वारा ईप्सित है। अनुच्छेद 14 के अधीन उत्पन्न होने वाले अनेक मामलों में वह चुनौती इस अभिकथन पर आधारित होती है कि आक्षेपित उपबंध विभेदकारी है क्योंकि वह पिटीशनर को ऐसे अन्य व्यक्तियों में से जोकि यद्यपि समान रूप से स्थित हैं, पिटीशनर के समान ही उसी वर्ग के हैं, द्वेषपूर्ण व्यवहार के लिए अलग करता है। यह स्पष्ट है कि इस प्रकार के विषयों में, पिटीशनर को यह अभिवचन साबित करना होता है कि ऐसे अन्य लोग भी हैं जोकि उसी के समान, समान रूप से स्थित हैं और यह कि उसे पक्षपातपूर्ण व्यवहार के लिए अलग किया गया है, और उसके अध्यधीन बनाया गया है; यह कि क्या ऐसे अन्य व्यक्ति हैं जोकि पिटीशनर के समान ही समान रूप से स्थित हैं, तथ्य का प्रश्न है और यह कि क्या

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पिटीशनर के साथ द्वेषपूर्ण विभेद किया गया है, भी तथ्य का प्रश्न है। यही कारण है कि इन तथ्यों की विधिमान्यता को साबित करने का भार पिटीशनर पर होता है। ऐसे मामले में राज्य पर साबित करने का भार डालना वास्तव में उससे नकारात्मक रूप से साबित करने के लिए यह कहना है कि ऐसा कोई व्यक्ति समान रूप से स्थित नहीं है, जैसे कि पिटीशनर और यह कि पिटीशनर के साथ जो व्यवहार किया गया है, वह द्वेषपूर्ण नहीं है। जब कि कोई अधिनियमिति प्रत्यक्षतः अनुच्छेद 19 द्वारा गारंटीकृत मूल अधिकार का अतिक्रमण करती है, तो पिटीशनर यह दर्शित करने की थोड़ी सी बाध्यता से भी मुक्त हो जाता है कि अनुच्छेद 19 द्वारा उसे गारंटीकृत अधिकार का अतिक्रमण हुआ है। जबकि कोई विधि प्रत्यक्ष रूप से स्पष्ट नहीं होती, तो पिटीशनर को यह तथ्य साबित करने की बाध्यता का निर्वहन नहीं करना होता है कि उसे उसके अधिकार से वंचित किया गया है। किन्तु केवल इतना ही और इससे अधिक की बात नहीं है। जब अनुच्छेद 19 (1) के अधीन के मूल अधिकार के प्रयोग पर निर्बन्धन लगाने वाली उपविधि की विधिमान्यता को चुनौती दी जाए तो न्यायालय समाधान करने वाले रूप में यह साबित करने का भार राज्य पर होता है कि निर्बन्धन युक्तियुक्त है। मूल अधिकार के प्रयोग पर निर्बन्धन लगाना नियंत्रण के रूप में हो सकता है या प्रतिषेध के रूप में, किन्तु जब किसी मूल अधिकार के प्रयोग का प्रतिषेध किया जाए तो यह साबित करने का कि उस अधिकार के प्रयोग पर पूर्ण रोक से ही साधारण लोक हित की साधना सुनिश्चित हो सकती है, पूर्ण भार राज्य पर होता है। जबकि अनुच्छेद 21 के अधीन उत्पन्न होने वाले मामले में ऐसा व्यथित व्यक्ति जिसके बारे में यह पाया गया हो कि उसे अपनी दैहिक स्वाधीनता से पूरी तरह वंचित कर दिया गया है या उसके प्राण के अधिकार से उसे वंचित किया जा रहा है तो यह साबित करने का भार कि इस प्रकार वंचित करने के लिए विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया न्यायोचित, न्यायसंगत और युक्तियुक्त है, पूरी तरह से राज्य पर होता है। (पैरा 16, 19 और 22)

इस प्रकार बचन सिंह का मामला इस प्रतिपादना के लिए नजीर है कि संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन उद्भूत होने वाले मामलों में, यदि यह प्रतीत हो कि व्यक्ति को उसके जीवन से वंचित किया जा रहा है अथवा उसकी वैयक्तिक स्वतंत्रता से वंचित किया गया है, सबूत का भार आक्षेपित विधि की सांविधानिक मान्यता को सिद्ध करने का भार राज्य पर होता है। (पैरा 29)

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इस चर्चा की दृष्टि से इस प्रश्न की परीक्षा की जानी चाहिए कि क्या राज्य ने इस बात को साबित करने के भार का निर्वहन किया है कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 354 (5) के उपबंध, अनुच्छेद 21 की आज्ञा के अनुरूप हैं। इस निष्कर्ष के अनुरूप जो कि सबूत के भार के संबंध में अभिलिखित किया गया है, यह अभिनिर्धारित करना चाहिए कि सबूत का भार यह साबित करने के लिए पिटीशनरों पर नहीं है कि जीवन लेने से संबंधित उपर्युक्त उपबंध द्वारा विहित प्रक्रिया अऋजु या अयुक्तियुक्त है। आक्षेपित कानून स्पष्टतया जीवन समाप्त करने की प्रक्रिया के लिए उपबन्ध करता है, इसलिए जीवन या स्वतंत्रता से वंचित करने के तथ्य को दर्शाने की प्रारंभिक बाध्यता भी पिटीशनरों पर है। राज्य को अवश्य ही सिद्ध करना चाहिए कि मृत्यु का दण्डादेश निष्पादित करने के लिए संहिता की धारा 354 (5) द्वारा विहित प्रक्रिया, उचित ऋजु और युक्तियुक्त है। उस भार में यह साबित करने की बाध्यता भी सम्मिलित है कि उक्त प्रक्रिया कठोर, निर्दय या अपमानित करने वाली नहीं है। (पैरा 30)

ज्यों ही यह दर्शित कर दिया जाए कि अमुक अधिनियम अनुच्छेद 21 द्वारा प्रत्याभूत अधिकार का अतिवर्तन करता है, यह पता लगाना आवश्यक है कि क्या राज्य ने यह सिद्ध कर दिया है कि वह व्यक्ति विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार और ऐसी प्रक्रिया द्वारा जोकि न्यायसंगत, ऋजु और युक्तियुक्त है, अपने प्राण या दैहिक स्वाधीनता से वंचित किया गया है। (पैरा 94)

यद्यपि यह वास्तविक स्थिति है, तथापि वह कारण कि विद्वान् सालिसिटर जनरल द्वारा उठाई गई प्रारंभिक आपत्ति को क्यों कायम नहीं रखा जा सकता, यह है कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 354 (5) की सांविधानिक विधिमान्यता से संबंधित प्रश्न को न तो बचन सिंह वाले मामले में पिटीशनरों ने उपयुक्त रूप से उठाया था और न ही इस न्यायालय ने प्रत्यक्ष रूप से उस पर विचार किया था। यदि इस बात को इसी रूप में पेश किया जाए तो संहिता की धारा 354 (5) की विधिमान्यता से संबंधित प्रश्न बचन सिंह वाले मामले में प्रत्यक्षतः और सारतः विवाद्य नहीं था। उस मामले में न्यायाधीशों के बहुमत ने मृत्यु के दण्डादेश के निष्पादन के ढंग के प्रति प्रसंगवश ही निर्देश किया था। इस प्रश्न पर कि क्या संहिता की धारा 354 (5) द्वारा विहित मृत्यु के दण्डादेश को निष्पादित करने के विशेष ढंग से अनुच्छेद 21 के उपबंधों का अतिक्रमण होता है, बहुमत द्वारा स्वतंत्र विवाद्यक के रूप में विनिर्दिष्ट रूप से विचार नहीं किया गया था। (पैरा 9)

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बचन सिंह वाले मामले में बहुमत और अल्पमत निर्णयों में न्यायाधीशों ने, मृत्यु के दण्डादेश को निष्पादित करने के लिए विधि द्वारा विहित फांसी लगाने की पद्धति के प्रति विशेष निर्देश करते हुए, प्रक्रियात्मक पहलू से भी मृत्यु के दण्डादेश की विधिमान्यता के प्रश्न पर विचार किया था। मृत्यु के दण्डादेश की विधिमान्यता को कायम रखते हुए न्यायाधीशों के बहुमत ने इस परिस्थिति को नजरअन्दाज नहीं किया था और वास्तव में उसने इस परिस्थिति को विचार में नहीं लिया था कि मृत्यु के दण्डादेश को निष्पादित करने के लिए दण्ड प्रक्रिया संहिता द्वारा विहित ढंग, फांसी लगाना है। दूसरी ओर मृत्यु के दण्डादेश की विधिमान्यता को अभिखंडित करते हुए इस विचार का प्रभाव पड़ा था कि मृत्यु के दण्डादेश को निष्पादित करने के लिए विधि द्वारा विहित फांसी लगाने का ढंग अपने आप में क्रूर और बर्बर है। (पैरा 8)

यह तो कहना ठीक नहीं होगा कि संहिता की धारा 354 (5) की सांविधानिक विधिमान्यता से संबंधित प्रश्न उस मामले में न तो प्रत्यक्षतः विवाद्य था और न ही उस पर बहस की गई थी न ही न्यायालय ने उस पर ऐसे स्वतंत्र कारण के रूप में विचार किया था जिसका संबंध मृत्यु के दण्डादेश की विधिमान्यता से रहा हो। इन रिट पिटीशनों में पिटीशनरों ने जो प्रश्न उठाया है, वह न केवल विधिक और सांविधानिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है, बल्कि सामाजिक दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण है। उस प्रश्न को एक ओर रख देना उचित नहीं होगा और इस आनुषंगिक बात के कारण उसकी पूरी तरह से परीक्षा करना भी अनुचित नहीं होगा जो कि बचन सिंह वाले मामले में किया गया था। (पैरा 9)

उपधारणा सदा ही किसी भी अधिनियमिति की वैधानिकता के पक्ष में की जाती है और जो आक्षेप करता है, उसी पर यह साबित करने का भार होता है कि सांविधानिक सिद्धान्तों का स्पष्ट अतिलंघन किया गया है और यह कि उपधारणा यह की जानी चाहिए कि विधानमण्डल अपनी जनता की आवश्यकताओं को समझता है और उसने उसका मूल्यांकन सही-सही किया है और यह कि उसकी विधियां उन समस्याओं को दूर करने के लिए बनाई गई हैं, जो अनुभव के दौरान स्पष्ट रूप से सामने आई हैं और यह कि उसके द्वारा किए गए विभेद पर्याप्त आधारों पर आधारित हैं। इन दोनों सिद्धान्तों में से दूसरे सिद्धान्त के अन्तिम शब्दों से यह दर्शित होता है कि उक्त सिद्धान्त अनुच्छेद 14 के अधीन उत्पन्न होने वाले मामलों को लागू होने तक ही सीमित है। विभेद का प्रश्न संविधान के अनुच्छेद 14 के अधीन उत्पन्न होता है,

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

न कि संविधान के अनुच्छेद 19 के। जो कुछ भी हो, स्वीकृत संदर्भ-स्थल भी उस बात का प्रमाण है जिसका कि उसमें विनिश्चय किया जाता है। ऐसे मामलों में जिनमें तथ्यात्मक और विधिक दोनों ही समान स्थितियां अंतर्ग्रस्त होती हैं, किए गए विनिश्चयाधार को लागू करना अनुज्ञेय होता है, किन्तु इस बात को सुनिश्चित करने के लिए सावधानी बरती जानी चाहिए कि यह कार्य यंत्रवत् न किया जाए अर्थात् यह कि विनिश्चय के तर्क-आधार की जोकि नजीर के रूप में प्रोद्धृत है, बारीकी से परीक्षा किए बिना उसे नहीं किया जाना चाहिए। ऐसा मानव-मस्तिष्क जोकि विधि के कड़े नियंत्रण में प्रशिक्षित हुआ है, उन विनिश्चयों का जोकि प्रसिद्ध हो गये हैं, अवलम्ब लेने के और कल्पित समान स्थितियों को उनके विनिश्चयाधार लागू करने के सरल रास्ते को अपनाने के विरुद्ध नहीं होता है। जिन सिद्धान्तों को पूर्ववर्ती विनिश्चयों में प्रतिपादित किया गया था, उन्हें विश्वव्यापी और सार्वभौमिक रूप से लागू करना गलत है और उस प्रक्रिया में उन्हें ऐसे मामलों को लागू करना गलत है जोकि संविधान के अन्य अनुच्छेदों के अधीन विशिष्टतया अनुच्छेद 19 और 21 के अधीन उत्पन्न होते हैं। (पैरा 15)

यह तथ्य उनकी उपेक्षा करने के लिए औचित्यपूर्ण नहीं है। वर्तमान मामले जैसे सामाजिक दृष्टि से नाजुक विषय में विपक्षी दृष्टिकोण की उपेक्षा करना अनुचित होगा चाहे वह अल्पमत निर्णय में व्यक्त किया गया हो या अन्यथा। (पैरा 66)

	अनुसरित निर्णय	पैरा
[1983]	[1983] 1 उम० नि० प० 1021 = [1983] 1 एस० सी० आर० 145 : बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य (Bachan Singh *v.* State of Punjab);	3,4,5,6,8,9; 12,13,23,27; 29,60,63,87,90.
[1979]	[1979] 1 उम० नि० प० 82 = [1978] 2 एस० सी० आर० 547 : पथुम्मा बनाम केरल राज्य (Pathumma *v.* State of Kerala);	13,23,24, 25,28,29.
[1975]	[1975] 2 उम० नि० प० 257 = [1975] 2 एस० सी० आर० 774 : बी० बनर्जी बनाम अनीता पान (B. Banerjee *Vs.* Anita Pan) :	13,15,23,27,29.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

[1971] [1971] 1 उम० नि० प० 221 =
[1971] 2 एस० सी० आर० 711 :
मधु लिमये बनाम उप-खण्ड मजिस्ट्रेट, मुंगेर
(Madhu Limaye *Vs.* Sub-Divisional Magistrate, Monghyr); 12,14,28

[1964] [1964] 5 एस० सी० आर० 975 :
खैबरबाड़ी टी कम्पनी लिमिटेड बनाम
असम राज्य और अन्य
(Khebarbari Tea Company Ltd. *Vs.* State of Assam and others); 20,23,25

[1959] [1959] एस० सी० आर० 279 :
राम कृष्ण डालमिया वाला मामला
(Ram Krishna Dalmia's case); 13,15,17, 23,24,26

[1955] [1955] 1 एस० सी० आर० 707 :
सगीर अहमद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य
(Saghir Ahmed *Vs.* State of Uttar Pradesh). 18,20, 25

निर्दिष्ट निर्णय

[1983] [4] उम० नि० प० 215 =
(1983) 3 एस० सी० सी० 470 :
माछी सिंह वाला मामला
(Machhi Singh's case) 3,4

[1982] [1982] 1 उम० नि० प० 681 =
[1981] 3 एस० सी० आर० 92 :
लक्ष्मी खंडसारी और अन्य (मैसर्स) बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य
Laxmi Khandsari and others (M/s.) *Vs.* State of Uttar Pradesh and others) ; 26

[1976] [1976]49 लाइयर्स एडीशन सेकेंड 859 :
ग्रेग्ग बनाम जार्जिया
(Gregg v. Georgia); 35

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

[1973] [1973] 1 उम० नि० प० 36=
[1973] 2 एस० सी० आर 541 :
जगमोहन सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य
(Jagmohan Singh *Vs.* State of Uttar Pradesh); 3

[1970] [1970] 2 उम० नि० प० 1=
[1970] 1 एस० सी आर० 156 :
मोहम्मद फारूक बनाम मध्य प्रदेश राज्य
(Mohd. Faruk *Vs.* State of Madhya Pradesh); 22,23,25

[1970] [1970] 1 उम० नि० प० 595=
[1969] 3 एस० सी० आर० 865 :
वेस्टर्न यू० पी० इलैक्ट्रिक पावर एण्ड सप्लाई कम्पनी लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य
(Western U. P. Electric Power and Supply Company Limited *Vs.* State of Uttar Pradesh); 16

[1959] [1959] एस० सी० आर० 629 :
मोहम्मद हनीफ कुरैशी बनाम बिहार राज्य
(Mohd. Hanif Quareshi *Vs.* State of Bihar); 24,26

[1958] [1958] 356 यू० एस० 86 :
ट्राप बनाम डुल्लेस
(Trop *Vs.* Dulles); 90

[1957] [1957] एस० सी० आर० 874 :
मुम्बई राज्य बनाम आर० एम० डी० चमरबागवाला
(State of Bombay *Vs.* R.M.D. Chamarbaughwala); 13

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

[1949] [1949] 335 यू० एस० 538 : अमेरिकन सेश एण्ड डोर कम्पनी वाला मामला (American Sash & Door Company's case); 92

[1949] [1949] 329 यू० एस० 459 : लुइसैना बनाम रेसवेबर (Louisiana *Vs.* Resweber); 90

[1892] [1892] 144 यू० एस० 323 : ओनील बनाम वरमाउंट (O'Neil *Vs.* Vermont); 90

[1889-90] [1889-90] 136 यू० एस० 436 : केम्मलर वाला मामला (Kemmller's case). 70,90

आरम्भिक अधिकारिता : 1983 के रिट पिटीशन सं० 503, 516, 532, 534, 535, 537, 538-39, 541-42, 543-45, 553, 554, 555; 565, 574, 586, 556-57, 592-94, 604-06, 676, 600, 533, 1414; 1423 और 1697-98.

(भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन फाइल किए गए रिट पिटीशन)

और

1983 का विशेष इजाजत पिटीशन (दाण्डिक) सं० 196.

(1982 की दाण्डिक अपील सं० 1357 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के तारीख 6 दिसम्बर, 1982 वाले निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल किया गया विशेष इजाजत पिटीशन)

तथा

1983 के रिट पिटीशन सं० 286, 345-48, 428 और 429.

(भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन फाइल किए गए रिट पिटीशन)

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पिटीशनरों की ओर से

(रिट पिटीशन सं० 503 में)	डा० एन० एम० घटाटे और श्री एस० वी० देशपाण्डे
(रिट पिटीशन सं० 516 और 586 में)	श्री आर० सी० कोहली, न्यायमित्र
(रिट पिटीशन सं० 534 और 565 में)	सर्वश्री आर० के० गर्ग, आर० सतीश और वी० के० पंडित
(रिट पिटीशन सं० 535 में)	सर्वश्री ए० एन० बरदियार और बी० बी० सिन्हा
(रिट पिटीशन सं० 537 में)	श्री ए० के० श्रीवास्तव, न्यायमित्र
(रिट पिटीशन सं० 538-539 में)	श्री ओ० पी० वर्मा
(रिट पिटीशन सं० 541-42 में)	श्रीमती के० हिंगोरानी
(रिट पिटीशन सं० 543-45 में)	सर्वश्री बी० एस० वार्ष्णेय और सी० एल० साहु
(रिट पिटीशन सं० 553 में)	श्री एल० के० गुप्ता
(रिट पिटीशन सं० 555 में)	श्री राजू रामचन्दरन
(रिट पिटीशन सं० 5652 और 600 में)	कुमारी कैलाश मेहता और श्रीमती नरेश बख्शी
(रिट पिटीशन सं० 556-557 में)	श्री अरुण मदान, न्यायमित्र
(रिट पिटीशन सं० 604-06 में)	श्रीमती वी० डी० खन्ना
(रिट पिटीशन सं० 676 में)	श्री एस० एन० मेहता, न्यायमित्र
(रिट पिटीशन सं० 532 में)	सर्वश्री अनिल कुमार गुप्ता और ब्रिज भूषण
(रिट पिटीशन सं० 1414, 1697-98 और 286 में)	श्री डी० के० गर्ग
(रिट पिटीशन सं० 1423 में)	श्री अरुणेश्वर गुप्ता
(विशेष इजाजत पिटीशन सं० 196/83 में)	सर्वश्री एस० के० मेहता, पी० एन० पुरी और एम० के० दुआ
(रिट पिटीशन सं० 345-48 में)	सर्वश्री सोलमन खुर्शीद और एल० आर० सिंह

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(रिट पिटीशन सं० 429 में)	कुमारी ललिता कोहली, न्यायमित्र
(रिट पिटीशन सं० 532 में)	पिटीशनर स्वयं ही
(रिट पिटीशन सं० 534, 574, 592-94 और 428 में)	कोई नहीं
प्रत्यर्थियों की ओर से (महाराष्ट्र राज्य और भारत संघ की ओर से)	सर्वश्री के० पराशरन, महासालिसिटर के० जी० भगत, अपर महासालिसिटर, एन० सी० तालुकदार, अनिल देव सिंह, सी० वी० सुब्बा राव और कुमारी ए० सुभाषिणी
महाराष्ट्र राज्य की ओर से	श्री एम० एन० श्राफ
तमिलनाडु राज्य की ओर से	श्री ए० वी० रंगम्
कर्नाटक राज्य की ओर से	श्री स्वराज कौशल
पंजाब राज्य की ओर से	सर्वश्री हरबन्स सिंह और डी० डी० शर्मा
हरियाणा राज्य की ओर से	श्री आर० एन० पोद्दार
उत्तर प्रदेश राज्य की ओर से	श्री दलवीर भण्डारी
बिहार राज्य की ओर से	श्री बी० बी० सिंह
मध्यक्षेपियों की ओर से	
(कर्नाटक राज्य और मध्यक्षेपियों की ओर से)	श्री राम जेठमालानी
(1983 की रिट पिटीशन सं० 532, 534 और 535 में)	कुमारी रानी जेठमलानी और श्री श्रीकान्त भट्ट
(रिट पिटीशन सं० 503 में मध्यक्षेपी-स्वयं)	डा० चन्द्रकांत, लेक्चरार, डिपार्टमेंट आफ फोरसेनिक मैडिसन, आल इंडिया इंस्टीटयूट आफ मैडिकल साईंसेज

न्यायालय का निर्णय मुख्य न्यायाधिपति वाई० वी० चन्द्रचूड़ ने दिया ।

मुख्य न्यायाधिपति चन्द्रचूड़—

इन रिट पिटीशनों में, पिटीशनरों को दण्ड संहिता की धारा 302 के अधीन हत्या के अपराध के लिए मृत्यु का दण्डादेश दिया गया था ।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उनमें इस बात को छोड़कर कोई भी समान बात नहीं है कि उन्होंने हत्याएं की हैं और उनको मृत्यु का दण्डादेश दिया गया है। उन पर अधिरोपित मृत्यु का दण्डादेश इस अर्थ में अन्तिम हो गया है कि उनके द्वारा फाइल किए गए विशेष इजाजत पिटीशन, अपीलें, पुनर्विलोकन पिटीशन और दया पिटीशन खारिज कर दिए गए हैं, बल्कि इनमें से कुछ एक से अधिक बार खारिज कर दिए गए हैं। इन रिट पिटीशनों में पिटीशनरों ने जो मुख्य प्रश्न उठाया है, उसका संबंध मृत्यु के दण्डादेश के निष्पादन के ढंग की विधिमान्यता से है।

2. दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 354 (5) में यह उपबंध किया गया है—

> "जब किसी व्यक्ति को मृत्यु का दण्डादेश दिया जाता है, तो यह दण्डादेश यह निदेश देगा कि उसे गर्दन में फांसी लगाकर तब तक लटकाया जाए जब तक उसकी मृत्यु न हो जाए।"

पिटीशनरों ने इस उपबंध की सांविधानिक विधिमान्यता को इस आधार पर चुनौती दी है कि किसी सिद्धदोष को रस्सी से लटकाकर फांसी देना मृत्यु के दण्डादेश को निष्पादित करने का क्रूर और नृशंस ढंग है, जिससे संविधान के अनुच्छेद 21 का अतिक्रमण होता है। उस अनुच्छेद में निम्नलिखित उपबंध किया गया है—

> "किसी व्यक्ति को उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जाएगा, अन्यथा नहीं।"

3. इस न्यायालय ने मृत्यु के दण्डादेश की जो धारा 302 हत्या के अपराध के लिए विहित करती है, विधिमान्यता को बचन सिंह[1] वाले मामले में कायम रखा था। उस विनिश्चय का आधार यह है कि हत्या के लिए प्रसामान्य दण्डादेश आजीवन कारावास है और यह कि मृत्यु का दण्डादेश केवल अत्यधिक आपवादिक मामलों में ही अधिरोपित किया जा सकता है और उस निर्णय में इसके संबंध में यह बताया गया है कि उसे

---

[1] [1983] 1 उम० नि० प० 1021=[1983] 1 एस० सी० आर० 145.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विरल मामलों में से विरलतम मामले में ही अधिरोपित किया जाना चाहिए । यह बात कि उस प्रवर्ग के भीतर किस प्रकार के मामले निश्चित रूप से आएंगे, इस प्रकार की है जिसकी परिभाषा और वर्णन करना भी कठिन है किन्तु फिर भी इस न्यायालय ने **माछी सिंह**[1] वाले मामले में, 'विरल मामलों में से विरलतम मामले के, जिसमें मृत्यु का दण्डादेश न्यायोचित रूप से अधिरोपित किया जा सकता है, क्षेत्र को बताने की सुविचारित कोशिश की थी, यद्यपि उसे मूर्त रूप प्रदान नहीं कर सका था । श्री गर्ग ने उस निर्णय की जो यह आलोचना की है कि उसने वास्तव में **बचन सिंह**[2] और **जगमोहन सिंह**[3] वाले मामले को उलट दिया है, वह मुद्दे से हटकर है । **माछी सिंह**[1] वाले मामले में विद्वान् न्यायाधीशों ने इस बात से सम्बन्धित जटिल प्रश्न को कि क्या मृत्यु का दण्डादेश दिए जाने की आवश्यकता है, विनिश्चित करने में न्यायालयों की सहायता करने की दृष्टि से मोटे तौर से सिद्धान्त विनिर्मित किए हैं । स्पष्टतः, उस निर्णय के परिणामस्वरूप उन मामलों के संकुचित क्षेत्र को, जिनमें मृत्यु का दण्डादेश दिया जाना चाहिए, विस्तृत करके **बचन सिंह**[2] वाले मामले में दिए गए विनिर्णय के विस्तार क्षेत्र में कोई भी वृद्धि नहीं हुई है ।

4. किन्तु **माछी सिंह**[1] वाले मामले का उल्लेख तो वैसे ही कर दिया गया है । चूंकि हत्या के अपराध के लिए मृत्यु के लिए दण्डादेश की विधिमान्यता को इस न्यायालय ने सावधानीपूर्वक और काफी लम्बे विचारविमर्श के बाद कायम रखा है, इसलिए उस प्रश्न पर पुनर्विचार करने के लिए कोई भी न्यायौचित्य नहीं है, यद्यपि हमारे समक्ष उस समय जबकि दलीलें समाप्त हो रही थीं, दबी जबान से ऐसा सुझाव दिया गया था । इस प्रश्न को कि **बचन सिंह** वाले[2] मामले में उल्लिखित परिस्थितियों में मृत्यु का दण्डादेश उल्लिखित करना अनुज्ञेय है, समाप्त मान लिया जाना चाहिए और अब आगे इसके संबंध में दलील देने का अधिकार नहीं रह गया है । यदि विधि को अपनी विश्वसनीयता खोनी नहीं है, तो दाण्डिक तथा सिविल दोनों ही प्रकार की मुकदमेबाज़ी को समाप्त करना है । हां, कोई भी व्यक्ति इस बात को प्रश्नगत नहीं कर सकता है कि विधि गतिशील विज्ञान है जिसकी सामाजिक उपयोगिता सामाजिक और वैज्ञानिक

---

[1] [1983] 4 उम० नि० प० 215=(1983) 3 एस० सी० सी० 470.
[2] [1983] 1 उम० नि० प० 1021=[1983] 1 एस० सी० आर० 145.
[3] [1973] 1 उम० नि० प० 36=[1973] 2 एस० सी० आर० 541.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रगति में उभरकर आने वाली प्रवृत्तियों को सामने रखने की क्षमता में और उन प्रवृत्तियों के अनुसार कार्य करने की दृष्टि से उसके सिद्धान्तों का पुनस्समायोजन करने की उसकी इच्छा में निहित है। जीवन गतिहीन नहीं है। विधि का प्रयोजन जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति करना है। अतः विधि गतिहीन नहीं हो सकती किन्तु उसका अर्थ यह नहीं है कि इस न्यायालय ने पूरे वाद-विवाद के बाद जो निर्णय किये हैं, उन पर जब-तब पुनर्विचार किया जाना चाहिए और उनके प्राधिकार के संबंध में सन्देह किया जाना चाहिए या उनके प्राधिकार के प्रभाव को क्षीण किया जाना चाहिए। उसके परिणामस्वरूप विधि की कुसेवा ही होगी, क्योंकि युक्तियुक्त रूप से भावी अवधि के दौरान जो निश्चितता होती है, वह विधि का प्रमाण-चिह्न होती है।

5. विद्वान् सालिसिटर जनरल ने इन रिट पिटीशनों पर प्रारम्भिक आपत्ति इस आधार पर की है कि पिटीशनरों ने जिस प्रश्न के संबंध में दलील पेश करने की कोशिश की है, वह **बचन सिंह**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की संविधान न्यायपीठ द्वारा किए गए निर्णय से समाप्त हो गई है। यह बहस की गई है कि चूंकि यह प्रश्न अनिर्णीत विषय नहीं रह गया है, इसलिए पिटीशनरों को उसे उठाने का कोई भी अधिकार नहीं है और न ही इस न्यायालय के लिए उसे ग्रहण करने का कोई कारण या औचित्य ही दिखाई पड़ता है। पिटीशनरों के विद्वान् काउन्सेल ने, जिनमें से श्री आर० के० गर्ग प्रमुख हैं, इस आपत्ति का उत्तर यह दलील पेश करके दिया कि जो एकमात्र प्रश्न **बचन सिंह** वाले[1] मामले में उत्पन्न हुआ था, वह यह था कि क्या मृत्यु का दण्डादेश विहित करना सांविधानिक रूप से अनुज्ञेय है। पिटीशनरों की ओर से इस बात पर जोर दिया गया है कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 354 (5) की विधिमान्यता से संबंधित प्रश्न पर न तो **बचन सिंह**[1] वाले मामले में बहस ही की गई थी और न ही इस न्यायालय ने उस पर विचार किया था।

6. विद्वान् सालिसिटर जनरल ने जो आपत्ति की है, उसमें मात्र इन कारणों से सार नजर आता है, जिन्हें हम अभी-अभी बताएंगे किन्तु जिन्हें हम स्वीकार नहीं करना चाहते। **बचन सिंह**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय के पृष्ठ 196 पर "(मृत्यु को) समाप्त करने के पक्षधर' की दलील जिन्हें यहां पर पिटीशनरों के काउन्सेल ने सारतः अपनाया है, खण्ड (क)

---

[1]. [1983] 1 उम० नि० प० 1021=[1983] 1 एस० सी० आर० 145.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

खण्ड (ख) और खण्ड (ग) में अविकल रूप से दी गई है। खण्ड (ग) के अधीन वह दलील अविकल रूप से इस प्रकार है— "फांसी चाहे जिस प्रकार से दी जाए और चाहे जिस अपराध के लिए दी जाए, क्रूर, अमानवीय और अपमानजनक दण्ड है" जिससे स्पष्टतः मृत्यु के दण्डादेश का निष्पादन अभिप्रेत है। खण्ड (क) में उल्लिखित इस प्रभाव की दलील पर कि मृत्यु की शास्ति इसलिए असांविधानिक है क्योंकि उसे उलटा नहीं जा सकता है, निर्णय के पृष्ठ 196 और 197 पर विचार किया गया है। खण्ड (ख) में उल्लिखित इस बात से संबंधित दलील पर कि क्या मृत्यु की शास्ति से कोई दाण्डिक प्रयोजन सिद्ध होता है, पृष्ठ 197 पर विचार किया गया है, यद्यपि उस निर्णय के पृष्ठ 196 पर खण्ड (क) और (ख) में उल्लिखित इन दलीलों पर विनिर्दिष्ट रूप से, जैसा कि ऊपर बताया गया है, पृथक् शीर्ष के अधीन विचार किया गया है, तथापि मृत्यु के दण्डादेश के निष्पादन से संबंधित पृष्ठ 196 पर खण्ड (ग) में उल्लिखित दलील पर पृथक् शीर्ष के अधीन विचार नहीं किया गया है। इस दलील का विवेचन कि क्या मृत्यु की शास्ति से कोई दाण्डिक प्रयोजन सिद्ध होता है, पृष्ठ 222 पर तीसरी पंक्ति के अन्त में समाप्त हो गया है। "(ग) के संबंध में" वाले शीर्ष को उक्त तीसरी पंक्ति के बाद और उस नए पैरा के पहले निर्णय में दिया जाना चाहिए था जोकि इस प्रकार से आरम्भ होता है : "अब हम इस विवाद्यक पर विचार करेंगे कि क्या दण्ड संहिता की धारा 302 में के उपबंध के आक्षेपित भाग से संविधान के अनुच्छेद 21 का उल्लंघन होता है"। यह बात कि इसे ऐसा होना चाहिए था, इस तथ्य से स्पष्ट है कि पृष्ठ 222 और 223 पर दी गई विशिष्ट दलील पर विचार करने के बाद न्यायाधिपति सरकारिया ने, जिन्होंने बहुमत की ओर से निर्णय दिया था, निम्नलिखित रूप में मत व्यक्त किया है—

> "क्रमवर्ती दण्ड प्रक्रिया संहिताओं के अधीन जो कि लगभग 100 वर्ष से प्रवृत्त रही है, मृत्यु दण्डादेश, फांसी पर लटका कर कार्यान्वित किया जाता है। पूर्वोक्त सांविधानिक आचार-तत्वों को ध्यान में रखते हुए इस बात की कल्पना भी नहीं की जा सकती कि यह कहा जाए कि दण्ड संहिता की धारा 302 के अधीन मृत्यु की शास्ति या तो स्वतः अथवा इस कारण कि इसे फांसी पर लटका कर निष्पादित किया जाता है, अयुक्तियुक्त, क्रूर अथवा अप्रायिक दण्ड गठित करती है। उसी सांविधानिक आचार-तत्व के कारण, यह नहीं कहा जा सकता कि संविधान की विरचना करने वालों का यह

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विचार था कि संविधान की उद्देशिका के रूप में अनुध्यात किए जाने के अन्तर्गत 'व्यक्ति की गरिमा' को दूषित करने वाला दण्डादेश दिया जाएगा जो कि उसमें केवल इस कारण ह्रास पैदा कर देगा कि हत्या के लिए मृत्यु दण्डादेश दिया गया है अथवा उसके निष्पादन की जो पारम्परिक पद्धति विहित है, वह अनुचित है।"

7. न्यायाधिपति भगवती ने जिन्होंने बहुमत निर्णय से अपना विसम्मत व्यक्त किया था, मुख्य और प्रक्रिया संबंधी दोनों ही दृष्टिकोणों से मृत्यु के दण्डादेश की सांविधानिक विधिमान्यता के प्रश्न पर विचार किया। पृष्ठ 286 पर विद्वान् न्यायाधिपति ने यह मत व्यक्त किया है कि : "फांसी की सजा पाए हुए बन्दियों में से अधिकांश के लिए सबसे बुरा समय वह अन्तिम कुछ क्षण होता है जबकि सभी निश्चितता समाप्त हो जाती है और मृत्यु का क्षण ज्ञात हो जाता है।" दोस्तोवेस्की एण्ड केंस से उद्धरण देने के बाद, जिनका संबध मृत्यु के दण्डादेश के निष्पादन से है, विद्वान् न्यायाधिपति ने यह मत व्यक्त किया है कि "मृत्यु के दण्डादेश की घोर भ्रष्टता और अमानवीयता को वर्णित करने के लिए इनसे अधिक जोरदार शब्द कोई नहीं हो सकते।" यह मत व्यक्त करने के बाद न्यायाधिपति भगवती ने इस प्रकार मत व्यक्त किया है—

"मृत्यु दण्डादेश के निष्पादन में जो शारीरिक पीड़ा और कष्ट होता है, वह कोई कम नृशंस और अमानवीय नहीं होता। भारत में प्राण दण्ड देने की पद्धति रस्सी से फांसी लगाना है। बिजली से या घातक गैस का इस्तेमाल अभी आरम्भ नहीं हुआ है जो कि कुछ पाश्चात्य देशों में है। इसलिए फांसी लगाकर प्राण दण्ड देने के संदर्भ में ही मुझे यह विचार करना होगा कि मृत्यु दण्डादेश बर्बर और अमानवीय है जिससे शारीरिक कष्ट और व्यथा होती है। निस्सन्देह, यह सही है कि रायल कमीशन आन कैपिटल पनिशमेंट 1949-53 का निष्कर्ष था कि फांसी लगाकर प्राण दण्ड देने की सबसे अधिक मानवीय पद्धति है और इसी प्रकार इचीकावा बनाम जापान वाले मामले में भी जापानी सुप्रीम कोर्ट ने यह अभिनिर्धारित किया था कि फांसी लगाकर प्राण दण्ड देना निर्मम दण्ड जैसा नहीं है जोकि जापानी संविधान के अनुच्छेद 36 द्वारा प्रतिषिद्ध है। किंतु प्राण दण्ड की सभी पद्धतियों में फांसी लगाना सर्वाधिक मानवीय है अथवा जापानी उच्चतम न्यायालय की दृष्टि से फांसी लगाना अनुच्छेद 36 के अर्थ में निर्मम दण्ड नहीं है; एक बात स्पष्ट है कि

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

फांसी लगाने से निस्सन्देह घोर शारीरिक यातना और पीड़ा होती है।" (जोर देने के लिए रेखांकित)

इसके बाद विद्वान् न्यायाधीश ने वार्डन डफी आफ सेन क्वेंटिन द्वारा, जो कि अमरीका में अत्यधिक सुरक्षित कारागार है, बताए गए फांसी देने के ढंग के वर्णन के प्रति निर्देश किया है और ऐसे सर्जन ने 1927 में यह वर्णन किया है, जिसने दो बार फांसी देते हुए देखा था और जिसने यह कहकर अपना निष्कर्ष निकाला है कि उसने जिन लेखांशों को उद्धृत किया है, उनसे सन्देह से परे यह बात साबित हो जाती है कि फांसी पर लटका कर मृत्यु के दण्डादेश के निष्पादन में अत्यधिक शारीरिक कष्ट और दुख होता है, यद्यपि कुछ लोग उसे विद्युत-शक्ति से मारकर या घातक गैस का प्रयोग करने की अपेक्षा अधिक मानवीय समझते हैं।

8. इस विवेचन से यह पता चलेगा कि बचन सिंह[1] वाले मामले में बहुमत और अल्पमत वाले न्यायाधीशों ने, मृत्यु के दण्डादेश को निष्पादित करने के लिए विधि द्वारा विहित फांसी लगाने की पद्धति के प्रति विशेष निर्देश करते हुए, प्रक्रियात्मक पहलू से भी मृत्यु के दण्डादेश की विधिमान्यता के प्रश्न पर विचार किया था। मृत्यु के दण्डादेश की विधिमान्यता को कायम रखते हुए न्यायाधीशों के बहुमत ने इस परिस्थिति को नजरअन्दाज नहीं किया था और वास्तव में उसने इस परिस्थिति को विचार में नहीं लिया था कि मृत्यु के दण्डादेश को निष्पादित करने के लिए दण्ड प्रक्रिया संहिता द्वारा विहित ढंग, फांसी लगाना है। दूसरी ओर मृत्यु के दण्डादेश की विधिमान्यता को अभिखंडित करते हुए न्यायाधिपति भगवती पर इस विचार का प्रभाव पड़ा था कि मृत्यु के दण्डादेश को निष्पादित करने के लिए विधि द्वारा विहित फांसी लगाने का ढंग अपने आप में क्रूर और बर्बर है।

9. यद्यपि यह वास्तविक स्थिति है, तथापि वह कारण कि हम विद्वान् सालिसिटर जनरल द्वारा उठाई गई प्रारम्भिक आपत्ति को क्यों कायम नहीं रखना चाहते हैं, यह है कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 354 (5) की सांविधानिक विधिमान्यता से संबंधित प्रश्न को न तो बचन सिंह[1] वाले मामले में पिटीशनरों ने उपयुक्त रूप से उठाया था और न ही इस न्यायालय ने प्रत्यक्ष रूप से उस पर विचार ही किया था। यदि हम इस बात को इसी रूप में पेश कर सकें, तो संहिता की धारा 354 (5) की विधिमान्यता से

---

[1] [1983] 1 उम० नि० प० 1021=[1983] 1 एस० सी० आर० 145.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

संबंधित प्रश्न बचन सिंह[1] वाले मामले में प्रत्यक्षतः और सारतः विवाद्य नहीं था। उस मामले में विचार के लिए जो प्रश्न उत्पन्न हुए थे, वे प्रश्न (1) और प्रश्न (2) के रूप में पृष्ठ 169 पर बहुमत वाले निर्णय में विरचित किए गए थे। न्यायाधीशों के बहुमत ने मृत्यु के दण्डादेश के निष्पादन के ढंग के प्रति प्रसंगवश ही निर्देश किया था। इस प्रश्न पर कि क्या संहिता की धारा 354(5) द्वारा विहित मृत्यु के दण्डादेश को निष्पादित करने के विशेष ढंग से अनुच्छेद 21 के उपबंधों का अतिक्रमण होता है, बहुमत द्वारा स्वतंत्र विवाद्यक के रूप में विनिर्दिष्ट रूप से विचार नहीं किया गया था। न्यायाधिपति भगवती के निर्णय पर विचार करते हुए बल्कि उस पर सम्पूर्ण रूप से विचार करते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि जिस मुख्य कारण से विद्वान् न्यायाधीश ने मृत्यु के दण्डादेश को अभिखंडित किया था, वह उसकी अप्रतिसंहरणीयता, मनमानापन और प्रयोजनहीनता है। बचन सिंह वाले मामले में जो विनिश्चय किया गया था उसमें हममें से एक न्यायाधीश मौजूद थे और यदि हमें जल्दी ही वे बातें विस्मृत नहीं हो गई हैं तथा विनिश्चय को समझने में उपयुक्त रूप से सहायक हैं, यह तो कहना ठीक नहीं होगा कि संहिता की धारा 354 (5) की सांविधानिक विधिमान्यता से संबंधित प्रश्न, उस मामले में, न तो प्रत्यक्षतः विवाद्य था और न ही उस पर बहस की गई थी, न ही न्यायालय ने उस पर ऐसे स्वतंत्र कारण के रूप में विचार किया था जिसका संबंध मृत्यु के दण्डादेश की विधिमान्यता से रहा हो। इन रिट पिटीशनों में पिटीशनरों ने जो प्रश्न उठाया है वह न केवल विधिक और सांविधानिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है, बल्कि सामाजिक दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण है। उस प्रश्न को एक ओर रख देना उचित नहीं होगा और इस आनुषंगिक बात के कारण उसकी पूरी तरह से परीक्षा करना भी अनुचित नहीं होगा जो कि बचन सिंह[1] वाले मामले में किया गया था। तदनुसार हम विद्वान् सालिसिटर जनरल द्वारा उठाई गई प्रारम्भिक आपत्ति को अस्वीकृत करते हैं और उसके गुणागुण के आधार पर पिटीशनरों द्वारा उठाए गए प्रश्न की परीक्षा इस आधार पर करना चाहते हैं कि इस प्रश्न के संबंध में अब भी दलीलें पेश की जा सकती हैं।

10. पिटीशनरों ने, जिन्हें कि घोर नृशंसता के कार्यों के लिए मृत्यु का दण्डादेश दिया गया है, आहत निर्दोषिता की भावना के साथ अपना पक्ष-कथन प्रस्तुत किया है। उनका दावा यह है कि चाहे उन्होंने मृतकों और

---

[1] [1983] 1 उम० नि० प० 1021=[1983] एस० सी० आर० 145.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उनके कुटुम्बों को कैसा ही कष्ट और दुःख क्यों न पहुंचाया हो; मृत्यु का दण्डादेश निष्पादित करते समय उनको किसी भी प्रकार का कष्ट या दुःख नहीं होना चाहिए। श्री आर० के० गर्ग और अन्य विद्वान् काउन्सेल ने उनकी ओर से इस बात पर जोर दिया है कि भले ही आपवादिक वर्ग के मामलों में मृत्यु का दण्डादेश अधिरोपित करना विधिपूर्ण क्यों न हो, उन मामलों में भी उस दण्डादेश को निष्पादित करना अननुज्ञेय है क्योंकि वह किन्हीं भी परिस्थितियों में यहां तक कि न्यायालय की डिक्री के अधीन भी मानव जीवन को छीन लेना अमानवीय और क्रूर है। पिटीशनरों की दलील का मुख्य आधार यही है। द्वितीयतः, इस बात पर जोर दिया गया कि मृत्यु का दण्डादेश निष्पादित करने के लिए संहिता की धारा 354(5) द्वारा विहित ढंग अमानवीय, बर्बर और अपमानजनक है और इसी कारण से उस प्रक्रिया का उपयोग मृत्यु के दण्डादेश को निष्पादित करने के लिए नहीं किया जा सकता। मृत्यु के दण्डादेश को निष्पादित करने और ऐसे मानवीय और सम्मानजनक ढंग के लिए जिसमें किसी भी प्रकार की यंत्रणा या क्रूरता अंतर्ग्रस्त न हो, व्यवस्था करना राज्य की सांविधानिक बाध्यता है। इस बात पर जोर दिया गया है कि यदि राज्य अपनी बाध्यता का निर्वहन करने में असफल रहता है, तो मृत्यु का दण्डादेश अधिरोपित करना कितना ही न्यायोचित क्यों न हो, उसे निष्पादित नहीं किया जा सकता। दण्ड प्रक्रिया संहिता में मृत्यु के दण्डादेश को निष्पादित करने के लिए केवल एक ही ढंग अर्थात् फांसी लगाकर विहित किया गया है और यदि उस ढंग से अनुच्छेद 21 की आज्ञा का अतिक्रमण होता है, तो उस दण्डादेश को अनिष्पादित रहने देना चाहिए क्योंकि न्यायालय विधि द्वारा विहित और अनुध्यात एकमात्र ढंग और स्थान पर निष्पादन के अन्य ढंग को प्रतिस्थापित नहीं कर सकता। अंततः यह दलील दी गई कि यह साबित करने का भार राज्य पर है कि संहिता की धारा 354 (5) द्वारा विहित मृत्यु के दण्डादेश के निष्पादन करने का ढंग मानवतापूर्ण और सभ्य ढंग है और यह कि उसमें किसी भी प्रकार का कष्ट, क्रूरता या अपमान अन्तर्ग्रस्त नहीं है। यह बात इसलिए है क्योंकि यह साबित करने का भार कि किसी विशिष्ट व्यक्ति का ऐसा कार्य जिसको इस आधार पर चुनौती दी गई हो कि वह असांविधानिक है, न्यायोचित और न्याय-संगत नहीं है, राज्य पर होता है। अतः यह दर्शित करने का कार्य पिटीशनरों का नहीं है कि मृत्यु का दण्डादेश निष्पादित करने का कोई अन्य ढंग कम कष्टप्रद, क्रूर या अपमानजनक होगा। पिटीशनरों के मतानुसार, यदि राज्य उस भार का निर्वहन नहीं करता है जो कि उस पर पूरी तरह से है, तो वह अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन करने में असफल रहता है; ये पिटीशन इस

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आधार पर खारिज नहीं किए जा सकते कि पिटीशनर यह साबित नहीं कर सके हैं कि धारा 354(5) द्वारा विहित ढंग में अनावश्यक कष्ट, यंत्रणा या क्रूरता अन्तर्ग्रस्त है; या यह कि मृत्यु का दण्डादेश निष्पादित करने के अन्य ढंग न तो क्रूर हैं और न ही कष्टदायी और यह संहिता की धारा 354(5) द्वारा विहित ढंग की बनिस्बत कम क्रूर या कष्टदायी हैं। इस परिस्थिति से अप्रभावित हुए बिना कि सभ्य, मानवीय और कष्टहीन व्यवहार के लिए उन लोगों द्वारा मांग की जाती है जिनके बारे में यह पाया गया है कि वे अपने असभ्य और अमानवीय ऐसे कार्यों से प्रभावित व्यक्तियों के साथ ऐसा कार्य करने के दोषी हैं जिनमें बहुत बड़ी यंत्रणा और कष्ट अन्तर्ग्रस्त था, इन दलीलों पर सावधानीपूर्वक विचार करने की आवश्यकता है। "जैसे को तैसा" और 'जो जैसा करे, उसके साथ वैसा ही करो' के सिद्धान्त में अन्तर्ग्रस्त प्रतिकार की भावना को सभ्य न्यायशास्त्र की स्कीम में कोई भी स्थान नहीं है। हम न्याय के लिए पिटीशनरों की इस मांग को इस आधार पर अनसुना नहीं कर सकते कि उनके अपराधों की अति दुष्टता के परिणामस्वरूप उनके अपराधों के शिकार व्यक्तियों के साथ गंभीर रूप से अन्याय हुआ है। हमारा संबंध सांविधानिक आज्ञा का सम्यक् रूप से अनुपालन करने से है, भले ही कैसा ही अवसर क्यों न हो। यदि ऐसी बात नहीं होती, तो ऐसे तस्करों को जिन्हें निरोध विधियों के अधीन निरुद्ध किया जाता है, संविधान के अनुच्छेद 22 की संरक्षा से इस आधार पर वंचित कर दिया जाता कि वे ऐसे कार्य करने के दोषी हैं जिन्होंने देश की अर्थव्यवस्था को नुकसान पहुंचाया है। न्याय सांविधानिक ऊंचाइयों के अनुसार ही शांतिपूर्वक करना पड़ता है चाहे ऐसा व्यक्ति जो कि उसकी मांग कर रहा है, हत्यारा हो या तस्कर हो; विधि प्रतिशोध की भावना से कार्य नहीं कर सकती है।

11. एक प्रक्रम में हम सबूत के भार से संबंधित परस्पर विरोधी दलीलों पर विचार किए बिना ही पिटीशनरों द्वारा बहस की गई मुख्य दलील को विनिश्चित कर देना चाहते थे। हमने यह सोचा कि चाहे यह दर्शित करने का भार कि संहिता की धारा 354 (5) द्वारा विहित ढंग सांविधानिक रूप से अनुज्ञेय है, पिटीशनरों पर हो या चाहे वह भार राज्य पर यह साबित करने का हो कि विशिष्ट ढंग संविधान के ढांचे के भीतर अनुज्ञय है, हमें उस आंकड़े के आधार पर जो कि दोनों ही पक्षों ने हमारे समक्ष पेश किए हैं, उस ढंग की वैधता के संबंध में अपना निर्णय देना चाहिए। सबूत के भार के प्रश्न का वही महत्व उस समय समाप्त हो जाता है जबकि हमारे समक्ष सम्पूर्ण साक्ष्य मौजूद हो और प्रत्येक

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पक्ष ने ऐसी सामग्री उसके समक्ष पेश की हो जो कि वह अपने मामले के समर्थन में पेश करना आवश्यक समझता है। किन्तु फिर इस तथ्य से कि पक्षकारों ने न्यायालय के समक्ष अपने-अपने आंकड़े पेश किए हैं, न्यायालय को इस प्रश्न पर विचार करने से छुटकारा नहीं मिल सकता कि क्या उसके समक्ष पेश की गई सम्पूर्ण सामग्री के आधार पर, भार के संबंध में यह कहा जा सकता है कि उस पक्षकार ने उसका निर्वहन कर दिया है जिस पर वह है। इसके अलावा, काउन्सेलों ने सबूत के भार के प्रश्न के संबंध में काफी दलीलें पेश कीं और चूंकि वह प्रश्न महत्व का है और प्रायः उठाया जाता है, इसलिए हमारे द्वारा उसका विनिश्चय किया जाना न्यायोचित है। अतः हम उस प्रश्न को पिटीशनरों की ओर से पेश की गई अन्य दलीलों के प्रति निर्देश करने से पूर्व विनिश्चित करना चाहते हैं।

12. श्री जेठमलानी ने जो कि कर्नाटक सरकार की ओर से तथा भारत की बार कौंसिल की ओर से भी उपस्थित हुए हैं, जिन्हें इन कार्यवाहियों में मध्यक्षेप करने की इजाजत दी गई थी, इस बात पर जोर दिया है कि प्रत्येक कानून के साथ सांविधानिकता के प्रति बड़ी जोरदार उपधारणा होती है और उन लोगों पर, जो कि उस कानून को चुनौती देते हैं, उस उपधारणा को गलत साबित करने का भारी भार होता है। इस दलील के समर्थन में विद्वान् काउन्सेल ने **मधु लिमये बनाम उप-खण्ड मजिस्ट्रेट, मुंगेर**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के सात न्यायाधीशों की न्यायपीठ के विनिश्चय का मुख्य रूप से अवलम्ब लिया है जिसकी ओर (उसका मत यह है कि) **बचन सिंह वाले मामले**[2] में ध्यान नहीं दिया गया। विद्वान् अटर्नी जनरल (इन पिटीशनों की सुनवाई के दौरान सालिसिटर जनरल, अटर्नी जनरल हो गए थे) ने भी यह दलील दी कि इस न्यायालय के विनिश्चयों में समान रूप से लगभग यह मत अपनाया गया है कि सांविधानिकता की उपधारणा को गलत साबित करने का भार उस व्यक्ति पर होता है जो किसी कानून को इस आधार पर चुनौती देता है कि वह असांविधानिक है।

13. महत्वपूर्ण विनिश्चयों में से अधिकांश को, जिसका सीधा प्रभाव सबूत के भार के प्रश्न पर है, बचन सिंह वाले मामले में बहुमत और

---

[1] [1971] 1 उम० नि० प० 221=[1971] 2 एस० सी० आर० 711.

[2] [1983] 1 उम० नि० प० 1021= [1983] 1 एस० सी० आर० 145.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अल्पमत निर्णय में प्रोद्धृत किया गया है। न्यायाधिपति सरकारिया ने बहुमत की ओर से निर्णय देते हुए इस स्थिति को इस प्रकार व्यक्त किया है—

"(साबित करने के) भार के संबंध में सभी स्थितियों में विश्व-व्यापी रूप से लागू होने वाला कोई भी निश्चित नियम विनिश्चित मामलों से अवधारित नहीं किया जा सकता। किन्हीं विनिश्चयों में जैसे कि सगीर अहमद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [1955]1 एस० सी० आर० 707 और खैबरबाड़ी टी कम्पनी बनाम असम राज्य और अन्य [1964]5 एस० सी० आर० 975 में इस न्यायालय ने यह अधिकथित किया था कि यदि रिट पिटीशनर यह दर्शित करने में सफल हो जाता है कि आक्षेपित विधि, प्रथमदृष्टया, अनुच्छेद 19 के खण्ड (1) के उपखण्डों में से किसी के अधीन आने वाले अधिकारों को न्यून करती है या उसका अतिलंघन करती है, तो प्रत्यर्थी-राज्य पर यह दर्शित करने का भार होता है कि वह विधान का खण्ड (2) से लेकर (6) में से किसी के द्वारा, जो कि उस मामले को लागू हों, अधिरोपित अनुज्ञेय परिसीमाओं के भीतर आता है और उस दलील के समर्थन में इस न्यायालय के समक्ष सामग्री भी पेश करने का भार होता है। यदि राज्य उस के संबंध में कुछ भी नहीं करता है, तो पिटीशनर पर नकारात्मक रूप से यह साबित करने का भार नहीं होता है कि वह अनुज्ञेय खण्डों में से किसी की परिधि के भीतर नहीं आता।

तथापि इस न्यायालय के अभी हाल में दिए गए विनिश्चयों में इसके प्रतिकूल प्रवृत्ति दिखाई पड़ रही है, जिनमें कानून की सांविधानिकता के पक्ष में प्रारंभिक उपधारणा के साथ मत व्यक्त किया गया है और उस पक्षकार पर जो कि अनुच्छेद 19 के आधार पर उसकी सांविधानिकता को चुनौती देता है, उस उपधारणा का प्रतिवाद करने का भार डाला गया है।"

इसके प्रतिकूल रुझान के उदाहरण के तौर पर न्यायाधिपति सरकारिया ने बी० बनर्जी बनाम अनीता पान[1] वाले मामले में न्यायाधिपति कृष्ण अय्यर के निर्णय को प्रोद्धृत किया है, जिस निर्णय में राम कृष्ण डालमिया[2] वाले

---

[1] [1975] 2 उम० नि० प० 257=[1975] 2 एस० सी० आर० 774.
[2] [1959] एस० सी० आर० 279.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मामले के विनिश्चयाधार को पुनः दोहराया गया है, जो कि निम्नलिखित प्रभाव का है—

> "·····उपधारणा सदा ही किसी भी अधिनियमिति की वैधानिकता के पक्ष में की जाती है और जो आक्षेप करता है, उसी पर यह साबित करने का भार होता है कि सांविधानिक सिद्धान्तों का स्पष्ट अतिलंघन किया गया है ; और
>
> ·····यह कि उपधारणा यह की जानी चाहिए कि विधान-मण्डल अपनी जनता की आवश्यकताओं को समझता है और उसने उसका मूल्यांकन सही-सही किया है और यह कि उसकी विधियां उन समस्याओं को दूर करने के लिए बनाई गई हैं, जो अनुभव के दौरान स्पष्ट रूप से सामने आई हैं और यह कि उसके द्वारा किए गए विभेद पर्याप्त आधारों पर आधारित हैं।"

आर० एम० डी० चमरबागवाला[1] वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय के प्रति निर्देश करते हुए और सीरवई के कांस्टिट्यूशनल ला (पृष्ठ 54, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ 118 तृतीय संस्करण) के अध्याय 3 में प्रथम प्रतिपादन के प्रति निर्देश करते हुए न्यायाधिपति कृष्ण अय्यर ने यह मत व्यक्त किया था—

> "हमें सांविधानिक अभिकरणों के सौजन्य को ध्यान में रखना है और यह उपधारणा करनी है कि विधानमण्डल लोगों की आवश्यकताओं को समझता है और उसकी शक्ति पर जो निर्बन्धन और परिसीमाएं हैं उनसे भी वह काफी अवगत रहता है। कुछ न्यायालयों ने यहां तक अभिनिर्धारित कर दिया है कि सांविधानिकता के पक्ष में उपधारणा की जाती है; कोई विधि तब तक असांविधानिक घोषित नहीं की जाएगी, जब तक कि वह मामला इतना स्पष्ट न हो कि वह सन्देह से बिल्कुल परे है और किसी विधि की सांविधानिकता के संबंध में सन्देह को दूर कर दिया गया है।"

न्यायाधिपति सरकारिया ने अंत में पथुम्मा बनाम केरल राज्य[2] वाले

---

[1] [1957] एस० सी० आर० 874.

[2] [1979] 1 उम० नि० प० 82=[1978] 2 एस० सी० आर० 547.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मामले में इस न्यायालय की सात न्यायाधीशों की न्यायपीठ के विनिश्चय के प्रति निर्देश किया है जिसमें न्यायाधिपति फजल अली ने अपनी ओर से, मुख्य न्यायाधिपति वेग की ओर से, न्यायाधिपति कृष्ण अय्यर और न्यायाधिपति जसवन्त सिंह की ओर से निर्णय देते हुए, विधि निम्नलिखित शब्दों में घोषित की थी—

"यह बात सुस्पष्ट है कि विधानमण्डल जनता की उन आवश्यकताओं को समझने और उनका मूल्यांकन करने की सर्वोत्तम स्थिति में होता है जैसा कि समाज के पिछड़े और कमजोर वर्गों के सुधार और उत्थान के लिए और निर्धन व्यक्तियों की दशा सुधारने के लिए संविधान ने व्यादिष्ट किया है। अतः न्यायालय इस प्रक्रिया में केवल तभी हस्तक्षेप करेगा जब कानून स्पष्ट रूप से संविधान के भाग 3 के अधीन नागरिक को प्रदत्त अधिकार का अतिक्रमण करता है अथवा जब अधिनियम विधानमण्डल की विधायी क्षमता से परे है अथवा ऐसे ही अन्य आधार हों। इसी कारणवश न्यायालयों ने यह माना है कि सदैव ही कानून की सांविधानिकता के पक्ष में धारणा की जाती है और इसकी अविधिमान्यता साबित करने का भार उस पक्षकार पर होता है जो उस पर आपत्ति करता है। मोहम्मद हनीफ कुरेशी और अन्य बनाम बिहार राज्य [1959] एस० सी० आर० 629 वाले मामले में इस पहलू पर ध्यान देते समय मुख्य न्यायाधिपति दास ने, जैसे कि वे उस समय थे, न्यायालय की ओर से निर्णय देते हुए यह मत व्यक्त किया—

'इस न्यायालय के निर्णय, अन्य बातों के साथ-साथ, इसके अतिरिक्त यह सिद्ध करते हैं कि किसी अधिनियमिति की सांविधानिकता के पक्ष में सदैव ही उपधारणा की जाती है और यह कि जो उस पर आपत्ति करता है, यह दर्शित करने का भार उस पर है कि सांविधानिक सिद्धान्तों का स्पष्ट अतिक्रमण किया गया है। यह बात स्वीकृत है कि न्यायालयों को यह धारणा करनी चाहिए कि विधानमण्डल अपनी जनता की आवश्यकताओं को समझता है और उनका सही रूप से मूल्यांकन करता है; यह कि इसकी विधियां उन समस्याओं के लिए होती हैं जो अनुभव द्वारा सुस्पष्ट हो जाती हैं और यह कि इसके विभेद पर्याप्त आधारों पर आधारित होते हैं'।"

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जैसा कि हमने प्रारम्भ में ही कहा है, इन विनिश्चयों पर बचन सिंह वाले मामले[1] में बहुमत और अल्पमत निर्णयों में विवेचन किया गया है।

14. सात न्यायाधीशों की खण्ड न्यायपीठ का वह विनिश्चय जिसका अवलम्ब श्री जेठमलानी ने बहुत जोर देकर लिया है, मधु लिमये वाले मामले[2] में प्रतिवेदित हैं। उस मामले में विचार के लिए जो प्रश्न उत्पन्न हुआ था, वह यह था कि क्या दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 और अध्याय 8 के उपबंधों के बारे में यह कहा जा सकता है कि वे लोक व्यवस्था के हित में वहां तक हैं, जहां तक कि वाक् और अभिव्यक्ति के स्वातंत्र्य के अधिकार का, समामेलन के अधिकार का और संगम तथा संघ बनाने के अधिकार का संबंध है, और आम जनता के हित में वहां तक है, जहां तक कि उन्होंने भारत के परिक्षेत्र-भर में संचलन के स्वातंत्र्य में कमी की थी। उसमें पिटीशनरों और मध्यक्षेपियों ने मूल अधिकार के लिए विशिष्टतः वाक् और अभिव्यक्ति के स्वातंत्र्य के अधिकार के लिए 'अधिमानता प्राप्त स्थिति' वाले अमेरीकी सिद्धांत का सहारा लेना चाहा था। मुख्य न्यायाधिपति हिदायतुल्ला ने, जिन्होंने छह न्यायाधीशों की ओर से (इस मामले में न्यायाधिपति भार्गव ने एक दूसरे मुद्दे के संबंध में अपनी विसम्मति व्यक्त की थी) अधिमानता-प्राप्त स्थिति के सिद्धांत का पुनर्विलोकन किया था और यह निष्कर्ष निकाला था कि उसे उस सिद्धांत को अब संयुक्त राज्य अमेरिका के सुप्रीम कोर्ट का समर्थन प्राप्त नहीं रह गया है और इसी कारण से अमेरिका में 'विधि की अयुक्तिता को साबित करना होता है।' विद्वान् मुख्य न्यायाधिपति ने इस प्रकार मत व्यक्त किया था—

> "इस न्यायालय में अधिमानता-प्राप्त-स्थिति के सिद्धांत को कभी माना नहीं गया है, भले ही 'ईप्सित अधिकारों, अनिष्क्रमणीय स्वतन्त्रताओं' जैसी अस्पष्ट पदावलियों का कभी-कभी प्रयोग किया गया है किन्तु इससे यह कहना तात्पर्यित नहीं है कि एक मूल अधिकार किसी दूसरे मूल अधिकार से श्रेष्ठ है या अनुच्छेद 19 में कोई सोपान-तन्त्र (हाइरारकी) अन्तर्विष्ट है। संविधान लागू होने से पहले की विधियों को असांविधानिक नहीं माना जाता। हम इस उपधारणा से विचार प्रारम्भ नहीं करते हैं कि संविधान से

---

[1] [1983] 1 उम० नि० प० 1021=[1983] 1 एस० सी० आर० 145.

[2] [1971] 1 उम० नि० प० 221=[1971] 2 एस० सी० आर० 711.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पहले की विधि होने के कारण राज्य पर उसकी विधिमान्यता सिद्ध करने का भार है। सभी विद्यमान विधियां तब तक लागू रहती है जब तक कि यह न्यायालय उन्हें मूल अधिकारों के विरुद्ध होने के कारण शून्य घोषित न कर दे। ऐसा सिद्ध करने का भार उन्हीं पर होना चाहिए जो यह दावा करते हैं कि कोई विशिष्ट विधि संविधान के प्रवृत होने के पश्चात् इस कारण शून्य हो गई है क्योंकि वह प्रत्याभूत स्वतंत्रताओं में से किसी स्वतन्त्रता के साथ पठित अनुच्छेद 13 (1) के विरुद्ध है।"

15. सबूत के भार विषयक प्रश्न पर जो यह विनिश्चय है, उन्हें दो प्रवर्गों में विभाजित किया जाना चाहिए : वे जिनमें संविधान के अनुच्छेद 14 के समानता संबंधी खण्ड के अतिक्रमण के संबंध में मत व्यक्त किया गया है और वे अन्य विनिश्चय जिनमें अनुच्छेद 19 में अन्तर्विष्ट गारन्टियों के अतिक्रमण के संबंध में मत व्यक्त किया गया है। पूर्ववर्ती प्रवर्ग के मामलों के संबंध में जो प्रमुख विनिश्चय है, वह **रामकृष्ण डालमिया**[1] वाला विनिश्चय है, जिसमें मुख्य न्यायाधिपति दास ने ऐसे 6 सिद्धांत प्रतिपादित किए थे जो अनुच्छेद 14 के अधीन वाले मामलों का विश्लेषण करने से उद्भूत होते हैं। उस प्रतिवेदन के पृष्ठ 297 पर जो अवतरण आया हुआ है और जिसमें यह सिद्धांत उपवर्णित है, वह उत्कृष्ट साहित्य हो गया है, जैसा **बी० बनर्जी बनाम श्रनीता पान**[2] वाले मामले में न्यायाधिपति कृष्ण अय्यर द्वारा प्रोद्धृत उद्धरण के रूप में इस निर्णय में पहले ही उसके भाग के रूप में दिया गया है। यह कहना तो दोहराना ही है कि विद्वान् मुख्य न्यायाधिपति के मतानुसार, "·····उपधारणा सदा ही किसी भी अधिनियमिति की वैधानिकता के पक्ष में की जाती है और जो आक्षेप करता है, उसी पर यह साबित करने का भार होता है कि सांविधानिक सिद्धांतों का स्पष्ट अतिलंघन किया गया है" और यह कि "·····उपधारणा यह की जानी चाहिए कि विधानमण्डल अपनी जनता की आवश्यकताओं को समझता है और उसने उसका मूल्यांकन सही-सही किया है और यह कि उसकी विधियां उन समस्याओं को दूर करने के लिए बनाई गई हैं, जो अनुभव के दौरान स्पष्ट रूप से सामने आई हैं और यह कि उसके द्वारा किए गए विभेद पर्याप्त

---

[1] [1959] एस० सी० आर० 279.

[2] [1975] 2 उम० नि० प० 257=[1975] 2 एस० सी० आर० 74.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आधारों पर आधारित हैं।" इन दोनों सिद्धांतों में से दूसरे सिद्धांत के अन्तिम शब्दों से यह दर्शित होता है कि उक्त सिद्धांत अनुच्छेद 14 के अधीन उत्पन्न होने वाले मामलों को लागू होने तक ही सीमित है। विभेद का प्रश्न संविधान के अनुच्छेद 14 के अधीन उत्पन्न होता है न कि संविधान के अनुच्छेद 19 के। जो कुछ भी हो, स्वीकृत संदर्भ-स्थल भी उस बात का प्रमाण होता है, जिसका कि उसमें विनिश्चय किया जाता है। ऐसे मामलों में जिनमें तथ्यात्मक और विधिक दोनों ही समान स्थितियाँ अन्तर्ग्रस्त होती हैं, किए गए विनिश्चयाधार को लागू करना अनुज्ञेय होता है किन्तु इस बात को सुनिश्चित करने के लिए सावधानी बरती जानी चाहिए कि यह कार्य यंत्रवत् न किया जाए अर्थात् यह कि विनिश्चय के तर्क-आधार की, जोकि नज़ीर के रूप में प्रोद्यृत है, बारीकी से परीक्षा किए बिना इसे नहीं किया जाना चाहिए। ऐसा मानव-मस्तिष्क जोकि विधि के कड़े नियंत्रण में प्रशिक्षित हुआ है, उन विनिश्चयों का जोकि प्रसिद्ध हो गए हैं, अवलम्ब लेने के और कल्पित समान स्थितियों को उनके विनिश्चय-आधार लागू करने के सरल रास्ते को अपनाने के विरुद्ध नहीं होता है। **राम कृष्ण डालमिया वाले मामले**[1] में, न्यायालय जांच आयोग अधिनियम, 1952 की धारा 3 और उस धारा के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा निकाली गई उस अधिसूचना को जिसके अधीन कतिपय चार कम्पनियों के कार्यकलापों की जांच करने और उनके संबंध में प्रतिवेदन देने के लिए जांच आयोग नियुक्त किया जाना था, दी गई चुनौती के संबंध में विचार कर रहा था। उस अधिनियम को इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि वह जांच आयोग नियुक्त करते हुए अधिसूचना निकालने की सरकार को मनमानी शक्ति प्रदत्त करता है, जबकि अधिसूचना को इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि पिटीशनरों और उनकी कंपनियों को द्वेषपूर्ण और विभेदक व्यवहार के प्रयोजनार्थ अलग कर दिया गया है और उनकी इस प्रकार जांच की जा रही है जिससे कि उन्हें तंग किया जा सके या उनका दमन किया जा सके। न्यायालय की ओर से विद्वान् मुख्य न्यायाधिपति द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों को इन तथ्यों के संदर्भ में ही समझा जाना है और वह सन्दर्भ यह है कि न्यायालय के समक्ष जो मामला है, उसमें ऐसी बातें अन्तर्ग्रस्त हैं जो अनुच्छेद 14 के लागू होने तक सीमित हैं और उनसे सम्बद्ध हैं। अन्य ऐसे कतिपय प्रश्नों के अलावा जोकि हमारे प्रयोजनार्थ सुसंगत नहीं हैं, उस निर्णय में तथ्यों और विधि के सम्पूर्ण विवेचन उस अनुच्छेद के उपबन्धों के चारों ओर

[1] [1959] एस० सी० आर० 79

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

केन्द्रित है। वास्तव में अनुच्छेद 14 राम कृष्ण डालमिया वाले मामले[1] में किए गए विनिश्चय का प्रमुख आधार है। मुख्य न्यायाधिपति ने जिन सिद्धांतों को प्रतिपादित किया था, उन्हें विश्वव्यापी और सार्वभौमिक रूप से लागू करना गलत है और उस प्रक्रिया में उन्हें ऐसे मामलों को लागू करना गलत है जोकि संविधान के अन्य अनुच्छेदों के अधीन, विशिष्टतया अनुच्छेद 19 और 21 के अधीन उत्पन्न होते हैं।

16. ऐसा सिद्धांत जिसमें अनुच्छेद 14 अन्तर्निहित है, यह है कि समान के साथ समान रूप से व्यवहार किया जाना चाहिए, अर्थात् यह कि "विधियों का प्रवर्तन समान परिस्थितियों में सभी व्यक्तियों पर समान रूप से किया जाना चाहिए[2]।" यद्यपि अनुच्छेद 14 के पद प्रत्यक्षतः आत्यांतिक हैं, तथापि वह राज्य को ऐसी विधि पारित करने की अनुज्ञा देता है जोकि वर्गीकरण करती है, जब तक कि ऐसा वर्गीकरण ऐसे बोधगम्य अन्तर पर आधारित है, जिसका उस उद्देश्य से वास्तविक संबंध है, जिसे प्राप्त करना विधि द्वारा ईप्सित है। अनुच्छेद 14 के अधीन उत्पन्न होने वाले अनेक मामलों में वह चुनौती इस अभिकथन पर आधारित होती है कि आक्षेपित उपबन्ध विभेदकारी हैं क्योंकि वह पिटीशनर को ऐसे अन्य व्यक्तियों में से जोकि, यद्यपि समान रूप से स्थित हैं, पिटीशनर के समान ही उसी वर्ग के हैं, द्वेषपूर्ण व्यवहार के लिए अलग करता है। यह स्पष्ट है कि इस प्रकार के विषयों में पिटीशनर को यह अभिवचन साबित करना होता है कि ऐसे अन्य लोग भी हैं जोकि उसी के समान, समान रूप से स्थित हैं और यह कि उसे पक्षपातपूर्ण व्यवहार के लिए छांटा गया है और उसके अध्यधीन लाया गया है। जैसा कि **वैस्टर्न यू० पी० इलैक्ट्रिक पावर एण्ड सप्लाई कंपनी लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य**[3] वाले मामले में न्यायाधिपति शाह ने मत व्यक्त किया था—

> "संविधान के अनुच्छेद 14 में समानों में समता सुनिश्चित की गई है : इसका उद्देश्य एक-सी स्थिति वाले व्यक्तियों को विभेदपूर्ण व्यवहार से संरक्षण देना है। यद्यपि यह युक्तिसंगत वर्गीकरण के विरुद्ध प्रवर्तित नहीं होता। अतः यदि कोई व्यक्ति विधि द्वारा समान व्यवहार के न मिलने की शिकायत करता है तो उसे यह सिद्ध

---

[1] [1959] एस० सी० आर० 279.

[2] सीरवई रचित कांस्टीट्यूशन लॉ आफ इण्डिया, तृतीय संस्करण, पृष्ठ 296.

[3] [1970] 1 उम० नि० प० 595=[1969] 3 एस० सी० आर० 865, 870.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

करना होगा कि एक सी परिस्थिति वाले व्यक्तियों के बीच उसको हानि पहुंचा कर कुछ के साथ पक्षपातपूर्ण व्यवहार किया गया था और उस भेदपूर्ण व्यवहार का विधि द्वारा प्राप्तव्य लक्ष्य से कोई युक्तिसंगत सम्बन्ध नहीं था।"

यह कि क्या ऐसे अन्य व्यक्ति हैं जोकि पिटीशनर के समान ही समान रूप से स्थित हैं, तथ्य का प्रश्न है, और यह कि क्या पिटीशनर के साथ द्वेषपूर्ण विभेद किया गया है, भी तथ्य का प्रश्न है। यही कारण है कि इन तथ्यों की विधिमान्यता को साबित करने का भार पिटीशनर पर होता है। ऐसे मामले में राज्य पर साबित करने का भार डालना वास्तव में उससे नकारात्मक रूप से साबित करने के लिए यह कहना है कि ऐसा कोई व्यक्ति समान रूप से स्थित नहीं है, जैसे कि पिटीशनर और यह कि पिटीशनर के साथ जो व्यवहार किया गया है, वह द्वेषपूर्ण नहीं है।

17. इस प्रकार संविधान के अनुच्छेद 14 के अधीन उत्पन्न होने वाले मामलों और उसके अनुच्छेद 19 और 21 के अधीन उत्पन्न होने वाले मामलों के बीच मौलिक प्रभेद है। अनुच्छेद 19 और 21 के अतिक्रमण पर आधारित चुनौती में, पिटीशनर को निस्संदेह यह अभिवचन करना पड़ता है, उदाहरणार्थ, निर्वाद, अबाध वाक् और अभिव्यक्ति के उसके अधिकार का अतिक्रमण हुआ है और यह कि उसे उसके प्राण और दैहिक स्वाधीनता के उसके अधिकार से वंचित किया गया है। किन्तु यदि वह यह दर्शित कर देता है, जोकि वास्तव में "साबित करने के भार" का भाग नहीं है, कि आक्षेपित विधि या कार्यवाहियों को यह साबित करके न्यायोचित ठहराना राज्य पर निर्भर है कि, उदाहरणार्थ अबाध वाक् और अभिव्यक्ति के पिटीशनर के अधिकार से वंचित करने के कार्य को अनुच्छेद 19 के खण्ड (2) की संरक्षा प्राप्त है, क्योंकि वह खण्ड (2) में उल्लिखित विषयों के हित में उसके अधिकार पर युक्तियुक्त निर्बन्धन की प्रकृति में है, या यह कि पिटीशनर को उसके प्राण और दैहिक स्वाधीनता से विधि द्वारा स्थापित न्यायोचित, न्यायसंगत और युक्तियुक्त प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया गया है। अनुच्छेद 19 के अधीन उत्पन्न होने वाले मामलों में यह साबित करने का भार पिटीशनर पर कभी भी नहीं होता है कि निर्बन्धन युक्तियुक्त नहीं है और यह कि निर्बन्धन खण्ड (2) में उल्लिखित विषयों के हित में नहीं है। उसी प्रकार से अनुच्छेद 21 के अधीन उत्पन्न होने वाले मामलों में साबित करने का भार पिटीशनर पर कभी नहीं होता है कि ऐसी

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विधि द्वारा जोकि उसे उसके प्राण और दैहिक स्वाधीनता से वंचित करती है, विहित प्रक्रिया न्यायोचित, न्यायसंगत और युक्तियुक्त नहीं है। यही कारण है कि ऐसे मामलों के विनिश्चयाधार को जोकि राम कृष्ण डालमिया[1] के मामले में किए गए विनिश्चय के प्रवर्ग में आते हैं, अनुच्छेद 14 के अधीन उत्पन्न होने वाले मामलों तक ही सीमित रहने चाहिएं और उसका विस्तार ऐसे मामलों पर नहीं किया जा सकता है जोकि संविधान के अनुच्छेद 19 या अनुच्छेद 21 के अधीन उत्पन्न होते हैं।

18. सगीर अहमद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य[2] वाला मामला संविधान के अनुच्छेद 19 के अधीन उत्पन्न होने वाले मामले का विचित्र उदाहरण है। यू० पी० रोड ट्रांसपोर्ट ऐक्ट, 1951 को, जोकि संविधान के उस प्रथम संशोधन के पूर्व पारित किया गया था, जिसने अनुच्छेद 19 में खण्ड (6) पुरःस्थापित किया था, इस आधार पर उस मामले में चुनौती दी गई थी कि संविधान के अनुच्छेद 19 (1) (छ) के अधीन गारन्टीकृत पिटीशनर के मूल अधिकार से उसका टकराव है। सबूत के भार के प्रश्न पर विचार करते हुए, न्यायाधिपति मुखर्जी ने, जिन्होंने संविधान न्यायपीठ की ओर से निर्णय सुनाया था, स्थिति को निम्नलिखित रूप में व्यक्त किया था—

> "दूसरे मुद्दे के संबंध में भी हम यह नहीं समझते हैं कि विद्वान् न्यायाधीशों ने इस प्रश्न पर उचित दृष्टिकोण से विचार किया है। निस्संदेह किसी विधान की सांविधानिकता के पक्ष में ही उपधारणा होती है। किन्तु जब किसी अधिनियमिति के बारे में प्रत्यक्षतः यह पाया जाता है कि वह संविधान के अनुच्छेद 19 (1) (छ) के अधीन गारन्टीकृत मूल अधिकार का अतिक्रमण करती है तो उसके बारे में यह अवश्य ही अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि वह अविधिमान्य है, जब तक कि वे लोग जोकि उस विधान का समर्थन करते हैं, उसे उस अनुच्छेद के खण्ड (6) में अधिकथित अपवाद की परिधि के भीतर न ला दें। यदि प्रत्यर्थी यह साबित करने के लिए न्यायालय के समक्ष कोई भी सामग्री पेश नहीं करते कि वह विधान खण्ड (6) की अनुज्ञेय सीमाओं के भीतर आता है, तो निश्चित रूप से नकारात्मक रूप से साबित करना अपीलार्थियों

---

[1] [1959] एस० सी० आर० 279.

[2] [1955] 1 एस० सी० आर० 707.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पर निर्भर नहीं है और वह विधान युक्तियुक्त नहीं है और वह समुदाय के कल्याण के लिए उपयुक्त नहीं है।" (पृष्ठ 726)

19. जब कि कोई अधिनियमिति प्रत्यक्षतः अनुच्छेद 19 द्वारा गारन्टीकृत मूल अधिकार का अतिक्रमण करती है, तो पिटीशनर यह दर्शित करने की थोड़ी-सी बाध्यता से भी मुक्त हो जाता है कि अनुच्छेद 19 द्वारा उसे गारंटीकृत अधिकार का अतिक्रमण हुआ है। जबकि कोई विधि प्रत्यक्ष रूप से स्पष्ट नहीं होती, तो पिटीशनर को यह तथ्य साबित करने की बाध्यता का निर्वहन नहीं करना होता है कि उसे उसके अधिकार से वंचित किया गया है। किन्तु केवल इतना ही और इससे अधिक की बात नहीं है।

20. उसी प्रकार का प्रश्न खैबरबाड़ी टी कम्पनी लिमिटेड बनाम असम राज्य[1] के मामले में भी उत्पन्न हुआ था, जिसमें दि असम टैक्सेशन (आन गुड्स कैरिड बाय रोड आर आन इंग्लैंड वाटरवेज) ऐक्ट, 1961 को इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि वह अनुच्छेद 301 द्वारा गारन्टीकृत व्यापार की स्वतंत्रता पर युक्तियुक्त निर्बन्धन अधिरोपित करता है और उससे संविधान के अनुच्छेद 19 (1) (छ) के उपबन्ध का अतिलंघन होता है। इस न्यायालय की संविधान न्यायपीठ ने 4 : 1 के बहुमत से उस अधिनियम को कायम रखा था। न्यायाधिपति गजेन्द्रगडकर, जिन्होंने बहुमत का निर्णय सुनाया था, सगीर अहमद वाले मामले[2] में किए गए विनिश्चय का अवलम्ब लिया और यह मत व्यक्त किया—

> "यह सच है कि अनेक अवसरों पर इस कानून ने साधारण तौर से यह मत व्यक्त किया है कि सांविधानिकता की उपधारणा वहां उत्पन्न होती है जहां कि किसी कानून पर इस आधार पर आक्षेप किया जाता है कि वह असांविधानिक है, किन्तु जैसा कि सगीर अहमद [1955] 1 एस० सी० आर० 707 वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है, अनुच्छेद 19 (1) (छ) के अधीन मूल अधिकार के संबंध में, जैसे ही उस अधिकार पर आक्रमण करने की बात साबित हो जाती है, अपना यह पक्षकथन राज्य को साबित करना होता है कि आक्षेपित विधान अनुच्छेद 19 के खण्ड (6) की

[1] [1964] 5 एस० सी० आर० 975.
[2] [1955] 1 एस० सी० आर० 707.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

परिधि के भीतर आता है। स्थिति वहां भिन्न हो सकती है जहां कि हम अनुच्छेद 14 पर विचार कर रहे हैं, क्योंकि उस अनुच्छेद के अधीन सांविधानिकता की प्रारम्भिक उपधारणा की परिधि अधिक बड़ी हो सकती है, क्योंकि वह पिटीशनर पर यह दर्शित करने का भार अधिरोपित करती है कि आक्षेपित विधि ने विधि के समक्ष समता या विधियों के समान संरक्षण के अधिकार से उसे वंचित किया है। इस सम्बन्ध में हम हमदर्द दवाखाना बनाम भारत संघ [1960] 2 एस० सी० आर० 671-679 वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा व्यक्त मत के प्रति निर्देश कर सकते हैं। उसमें यह मत व्यक्त किया गया है कि एक दूसरा सिद्धांत जो कि किसी कानून की परीक्षा करते समय ध्यान में रखना होता है, यह है कि यह उपधारणा की जानी चाहिए कि विधानमण्डल लोगों की जरूरतों को समझता है और उनका मूल्यांकन करता है और जो विधियां वह अधिनियमित करता है, वे उनकी उन समस्याओं को सुलझाने के लिए होती हैं जो कि अनुभव के द्वारा स्पष्ट होती रहती हैं और यह कि विधानमण्डल में एकत्र निर्वाचित प्रतिनिधि ऐसी विधियां अधिनियमित करते हैं जिन्हें वे उस प्रयोजन के लिए युक्तियुक्त समझते हैं जिसके लिए उन विधियों को अधिनियमित किया गया है। अतः उपधारणा किसी अधिनियमिति की सांविधानिकता के पक्ष में होती है। यह महत्वपूर्ण है कि ऐसे सभी विनिश्चय जिनके प्रति विधि के इस कथन के समर्थन में निर्देश किया गया है, संविधान के अनुच्छेद 14 के अधीन किए गए विनिश्चय है। श्री सीतलवाड़ ने उचित रूप से ही यह स्वीकार किया है कि सगीर अहमद [1955] 1 एस० सी० आर० 707 वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय को देखते हुए यह दलील देने का अधिकार उन्हें नहीं है कि किसी नागरिक के मूल अधिकार पर आक्रमण होने की बात अनुच्छेद 19 (1) (छ) के अधीन साबित हो जाती है, तो साबित करने का भार राज्य को अन्तरित नहीं हो जाएगा। हमारी राय में उक्त विनिश्चय इस प्रतिपादन के लिए स्पष्ट प्राधिकार है यदि अनुच्छेद 19 (1) के अधीन वाले मूल अधिकार पर आक्रमण होने की बात साबित हो जाती है तो राज्य को खण्ड (6) के अधीन, जो कि अनुच्छेद 19 (1) में अन्तर्विष्ट मुख्य उपबन्धों के अपवाद की प्रकृति में है, अपना पक्षकथन न्यायोचित साबित करना चाहिए।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(साबित करने के) भार से संबंधित स्थिति वही होगी जो कि अनुच्छेद 304 (ख) के अधीन पारित किसी विधि के संबंध में विचार करते समय होती है। वास्तव में ऐसी विधि की दशा में स्थिति नागरिक के पक्ष में कुछ अधिक ही होती है, क्योंकि इस तथ्य से ही कि वह विधि अनुच्छेद 304 (ख) के अधीन पारित की गई है, स्पष्ट रूप से यह अभिप्रेत है कि उसका तात्पर्य व्यापार की स्वतंत्रता को निर्बंधित करना है। ऐसा होने के कारण हम यह समझते हैं कि जैसे ही यह दर्शित कर दिया जाता है कि वह अधिनियम व्यापार की स्वतंत्रता के अधिकार पर आक्रमण करता है; वैसे ही इस बात की जांच करना आवश्यक है कि क्या राज्य ने यह साबित कर दिया है कि कराधान के तौर पर उसके द्वारा अधिरोपित निर्बन्धन युक्तियुक्त है और अनुच्छेद 304 (ख) के अर्थान्तर्गत लोक हित में है। यह जांच अनुच्छेद 19 के खण्ड (6) के संबंध में उसी स्वरूप की की होगी।" (पृष्ठ 1003-4)

(जोर देने के लिए रेखांकित)

21. अनुच्छेद 304 (ख) के अधीन उत्पन्न होने वाली स्थिति के संबंध में न्यायाधिपति गजेन्द्रगड़कर ने जो मत व्यक्त किए थे वे अनुच्छेद 21 के अधीन वाले मामले के लिए भी समुपयुक्त हैं। अनुच्छेद 304 (ख) में यह उपबंध किया गया है कि "अनुच्छेद 301 या अनुच्छेद 303 में किसी बात के होते हुए भी, किसी राज्य का विधानमण्डल, विधि द्वारा उस राज्य के साथ या उसके भीतर, व्यापार, वाणिज्य और समागम की स्वतंत्रता पर ऐसे युक्तियुक्त निर्बन्धन अधिरोपित कर सकेगा जो लोक हित में अपेक्षित हों।" विद्वान् न्यायाधीश के मतानुसार, अनुच्छेद 304 (ख) के अधीन पारित विधि की दशा में साबित करने के भार के प्रश्न पर जो स्थिति है वह नागरिक के पक्ष में कुछ अधिक ही है, क्योंकि इस तथ्य से ही कि वह विधि उस अनुच्छेद के अधीन पारित की गई है, स्पष्ट रूप से यह अभिप्रेत है कि उसका तात्पर्य व्यापार की स्वतंत्रता को निर्बन्धित करना है'। सादृश्य के आधार पर वह स्थिति अनुच्छेद 21 के अधीन उत्पन्न होने वाले मामलों में भी पिटीशनरों के पक्ष में कुछ अधिक है क्योंकि इस तथ्य से ही कि प्रतिरक्षा के तौर पर, कोई विधि किसी व्यक्ति के प्राण या दैहिक स्वाधीनता से वंचित करने की प्रक्रिया विहित करने वाली विधि के रूप में है, स्पष्ट रूप से यह अभिप्रेत है कि उस विधि का

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तात्पर्य इन अधिकारों से उसे वंचित करने का है। अतः, जैसे ही यह दर्शित कर दिया जाता है कि वह अधिनियम अनुच्छेद 21 द्वारा गारंटीकृत अधिकार पर आक्रमण करता है, वैसे ही इस बात की जांच करना आवश्यक है कि राज्य ने यह साबित कर दिया है कि उस व्यक्ति को अपने प्राण या दैहिक स्वाधीनता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया गया है अर्थात् यह कि ऐसी प्रक्रिया द्वारा वंचित किया गया है जो कि न्यायोचित, न्यायसंगत और युक्तियुक्त है।

22. उसी प्रवर्ग के मामलों में एक दूसरा विनिश्चय **मोहम्मद फारुक बनाम मध्य प्रदेश राज्य**[1] वाला मामला है, जिसमें राज्य सरकार ने ऐसी अधिसूचना जारी की थी जिसके द्वारा नगरपालिक उपविधियों की पुष्टि को वहां तक रद्द कर दिया गया था जहां तक कि उनका संबंध सांड़ों और बैलों के बध करने की अनुज्ञा से था। अधिसूचना को पिटीशनरों द्वारा दी गई चुनौती के संबंध में इस आधार पर विचार करते हुए कि उससे संविधान के अनुच्छेद 19 (1) (छ) के अधीन उसके मूल अधिकार का अतिलंघन होता है, न्यायाधिपति शाह ने जिन्होंने कि संविधान न्यायपीठ की ओर से निर्णय सुनाया था, यह मत व्यक्त किया—

> "जब अनुच्छेद 19 (1) के अधीन मूल अधिकार के प्रयोग पर निर्बन्धन लगाने वाली उपविधि की विधिमान्यता को चुनौती दी जाए तो न्यायालय का समाधान करने वाले रूप में यह साबित करने का भार राज्य पर होता है कि निर्बन्धन युक्तियुक्त है।..... मूल अधिकार के प्रयोग पर निर्बन्धन लगाना नियंत्रण के रूप में हो सकता है या प्रतिषेध के रूप में, किन्तु जब किसी मूल अधिकार के प्रयोग का प्रतिषेध किया जाए तो यह साबित करने का कि उस अधिकार के प्रयोग पर पूर्ण रोक से ही साधारण लोक हित की साधना सुनिश्चित हो सकती है, पूर्ण भार राज्य पर होता है।"

जब अनुच्छेद 21 के अधीन उत्पन्न होने वाले मामले में ऐसा व्यक्ति जिसके बारे में यह पाया गया हो कि उसे अपनी दैहिक स्वाधीनता से पूरी तरह वंचित कर दिया है या उसके प्राण के अधिकार से उसे वंचित किया

---

[1] [1970] 2 उम० नि० प० 1=[1970] 1 एस० सी० आर० 156.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जा रहा है तो यह साबित करने का भार कि इस प्रकार वंचित करने के लिए विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया न्यायोचित न्यायसंगत और युक्तियुक्त है; पूरी तरह से राज्य पर होता है।

23. यह विवेचन बी० बनर्जी बनाम अनीता पान[1] और पथुम्मा बनाम केरल राज्य[2] वाले मामलों में किए गए विनिश्चय की बारीकी के साथ परीक्षा किए बिना अपूर्ण रहेगा, जिनके प्रति न्यायाधिपति सरकारिया ने बचन सिंह[3] वाले मामले में यह मत व्यक्त करते हुए निर्देश किया है कि उससे "प्रतिकूल रुझान" का पता चलता है, जिसके अनुसार, अनुच्छेद 19 के अधीन वाले मामलों के संबंध में किसी कानून की सांविधानिकता के पक्ष में प्रारंभिक उपधारणा होती है और उस उपधारणा का प्रतिवाद करने का भार उस व्यक्ति पर होता है जो कि यह प्राख्यान करता है कि वह कानून असांविधानिक है। बनर्जी वाले मामले में, इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की खण्ड न्यायपीठ को इस प्रश्न पर विचार करना पड़ा था कि क्या वैस्ट बंगाल प्रिमिसिज टेनेन्सी ऐक्ट, 1956 की धारा 13 में पुरः-स्थापित उपधारा (3 क) से संविधान के अनुच्छेद 19 (1) (च) का अतिक्रमण होता है। नई-नई पुरःस्थापित उपधारा द्वारा सम्पत्ति का अन्तरिती अन्तरण की तारीख से तीन वर्ष की कालावधि तक, अपने किराएदार के विरुद्ध बेदखली का वाद अधिनियम की धारा 13 (1) के खण्ड (च) और (चच) में उल्लिखित आधारों पर फाइल नहीं कर सकता है। हमने पहले ही न्यायाधिपति कृष्ण अय्यर के, जिन्होंने उस मामले में न्यायालय की ओर से निर्णय सुनाया था, निर्णय में से सुसंगत अवतरण प्रोद्धृत कर दिया है। विद्वान् न्यायाधीश ने यह मत व्यक्त किया था कि यह उपधारणा करनी होती है कि विधानमण्डल लोगों की जरूरतों को समझता है और उनका मूल्यांकन करता है और यह कि किन्हीं न्यायालयों ने यहां तक अभिनिर्धारित कर दिया था कि सांविधानिकता की उपधारणा के कारण; जो कि प्रत्येक कानून के साथ रहती है, ऐसी विधि असांविधानिक घोषित नहीं की जाएगी, जब तक कि मामला इतना स्पष्ट नहीं है जिससे कि कोई सन्देह नहीं रह जाता। विद्वान् न्यायाधीश ने सीरवई के विचार प्रोद्धृत करते

---

[1] [1975] 2 उम० नि० प० 257=[1975] 2 एस० सी० आर० 774.

[2] [1979] 1 उम० नि० प० 82=[1978] 2 एस० सी० आर० 547.

[3] [1983] 1 उम० नि० प० 102=[1983] 1 एस० सी० आर० 145.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हुए यह मत व्यक्त किया था कि "किसी विधि में सांविधानिकता के संबंध में सन्देह करना ही उसकी विधिमान्यता के पक्ष में निश्चय करना है"। सादर बनर्जी वाले मामले[1] में जो निर्णय किया गया था उसमें सगीर अहमद[2], खेबरवाड़ी टी कम्पनी[3] और मोहम्मद फारुक[4] वाले मामले में किए गए आबद्धकारी विनिश्चयों की बातें नजरअन्दाज कर दी गई हैं जो कि प्रत्यक्षतः इस मुद्दे से संबंधित हैं। उस निर्णय में न केवल आबद्धकारी विनिश्चयों के प्रति निर्देश नहीं किया गया था, बल्कि न्यायालय द्वारा व्यक्त मत के समर्थन में न्यायाधिपति कृष्ण अय्यर ने राम कृष्ण डालमिया वाले मामले में किए गए विनिश्चय को प्रोद्धृत किया है, जिसे, जैसा कि हमने इसके पहले ही मत व्यक्त कर दिया है, लागू होने की दृष्टि से, संविधान के अनुच्छेद 14 के अधीन उत्पन्न होने वाले मामलों तक ही सीमित होना चाहिए। अनुच्छेद 19 के अधीन उत्पन्न होने वाले मामलों को, अनुच्छेद 14 के अधीन वाले विनिश्चय यंत्रवत् लागू करना, दोनों अनुच्छेदों द्वारा प्रदत्त अधिकारों की प्रकृति के और उनके तात्पर्य और विस्तार के बीच जो महत्वपूर्ण प्रभेद है उसकी उपेक्षा करना है। अतः बी० बनर्जी वाले मामले को विद्वान् अटर्नी जनरल द्वारा प्रस्तुत प्रतिपादन के लिए प्रमाण के रूप में नहीं माना जा सकता। स्पष्टतः मकान-मालिक की इस दलील का कि ऐसा फायदाप्रद उपबंध जिसका लक्ष्य सम्पत्तियों के किसी हेतु से किए गए अन्तरणों के परिणामस्वरूप तंग किए गए किराएदारों की संरक्षा करना है, असांविधानिक था, कड़ा परिणाम निकला है। यह बात समझ में आने वाली है। किन्तु मकान-मालिक किराएदार के संबंध के क्षेत्र में सामाजिक कल्याण के विधान की जरूरत पर रोशनी डालने की प्रक्रिया में, अनुच्छेद 14 और अनुच्छेद 19 के बीच जो प्रभेद है, उसकी ओर, जहां तक कि उसका संबंध साबित करने के भार के प्रश्न से है, कोई भी ध्यान नहीं दिया गया। ऐसा प्रतीत होता है कि विधिज्ञ-वर्ग ने भी न्यायालय का ध्यान उस प्रभेद की ओर और उन निर्णयों की ओर नहीं खींचा जिनका विवेचन हमने इसके थोड़ा पहले किया है।

24. पथुम्मा बाला मामला[5] इस प्रश्न के संबंध में सात न्यायाधीशों की न्यायपीठ का विनिश्चय है, कि क्या केरल एग्रीकल्चरिस्ट्स (डैट रिलीफ)

---

[1] [1975] 2 उम० नि० प० 257=[1975]2 एस० सी० आर० 774.
[2] [1955] 1 एस० सी० आर० 707.
[3] [1964] 5 एस० सी० आर० 975.
[4] [1970] 2 उम० नि० प० 1=[1970] 1 एस० सी० आर० 156.
[5] [1979] 1 उम० नि० प० 82=[1978] 2 एस० सी० आर० 547.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ऐक्ट, 1970 द्वारा अधिरोपित निर्बन्धनों से अनुच्छेद 19(1) (च) और अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण होता है। उस में जो अपीलार्थी थे, उन्होंने अधिनियम की धारा 20 को विशिष्टतः चुनौती दी थी, जो कि कृषि-ऋणियों को इस बात का हकदार बनाती है कि वे उनके विरुद्ध पारित डिक्रियों के निष्पादन में विक्रीत सम्पत्तियों की वसूली कर सकेंगे। न्यायाधिपति फजल अली ने, जिन्होंने कि सात विद्वान् न्यायाधीशों में से चार की ओर से अपना निर्णय सुनाया था, उस दृष्टिकोण के प्रति, निर्णय के प्रारम्भ में ही, निर्देश कर दिया है जो कि न्यायालय को अपनाना होता है और उन सिद्धान्तों के प्रति भी निर्देश कर दिया है जिनके द्वारा ऐसे मामलों में उसे मार्गदर्शन प्राप्त होता है। यह कथन करने के बाद कि न्यायालयों को संविधान का निर्वचन

> "देश की सामाजिक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए करना चाहिए जिससे कि वह उत्पन्न होने वाली समाज की आवश्यकताओं, राष्ट्र की बढ़ती हुई आवश्यकताओं, वर्तमान की ज्वलंत समस्याओं और जनता के सामने जो जटिल मुद्दे हैं, उनके बारे में सम्पूर्ण सजगता और गहन जागरूकता दर्शित करते हैं जिनको विधानमण्डल ने प्रज्ञापूर्ण फायदाप्रद विधान द्वारा सुलझाना चाहा है।"

विद्वान् न्यायाधीश ने यह मत व्यक्त किया है कि चूंकि विधानमण्डल लोगों की जरूरतों को समझने में, उनका मूल्यांकन करने की सर्वाधिक अच्छी स्थिति में होता है, इसलिए न्यायालयों ने यह बात मान ली है कि किसी कानून की सांविधानिकता के पक्ष में सदैव ही उपधारणा की जाती है और उसकी विधिमान्यता को साबित करने का भार उस पक्षकार पर होता है जो कि उस पर आक्षेप करता है। इस प्रतिपादन के समर्थन में विद्वान् न्यायाधीश ने मोहम्द हनीफ कुरैशी बनाम बिहार राज्य[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय का अवलम्ब लिया, जिसमें मुख्य न्यायाधिपति दास ने दो प्रतिपादनों को पुनः दोहराया था जिनका विवेचन राम कृष्ण डालमिया वाले मामले[2] में किया गया था।

25. चार विद्वान् न्यायाधीशों की ओर से न्यायाधिपति फजल अली ने जो मत व्यक्त किये थे, उन्हें संविधान के अनुच्छेद 19 के अधीन उत्पन्न होने वाले मामलों में सबूत के भार के प्रश्न के संबंध में प्रमाण के रूप में मानना

---

[1] [1959] एस० सी० आर० 629.

[2] [1959] एस० सी० आर० 279.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हमारे लिए कठिन है। यह सच है कि 1970 के केरल अधिनियम की धारा 20 को इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि उससे अनुच्छेद 19 (1) (च) का अतिक्रमण होता है किन्तु इस बात पर अवश्य ही जोर दिया जाना चाहिए कि उसे इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि उसकी उपधारा (3) और (6) से अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण होता है। विद्वान् न्यायाधीश द्वारा व्यक्त मत और उनके निर्णय में अन्तर्विष्ट विधि का कथन निश्चित रूप से अनुच्छेद 14 के अधीन उत्पन्न होने वाले मामलों को लागू होगा जिन कारणों का हमने पहले ही विवेचन कर दिया है। यह मानना युक्तियुक्त है कि यदि उसका आशय "सदैव" शब्द का उपयोग करके अनुच्छेद 19 के अधीन उत्पन्न होने वाले मामलों के संबंध में सबूत के भार की बाबत नियम अधिकथित करना था, तो **सगीर अहमद**[1] **खेबरबाड़ी टी कम्पनी**[2] और **मोहम्मद फारुक**[3] वाले मामलों में किए गए संविधान न्यायपीठ के विनिश्चयों के प्रति विद्वान् न्यायाधीश ने अवश्य ही कुछ निर्देश किया होता। इस तथ्य का आशय कि ये विनिश्चय इस निष्कर्ष के समर्थन में निर्दिष्ट नहीं किए गए हैं, निर्णय के प्रारंभ में विद्वान् न्यायाधीश द्वारा व्यक्त मत साधारण प्रकृति के हैं, संविधान के अनुच्छेद 19 के अधीन उत्पन्न होने वाले मामलों को लागू करना नहीं है। जैसा कि हमने पहले ही मत व्यक्त कर दिया है, न्यायालय अनुच्छेद 14 के अधीन दी गई चुनौती के संबंध में विचार कर रहा था और विद्वान् न्यायाधीश ने जो महत्वपूर्ण मत व्यक्त किए हैं, वे उस उपबंध के अधीन दी जाने वाली दलीलों को ही लागू होंगे।

26. न्यायाधिपति फजल अली ने जो सिद्धांत उपवर्णित किए थे, उनके समर्थन में उन्होंने **मोहम्मद हनीफ कुरैशी वाले मामले**[4] में इस न्यायालय की संविधान न्यायपीठ के विनिश्चय का अवलम्ब लिया। उस मामले में बिहार, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश राज्यों द्वारा पारित उन विधियों को जिनके द्वारा कतिपय पशुओं के बध पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया था, पिटीशनरों ने इस आधार पर चुनौती दी थी कि उन विधियों से संविधान के अनुच्छेद 14, 19(1) द्वारा उनको गारंटीकृत मूल अधिकारों का अतिक्रमण होता है। न्यायालय ने मुख्य न्यायाधिपति दास की मार्फत अपना मत

---

[1] [1955] 1 एस० सी० आर० 707.
[2] [1964] 5 एस० सी० आर० 975.
[3] [1970] 2 उम० नि० प० 1=[1971]1 एस० सी० आर० 156.
[4] [1959] एस० सी० आर० 629.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

व्यक्त करते हुए पण्डित ठाकुरदास भार्गव द्वारा उठाए गए प्रारंभिक इस प्रश्न का निपटारा किया था कि चूंकि आक्षेपित अधिनियम अनुच्छेद 48 में अन्तर्विष्ट निदेशक तत्वों द्वारा राज्य पर डाली गई बाध्यता के निर्वहन में पारित किए गए थे, इसलिए यह व्यथा व्यक्त नहीं की जा सकती कि उन विधियों से संविधान के अध्याय 3 द्वारा पिटीशनरों को प्रदत्त मूल अधिकारों का अतिक्रमण हुआ है। न्यायालय ने प्रारम्भिक आक्षेप नामंजूर कर दिया और इस बारे में दूसरे प्रश्न को भी अस्वीकार कर दिया कि क्या तीन राज्यों के विधानमण्डलों द्वारा परित विधियों से संविधान के अनुच्छेद 25 (1) के उपबंधों का अतिक्रमण हुआ है। इस दलील को भी अस्वीकार करने के पश्चात् न्यायालय ने पिटीशनरों को "विधि के समान संरक्षण से इनकारी" के संबंध में उनके तर्क पर विचार किया। पिटीशनरों का तर्क यह था कि आक्षेपित अधिनियम केवल ऐसे मुस्लिम काजियों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करते हैं जो पशुओं का बध करते हैं किन्तु अन्यों को नहीं जो बकरों और भेड़ों का बध करते हैं और इसलिए वे अधिनियम संविधान के अनुच्छेद 14 के अतिक्रमणकारी थे। इस दलील पर भी विचार किया गया कि विद्वान् मुख्य न्यायाधिपति ने जो मत व्यक्त किए हैं वे न्यायाधिपति फज़ल अली द्वारा उद्धृत किए गए हैं। सांविधानिकता की उपधारणा और ऐसे व्यक्ति के भार के बारे में जो उसको चुनौती देता है, विद्वान मुख्य न्यायाधिपति द्वारा व्यक्त मत **राम कृष्ण डालमिया** के **मामले**[1] में अनुच्छेद 14 के संदर्भ में व्यक्त किए गए हैं। इसलिए हमारी यह राय है कि **पथुम्मा के मामले**[2] में सबूत के भार के प्रश्न पर न्यायाधिपति फ़ज़ल अली द्वारा अधिकथित सिद्धांत अनुच्छेद 14 के अधीन उद्भूत होने वाले मामलों को लागू हो सकते हैं न कि संविधान के अनुच्छेद 19 और 21 के अधीन उद्भूत होने वाले मामलों को लागू हो सकता है। वास्तव में **लक्ष्मी खांडसारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य**[3] के मामले में न्यायाधिपति फ़ज़ल अली ने न्यायाधिपति कौशल के साथ यह मत व्यक्त किया है कि निस्संदेह यह बात अच्छी तरह से सुस्थिर है कि जब कोई नागरिक अनुच्छेद 19 द्वारा प्रदत्त मूल अधिकार के अतिक्रमण की शिकायत करता है तो "स्वीकार्य साक्ष्य, अनिवार्य परिणाम या पर्याप्त

---

1 [1959] एस० सी० आर० 279.
2 [1979] 1 उम० नि० प० 82=[1978] 2 एस० सी० आर० 547.
3 [1982] 1 उम० नि० प० 681=[1981] 3 एस० सी० आर० 92.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सामग्री द्वारा" इस बात को साबित करने का भार राज्य पर होता है कि निर्बन्धन युक्तियुक्त है ।

27. **बचन सिंह के मामले**[1] में न्यायाधिपति भगवती ने अपनी विसम्मत राय में यह मत व्यक्त किया है कि न्यायाधिपति कृष्ण अय्यर द्वारा **बी० बनर्जी के मामले**[2] में और **पथुम्मा के मामले**[3] में न्यायाधिपति फज़ल अली द्वारा व्यक्त मत संविधान के अनुच्छेद 19 और 21 के अधीन उद्भूत होने वाले मामलों को लागू नहीं हो सकते । हम सादर उस मत से सहमत हैं ।

28. **मधु लिमये के मामले**[4] में, जिसका श्री जेठमलानी ने अवलंब लिया है, सात न्यायाधिपतियों की न्यायपीठ के विनिश्चय में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 और अध्याय 8 को इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि वे उपबंध संविधान के अनुच्छेद 19 के खंड (क), (ख), (ग) और (घ) का अतिक्रमण करते हैं । हम पहले ही मुख्य न्यायाधिपति हिदायतुल्लाह द्वारा उस मामले में दिए गए निर्णय के उस वाक्यांश को उद्धृत कर चुके हैं जिसका विद्वान् काउंसेल ने अवलंब लिया है । वह वाक्यांश यह दर्शाता है कि न्यायालय पिटीशनरों द्वारा दिए गए इस तर्क पर विचार कर रहा था कि प्रिफर्ड पोजीशन का सिद्धांत जिसके बारे में यह कहा जाता था कि वह अमेरिका में अस्पष्ट था, भारत में भी लागू होता था । तर्क यह था कि उस सिद्धांत के अनुसार वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता तथा धर्म या संगम की स्वतन्त्रता को निर्बन्धित करने वाली कोई भी विधि को प्रथम-दृष्टया तब तक अविधिमान्य ही माना जाना चाहिए जब तक कि यह साबित न हो कि वह विधिमान्य है । यह मानते हुए कि इस सिद्धांत को बहुत लम्बे समय तक अमेरिका की सुप्रीम कोर्ट द्वारा भी समर्थन नहीं मिला था, तथा विधि की अयुक्तियुक्तता को सिद्ध करना चाहिए । विद्वान् मुख्य न्यायाधिपति ने यह मत व्यक्त किया कि "हम इस उपधारणा से विचार प्रारम्भ नहीं करते हैं कि पूर्व सांविधानिक विधि होने से उसकी विधिमान्यता को सिद्ध करने का भार राज्य पर होता है । इसलिए विद्वान् मुख्य न्यायाधिपति के अनुसार सबूत का भार उन व्यक्तियों पर होना चाहिए जो यह

[1] [1983] 1 उम० नि० प० 1021=[1983] 1 एस० सी० आर० 145.
[2] [1975] 2 उम० नि० प० 257=[1975] 2 एस० सी० आर० 774.
[3] [1979] 1 उम० नि० प० 82—[1978] 2 एस० सी० आर० 547.
[4] [1971] 1 उम० नि० प० 221=[1971] 2 एस० सी० आर० 711.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दलील देते हैं कि कोई विशेष विधि प्रत्याभूत स्वतन्त्रताओं में से किसी के भी साथ पठित अनुच्छेद 13(1) के कारण संविधान के प्रवृत्त होने के पश्चात् शून्य हो गई है। (रेखांकन बल देने हेतु किया गया है)। प्रथमदृष्टया ये मत श्री जेठमलानी की दलील का समर्थन करने वाले प्रतीत होते हैं किन्तु जैसा कि हम पहले बतला चुके हैं, किसी एक संदर्भ में व्यक्त मतों को पूर्ण रूप से भिन्न संदर्भ तक विस्तारित करना गलत है। **मधु लिमये के मामले**[1] में विचारार्थ प्रश्न यह था कि क्या दंड प्रक्रिया संहिता के कतिपय उपबंध, जो संविधान पूर्व की विधि है, संविधान के अतिक्रमणकारी हैं। दलील यह थी कि दंड प्रक्रिया संहिता संविधान पूर्व विधि है और इसलिए राज्य को उस विधि की सांविधानिकता अवश्य ही सिद्ध करनी चाहिए। इस तर्क को इस मत के साथ नामंजूर कर दिया था "हम इस उपधारणा के साथ कार्य नहीं कर सकते कि संविधान पूर्व विधि असांविधानिक है और इसलिए उसकी विधिमान्यता को सिद्ध करने का भार राज्य पर है।" सबूत के भार के इस आशय के, कि भार उन व्यक्तियों पर होता है जो विधि की सांविधानिकता को चुनौती देते हैं, प्रश्न पर विनिर्दिष्ट मत संविधान के अनुच्छेद 13 (1) के उपबन्धों के संबंध में भी स्पष्ट रूप से व्यक्त किया गया है जो यह उपबंध करता है कि इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले भारत के राज्य क्षेत्र में प्रवृत्त सभी विधियां उस मात्रा तक शून्य होंगी जिस तक वे इस भाग के उपबंधों से असंगत है। श्री जेठमलानी इस बारे में सही है कि **मधु लिमये के मामले**[1] पर **बचन सिंह के मामले**[2] में ध्यान नहीं दिया गया था। किन्तु हम उनकी इस दलील को स्वीकार करने में असमर्थ हैं कि विनिश्चय इस प्रतिपादना के लिए नजीर है कि सबूत के भार का वही नियम सभी सांविधानिक चुनौतियों को लागू होना चाहिए चाहे वे चुनौतियां संविधान के अनुच्छेद 14, 19 या 21 के अधीन दी गई हों।

29. हमें **बचन सिंह**[2] के पिछले मामले पर भी ध्यान देना चाहिए जिससे हमने सबूत के भार से संबंधित प्रश्न पर चर्चा प्रारम्भ की है। न्यायाधिपति सरकारिया ने बहुमत के निर्णय में यह मत व्यक्त किया है कि "भार के संबंध में विनिश्चित मामलों से सभी स्थितियों में लागू होने के लिए कोई कठोर और एक-समान नियम लागू नहीं किया जा सकता। हमने यह दर्शाने के लिए अद्यतन प्रयत्न किया है कि अनुच्छेद 14 के अधीन उद्भूत होने वाले मामले सबूत के भार से संबंधित नियम द्वारा शासित

---

[1] [1971] 1 उम० नि० प० 221=[1971] 2 एस० सी० आर० 711.

[2] [1983] 1 उम० नि० प० 1021=[1983] 1 एस० सी० आर० 145.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

होते हैं जो उस नियम से भिन्न है जो संविधान के अनुच्छेद 19 और 21 के अधीन उद्भूत होने वाले मामलों को लागू होता है। उस अर्थ में यह कहना सही है कि ऐसा कोई कठोर और समान लागू होने वाला नियम नहीं है जो समान स्थितियों को लागू किया जा सके। हमने **बी० बनर्जी**[1] और **पथुम्मा**[2] के मामलों के दोनों विनिश्चयों पर भी विचार किया है जो स्पष्ट रूप से न्यायालय के ध्यान में उस समय थे जब विरोधी रुख व्यक्त किया था जो न्यायालय के पश्चात्वर्ती विनिश्चयों में पाया जाता है। इस विषय से सम्बन्धित भारतीय और अमेरिकन मामलों को निर्दिष्ट करने के पश्चात् बहुमत ने अपना निष्कर्ष यह कह कर के अभिलिखित किया था कि "राज्य ने यह सिद्ध करने के लिए अपने भार का निर्वहन किया है कि मृत्यु दण्ड की शास्ति आवश्यक आंकड़े पेश करके भयोपरत करने का कार्य करती है। हम **बचन सिंह** के **मामले**[3] के विनिश्चय के इस पहलू को यह दर्शाने के लिए निर्दिष्ट कर रहे हैं कि बहुमत का निर्णय इस आधार पर किया गया था कि धारा 302 की सांविधानिकता को साबित करने का भार राज्य पर था और राज्य ने उस भार का सफलतापूर्वक निर्वहन किया था। इस प्रकार **बचन सिंह का मामला**[3] इस प्रतिपादना के लिए नजीर है कि संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन उद्भूत होने वाले मामलों में, यदि यह प्रतीत हो कि व्यक्ति को उसके जीवन से वंचित किया जा रहा हो अथवा उसकी वैयक्तिक स्वतन्त्रता से वंचित किया गया है, सबूत का भार आक्षेपित विधि की सांविधानिक मान्यता को सिद्ध करने का भार राज्य पर होता है।

30. इससे सबूत के भार से संबंधित प्रश्न का निपटारा हो जाता है। इस चर्चा की दृष्टि से हमें इस प्रश्न की परीक्षा करनी चाहिए कि क्या राज्य ने इस बात को साबित करने के भार का निर्वहन किया है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 354 (5) के उपबन्ध अनुच्छेद 21 की आज्ञा के अनुरूप है। इस निष्कर्ष के अनुरूप जो हमने सबूत के भार के संबंध में अभिलिखित किया है, हमें यह अभिनिर्धारित करना चाहिए कि सबूत का भार यह साबित करने के लिए पिटीशनरों पर नहीं है कि जीवन लेने से संबंधित उपर्युक्त उपबंध द्वारा विहित प्रक्रिया अऋजु या अयुक्तियुक्त है। आक्षेपित कानून स्पष्टतया जीवन समाप्त करने की प्रक्रिया के लिए उपबंध

---

[1] [1975] 2 उम० नि० प० 257=[1975] 2 एस० सी० आर० 774.
[2] [1979] 1 उम० नि० प० 82=[1978] 2 एस० सी० आर० 547.
[3] [1983] 1 उम० नि० प० 1021=[1983] 1 एस० सी० आर० 145.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

करता है। इसलिए जीवन या स्वतन्त्रता से वंचित करने के तथ्य को दर्शाने की प्रारम्भिक बाध्यता भी पिटीशनरों पर है। राज्य को अवश्य ही सिद्ध करना चाहिए कि मृत्यु दंडादेश निष्पादित करने के लिए संहिता की धारा 354 (4) द्वारा विहित प्रक्रिया, उचित, ऋजु और युक्तियुक्त है। उस भार में यह साबित करने की बाध्यता भी सम्मिलित है कि उक्त प्रक्रिया कठोर, निर्दय या अपमानित करने वाली नहीं है।

31. क्या राज्य ने इस भारी भार का निर्वहन किया है? हम पहले ही वे आधार-उल्लिखित कर चुके हैं जिन पर पिटीशनरों ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 354 (4) की सांविधानिकता को चुनौती दी है। उक्त धारा 354 (5) में यह उपबंध है कि जब किसी व्यक्ति को मृत्यु का दंडादेश दिया जाता है तो यह दंडादेश यह निदेश देगा कि उसे गर्दन में फांसी लगाकर तब तक लटकाया जाए जब तक उसकी मृत्यु न हो जाए। संक्षेप में उल्लिखित करने पर पिटीशनरों की दलील यह है। कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 354 (5) अविधिमान्य है क्योंकि—

(1) न्यायालय की डिक्री के अधीन भी मानव जीवन लेना अननुज्ञेय है चूंकि किन्हीं भी परिस्थितियों में जीवन लेना अमानवीय है।

(2) संविधान के अनुच्छेद 21 में अन्तर्विष्ट उपबंध के आधार पर भी किसी भी प्रकार के दंडादेश के निष्पादन में, इससे अधिक मृत्यु दण्डादेश निष्पादित करते समय भी, किसी भी प्रकार की पीड़ा या दर्द कारित करना भी अननुज्ञेय है।

(3) मृत्यु दंडादेश निष्पादित करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 354 (5) द्वारा विहित फांसी लगाने का ढंग भी बर्बर अमानवीय है; और

(4) मृत्यु दंडादेश निष्पादित करने के लिए मानवीय और प्रतिष्ठित उपबंध करना राज्य की सांविधानिक बाध्यता है। मृत्यु दंडादेश निष्पादित करने में किसी भी प्रकार की पीड़ा अन्तर्वलित नहीं है। यदि संहिता की धारा 354 (5) द्वारा विहित पद्धति इस अपेक्षा को पूरा नहीं करती है तो किसी भी प्रकार का मृत्यु दंडादेश निष्पादित नहीं किया जा सकता चूंकि उस दंडादेश को निष्पादित करने के लिए कोई अन्य पद्धति विधि के अधीन विहित नहीं की गई है या अनुज्ञेय नहीं है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

32. इन तर्कों का उत्तर विद्वान् अटर्नी जनरल ने यह दलील देकर दिया है कि न्यायालय द्वारा वैध रूप से अधिरोपित दंडादेश निष्पादित किया जा सकता है और निष्पादित किया जाना चाहिए। यद्यपि कम से कम दर्द और पीड़ा कारित करके और किसी भी प्रकार का संत्रास या निरादर टालते हुए। मृत्यु दंडादेश निष्पादित करने के लिए धारा 354 (5) द्वारा विहित पद्धति मानवीय और प्रतिष्ठित पद्धति है जिसमें कम से कम मात्रा में दर्द और क्रूरता अन्तर्वलित है, मृत्यु दंडादेश निष्पादित करने का कोई भी अन्य ढंग शीघ्र या कम पीड़ाजनक नहीं है, अनुच्छेद 21 यह परिकल्पित नहीं करता है कि किसी भी प्रकार का दर्द या पीड़ा न्यायालय द्वारा वैध रूप से अधिरोपित दंडादेश जिसमें मृत्यु दंडादेश भी सम्मिलित है, का निष्पादन करने में कारित नहीं की जाएगी और चूंकि धारा 354 (5) द्वारा विहित फांसी लटकाने के ढंग में किसी भी प्रकार की कोई सांविधानिक त्रुटि नहीं है इसलिए न्यायालय द्वारा किसी अन्य पद्धति द्वारा उस पद्धति को प्रतिस्थापित करने का प्रश्न विचारार्थ उद्भूत नहीं होता है।

33. अटर्नी जनरल के इन तर्कों का समर्थन करते समय श्री जेठमलानी ने यह कहा है कि जब तक कि स्पष्टतया किसी दंडादेश को निष्पादित करने के लिए विधि द्वारा विहित पद्धति मनोभावना की अतिक्रमणकारी न हो, न्यायालयों को विधायी निर्णय के प्रति अपने विवेकाधिकार का प्रयोग नहीं करना चाहिए जब कि विधि की सांविधानिकता की चुनौती उन बातों पर निर्भर है जिन्हें न्यायालय द्वारा विहित न्यायिक मानकों द्वारा मूल्यांकन करने के लिए समर्थ न हो। विद्वान् काउन्सेल के अनुसार विधि द्वारा विहित फांसी लगाने की पद्धति का मूल्यांकन अनिवार्य रूप से व्यक्तिपरक होगा जो अधिकांशतः विधायी स्वरूप का होगा और जिसे किसी भी कीमत पर टाला जाना चाहिए। विधानमंडल ने विधि आयोग, जनता की राय की अभिव्यक्ति वैज्ञानिक अन्वेषणों के परिणाम, सामाजिक जागरुकता और अंतिम किन्तु कम से कम सदन में क्षणिक बातों पर चर्चा करने के लिए विधायकों को उपलब्ध अनियंत्रित स्वतंत्रता और उनकी लगातार संवीक्षा करना जैसे स्वयं के प्रशिक्षण के लिए साधनों को अपनी ओर से मान्यता प्रदान की है। श्री जेठमलानी के तर्क का संक्षेप और सार फांसी देने को समाप्त किया जाना है।

34. अन्य विद्वान् काउन्सेलों द्वारा इन तर्कों में नए आयाम जोड़े गए हैं, उदाहरण के लिए श्री सालमन खुरशीद ने यह दलील दी है कि मृत्यु दंडादेश निष्पादित करके सदैव के लिए जीवन समाप्त

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

करने की बजाय मृत्यु दंडादेश व्यक्तियों को अंधा करके उन्हें चक्षु दृष्टि से वंचित कर दिया जाना चाहिए ताकि यदि और जब वे सुधर जाएं तो उन्हें उनकी दृष्टि प्रतिस्थापित करके दृष्टि प्रदान की जा सके अथवा किसी अन्य पद्धति द्वारा, जो उन्हें पुनः दृष्टि प्रदान करने के लिए चिकित्सकों द्वारा ढूंढी जाए, चक्षु दृष्टि पुनः प्रदान की जा सके। इसी बीच काउन्सेल ने कहा है कि न्याय किया जाना चाहिए।

35. प्रथमतः श्री जेठमलानी के इस तर्क के बारे में कि हमें यह प्रश्न विधायी चातुर्यता पर ही बाद में छोड़ देना चाहिए कि मृत्यु दंडादेश कितनी अच्छी तरह से निष्पादित किया जा सकता है और हमें उस प्रश्न के विनिश्चय में अपना व्यक्तिपरक मत प्रतिस्थापित नहीं करना चाहिए। हम इस तर्क को स्वीकार करना असंभव मानते है। निश्चित रूप से नीति संबंधी बातें विधानमंडल के विचारार्थ हैं और इसलिए किस ढंग या पद्धति द्वारा मृत्यु दंडादेश निष्पादित किया जाना चाहिए यह बात विधानमंडल द्वारा विनिश्चय किए जाने के लिए है। जैसा कि ग्रेग बनाम जार्जिया[1] के मामले में कहा गया है "किसी गणतंत्र समाज में विधानमंडल न कि न्यायालय जनता के नैतिक मूल्यों का प्रतिनिधित्व करने के लिए गठित किए जाते हैं। किन्तु विधानमण्डल का कृत्य इस बात का उपबंध करके समाप्त हो जाता है जो वह मृत्यु दंडादेश निष्पादित करने की सर्वोत्तम पद्धति समझता है। जहां विधानमंडल का कृत्य समाप्त हो जाता है वहां न्यायपालिका का कृत्य प्रारंभ होता है। कोई दंडादेश कार्यान्वित या निष्पादित करने के लिए विधानमंडल द्वारा विहित पद्धति की सांविधानिकता का विनिश्चय न्यायालय ही कर सकता है। क्या वह पद्धति संविधान की आज्ञा के अनुरूप है, ऐसी बात है जो केवल न्यायिक पुनर्विलोकन के अध्यधीन ही नहीं है किन्तु वह न्यायिक कृत्य का एक वैध भाग भी है। न्यायाधीशों के रूप में हम संविधान द्वारा हम पर अधिरोपित बाध्यता की उपेक्षा नहीं कर सकते तथा इस सांत्वना के साथ हम अपने हाथ अलग नहीं कर सकते कि अन्ततोगत्वा जनता के चुने गए प्रतिनिधियों ने फांसी पर लटकाए जाने को अपनी रजामंदी दे दी है और इसलिए वह मृत्यु दंडादेश निष्पादित करने की सर्वोतम पद्धति है। हम जनता के प्रतिनिधियों के निर्णय का केवल इस सीमा तक ही आदर करते हैं कि वे नीति की बात के रूप में इस बात पर विचार करते हैं कि

1 [1976] 49 लायर्स एडीसन सेकंड 859.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

संहिता की धारा 354 (5) द्वारा उपबंधित फांसी पर लटकाए जाने की पद्धति मृत्यु दंडादेश निष्पादित करने के लिए कम से कम आपत्तिजनक पद्धति है। किन्तु विधानमंडल का नीति संबंधी निर्णय जो बात न्यायालय के विचारार्थ बिल्कुल ही छोड़ देता है वह यह प्रश्न है कि क्या मृत्यु दंडादेश निष्पादित करने के लिए विधि द्वारा विहित कोई विशेष पद्धति संविधान के अनुरूप है। यह पश्चातवर्ती प्रश्न स्पष्ट रूप से न्यायालयों के विनिश्चय के लिए है। उस प्रश्न के विनिश्चय में अनिवार्य रूप से मृत्यु दंडादेश निष्पादित करने के लिए वैकल्पिक पद्धतियों का तुलनात्मक मूल्यांकन करने पर आधारित एक मूल्यवान निर्णय है किन्तु ऐसे किसी तुलनात्मक मूल्यांकन से अधिक हमारा स्पष्ट और प्राथमिक कर्तव्य इस बात की परीक्षा करना है कि क्या यदि विधानमंडल द्वारा चुनी गई पद्धति कम से कम आपत्तिजनक है तो उसके बारे में अभी भी यह आपत्ति की जा सकती है कि उस में असम्यक् त्रास, निरादर और क्रूरता अन्तर्वलित है जैसे कि उदाहरण के लिए यथार्थ रूप से आवश्यक पीड़ा से अधिक पीड़ा कारित करना अथवा मृत्यु को लंबा करना अथवा कोई विशेष पद्धति हो अपनाई जाती है तो बारम्बार उस पद्धति में असफल होना। हमारा कार्य यह बतलाकर के समाप्त हो जाएगा कि विधि द्वारा वर्तमान में उपबंधित पद्धति संविधान की आज्ञा के प्रतिकूल क्यों है। यद्यपि वह मृत्यु दंडादेश निष्पादित करने के लिए सामान्य रूप से स्वीकृत कोई अन्य पद्धति से कम आपत्तिजनक हो। हम यह निदेश देकर के विधान नहीं बनाएंगे कि चूंकि धारा 354 (5) में अन्तर्विष्ट उपबंध यदि कोई है असांविधानिक है तो पिटीशनरों पर अधिरोपित मृत्यु दंडादेश विद्युत उपकरणों, या गैस चैम्बर या इंजेक्शन देकर के या गोली मारकर के या गला घोंटकर या इसके समान अन्य पद्धति द्वारा निष्पादित किया जाएगा। जैसे कि श्री खुरशीद द्वारा दलील दी गई है कि हम यह निदेश दे सकते हैं कि पिटीशनरों को अस्थायी रूप से बंधा कर दिया जाए। यह बात विधानमंडल के लिए होगी। विधि की सांविधानिकता के बारे में कोई निर्णय देना विधान बनाना नहीं है यद्यपि इसे निर्णय में समाज के परिवर्तनशील मानकों की बातें भी अन्तर्वलित हैं। क्रूरता और संत्रास स्थिर धारणाएं नहीं हैं। इसीलिए शरीर के किसी अंग के काटे जाने, को जिसे कई शताब्दियों पहले क्रूर नहीं माना गया था, अथवा जिसे आज के युग में भी संसार के कुछ अन्य भागों में क्रूर नहीं माना जाता है, भारतीय समाज के समकालीन मानकों को लागू करके दंड के रूप में स्वीकार करना असंभव है। जिस बात को पिछले समयों में

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अप्रतिष्ठित या अमानवीय रूप में नहीं माना जाता था, नए बुद्धि जीवियों के लिए क्रांतिकारी हो सकता है जो तब उद्भूत होता है जब सभ्यता अग्रसर होती है। विधि की विधिमान्यता के विनिश्चय के बारे में ऐसी जागरुकता का परिणाम और प्रभाव न्यायिक कृत्य का अपृथकनीय भाग है।

36. यह न्यायालय विधानमंडल का तृतीय चैम्बर नहीं है। उसकी ऐसी कोई अतिरिक्त अधिकारिता की चाह नहीं है तथा वह लार्ड डेवलिन के मत का प्रयोग करने के लिए आउट-राइडर का कार्य करने हेतु उत्सुक नहीं है। वह साधारणतया लिखित संविधान द्वारा शासित देश में विधि और न्याय का सर्वोच्च न्यायालय है। उसका प्राथमिक और अनन्य कार्य निर्वचन करना है। सावधानी जो हमें बरतनी चाहिए वह यह है कि विधियों और संविधान का निर्वचन करते समय हमें धैर्य नहीं खोना चाहिए अथवा जनसाधारण की भावनाओं में बह नहीं जाना चाहिए। हमें संविधान द्वारा नियत हमारे कर्तव्य अवश्य ही करने चाहिएं जो असाधारण बातों द्वारा अप्रभावी हो और निष्पक्ष और न्यायोचित होने की बाध्यता द्वारा पूर्णतया मार्ग दर्शित होना चाहिए।

37. राज्य आयोगों की रिपोर्टों का अवलंब लेकर के अपने भार का निर्वहन करना चाहता है। आयोगों की रिपोर्टें फांसी लटकाने की प्रक्रिया, तांत्रिक प्रक्रिया के वैज्ञानिक अन्वेषणों के परिणामों, पाठ्य-पुस्तकों के लेखकों की रायों, समाजवादियों के मतों और समाज सुधारकों की रायों पर आधारित होती हैं। यद्यपि विवाद्यक का न्यायिक पहलू फांसी देना चाहिए अथवा नहीं देना चाहिए होता है। इनमें से कुछ पर अब हम विचार करेंगे।

38. वर्ष 1949 में इंग्लैंड की सरकार ने मृत्यु दंड के विभिन्न पहलुओं पर रिपोर्ट देने के लिए आयोग नियुक्त किया था। आयोग ने उसे निर्दिष्ट प्रश्नों का गहन अन्वेषण करने के पश्चात् सितम्बर, 1953 में अपनी रिपोर्ट पेश की थी। यह रिपोर्ट विशेषज्ञों से साक्षात्कार लेने, जेलों का निरीक्षण करने और मृत्यु दंडादेश निष्पादित करने के लिए फांसी देने के ढंग के गुणागुण की परीक्षा करने के पश्चात् दी गई थी। रायल कमीशन की रिपोर्ट का अध्याय 13 मृत्यु दंडादेश के निष्पादन की पद्धतियों से संबंधित है। उस अध्याय के पैरा 700 में आयोग ने यह अभिलिखित किया है कि उसने विभिन्न साक्षियों से जिनमें कारागार के कमिश्नर और कारागार के अधिकारी भी सम्मिलित हैं, फांसी पर लटकाने की विद्यमान पद्धति पर साक्ष्य सुना है। इन कारागार अधिकारियों में से एक श्री पियरप्वाइन्ट; इस

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

संहिता की धारा 354 (5) द्वारा उपबंधित फांसी पर लटकाए जाने की पद्धति मृत्यु दंडादेश निष्पादित करने के लिए कम से कम आपत्तिजनक पद्धति है। किन्तु विधानमंडल का नीति संबंधी निर्णय जो बात न्यायालय के विचारार्थ बिल्कुल ही छोड़ देता है वह यह प्रश्न है कि क्या मृत्यु दंडादेश निष्पादित करने के लिए विधि द्वारा विहित कोई विशेष पद्धति संविधान के अनुरूप है। यह पश्चातवर्ती प्रश्न स्पष्ट रूप से न्यायालयों के विनिश्चय के लिए है। उस प्रश्न के विनिश्चय में अनिवार्य रूप से मृत्यु दंडादेश निष्पादित करने के लिए वैकल्पिक पद्धतियों का तुलनात्मक मूल्यांकन करने पर आधारित एक मूल्यवान निर्णय है किन्तु ऐसे किसी तुलनात्मक मूल्यांकन से अधिक हमारा स्पष्ट और प्राथमिक कर्तव्य इस बात की परीक्षा करना है कि क्या यदि विधानमंडल द्वारा चुनी गई पद्धति कम से कम आपत्तिजनक है तो उसके बारे में अभी भी यह आपत्ति की जा सकती है कि उस में असम्यक् त्रास, निरादर और क्रूरता अन्तर्वलित है जैसे कि उदाहरण के लिए यथार्थ रूप से आवश्यक पीड़ा से अधिक पीड़ा कारित करना अथवा मृत्यु को लंबा करना अथवा कोई विशेष पद्धति ही अपनाई जाती है तो बारम्बार उस पद्धति में असफल होना। हमारा कार्य यह बतलाकर के समाप्त हो जाएगा कि विधि द्वारा वर्तमान में उपबंधित पद्धति संविधान की आज्ञा के प्रतिकूल क्यों है। यद्यपि वह मृत्यु दंडादेश निष्पादित करने के लिए सामान्य रूप से स्वीकृत कोई अन्य पद्धति से कम आपत्तिजनक हो। हम यह निदेश देकर के विधान नहीं बनाएंगे कि चूंकि धारा 354 (5) में अन्तर्विष्ट उपबंध यदि कोई है असांविधानिक है तो पिटीशनरों पर अधिरोपित मृत्यु दंडादेश विद्युत उपकरणों, या गैस चैम्बर या इंजेक्शन देकर के या गोली मारकर के या गला घोंटकर या इसके समान अन्य पद्धति द्वारा निष्पादित किया जाएगा। जैसे कि श्री खुरशीद द्वारा दलील दी गई है कि हम यह निदेश दे सकते हैं कि पिटीशनरों को अस्थायी रूप से अंधा कर दिया जाए। यह बात विधानमंडल के लिए होगी। विधि की सांविधानिकता के बारे में कोई निर्णय देना विधान बनाना नहीं है यद्यपि ऐसे निर्णय में समाज के परिवर्तनशील मानकों की बातें भी अन्तर्वलित हैं। क्रूरता और संत्रास स्थिर धारणाएं नहीं हैं। इसीलिए शरीर के किसी अंग के काटे जाने, को जिसे कई शताब्दियों पहले क्रूर नहीं माना गया था, अथवा जिसे आज के युग में भी संसार के कुछ अन्य भागों में क्रूर नहीं माना जाता है, भारतीय समाज के समकालीन मानकों को लागू करके दंड के रूप में स्वीकार करना असंभव है। जिस बात को पिछले समयों में

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अप्रतिष्ठित या अमानवीय रूप में नहीं माना जाता था, नए बुद्धि जीवियों के लिए क्रांतिकारी हो सकता है जो तब उद्भूत होता है जब सभ्यता अग्रसर होती है। विधि की विधिमान्यता के विनिश्चय के बारे में ऐसी जागरुकता का परिणाम और प्रभाव न्यायिक कृत्य का अपृथकनीय भाग है।

36. यह न्यायालय विधानमंडल का तृतीय चैम्बर नहीं है। उसकी ऐसी कोई अतिरिक्त अधिकारिता की चाह नहीं है तथा वह लार्ड डेवलिन के मत का प्रयोग करने के लिए आउट-राइडर का कार्य करने हेतु उत्सुक नहीं है। वह साधारणतया लिखित संविधान द्वारा शासित देश में विधि और न्याय का सर्वोच्च न्यायालय है। उसका प्राथमिक और अनन्य कार्य निर्वचन करना है। सावधानी जो हमें बरतनी चाहिए वह यह है कि विधियों और संविधान का निर्वचन करते समय हमें धैर्य नहीं खोना चाहिए अथवा जनसाधारण की भावनाओं में बह नहीं जाना चाहिए। हमें संविधान द्वारा नियत हमारे कर्तव्य अवश्य ही करने चाहिएं जो असाधारण बातों द्वारा अप्रभावी हो और निष्पक्ष और न्यायोचित होने की बाध्यता द्वारा पूर्णतया मार्ग दर्शित होना चाहिए।

37. राज्य आयोगों की रिपोर्टों का अवलंब लेकर के अपने भार का निर्वहन करना चाहता है। आयोगों की रिपोर्टें फांसी लटकाने की प्रक्रिया, तांत्रिक प्रक्रिया के वैज्ञानिक अन्वेषणों के परिणामों, पाठ्य-पुस्तकों के लेखकों की रायों, समाजवादियों के मतों और समाज सुधारकों की रायों पर आधारित होती हैं। यद्यपि विवाद्यक का न्यायिक पहलू फांसी देना चाहिए अथवा नहीं देना चाहिए होता है। इनमें से कुछ पर अब हम विचार करेंगे।

38. वर्ष 1949 में इंग्लैंड की सरकार ने मृत्यु दंड के विभिन्न पहलुओं पर रिपोर्ट देने के लिए आयोग नियुक्त किया था। आयोग ने उसे निर्दिष्ट प्रश्नों का गहन अन्वेषण करने के पश्चात् सितम्बर, 1953 में अपनी रिपोर्ट पेश की थी। यह रिपोर्ट विशेषज्ञों से साक्षात्कार लेने, जेलों का निरीक्षण करने और मृत्यु दंडादेश निष्पादित करने के लिए फांसी देने के ढंग के गुणागुण की परीक्षा करने के पश्चात् दी गई थी। रायल कमीशन की रिपोट का अध्याय 13 मृत्यु दंडादेश के निष्पादन की पद्धतियों से संबंधित है। उस अध्याय के पैरा 700 में आयोग ने यह अभिलिखित किया है कि उसने विभिन्न साक्षियों से जिनमें कारागार के कमिश्नर और कारागार के अधिकारी भी सम्मिलित हैं, फांसी पर लटकाने की विद्यमान पद्धति पर साक्ष्य सुना है। इन कारागार अधिकारियों में से एक श्री पियरप्वाइन्ट; इस

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

देश के बहुत ही अनुभवी निष्पादक और अंडर-शेरिफ भी थे, जो लंदन और लंकाशायर में फांसी लगाने के लिए उत्तरदायी थे। आयोग ने इंग्लैंड और स्काटलैंड में फांसी लगाने के चैम्बरों का भी निरीक्षण किया था। उनके समक्ष फांसी लगाने की प्रक्रिया का भी प्रदर्शन किया गया था। उन्हें बिजली और लीथल गैस द्वारा प्राणदंड के साधनों द्वारा इंग्लैंड में फांसी देने के बारे में भी साक्ष्य प्राप्त हुआ था। इंगलैंड में उनके दौरे के दौरान उन्हें दो कारागारों में बिजली की कुर्सी देखने का भी अवसर मिला था। अंत में उन्होंने फांसी लगाने की नई पद्धतियों की संभावना के बारे में चिकित्सा साक्षियों से भी प्रश्न किए थे।

39. रिपोर्ट के पैरा 703 में आयोग ने इस बात का उल्लेख किया है कि लोकमत इस साक्ष्य द्वारा विक्षुब्ध हो उठा था कि फांसी लगाने के काम में कभी-कभी गड़बड़ी कर दी जाती है। सन् 1885 में सिद्धदोष हत्यारे की फांसी देने के तीन असफल प्रयत्नों के पश्चात् फांसी स्थगित करनी पड़ी थी। कुछ अन्य अप्रत्याशित घटनाएं भी हुई थीं। कभी-कभी किसी व्यक्ति को बहुत ही कम झटका दिया जा सकता है तथा वह गला घुटने से धीरे-धीरे मर सकता है अथवा बहुत लंबा लटका दिया जा सकता है जिससे सिर कट सकता है। इसलिए इस बात को सुनिश्चित करने के लिए सभी मृत्यु दंड किसी भी प्रकार की असफलता की जोखिम के बिना बहुत ही अच्छे प्रकार से निष्पादित हो जाए किसी अच्छे प्रकार के बारे में रिपोर्ट देने के लिए सन् 1886 में इंग्लैंड में एक समिति नियुक्त की गई थी। इस समिति ने लटकन की लंबाई, उपकरणों में सुधार और प्रारम्भिक जांच और उन सावधानियों के बारे में अपनी सिफारिशें दी थीं जो सिर काटे बिना रीढ़ की हड्डी को अलग करके शीघ्र और बिना दर्द के मृत्यु सुनिश्चित करने के लिए परिकल्पित थी। फांसी देने की उन्नत पद्धति, जो अब प्रचलन में है, इस समिति की सिफारिशों के परिणामस्वरूप अस्तित्व में आई है। गृह विभाग ने आयोग को यह जानकारी दी थी कि वर्तमान शताब्दी के दौरान फांसी देने के संबंध में किसी भी प्रकार की असफलता या बचने के बारे में कोई अभिलेख नहीं है और अब जिस प्रकार से फांसी पर लटका कर मृत्यु दंडादेश निष्पादित किया जाता है उसे शीघ्र और निश्चित तरीके के रूप में माना जा सकता है।

40. रिपोर्ट के पैरा 704 में आयोग ने यह कहा है कि मानवता के आधार पर ही फांसी लटका कर के मृत्यु दंड देने की कई साक्षियों द्वारा प्रतिरक्षा की गई थी। कारागार के अधिकारियों ने फांसी देने की पद्धति को मानवीय पद्धति कहा था जैसी कि परिस्थितियां अनुज्ञात करती हैं जब

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कि कारागार के चिकित्सा अधिकारियों ने यह कहा है कि हम किसी ऐसी अन्य पद्धति को स्वीकार नहीं कर सकते जो न्यायिक रूप से फांसी पर लटकाने की तुलना में अधिक मानवीय, दक्ष या शीघ्र हो। कारागार अधिकारियों ने इसे साधारण मानवीय और शीघ्र पद्धति कहा है। ब्रिटिश मेडिकल एसोसिएशन ने आयोग को यह कहा है कि फांसी पर लटकाया जाना सम्भवतः उतना ही शीघ्र और सुनिश्चित है जैसे कोई अन्य पद्धति स्वीकार की जा सकती है। रायल मेडिकल साइकोलोजिकल एसोसिएशन ने यह उल्लिखित करने के पश्चात् कि फांसी देने की पद्धति निश्चित माननीय, साधारण तुरंत और शीघ्र होनी चाहिए, यह कहा है कि एसोसिएशन को उपलभ्य जानकारी के आधार पर फांसी पर लटकाने की पद्धति अभी तक प्रस्तावित या प्रचलन की किसी अन्य पद्धति की तुलना में अधिक संतोषप्रद रूप से इन आधारों को पूरा करती है। एक जानकार साक्षी ने आयोग को कहा कि फांसी पर लटकाने की पद्धति, निश्चित, बिना कष्ट के साधारण मानवीय और शीघ्र थी।

41. रिपोर्ट के पैरा 705 में आयोग ने एक रुचिकर विकास को निर्दिष्ट किया है कि फांसी पर लटकाने की पद्धति, जिसके विशेष गुणागुण के बारे में मूल रूप से यह सोचा गया था कि वह विशेषतया निरादर करने वाली थी और इसलिए कठोर थी और इसका प्रतिवाद उसके समक्ष इस आधार पर किया गया था कि वह बिना किसी मतभेद के मानवीय पद्धति थी। इस आश्चर्यकारी मत का कारण यह है कि समिति द्वारा, जो सन् 1886 में नियुक्त की थी, की गई सिफारिशों के परिणामस्वरूप ऐसी पद्धति मूल रूप से ऐसी जंगली पद्धति थी जिसे सफलतापूर्वक मानवीय बना दिया गया है।

42. पैरा 708 में आयोग ने इस प्रश्न पर विचार किया है कि क्या फांसी देने की कोई स्पष्ट और व्यावहारिक पद्धति है जो फांसी पर लटकाने के समान बिना दर्द वाली हो अथवा उससे भी अधिक शीघ्र हो या जो उस पद्धति की अवमानकारी बातों से मुक्त हो यद्यपि उन बातों के संबध में उसका फांसी पर लटकाने की पद्धति से कोई अधिक लाभ न हो। यदि मृत्यु दंड पहली बार दिया जा रहा हो तो आयोग ने इसके साथ ही इस बात पर भी विचार किया था कि फांसी पर लटकाने को मृत्यु दंडादेश निष्पादित करने के लिए एक पद्धति के रूप में चुना जाएगा। तथापि आयोग का यह मत था कि प्रयोग करके कोई उपयोगी हल नहीं निकलेगा जब तक कि

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आवश्यकता शीघ्र न हो या उपयोगिता स्पष्ट न हो तथा इस बात को ऐसी जनता पर विशेष बल के साथ लागू किया गया जो बहुत ही भावुक थी और बहुत अधिक विवादास्पद थी।

43. पैरा 709 में आयोग ने मृत्यु दंडादेश निष्पादित करने की पांच पद्धतियां निर्दिष्ट की हैं जो संसार के विभिन्न भागों में उस समय प्रचलित थीं। विद्युत द्वारा प्राणदंड अमेरिका के 23 राज्यों में प्रचलित था गिलोटिन, फ्रांस और बेलजियम में प्रचलित था। फांसी पर लटकाया जाना इंग्लैंड, स्काटलैंड, कामनवेल्थ के देशों तथा अमेरिका के 10 राज्यों में प्रचलित था। लीथल गैस अमेरिका के आठ राज्यों में प्रचलित थी। गोली मारना अमेरिका के स्टेट आफ उटा में प्रचलित था और वहां पर फांसी पर लटकाने और गोली मारने के बीच विकल्प अनुज्ञात था। इसके अतिरिक्त मिलिटरी कांड के अधीन अपराधों के लिए मृत्यु दंडादिष्ट व्यक्तियों को मृत्युदंड देने की पद्धति के रूप में गोली मारना अधिकांशतः प्रत्येक देश में प्रचलित था।

44. मृत्यु दंडादेश देने की पद्धतियों के रूप में गिलोटिन और गोली मारने को इस कारण से कि गिलोटिन में अंग विच्छेद होता है और गोली मारना सिविल तरीके से फांसी लटकाने की मानक पद्धति के रूप में अपर्याप्त, अनिश्चित और अस्वीकार्य है, नामंजूर करते हुए आयोग ने अपनी रिपोर्ट के पैरा 711 से 716 में फांसी लटकाने की यांत्रिकी की परीक्षा की थी। पैरा 714 जो हमारे प्रयोजन के लिए सुसंगत है, यह दर्शाता है कि लंदन के उत्तरी जिले के मृत्यु परीक्षक (कारोनर) द्वारा आयोग को एक मूल्यवान ज्ञापन पेश किया गया था। कारोनर की प्रेरणा पर मृत सर बरनार्ड स्पिलसबरी द्वारा फांसी लटकाने के पश्चात् बहुत सी शव परीक्षाएं की थीं। मृत सर बरनार्ड स्पिलसबरी ने, जो एक माने हुए चिकित्सक थे और अन्य उच्च अर्हता प्राप्त पैथालोजिस्टों में से एक महत्वपूर्ण साक्षी के रूप में जाने जाते थे, बहुत से महत्वपूर्ण विचारणों में साक्षी के रूप में साक्ष्य दिया था। मृत्यु परीक्षक श्री बेंटले परचेस ने ऐसी शव परीक्षाओं के अभिलेख देखे थे। ज्ञापन यह दर्शाता है कि दो कारागारों में 58 फांसी लटकाए जाने के मामलों में मृत्यु का प्रभावी कारण हड्डी का टूटना या अस्थिभंग था तथा इस प्रकार के अस्थिभंग से तुरंत ही व्यक्ति चेतनाहीन हो जाता है तथा इसके पश्चात् चेतना का कोई अवसर नहीं होता है चूंकि उसके बाद सांस लेना संभव नहीं है। इसके पश्चात् किसी भी समय 20 मिनट तक हृदयगति का चलना बिल्कुल ही अपने आप की क्रिया है। मृत्यु परीक्षक के शब्दों में न्यायिक रूप

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

से फांसी लटकाने की वर्तमान पद्धति के प्रभाव और तुरन्त तथा बिना किसी प्रकार की पीड़ा की मृत्यु के बारे में कोई संदेह नहीं है।

45. रिपोर्ट के पैरा 717 से 722 में विद्युत द्वारा मृत्यु दंड तथा लीथल गैस की पद्धतियों की यांत्रिकी की परीक्षा करने के पश्चात् आयोग ने इस प्रश्न के बारे में विचार किया था कि क्या विद्युत द्वारा मृत्यु दंड अथवा लीथल गैस द्वारा मृत्यु दंड मानवीयता, निश्चितता और शिष्टता की बातों के आधार पर फांसी लटकाए जाने की तुलना में अधिक अच्छा था।

46. आयोग ने पैरा 724 में यह मत व्यक्त किया है कि मानवीयता की अपेक्षाएं अनिवार्य रूप से दो हैं (1) कि फांसी लटकाए जाने के कार्यों में से प्रारम्भिक कार्य यथासंभव शीघ्र और साधारण होने चाहिएं तथा ऐसी बात से मुक्त होना चाहिए कि जो कैदी की आशंकाओं को अनावश्यक रूप से बढ़ाए और (2) फांसी लटकाए जाने के कार्य से तुरंत ही बेहोशी होनी चाहिए और उसके परिणामस्वरूप शीघ्र ही मृत्यु होनी चाहिए। पैरा 725 में एक तुलनात्मक सारिणी है जो विद्युत द्वारा मृत्यु लीथल गैस और फांसी लटकाए जाने के कारण मृत्यु के प्रारंभिक कार्यों में लिए गए समय की लंबाई दर्शाती है। उस तुलनात्मक विश्लेषण के आधार पर आयोग ने पैरा 726 में अपने निष्कर्ष में यह लिखा है कि इस शंका के लिए कोई गुंजाइश नहीं थी कि प्रारम्भिक कार्यों में लिए गए समय के मामले में फांसी पर लटकाया जाना विद्युत या लीथल गैस द्वारा मृत्यु दंड से अच्छा था। इन सभी तीनों पद्धतियों में कैदी को फांसी पर लटकाए जाने से पूर्व किसी भी प्रकार से अवरूद्ध किया जाता था किन्तु विद्युत द्वारा मृत्यु में कैदी को दाढ़ी बनाना और हथकड़ी लगाना होता है जब कि लीथल गैस की पद्धति में कैदी को अपने कुछ कपड़ों के सिवाय अपने सब कपड़े उतारने पड़ते हैं जिससे कि गैस का कोई भाग कपड़ों के कारण रोक पैदा न करे। इसके अतिरिक्त लीथल गैस पद्धति में स्थैटोस्कोप का सिरा सीने में लगाना होता है।

47. निश्चितता के प्रश्न के बारे में आयोग ने अपनी रिपोर्ट के परा 732 में यह कहा है कि फांसी पर लटकाए जाने के लिए अपेक्षित उपकरण उस उपकरण से साधारण है जो विद्युत द्वारा अथवा लीथल गैस द्वारा मृत्यु दंड दिए जाने के लिए अपेक्षित है। लीथल गैस चैम्बर यंत्रों का एक जटिल भाग है जब कि विद्युत कुर्सी विद्युत प्रदाय के प्रभाव पर निर्भर करती है। विद्युत प्रदाय सामान्यतया वाणिज्यिक स्रोतों से लिया जाता है। वास्तव में संयुक्त राज्य अमेरिका में विद्युत यंत्रों द्वारा फांसी देना कभी-कभी विद्युत प्रदाय

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बंद हो जाने के कारण विलंबित हो जाता है। आयोग ने यह कहकर के अपना निष्कर्ष अभिलिखित किया था कि न तो विद्युत और न ही लीथल चैम्बर द्वारा मृत्यु दंड फांसी पर लटकाए जाने से अधिक लाभप्रद है जहां तक कि निश्चितता की अपेक्षा का संबंध है।

48. पैरा 732 में आयोग ने इस तीसरे पहलू पर विचार किया है, अर्थात् मृत्यु दण्डादेश के निष्पादन में शिष्टता। उसने कहा है कि इस पहलू पर विचार करते समय उसे दो बातों को ध्यान में रखना चाहिए। प्रथमतः बाध्यता जो कि स्पष्ट रूप से प्रत्येक सभ्य राज्य पर होती है जो शिष्टता के साथ अपने न्यायिक रूप से फांसी लटकाए जाने का कार्य करता है और द्वितीयतः इस प्रकार न्यायिक रूप से फांसी पर लटकाया जाना क्रूरता रहित होना चाहिए तथा उस में घोर शारीरिक यातना को टाला जाना चाहिए और उससे अंग-विच्छेद नहीं होना चाहिए। आयोग ने यह कहकर के अपना निष्कर्ष अभिलिखित किया है कि जहां तक शिष्टता की अपेक्षा का प्रश्न है अन्य दो पद्धतियों को फांसी पर लटकाए जाने से अधिमानता है यद्यपि तीनों ही बाध्यताओं को मामले की परिस्थितियों के अनुसार यथासंभव सब शिष्टता के साथ प्रयोग किया जाता है।

49. आयोग ने रिपोर्ट के पैरा 734 में यह कहकर के अपना अंतिम निष्कर्ष अभिलिखित किया है कि सभी तथ्यों की सावधानीपूर्वक परीक्षा करना और इस बात को ध्यान में रखने के पश्चात् कि सबूत का भार अधिवक्ताओं पर था इस बात की सिफारिश नहीं की जा सकती कि या तो विद्युत द्वारा मृत्युदंड या गैस चैम्बर द्वारा मृत्युदंड न्यायिक रूप से फांसी पर लटकाए जाने की पद्धति के रूप में प्रयोग की जानी चाहिए। मानवीयता और निश्चितता के मामले में लाभ फांसी पर लटकाए जाने की पद्धति में है, शिष्टता की अपेक्षा के एक पहलू के संबंध में अन्य दो पद्धतियां अधिमानी थीं। किन्तु आयोग के अनुसार उस लाभ को कसौटी पर उलटने के लिए पर्याप्त रूप में नहीं माना जा सकता।

50. श्री पी० एस० अनंतनारायणन, अवर सचिव, भारत सरकार की ओर से फाइल किया गया प्रतिशपथपत्र यह दर्शाता है कि स्वास्थ्य सेवाओं के महा-निदेशक, जो इन तथा इनसे संबंधित मामलों में भारत सरकार के सर्वोच्च सलाहकार हैं, से भी इस प्रश्न पर परामर्श किया गया था कि क्या फांसी पर लटकाए जाने की पद्धति को परिवर्तित किया जाना चाहिए जो मृत्यु दण्डादेश को निष्पादित करने के लिए भारत में प्रचलित है। स्वास्थ्य सेवाओं के महा-निदेशक ने निम्नलिखित रूप में सलाह दी थी—

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

"विषय—मृत्यु दंडादिष्ट सिद्धदोष के जीवन को समाप्त करने का ढंग।...

उपर्युक्त विषय पर इस निदेशालय के यू० ओ० सं० 31-204/55-एम0 । तारीख 10 अप्रैल, 1956 लगायत में।

इस निदेशालय ने प्रशासनिक चिकित्सा अधिकारियों, रासायनिक परीक्षकों, अन्य अपराध विशेषज्ञों और इस विषय से संबंधित विशेषज्ञों से परामर्श किया है तथा उनके द्वारा व्यक्त मत निम्नलिखित समूहों में आते हैं—

(1) जिन्होंने फांसी पर लटकाए जाने की वर्तमान पद्धति को सर्वोत्तम माना है—सं० 15.

(2) जिन्होंने विद्युत द्वारा मृत्युदंड की सिफारिश की है—सं० 17.

(3) जिन्होंने दवाई आदि का पक्ष लिया है—सं० 3.

यद्यपि विद्युत द्वारा मृत्युदंड को परामर्श किए गए बहुत से व्यक्तियों ने अपेक्षित पद्धति के रूप में माना है, किन्तु वह ऐसी पद्धति नहीं है जिसमें कोई कमियां न हों। चूंकि इस मामले में मृत्यु का सदैव ही तुरंत या बिना किसी कष्ट के नहीं माना जा सकता है तथा इस पद्धति में बहुत बड़ी मशीन का स्थापित किया जाना अन्तर्वलित है। विभिन्न स्रोतों से प्राप्त उत्तरों से भी हमें यह मालूम होता है कि ऐसे व्यक्तियों ने भी जो अनुभव और ज्ञान के प्राधिकार से बोल सकते हैं, न्यायिक रूप से फांसी लटकाए जाने के संबंध में विश्वासपूर्वक मत व्यक्त किया है और यदि इस पद्धति से उचित रूप से कार्यान्वित किया जाता है तो वह सबसे शीघ्र और कम से कम पीड़ादायक पद्धति है। यही मत कलकत्ता स्थित भारत सरकार के सीरमविज्ञानी और रासायनिक परीक्षक का भी है तथा केन्द्रीय चिकित्सा संबंधी विधिक सलाहकार समिति के बहुमत का भी है। हम इस मत से सहमत होने के लिए प्रेरित हैं और वैज्ञानिक ज्ञान की वर्तमान दशा में न्यायिक रूप से फांसी लटकाए जाने की वर्तमान पद्धति में कोई भी परिवर्तन करने की सिफारिश नहीं करते हैं।"

प्रतिशपथपत्र के पैरा 16 में यह कहा गया है कि स्वास्थ्य सेवाओं के महा-निदेशक ने भी हाल में फरवरी, 1982 में इसी मत का समर्थन किया है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

51. मृत्युदण्ड पर भारत के विधि आयोग की तारीख 30 सितम्बर, 1967 की 35वीं रिपोर्ट का अध्याय 15 "दण्डादेश का निष्पादन" से संबंधित है। आयोग ने रिपोर्ट के पैरा 1097 में यह मत व्यक्त किया है कि यद्यपि फांसी पर लटकाया जाना मृत्यु दण्डादेश निष्पादित करने के लिए बहुत ही प्रचलित पद्धति बनी रही है, घटनाक्रम यह दर्शाता है कि उसका धीरे-धीरे परित्याग किया गया था। इस प्रकार सन् 1940 में संयुक्त राज्य अमेरिका के 17 राज्य उस पद्धति का प्रयोग करते थे और वर्ष 1967 में केवल 6 राज्यों ने उस पद्धति को कायम रखा था। पुनः जब यह पद्धति 1950 से पूर्व यूगोस्लाविया में प्रवृत्त थी तब उस वर्ष में फायरिंग स्क्वायड द्वारा उसे प्रतिस्थापित कर दिया गया था।

52. पैरा 1098 में विधि आयोग ने इंग्लैंड के रायल कमीशन की रिपोर्ट पर संक्षेप में विचार किया है जब कि पैरा 1099 में उसने इसी विषय पर केनेडियन समिति की रिपोर्ट पर विचार किया है। इस पैरा में विधि आयोग ने जो कुछ कहा है उससे यह प्रतीत होगा कि केनेडियन समिति ने मृत्यु दंडादेश के निष्पादन की चार विभिन्न पद्धतियों पर विचार किया है अर्थात् फांसी पर लटकाया जाना, विद्युत द्वारा प्राणदंड, गैस चैम्बर और लीथल इंजेक्शन। अंतिम रूप से वर्णित पद्धति के बारे में यह विश्वास किया जाता है कि वह तुरंत और बिना किसी दर्द के मृत्यु सुनिश्चित करती है। किन्तु वह इंटरावीनस इंजेक्शन द्वारा ही केवल निष्पादित किया जा सकता है जिसमें विशेष दक्षता की आवश्यकता होती है तथा केनेडियन समिति ने यह समझा था कि किसी चिकित्सक से चिकित्सा व्यवसाय की परम्पराओं के प्रतिकूल कार्य करने की आशा करना युक्तियुक्त नहीं होगा तथापि इंटरावीनस इंजेक्शन तब तक नहीं लगाया जा सकता जब तक कि सिद्ध दोष व्यक्ति पूर्णरूप से राजी न हो। केनेडियन समिति द्वारा इस बात पर ध्यान दिया जाना प्रतीत होता है कि कनाडा में फांसी पर लटकाना उतने अच्छे तरीके से नहीं किया जाता था जैसा कि इंग्लैंड में किया जाता था जिसके परिणामस्वरूप यह मालूम करना कठिन था कि किस प्रकार से मृत्युकारित की गई थी और क्या चेतना तुरंत ही समाप्त हो गई थी। अपने समक्ष साक्ष्य के आधार पर यह अभिनिर्धारित करते हुए कि फांसी पर लटकाए जाने को सामान्यतया अव्यवहार्य रूप में माना जाता था और वह बर्बरतापूर्ण पद्धति नहीं थी। समिति ने यह सिफारिश की थी कि फांसी पर लटकाए जाने को विद्युत द्वारा फांसी देने की पद्धति द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया जाना चाहिए।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

53. पैरा 1101 से 1148 (पृष्ठ 339 से 345) तक में भारत के विधि आयोग ने उन मतों को उद्धृत किया है जो उसके समक्ष व्यक्त किए गए थे और जो मृत्यु दंडादेश निष्पादित करने के लिए आदर्श पद्धति के बारे में थे। पैरा 1149 में इस बात पर टिप्पणी करने के पश्चात् कि ऐसे बहुत से लोगों की राय थी जो फांसी पर लटकाए जाने की पद्धति को किसी अच्छी मानवीय और कम दर्द वाली पद्धति से प्रतिस्थापित करना चाहते थे। विधि आयोग ने पैरा 1150 में यह कहा है कि किसी सीमा तक मामला चिकित्सा संबंधी राय का था। आयोग के समक्ष व्यक्त साधारण मत यह था कि पद्धति जो निश्चित, मानवीय, शीघ्र और अच्छी है, मृत्यु दंडादेश निष्पादित करने के लिए अपनाई जानी चाहिए। समिति ने स्वयं को इस बात तक सीमित रखा था कि निष्पादन के ठीक प्रक्रम पर पीड़ा कम से कम होनी चाहिए। विधि आयोग ने यह महसूस किया था कि ऐसी कोई निश्चित राय अभिव्यक्त करना कठिन था कि तीन पद्धतियां अर्थात् फांसी पर लटकाया जाना, विद्युत द्वारा मृत्यु दण्ड और गैस चैम्बर में से कौन-सी पद्धति सबसे ज्यादा इन कसौटियों को पूरा करती है, विशेषतया जब कि विद्युत द्वारा मृत्यु दण्ड और गैस चैम्बर का भारत में प्रयोग नहीं किया गया था। पैरा 1151 में आयोग ने अपना निष्कर्ष यह कहकर के अभिलिखित किया है—

> "इसलिए हम इस मुद्दे पर विधि में परिवर्तन करने के लिए कोई सिफारिश नहीं करते हैं।"

अन्य शब्दों में आयोग की सिफारिश यह थी कि मृत्यु दंडादेश दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 354 (5) में विहित फांसी पर लटकाने की पद्धति द्वारा निष्पादित किया जाना चाहिए चूंकि किसी अन्य पद्धति द्वारा उसे प्रतिस्थापित किए जाने के लिए न्यायोचित ठहराने वाली कोई परिस्थितियां नहीं थीं और चूंकि किसी अन्य पद्धति को अधिक संतोषप्रद नहीं दर्शाया गया था।

54. फरवरी, 1978 में डाक्टर हीरा सिंह, नेशनल इंस्टिट्यूट आफ सोशियल डिफेंस के कारागार सलाहकार ने भारत सरकार के गृह मंत्रालय को अपनी निम्नलिखित राय पेश की थी—

> "पुराने समय में मृत्यु दंडादेश का निष्पादन प्रायः अपराधी को क्रूर तरीकों से पीड़ा पहुंचाकर के निष्पादित किया जाता था। तथापि समय के अन्तराल से मृत्यु दंडादेश निष्पादित करने की

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पद्धति में कई परिवर्तन हो गए हैं। पुरानी पद्धतियों को जैसे सिर काटना, डुबोना, पत्थर मारना, ऊंचाई से फेंकना, आदि, क्रमशः फांसी पर लटकाए जाने, विद्युत द्वारा प्राणदंड, गैस चैम्बर और गोली मारने की नई पद्धति द्वारा सभी सभ्य देशों में प्रतिस्थापित कर दिया गया है। यह परिवर्तन मुख्यतः इस आधार पर किए गए हैं कि मृत्यु शास्ति से साधारणतया जीवन से वंचित करना है और इसलिए उसे यथासंभव शीघ्र और कम दर्द वाला होना चाहिए पुरानी पद्धतियों को अमानवीय माना गया था।

सन् 1962 में संयुक्त राष्ट्र द्वारा प्रकाशित कैपिटल पनीशमेंट नामक पुस्तक के अध्ययन के अनुसार फांसी पर लटकाया जाना विभिन्न देशों में मृत्यु दंडादेश निष्पादित करने की बहुत ही प्रचलित पद्धति रही है। इन देशों में इंग्लैंड भी सम्मिलित है और यह पद्धति सामान्यतया सभी कामनवैल्थ देशों में प्रचलित रही है। यूनाइटेड स्टेट्स में उसका विद्युत द्वारा प्राणदंड और लीथल गैस की तुलना में निस्संदेह महत्व कम होता जा रहा है। फांसी पर लटकाए जाने की आधुनिक पद्धति पारम्परिक पद्धति से भिन्न है चूंकि उस में ग्रीवा का तुरंत अलग होना सम्मिलित है। संपूर्ण प्रक्रिया बहुत ही सावधानीपूर्वक और दक्षता से कार्यान्वित की जाती है जिससे कि कोई गड़बड़ी और दुर्घटना न हो। राज्यों के जेल मैन्युअलों में फांसी के निष्पादन की व्यवस्था, फंदे के निरीक्षण और उपकरण की जांच तथा निष्पादन की रीति के संबंध में बहुत ही व्यापक अनुदेश अन्तर्विष्ट हैं।"

इसके पश्चात् कारागार सलाहकार ने आदर्श कारागार मैन्युअल (मोडल-प्रिसन मैन्युअल) में अन्तर्विष्ट उन मार्गदर्शक सिद्धांतों का उल्लेख किया है जिनका फांसी पर लटकाए जाने की पद्धति द्वारा मृत्यु दंडादेश निष्पादित करते समय अनुसरण किया जाना चाहिए। अपनी राय के पैरा 3 में उन्होंने यह कहा है कि विद्युत द्वारा प्राणदंड की प्रक्रिया में त्रुटि के अवसरों को पूर्ण रूप से समाप्त नहीं किया जा सकता तथा संयुक्त राज्य अमेरिका में ऐसे अवसर आए थे जब करेंट उस समय कुर्सी तक नहीं पहुंचा था जब बटन दबाया गया था। उस प्रक्रिया का, जिसे विद्युत द्वारा प्राणदंड, गैस चैम्बर और गोली मारने की पद्धति में अपनाया गया है, वर्णन करने के पश्चात् उन्होंने कहा है कि अभिलेख पर ऐसे मामले हैं जहां गोली मारकर के मृत्यु

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दंडादेश निष्पादित करने में नरवस फायरिंग स्क्वायड द्वारा गड़बड़ी की गई थी। डाक्टर हीरा सिंह ने अंत में निम्नलिखित निष्कर्ष व्यक्त किया था —

> "मृत्यु दंड के ढंग के रूप में फांसी पर लटकाए जाने के स्थान पर विद्युत कुर्सी को प्रतिस्थापित करने के प्रश्न पर प्रशासनिक तथा मानवीय दृष्टिकोण से जांच की जा सकती है। प्राय: यह तर्क दिया गया है कि अन्य ढंगों से फांसी निष्पादित करने की बजाय फांसी पर लटका कर के मृत्यु दंड देने में कम समय लगता है यद्यपि यह बात अनिवार्य रूप से सही नहीं भी हो सकती है। बहुत-से मामलों में विद्युत कुर्सी को दर्द कम करने में या अपराधी को पीड़ा कम पहुंचाने में बहुत दक्ष साबित हुई है। फांसी पर लटकाए जाने में शरीर का विरूपण होना निश्चित है किन्तु विद्युत द्वारा प्राणदंड में भी कभी-कभी पैर को थोड़ा-सा जलाया जाता है। उपर्युक्त बातों के अतिरिक्त विद्युत द्वारा प्राणदंड की सभी पद्धतियों के बहुत ही मंहगे उपकरण हैं तथा इनसे फांसी पर लटकाए जाने में कम समय लगता है। इन बातों को देखते हुए मृत्यु दंडादेश निष्पादित करने की वर्तमान पद्धति की बजाय विद्युत कुर्सी की पद्धति को अपनाने में कोई विशेष लाभ प्रतीत नहीं होता है यद्यपि ऐसी पद्धति बाहरी तौर पर अधिक शिष्ट प्रतीत हो सकती है।"

कारागार सलाहकार की राय श्री पी० एस० अनंतनारायणन् के प्रतिशपथ-पत्र के उपाबंध 5 में है।

55. हमने इन कार्यवाहियों में मध्यक्षेप करने के लिए नई दिल्ली स्थित अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान के डाक्टर चन्द्रकांत को अनुज्ञात किया था। हम उनकी लिखित दलीलों को लाभप्रद रूप में निर्दिष्ट कर सकते हैं। डाक्टर चन्द्रकांत ने सन् 1970 में एम० बी० बी० एस० किया था और वे पांच वर्ष की कालावधि के लिए सेना के चिकित्सा कोर में थे। उनके पास कर्ण नासा कंठ विज्ञानी का डिप्लोमा है और न्याय संबंधी चिकित्सा और विष विज्ञान में एम० डी० की डिग्री है। यह प्रतीत होता है कि उन्होंने इलाहबाद विश्वविद्यालय से तीन वर्षीय एलएल० बी० की डिग्री का कोर्स भी किया था। वर्तमान में वे अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान में न्याय संबंधी चिकित्सा विभाग में लेक्चरार के रूप में कार्य कर रहे हैं और इसी हैसियत में उन्हें चिकित्सा विधिक शव परीक्षा करनी होती है। उन्होंने यह दावा किया कि उन्होंने अब तक लगभग 1,000 चिकित्सा विधिक

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

शव परीक्षाएं की हैं। उनके अनुसार मृत्यु दंडादेश निष्पादित करने के लिए फांसी पर लटकाया जाना सर्वोत्तम पद्धति है चूंकि उस पद्धति द्वारा मृत्यु झटका, श्वासारोध और मेरुदंड (रीढ़) अन्तस्था (मेडुला) के संयोग के कारण तुरन्त हो जाती है। उन्होंने यह कहा है कि आत्मघाती लटकनों में अन्तर्वलित प्रक्रिया के काम चलाऊ और त्रुटिपूर्ण यंत्रों के कारण और गर्दन तथा मानव शरीर की रचना के ज्ञान के अभाव के कारण न्यायिक रूप से फांसी पर लटकाए जाने के बारे में गलत धारणाएं हैं। डाक्टर चन्द्रकांत ने मानव शरीर की रचना का वर्णन किया है और यह कहा है कि फांसी पर लटकाए जाने में, जब कभी मेडुला स्थल या मेडुला आबलाम्गाटा में क्षति होती है तो सभी तीनों महत्वपूर्ण केन्द्र जिन्हें जीवन के त्रिपाद कहा जाता है, प्रभावित होते हैं जिससे तुरंत ही मृत्यु कारित हो जाती है। डाक्टर चंद्रकांत ने लगभग विभिन्न प्रकार की 15 पद्धतियों का संक्षेप में वर्णन दिया है जिनका मृत्यु दंडादेश को निष्पादित करने के लिए किसी एक या दूसरे समय में अनुसरण किया गया है।

56. जार्ज आर० स्काट द्वारा लिखित पुस्तक "हैंगिंग थ्रू दि एजिज" (मृत्यु दंड का इतिहास) (टार्च स्ट्रीम बुक्स, लंदन) में फांसी पर लटकाए जाने की तकनीक के सम्पूर्ण इतिहास को खोजा गया है। लेखक ने पृष्ठ 211 पर यह कहा है कि फांसी पर लटकाए जाने में सुधार की गई तकनीक को लागू करने से फांसी पर लटकाए जाने की प्रक्रिया में तेजी आ गई है और कैदी को कम पीड़ा होती है तथा "लंबी लटकन" (लांग ड्राप) और अन्य सुधारों से कुछ उद्देश्य पूरा हो गया है यद्यपि प्रत्येक बात के बावजूद भी दुर्घटनाएं अपरिहार्य हैं।

57. जे० डब्ल्यू० सेशिलटर्नर द्वारा संपादित "केनीस आउटलाइन्स आफ क्रिमिनल ला" (19वां संस्करण, 1966) में पृष्ठ 618 के पाद-टिप्पण 5 में यह कहा गया है कि "फांसी पर लटकाया जाना अब दम घुटने की प्रक्रिया द्वारा नहीं होता है किन्तु 'लांग ड्राप' द्वारा होता है जिसका डबलिन के प्रोफेसर हाउटन ने अविष्कार किया है। 'लांग ड्राप' रीढ़ की हड्डी को अलग करती है और जिसके द्वारा तुरन्त और पीड़ा-रहित मृत्यु हो जाती है।

58. हेरि एलमार बर्नस और नेगले के टीटर्स द्वारा लिखित पुस्तक "न्यू हारिजन्स इन क्रिमिनालोजी" (तृतीय संस्करण, 1966) में यह कहा गया है कि समाज ने "अपराधियों और अन्य अभिकथित खतरनाक व्यक्तियों

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के दंडादेश निष्पादित करने में बहुत-सी विभिन्न पद्धतियों का अवलंब लिया है।" पिछले समयों में डुबोना, मृत्यु तक पत्थर मारना, प्रारम्भ में ही जला देना और सिर काटना जैसी पद्धतियों का प्रयोग किया गया है। मृत्यु दंडादेश देने की सब आधुनिक पद्धतियों में से फांसी पर लटकाए जाने की पद्धति का बहुत ही व्यापक रूप से प्रयोग किया गया है। हम पिछले ऐतिहासिक समय में फांसी पर लटकाए जाने के बारे में पढ़ते हैं और संपूर्ण विश्व में आज तक भी उसका अभी भी बहुत ही व्यापक रूप से प्रयोग किया जाता है।

59. संयुक्त राष्ट्र के आर्थिक और सामाजिक कार्यकलाप विभाग, न्यूयार्क के तत्वाधान में प्रकाशित "कैपिटल पनीशमेंट" नामक पुस्तक, 1962 के संस्करण में फांसी पर लटकाया जाना नामक अध्याय के पैरा 57 में यह कहा गया है कि पिछले समयों में विधि में फांसी पर लटकाए जाने की बहुत-सी पद्धतियां ज्ञात थीं। मृत्यु दंडादेश कभी-कभी पीड़ाजनक, क्रूर ढंगों द्वारा कार्यान्वित किया जाता था जो कि कतिपय मामलों में पीड़ा को बढ़ाने के लिए आशयित थी। इस प्रकाशन में यह कहा गया है कि मानवीयता के आधार पर और मानव के आदर के कारण आधुनिक विधि ने सामान्यतया इन पद्धतियों को छोड़ दिया है, आजकल मृत्युदंड से केवल जीवन से वंचित किया जाना अभिप्रेत है। मृत्यु दंडादेश कार्यान्वित करने की पद्धतियों के संबंध में मतभेद आज जो विद्यमान है, मृत्यु शीघ्र और कम पीड़ाजनक करने के लिए किए गए प्रयत्नों के बारे में है। इसी पैरा में यह बात उल्लिखित है कि फांसी पर लटकाए जाने को सामान्यतया संयुक्त राज्य अमेरिका में त्याग दिया गया है। तारीख 24 जनवरी, 1953 की टाइम मैगजिन के अंक के अनुसार अमेरिका के केवल चार राज्य ही अभी भी फांसी पर लटकाए जाने को मृत्यु दंडादेश निष्पादित करने की पद्धति के रूप में विहित करते हैं। संयुक्त राष्ट्र के प्रकाशन के पैरा 59 में यह कहा गया है फांसी पर लटकाए जाने की पद्धति को बहुत ही बारम्बार प्रयोग की जाने वाली पद्धति के रूप में कहा गया है। वह विश्व के उन 25 देशों में प्रचलित है जिनमें फांसी पर लटकाये जाने की पद्धति को मृत्यु दंडादेश निष्पादित करने के लिए प्रयोग किया जाता है।

60. जहां तक इस विषय की न्यायिक प्रतिपादना का संबंध है, बचनसिंह के मामले में इस न्यायालय के हाल ही के विनिश्चय की ओर ध्यान आकृष्ट किया जा सकता है जिसमें बहुमत ने यह कहा है कि उत्तरवर्ती दंड प्रक्रिया संहिताओं के अधीन, जो भारत में लगभग 100 वर्ष से प्रवृत्त

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रही हैं, मृत्यु दंडादेश फांसी पर लटकाए जाने की पद्धति द्वारा कार्यान्वित किया जाता है। संविधान के मूलभूत रचियताओं के, संबंध में जिनमें से कुछ प्रतिष्ठित जूरिस्ट थे (जो जूरिस्ट के अर्थ में सच्चे जूरिस्ट थे), यह उपधारणा नहीं की जा सकती कि वे संहिता की धारा 354 (5) में अन्तर्विष्ट उपबंध के बारे में अनभिज्ञ थे। इस तथ्य के बावजूद कि मृत्यु दंडादेश इस धारा में विहित ढंग द्वारा ही कार्यान्वित किया जाना है, उन्होंने उस दंडादेश के अस्तित्व और विधिमान्यता को मान्यता दी है। बहुमत ने यह प्रतिपादना स्वीकार की है कि अनुच्छेद 21 में अन्तर्विष्ट उपबंध के कारण किसी व्यक्ति को उसके प्राण या दैहिक स्वाधीनता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जाएगा अन्यथा नहीं। इस परिकल्पना को लागू करते हुए यह मत व्यक्त किया गया था कि संविधान के रचियताओं ने इस बात पर विचार नहीं किया था कि या तो मृत्यु दंडादेश या दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 354 (5) द्वारा विहित मृत्यु दंडादेश के निष्पादन का पारम्परिक ढंग दंड की अवमानना करने वाला है जिससे संविधान की परिधि में व्यक्ति की प्रतिष्ठा भंग हो जाएगी। ये मताभिव्यक्तियां महत्वपूर्ण हैं किन्तु जहां तक संहिता की धारा 354 (5) का संबंध है, यह प्रश्न **बचन सिंह वाले मामले**[1] में प्रत्यक्षतः विवाद्य नहीं था।

61. इसके अतिरिक्त, भारत संघ ने उस भार का निर्वहन करने के लिए इन्हीं आंकड़ों का अवलम्ब लिया है या वह ले सकता है जो यह साबित करने के लिए उस पर है कि संहिता की धारा 354 (5) में विहित फांसी लगाने की पद्धति से संविधान के अनुच्छेद 21 में दी गई गारन्टी का उल्लंघन नहीं होता।

62. यद्यपि यह स्वीकार करना होगा कि पिटीशनरों के विभिन्न विद्वान् काउन्सेलों ने, जिनमें श्री आर० के० गर्ग और डा० एन० एम० घटाटे अग्रणी हैं, अत्यन्त ओज, उद्यम और कौशल के साथ अपने-अपने मामले की बहस की है तो भी रिट पिटीशनों में ऐसे कोई आंकड़े या कारण नहीं दिए गए हैं जिनसे यह पता चलता हो कि फांसी लगाने की पद्धति अनुच्छेद 21 का उल्लंघन कैसे करती है। अधिकांशतः पिटीशनों के प्रार्थना-खण्डों में केवल यह अनुरोध किया गया है कि फांसी लगाने की पद्धति संविधान के अनुच्छेद 14, 19 और 21 की उल्लंघनकारी घोषित

---

[1] [1983] 1 उम० नि० प० 1021=[1983] 1 एस० सी० आर-145.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

की जाए। मुख्य मुद्दे पर दिए गए तर्कों में अनुच्छेद 14 और 19 का उल्लेख भी नहीं किया गया। अनुच्छेद 21 के उल्लंघन के बारे में जो तर्क पेश किए गए, वे रिट पिटीशनों के प्रकथनों की परिधि से बहुत बाहर थे किन्तु इस न्यायालय में ऐसे पूर्वोदाहरण सुलभ हैं। इसके अतिरिक्त, जीवन और मृत्यु संबंधी प्रश्न वाले मामले में तकनीकी बारीकियों से न्याय को विफल नहीं होने दिया जा सकता। हम पिटीशनरों से पिटीशन में संशोधन करने के लिए कह सकते थे किन्तु ऐसा करने के बजाय हमने संहिता की धारा 354 (5) की विधिमान्यता पर सर्वांगीण बहस की सुनवाई करने का विनिश्चय किया और अभिवचनों की न्यूनता पर कोई ध्यान नहीं दिया, विशेषकर इसलिए कि रिट पिटीशनों में संविधान के अनुच्छेद 14 के अधीन कोई चुनौती नहीं दी गई है। हमने इन पिटीशनों में अन्तर्ग्रस्त प्रश्न के प्रत्येक संभव पहलू पर विस्तारपूर्वक पिटीशनरों के काउन्सेलों को सुना है। अपने समक्ष किए गए विभिन्न निवेदनों पर ध्यानपूर्वक विचार करने के बाद हम इस निर्णय पर पहुंचे हैं।

63. पिटीशनरों की ओर से डाक्टर घटाटे ने बहस आरम्भ की थी। उनकी दलील थी कि फांसी लगाने की पद्धति से पीड़ा, निरादर और कष्ट होता है, इस पद्धति से अनुच्छेद 21 का उल्लंघन होता है और मृत्यु दण्डादेश के निष्पादन के लिए इसका प्रयोग नहीं किया जा सकता। इस तर्क के समर्थन में उन्होंने हमारा ध्यान **बचन सिंह वाले मामले**[1] में न्यायाधिपति भगवती के विसम्मत निर्णय के कुछ अंशों की ओर आकर्षित किया। रिपोर्ट के पृष्ठ 285 (उम० नि० प० के पृष्ठ 1199 पर) विद्वान् न्यायाधीश ने केलिफोर्निया सुप्रीम कोर्ट के विनिश्चय से एक अंश उद्धृत किया है जिसमें कहा गया है कि दण्ड-शास्त्री और चिकित्सा-विशेषज्ञ यह मानते हैं कि मृत्यु के अभिमत को कार्यरूप देने की प्रक्रिया प्रायः मानव-आत्मा के लिए इतनी हीन और बर्बर है कि उससे मानसिक यातना होती है। प्रोद्धरण के बिना हम उस विनिश्चय का पता लगाने में या उस संदर्भ को ढूंढ़ पाने में असमर्थ हैं, जिसमें केलिफोर्निया सुप्रीम कोर्ट ने यह मत-विशेष व्यक्त किया था। हमें नहीं पता कि ये दण्ड-शास्त्री और चिकित्सा-विशेषज्ञ कौन हैं और उन्होंने कहां मतैक्य व्यक्त किया है जैसा कि उनके बारे में कहा गया है। यह भी स्पष्ट नहीं है कि क्या केलिफोर्निया न्यायालय मृत्युदण्ड की विधिमान्यता पर विचार कर रहा

[1] [1983] 1 उम० नि० प० 1021=[1983] 1 एस० सी० आर० 145.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

था या उस दण्ड को निष्पादित करने की पद्धति पर और यदि दण्ड को निष्पादित करने वाली पद्धति पर विचार कर रहा था तो क्या उसने प्रत्येक निष्पादन पद्धति की निन्दा की थी, न कि केवल फांसी लगाने की पद्धति की। उस उद्धरण के तात्पर्य से यह प्रतीत होता है कि विचाराधीन प्रश्न यह था कि मृत्यु दण्डादेश एक नृशंस और असामान्य दण्ड है। जैसा कि हम बता चुके हैं, इंग्लैंड के रायल कमीशन के समक्ष विशेषज्ञ का साक्ष्य इसके बिलकुल विपरीत था, विशेषकर फांसी लगाने की विकसित तकनीक के संबंध में वहां फांसी लगाना 1886 में नियुक्त कमेटी की सिफारिशों को कार्यरूप देने के बाद आरम्भ हुआ था।

64. रिपोर्ट के पृष्ठ 287 पर (उम० नि० प० के पृष्ठ 1202 पर) न्या० भगवती ने कुछ विचार प्रकट किए हैं, जिनका उपयोग डाक्टर घटाटे ने भी किया है। हम उनका उल्लेख विद्वान् महासालिसिटर के प्रारम्भिक आक्षेप पर विचार करते समय पहले ही कर चुके हैं। उस परिच्छेद-विशेष का सार तत्व है कि "फांसी लगाने से निस्संदेह, घोर शारीरिक यातना और पीड़ा होती है।" इस निष्कर्ष के समर्थन में विद्वान् न्यायाधीश ने सेन क्वेंटिन के वार्डन डफी को, जो संयुक्त राज्य अमेरिका में उच्च सुरक्षा अधिकारी था, उद्धृत किया है। वार्डन डफी ने कैदियों को फांसी लगाने की प्रक्रिया का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। पृष्ठ 288 पर (उम०नि०प० के पृष्ठ 1202 पर) वार्डन डफी के कथन को उद्धृत करने के बाद विद्वान् न्यायाधीश का कहना है, "यदि झटका बहुत अधिक हल्का है तो गला घुटने से मृत्यु बहुत धीरे-धीरे और यंत्रणाकारी होगी। इसके विपरीत, यदि झटका बहुत तगड़ा है तो सिर अलग हो जाएगा। इंग्लैंड में सदियों से चली आ रही परिपाटी के फलस्वरूप झटके की उचित लम्बाई के लिए शारीरिक अवस्था और आदमी के वजन के संबंध में एक विस्तृत चार्ट तैयार किया गया है, किन्तु वहां भी भूलें हुई हैं।" पुनः हमारी कठिनाई यह है कि यह वर्णन प्रस्तुत करने वाले परिच्छेद का प्रोद्धरण सुलभ नहीं है जोकि रिपोर्ट के पृष्ठ 288 (उम० नि० प० के पृष्ठ 1202 पर) दिखाई पड़ता है। हमें इसकी जानकारी नहीं है कि वार्डन डफी ने फांसी लगाने की प्रक्रिया का यह विशेष वर्णन कहां और किस वर्ष किया था। उसने जिस प्रक्रिया का वर्णन किया है, वह प्रकटतः उसी प्रक्रिया जैसी है, जिसे अब पुरानी माना जाता है और जो प्रचलन में नहीं रही है। साथ ही वार्डन डफी मृत्यु दण्ड का घोर विरोधी था। "सेन क्वेंटिन इज माई, होम" शीर्षक लेखमाला में जोकि सेचरडे इवनिंग पोस्ट, मार्च (25–13 मई) 1950 में प्रकाशित हुई थी, उसने अन्य बातों के साथ-साथ यह उल्लेख करके मृत्युदण्ड की निन्दा की थी कि उस

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दण्डादेश को निष्पादित करने की प्रत्येक विहित पद्धति कितनी पीड़ादायक और कष्टदायक है। हमने गैस चैम्बर के बारे में जो कुछ कहा है, उसपर ध्यान देने का हमें मौका मिलेगा किन्तु हमारे समक्ष जो साक्ष्य है उससे पता चलता है कि फांसी लगाने की पद्धति की यांत्रिकता में, कालान्तर में, महत्वपूर्ण सुधार हुआ है और यदि फांसी लगाना पद संदर्भ में अपर्याप्त नहीं है तो यह पद प्रायः एक विज्ञान के रूप में पूर्णता प्राप्त कर चुका है। अब दुर्घटना के अवसर नाममात्र के रह गए हैं यद्यपि किसी भी दुर्घटना के अवसरों का कभी भी पूर्णतः निवारण नहीं किया जा सकता। यदि ऐसा किया जा सकता तो विद्वान् लोगों के शब्द-कोशों में "दुर्घटना" शब्द दिखाई न देता। फांसी लगाने की पद्धति में किए गए सुधारों के संबंध में हम रायल कमीशन के निष्कर्षों और अन्य विशेषज्ञों द्वारा व्यक्त राय, की ओर जिनका हम पहले उल्लेख कर चुके हैं, ध्यान आकर्षित करेंगे।

65. अन्ततोगत्वा डाक्टर घटाटे ने एक शल्य-चिकित्सक द्वारा 1927 में दिए गए विवरण का अवलम्ब लिया है। उस शल्य-चिकित्सक ने दोहरी फांसी अपनी आंखों से देखी थी। इसका विवरण न्या० भगवती के निर्णय में पृष्ठ 288 पर सुलभ है। शल्य-चिकित्सक के विवरण से ऐसा प्रतीत होता है कि एक शव मान लिए गए शरीर में से फुसफुसाहट आई, जिसे सुनकर शल्य-चिकित्सक, स्वभावतः, स्तब्ध रह गया। जो दो शव पूरी तरह मृत नहीं थे, वे पुनः ऊपर उठाए गए। अपने विवरण में शल्य-चिकित्सक ने कहा है कि यद्यपि गर्दन का अलग होना फांसी लगाने का अंतिम लक्ष्य होता है, यह पद्धति उसके अपने द्वारा किए गए मरणोत्तर परीक्षा निष्कर्षों में एक अपवाद के रूप में साबित हुई है जिससे यह दर्शित होता है कि अधिकांश मामलों में मृत्यु का कारण गला घुटना और श्वासावरोध है। इस विवरण का अवलम्ब लेते हुए न्या० भगवती ने अन्त में कहा है: "इन परिच्छेदों से यह संदेह से परे सिद्ध हो जाता है कि फांसी लगाकर मृत्युदण्ड देने से अत्यन्त शारीरिक पीड़ा और कष्ट होता है यद्यपि कुछ लोग इसे बिजली लगाकर या प्राणहर गैस के प्रयोग द्वारा मारने की अपेक्षा अधिक मानवीय मानते हैं।" अत्यन्त आदरपूर्वक, हमारी कठिनाई वही है जो विद्वान् न्यायाधीश द्वारा ऊपर उद्धृत दो परिच्छेदों के बारे में थी। एक परिच्छेद केलिफोर्निया सुप्रीम कोर्ट के निर्णय से लिया गया था और दूसरा वार्डन डफी का था। हमें यह नहीं पता कि शल्य-चिकित्सक कौन है और यह उद्धरण कहां से लिया गया है। इसके अतिरिक्त, जैसा कि हम बार-बार कह चुके हैं, फांसी लगाने की यांत्रिकता

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

में महत्वपूर्ण सुधार हुआ है। पुराने अनुभवों को एकदम गलत नहीं बताया जा सकता। किन्तु उन स्थितियों से उनकी सुसंगता का आलोचनात्मक विवेचन किए बिना उन्हें नई स्थितियों में लागू नहीं किया जा सकता, अन्यथा तकनीकी विज्ञान, विशेषकर आयुर्विज्ञान की उल्लेखनीय प्रगति निरर्थक हो जाएगी।

66. हमने अपने विद्वान् बन्धु न्या० भगवती द्वारा उद्धृत परिच्छेदों और व्यक्त किए गए मतों पर गहन और, सम्मान, चिन्तन किया है। ये विचार एक अल्पमत निर्णय में दिए गए हैं। यह तथ्य उनकी उपेक्षा करने के लिए औचित्यपूर्ण नहीं है। वर्तमान मामले-जैसे सामाजिक दृष्टि से नाजुक विषय में विपक्षी दृष्टिकोण की उपेक्षा करना अनुचित होगा चाहे वह अल्पमत निर्णय में व्यक्त किया गया हो या अन्यथा।

67. हमारे द्वारा उनके निर्णय में से उद्धृत अन्तिम परिच्छेद में न्या० भगवती का कहना है कि फांसी लगाने की पद्धति को कुछ लोगों ने बिजली लगाकर या प्राणहर गैस के प्रयोग से मारने की अपेक्षा अधिक मानवीय बताया है। डाक्टर घटाटे का अपना निजी दृष्टिकोण है। उनकी दलील है कि बिजली लगाकर मृत्युदण्ड देना मृत्यु दण्डादेश के निष्पादन का सबसे शीघ्र और सबसे सरल तरीका है। इसमें यंत्र असफल होने की कोई गुंजाइश नहीं रहती। उन्होंने दो आनुकल्पिक निवेदन किए : एक, बिजली लगाकर मृत्युदंड देने में असफलता की दशा में मृत्यु दण्डादेश के निष्पादन की पद्धति के रूप में प्राणहर इंजेक्शन लगाने की पद्धति अपनाई जानी चाहिए और दूसरे, प्राणहर इंजेक्शन के असफल रहने की दशा में गोली मारने की पद्धति का सहारा लिया जाना चाहिए। हम यह उपधारणा करते हैं कि विद्वान् काउन्सेल ने इन दो आनुकल्पिक पद्धतियों, विशेषकर गोली मारने के प्रयोग के बारे में अपने मुवक्किल की हिदायतें ले ली हैं।

68. यह ठीक है कि विद्वान् काउन्सेल द्वारा निवेदित निष्पादन की दो आनुकल्पिक पद्धतियों के गुण-दोषों का अवधारण करने से हमारा कोई सबंध नहीं है। इनमें से कुछ पद्धतियां विश्व के कुछ अन्य भागों में प्रचलित हैं। यदि संहिता की धारा 354 (5) द्वारा विहित पद्धति से अनुच्छेद 21 का उल्लंघन होता है तो यह मामला यहीं समाप्त होना चाहिए क्योंकि स्वयं डाक्टर घटाटे की दलील के अनुसार न्यायालय विधि द्वारा विहित पद्धति के स्थान पर मृत्यु दण्ड के निष्पादन की अन्य कोई पद्धति विहित नहीं कर सकता क्योंकि वही एकमात्र पद्धति विधि के अनुसार अनुज्ञेय है। किन्तु फिर

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भी मृत्यु दण्डादेश के निष्पादन के लिए उपर्युक्त कई पद्धतियों में अन्तर्वलित प्रक्रिया को समझना और उनका तुलनात्मक मूल्यांकन सर्वथा निरर्थक नहीं है। यदि स्पष्ट रूप से यह दिखाया जा सके कि कोई अन्य पद्धति फांसी लगाने की पद्धति से वास्तविक रूप से और निश्चित रूप से बेहतर है तो स्वभावतः यह प्रश्न उत्पन्न होगा कि राज्य वही पद्धति क्यों न अपनाए। फांसी लगाने की अपेक्षा अधिक सरल, तीव्र और अधिक मानवीय पद्धति को मनमाने रूप से अस्वीकार कर देना सांविधानिक व्यवस्था का उत्तर नहीं हो सकता।

69. रायल कमीशन ने अपनी रिपोर्ट के पैरा 717 में उल्लेख किया है कि अमेरिका के दौरे में उन्होंने सिंग सिंग प्रिजन न्यूयार्क और डिस्ट्रिक्ट आफ कोलम्बिया जेल, वाशिंगटन में विद्युत कुर्सियों का निरीक्षण किया था। साथ ही उन्होंने अन्य राज्यों में भी विद्युत कुर्सी के प्रयोग के बारे में साक्ष्य लिया था। कमीशन ने विद्युत की पद्धति का निम्नलिखित वर्णन किया है जोकि वाशिंगटन में उनके द्वारा प्राप्त सूचना पर आधारित है जोकि प्रधानतः वाशिंगटन में प्राप्त जानकारी पर है—

> "फांसी प्रातः 10 बजे दी जाती है। इसलिए प्राणदण्डित व्यक्ति को आधी रात को काल कोठरी के खण्ड में से विद्युत कुर्सी के एक पास वाले कक्ष में ले जाया जाता है और प्रातः लगभग 5·10 बजे उसके सिर के ऊपरी हिस्से के और उसकी एक टांग की पिण्डली के बाल साफ किए जाते हैं जिससे कि बिजली की छड़ों से सीधा सम्पर्क कराया जा सके। (इस क्रिया के दौरान कैदी के हाथ प्रायः बांध दिए जाते हैं जिससे कि वह पत्नी (रेजर) को न पकड़ सके)। प्रातः लगभग 7·15 बजे उसके सामने मृत्यु दंडादेश पढ़कर सुनाया जाता है और लगभग 10 बजे उसे बिजली लगाकर प्राणदण्ड देने वाले कक्ष में ले जाया जाता है·····तीन अधिकारी प्राणदण्डित व्यक्ति को कुर्सी पर तस्मों से कस देते हैं और उसकी कमर, टांगों तथा कलाइयों को बांध देते हैं। उसके चेहरे पर एक नकाब चढ़ा दिया जाता है और उसके सिर व टांगों से विद्युत छड़ें सटा दी जाती हैं। ज्यों ही यह क्रिया पूरी हो जाती है (काल-कोठरी छोड़ने के लगभग 2 मिनट बाद), संकेत दिया जाता है और बिजली मिस्त्री स्विच खोल देता है; दो मिनट तक बिजली खुली रहती है, जिसके दौरान दो या अधिक भिन्न-भिन्न वोलटेज की विद्युत धारा छोड़ी जाती है। स्विच बन्द करने पर उसका शरीर कुर्सी में

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आगे लुढ़क पड़ता है। जब विद्युत धारा चालू रहती है तो कैदी कोई ध्वनि नहीं करता और वह प्रायः तत्काल अचेत हो जाता है। बिजली बन्द करने के बाद कुछ मिनट तक उसे मृत घोषित नहीं किया जाता। कभी-कभी टांग हल्की-सी जल जाती है किन्तु शरीर पर अन्यथा कोई निशान या अंग विच्छेदन नहीं होता।"

पैरा 718 में कमीशन का कहना है—

"वाशिंगटन में दुर्घटना का कोई मामला लेखबद्ध नहीं किया गया किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ अन्य राज्यों में ऐसे मौके आए हैं जब स्विच खोलने पर बिजली कुर्सी तक नहीं पहुंच सकी। कुछ राज्य आपात जनित्र लगा देते हैं जिससे कि बिजली न आने पर प्राणदण्ड देने में विलम्ब न हो।"

70. कहीं ऐसा न समझा जाए कि चूंकि रायल कमीशन की रिपोर्ट 30 वर्ष पहले दी गई थी, इसलिए उसमें अन्तर्विष्ट बिजली लगाकर प्राण-दण्ड लेने का वर्णन आधुनिक अवस्थाओं में नहीं हो सकता, हम मृत्युदण्ड के विषय में एक आवरण कथा की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहेंगे, जो "टाइम" पत्रिका के 24 जनवरी, 1983 अंक में प्रकाशित हुई थी। वह आलेख प्रधानतः मृत्युदण्ड समाप्त करने के पक्ष में था। उसमें बिजली लगाकर गैस चैम्बर से और प्राणहर इन्जेक्शन से प्राणदण्ड देने की पद्धतियों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। इनका प्रयोग अमेरिका के कुछ राज्यों में किया जाता है। आवरण कथा "एन आई फार एन आई" में उस अंक के पृष्ठ 12 पर बिजली लगाकर प्राणदण्ड देने का निम्नलिखित वर्णन किया गया है—

"कुर्सी 12 फीट × 18 फीट के एक कमरे के पिछवाड़े की निकट जमीन में बोल्ट से कस दी जाती है। आप ताम्बे के टांकों की पंक्तियों से सिली हुई चटकी रबड़ की सीट पर बैठ जाते हैं। आपके टखने कैनवैस से लिपटे पैरों के अर्ध चन्द्राकार कलाइयों में कसकर बांध दिए जाते हैं। आपके नितम्बों से ठीक ऊपर कमर के चारों ओर दो इंच चौड़ी चिकने चमड़े की पेटी कस दी जाती है। पेटी में 28 बकल छिद्र और खांचे होते हैं, जिसमें उसे अनेकों बार बहुत सख्त खींच दिए जाते हैं। आपके सिर के चारों तरफ एक ठण्डा धातु के शंकु का घेरा लगा दिया जाता है। अब आप मृत्यु से कुछ ही क्षण दूर हैं।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

किन्तु अभी आपके पास कुछ सेकण्ड बचे हैं। समय अपनी बाह्य सीमाओं तक बढ़ता चला जाता है। आपके दाईं तरफ एक महार्घ भूतल विभाजक रखा है जो चार भूरे रंग के चर्च के-से आसनों को कमरे के शेष भाग से पृथक कर देता है। वे इस मटमैले जैन जैसे कक्ष में अटपटे लगते हैं। पीछे की तरफ एक और दरवाजा है, जिसमें से साक्षीगण आते हैं और आसनों पर बैठ जाते हैं। आप छत की तरफ देखें तो आपको चमकती हुई बत्तियों के दो समूह दिखाई देंगे। वे बत्तियां जली रहती हैं। छत का रोगन उतरा हुआ है।

आप बिलकुल साफ-सुथरे वेश में हैं। कुर्सी की पिछली टांग के पीछे आपकी दायीं तरफ भूरे रंग के टेप में लिपटा एक तार है। इससे होकर बिजली तीन अन्य धाराओं में जाती है। दो तार आपके दोनों पैरों तक जाते हैं और तीसरा तार आपके सिर के ऊपरी हिस्से के शंकु तक। कमरे में पूर्ण स्तब्धता है। अपने उस थोड़े से चलने के समय जब आप ऊपर मुख उठाकर दृष्टिपात करते हैं तो आप देखते हैं कि ऊषाकाल का प्रकाश बर्कशायर की पहाड़ियों पर फैल रहा है और फिर इस मौन मकबरे में।

छत में आपके सिर के ऊपर से गुजरकर जाने वाली हवा गूंजने लगती है। इसका अर्थ है कि जल्लाद ने जलते हुए मास की गंध मिटाने के लिए पंखे चला दिए हैं। अब कोई समय नहीं रहा। अपनी दायीं तरफ आप दीवार में कमर की ऊंचाई का एक शीशा देख सकते हैं। शीशे के पीछे जल्लाद एक भूरे संगमरमर के नियंत्रक फलक के सामने खड़ा है, जिसमें गेज स्विच और नितम्ब स्तर पर लकड़ी और धातु का एक फुट लम्बा लीवर लगा है।

जल्लाद इस लीवर को चार बार खींचेगा। हर बार आपके शरीर में से दो हजार वोल्ट बिजली गुजरेगी, जिसके फलस्वरूप आपके कोए पहले तो फूल जायेंगे, फिर फट जायेंगे, और फिर आपका मस्तिष्क भुन कर राख हो जाएगा……।"

बिजली से प्राण लेने का सबसे पहले शुभारम्भ ओवर्न में न्यूयार्क के राजकीय कारागार में 6 अगस्त, 1890 को हुआ था। सबसे पहला प्राणदण्डित व्यक्ति था विलियम कैमलर। उसने बिजली से प्राणदण्ड देने की पद्धति की विधिमान्यता को निर्मम और असामान्य दण्ड बताकर चुनौती दी थी, जिसे

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अमेरिका के सुप्रीम कोर्ट[1] ने अस्वीकार कर दिया था। यद्यपि अब इस पद्धति की वकालत मानवीय आधार पर की जाती है फिर भी वस्तुतः ऐसा प्रतीत होता है कि इसका आरम्भ एक बिजली की कम्पनी द्वारा अपनी वस्तुएं बेचने के प्रयास में किया गया था।

71. यद्यपि आमतौर पर यह माना जाता है कि बिजली लगाकर मृत्यु बिलकुल पीड़ारहित होती है, फिर भी एक विख्यात फ्रांसीसी वैज्ञानिक एल० जी० बी० रोटा इस बात को नहीं मानते। मृत्यु दण्डादेश के निष्पादन की इस पद्धति को यंत्रणा की संज्ञा देते हुए रोटा का कहना है कि अपने शरीर में से बिजली गुजरने के बाद प्राण दण्डित अपराधी कई मिनट तक जिन्दा रह सकता है क्योंकि कोई भी चिकित्सक यह निश्चित रूप से नहीं बता सकता कि मृत्यु वस्तुतः हो गई है या नहीं। आगे उनका कहना है कि कुछ लोगों में अपेक्षाकृत विद्युत-धारा का शारीरिक प्रतिरोध करने की अधिक क्षमता होती है और मृत्यु तत्काल नहीं आ सकती भले ही वह व्यक्ति कितना भी कमजोर हो। बिजली लगाकर प्राणदण्ड देने में जो कष्ट होता है, उस पर विद्युत विशेषज्ञ निकोला तेलशा ने भी आक्षेप किया है। इसके प्रतिकूल मत राबर्ट जी० इलियट ने 'एजेन्ट आफ डेथ" (न्यूयार्क : ट्यूटन, 1940) में व्यक्त किया है। राबर्ट इलियट यह मानता है कि बिजली लगाकर मारना पीड़ाहीन होता है। राबर्ट इलियट अनेक पूर्वी राज्यों का कभी जल्लाद का काम करता था। उसने 387 मृत्यु दण्डादेशों का निष्पादन किया था।

72. अमेरिका, रूस और जापान जैसे देशों में बिजली विरले ही जाती है, फिर भी वाणिज्यिक उपक्रमों द्वारा सप्लाई की गई बिजली का चला जाना अमेरिका में विद्युत कुर्सी के प्रयोग में बाधक माना जाता है। हमारे देश में बार-बार बिजली जाने से विद्युत-कुर्सी एक यातना यंत्र बन जायेगी। कोई कलकत्ता शहर में या इस विषय के लिए दिल्ली राजधानी में विद्युत कुर्सी के प्रयोग के परिणामों की भली-भांति कल्पना कर सकता है। तकनीकी कारणों से यहां तक कि उच्चतम न्यायालय कम्पलैक्स को भी कार्य घटों के दौरान बिजली की बार-बार कटौती करने से नहीं बख्शा जाता है। अब वकील मुकदमे के पक्षकार और न्यायाधीश बिजली चले जाने से उत्पन्न असुविधा का सामना करने में दक्ष हो गए हैं। किन्तु एक मृत्युदण्डित कैदी से विद्युत कुर्सी में दो या तीन बार बैठने की प्रत्याशा करना बेहद

[1] [1889-90] 136 यू० एस० 436.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अनुचित होगा। वह भी मात्र इस कारण कि विद्युत लगाकर प्राणदण्ड देने की प्रक्रिया के दौरान बिजली चली गई है। बिजली के संकट के लिए किसी को दोषी ठहराना हमारा मन्तव्य नहीं है, क्योंकि यह दिखाई देगा कि यह भागतः प्राकृतिक कारणों से है और मनुष्यकृत नहीं है किन्तु जो वस्तुस्थिति है वही वस्तुस्थिति है और उसका सामना करना होगा।

73. रायल कमीशन ने अपनी रिपोर्ट के पैरा 719 से 722 में प्राणहर गैस द्वारा प्राणदण्ड देने की चर्चा की है। पैरा 719 में कमीशन ने कहा है कि उन्होंने अमेरिका के अपने प्रवास के दौरान किसी भी प्राणहर गैस कक्ष का निरीक्षण नहीं किया किन्तु उन्हें प्राणहर गैस द्वारा मृत्युदण्ड देने के बारे में लिखित साक्ष्य भी दिया गया था। उन्हें श्री फिलिप एलिन नामक एक व्यक्ति से भी साक्ष्य लेने का अवसर प्राप्त हुआ जोकि उस समय कारागार आयोग के उपाध्यक्ष थे। साथ ही अंग्रेज तांत्रिका-विज्ञानी डाक्टर मैकडोनाल्ड क्रिचले से भी रिपोर्ट प्राप्त हुई। इन दोनों ने सेंट क्वेंटन प्रिजिन, कैलिफोर्निया के प्राणहर कक्ष का निरीक्षण किया था। प्रसिद्ध क्लिंटन डफो भी कारागार का वार्डन था। रिपोर्ट के पैरा 720 में रायल कमीशन का कहना है : "प्राणहर कक्ष प्राणदण्ड देने के अन्य तरीकों के लिए आवश्यक यंत्रों की तुलना में बहुत विशाल होता है। इसे लगाना बहुत खर्चीला होता है और गैस पैदा करने और उसे बाद में हटाने की जटिल क्रियाओं से गुजरना होता है।" रायल कमीशन ने गैस कक्ष पद्धति का जो वर्णन किया है, वह इस प्रकार है—

> "वह कक्ष वायु रोकने के लिए सीलबन्द करना होता है जिससे कि साइनायड गैस बाहर न जा सके। कक्ष के बाहर का दरवाजा एक विद्युत नियंत्रित फलक से जुड़ा होना चाहिए। कैदी की भुजाएं, टांग और पेट चमड़े की पेटी वाली कुर्सी से बांध दिए जाते हैं। कुर्सी के अन्दर एक ट्रेप में एक पौंड सोडियम साइनायड के छर्रे रखे जाते हैं और तीन पिन्ट सलफयुरिक ऐसिड और 6 पिन्ट पानी एक जस्ते के बर्तन में मिलाकर इस प्रकार रखा जाता है कि उसमें सायनाइड छर्रे पहुंच सके। स्टेथास्कोप के सिरे से एक रबड़ की होज जोड़ दी जाती है, जिसे कैदी की छाती से कस कर बांधा जाता है। नैकर के सिवाय कैदी के सभी कपड़े उतार दिए जाते हैं। उनके द्वारा कैदी के चेहरे पर एक चमड़े का नकाब लगा दिया जाता है। कैदी के मृत घोषित किए जाने के बाद कक्ष में अमोनियम गैस छोड़ी जाती है, जब तक

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कि कक्ष के भीतर के संकेतक से यह दर्शित न हो जाए कि सारी सायनाइड गैस निष्प्रभाव हो चुकी है। इसके बाद अमोनिया गैस एक विशेष रूप से निर्मित निर्वातक पंखे से निकाली जाती है।"

रायल कमीशन की रिपोर्ट के पैरा 721 से पता चलता है कि मृत्युदण्ड देने की इस पद्धति में जो समय लिया जाता है, वह लगभग 45 मिनट होता है। पैरा 722 में कमीशन का कहना है कि जब पहली बार इस पद्धति का इस्तेमाल किया गया तो यह सोचा जाता था कि गैस से दम घुटने लगता है जिससे अचेत होने से पहले कैदी को बेहद कष्ट होता है यदि वास्तविक पीड़ा नहीं होती है। कमीशन के अनुसार अब आमतौर पर माना गया प्रतीत होता है कि गैस कक्ष वाली पद्धति में अचेतनता बड़ी जल्दी हो जाती है।

74. केलिफोर्निया में सेन क्वेंटिन प्रिज़न के वार्डन क्लिंटन डफी का कहना है कि गैस कक्ष में मृत्युदण्ड देने की क्रिया में ये चीजें आवश्यक हैं, "कीप, रबड़ के दस्ताने, अशांकन तौलिया, साबुन, चिमटी, कैंची, फ्यूज और झाड़न : इसके अतिरिक्त सोडीयम साइनाइड गैस सलफ्युरिक ऐसिड, आस्वित जल और अमोनिया।"

75. मृत्युदण्ड देने वाले सशस्त्र दल द्वारा गोली मारने की पद्धति के बारे में राय हम पहले ही उद्धृत कर चुके हैं जिससे यह पता चलता है कि इस पद्धति में घपला हो सकता है। किन्तु इस पद्धति का और भी बड़ा दोष यह है कि यह सैनिक शासकों की प्रिय आमोद-प्रमोद की क्रीड़ा है जिसने दण्डमुक्ति के अधीन रहकर मानव अधिकारों को कुचल डाला। वे आमोद-प्रमोद के लिए अपने नागरिकों को गोली से उड़ा देते हैं। गोली मारना प्राणान्त करने का एक असभ्य तरीका है और इसे अस्वीकार करने की खातिर यह कहना पर्याप्त होगा कि इस पद्धति-विशेष का उपयोग विपक्षी को समाप्त करने तथा उन देशों में, जिनमें विधि-शासन का आदर नहीं किया जाता, विरोध को दबाने के लिए अत्यन्त निर्ममतापूर्वक और निर्दयतापूर्वक किया जाता है। अन्ततोगत्वा, गोली मारकर हत्या करना हमारे देश में विधि और व्यवस्था का घोर शत्रु बनता जा रहा है। न्यायालय के आदेश के निष्पादन में प्राण लेने की खातिर राज्य द्वारा गोली चलाकर प्राण लेने के लिए गोली चलाने के तरीकों को सम्मानजनक स्थान अजाने में ही मिल जाएगा। गोली मारकर हत्या करना आजकल बहुत आम बात है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

76. अब हमें जिस बात पर विचार करना है, वह प्राणहर इन्जेक्शन पद्धति है। रायल कमीशन ने इस पद्धति का विवेचन अपनी रिपोर्ट के पैरा 735 से 749 में किया है। प्राणहर इन्जेक्शन प्राय: एक बिना आजमाई हुई पद्धति है किन्तु यही इसका सबसे अधिक गम्भीर दोष नहीं है। इन्जेक्शन शिरा के अन्दर लगाना होता है जोकि एक नाजुक और कुशल आपरेशन है। जेल के चिकित्सा-अधिकारी को जिनसे रायल कमीशन ने साक्षात्कार किया था आशंका थी कि प्राणहर इन्जेक्शन की प्रणाली फांसी लगाने की अपेक्षा अधिक मानवीय है। (रिपोर्ट का पैरा 739 देखिए)। ब्रिटिश मैडिकल एसोसिएशन ने कमीशन को बताया था कि सिद्धदोष हत्यारे को मृत्युदण्ड देने के लिए किसी भी चिकित्सा-व्यवसायी (डाक्टर) से नहीं कहा जाना चाहिए और यह कि एसोसियेशन मृत्युदण्ड की इस पद्धति को चालू करने के किसी भी प्रस्ताव का सबसे प्रबल विरोध करेगी। इस पद्धति के अनुसार प्राण लेने की वास्तविक प्रक्रिया को कार्यरूप देने के लिए अथवा उस प्रक्रिया की तकनीक में दूसरों को अनुदेश देने के लिए चिकित्सा-व्यवसायी की सेवाओं की आवश्यकता होगी। कमीशन ने पैरा 749 में उपसंहार करते हुए कहा कि वह यह सिफारिश नहीं कर सकता कि वर्तमान परिस्थितियों में फांसी लगाने के स्थान पर प्राणहर इंजेक्शन इस्तेमाल किया जाए क्योंकि उनका समाधान नहीं हुआ था कि प्राणहर इन्जेक्शन लगाकर मृत्युदण्ड देने से मृत्यु सभी मामलों में अधिक तेजी से, बिना पीड़ा के और शिष्टतापूर्वक की जा सकेगी। फिर भी कमीशन ने एकमत होकर और जोरदार शब्दों में यह सिफारिश की थी कि इस प्रश्न की जांच-पड़ताल विशेष रूप से संज्ञाहरण विज्ञान में की गई प्रगति के प्रकाश में समय-समय पर की जाए।

77. अन्त में हम डाक्टर एन० पी० सिंह नामक एक व्यक्ति द्वारा फाइल किए गए शपथ-पत्र का उल्लेख करना चाहेंगे। डाक्टर सिंह को नेशनल एसोसिएशन ने क्रिटिकल केयर मैडिसन (इंडिया), नई दिल्ली की ओर से मध्यक्षेप की इजाजत दी गई है। उन्होंने अपने शपथपत्र में कहा है कि समाज यह समझने लगा है कि फांसी लगाकर हत्या करना किसी रोगी की जीवन-लीला समाप्त करने का कोई सभ्य और सुन्दर तरीका नहीं है: "चिकित्सा वृत्ति और संघ के सदस्यों के रूप में हम यह महसूस करते हैं कि रोगी को किसी भी निद्राजनक इन्जेक्शन द्वारा सुला दिया जाए (बार-बीचुरेट्स) और बाद में ऊपरवर्णित बिजली लगाकर मारने की और गैस चैम्बर में डालकर मारने की पद्धतियां प्रयुक्त की जाएं क्योंकि रोगी की संज्ञा तब तक औषध इन्जेक्शन से सुस्त पड़ जाएगी। इस प्रणाली में निश्चय

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ही नूतनता और नवीनता का गुण है किन्तु देखने में यह प्रणाली अव्यवहार्य है और इसमें बेहद जटिलताएं और यंत्रणा प्रतीत होगी। इस संबंध में हम साउथैम्पटन यूनिवर्सिटी के विधि के एक वरिष्ठ प्राध्यापक एन्ड्रू रुथर्फोर्ड के एक लेख "दी डैथ पैनल्टी : मारल आर्गुमैंट एण्ड कैंपरिशियल प्रैक्टिस" की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहेंगे। यह लेख ब्रिटिश ब्राडकास्टिंग कार्पोरेशन द्वारा प्रकाशित 7 जुलाई, 1983 के "दि लिस्नर" में प्रकाशित हुआ था। उस लेख में लेखक ने इस प्रकार की एक घटना का उल्लेख किया है कि दिसम्बर, 1982 में टैक्सास में एक कैदी की हत्या सोडियम पैन्थोल के एक इन्जैक्शन के जरिए की गई। इस घटना के बाद अमेरिकन मैडिकल एसोसिएशन को यह घोषणा करनी पड़ी : "किसी सिद्धदोष के प्राण लेने के तरीके के रूप में प्राणहर इन्जेक्शन का उपयोग चिकित्सा का आचार नहीं है।" लेखक ने आगे कहा कि बिजली लगाकर मारने की पद्धति के लिए भी कोई अधिक उत्साह संभाव्य नहीं है क्योंकि अप्रैल, 1983 में अलबामा में एक व्यक्ति को मृत घोषित करने से पूर्व 1.900 वोल्ट के 30-30 सैकेंड के तीन शाट देने पड़े थे।

78. इस वृतान्त से यह स्पष्ट है कि न तो बिजली से और न ही प्राणघातक गैस और न ही गोली मारकर और न ही प्राणहर इन्जेक्शन से भी फांसी लगाने की पद्धति की अपेक्षा कोई विशेष या सुभिन्न फायदा है। अतः लेश निश्चितता से भी यह निष्कर्ष लेखबद्ध नहीं किया जा सकता कि मृत्युदण्ड देने के लिए फांसी लगाने की पद्धति के स्थान पर इनमें से कौन पद्धति अपनाई जाए।

79. किन्तु अनुच्छेद 21 की आज्ञा का सम्यक् अनुपालन करने के लिए इतना निष्कर्ष निकालना काफी नहीं है कि मृत्युदण्ड के अन्य तरीकों में से कोई भी तरीका फांसी लगाने की पद्धति से अधिक लाभप्रद नहीं है। अन्य तरीकों में अव्यवहार्य, जटिल, मंद और अनिश्चित होने की कुछ बुराइयां हो सकती हैं। यह तस्वीर का केवल एक पक्ष है क्योंकि यह परिस्थिति कि अन्य पद्धतियां व्यवहार्य नहीं हैं, स्वतः यह सिद्ध नहीं करती कि फांसी लगाने की पद्धति में कोई दोष नहीं है। प्रतिवादी पक्ष की कमजोरी से वादी का पक्षकथन सिद्ध नहीं हो सकता। दूसरे शब्दों में, हो सकता है अन्य पद्धतियों की तुलना में फांसी लगाने की पद्धति दोषपूर्ण न हो किन्तु हमें तो यह निर्धारित करना है कि क्या मृत्यु दण्डादेश निष्पादित करने की पद्धति के रूप में फांसी लगाने से अपने आप में, यानी, अन्य पद्धतियों से तुलना किए बिना, अनुच्छेद 21 के सिद्धांतों का अतिवर्तन होता है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

80. जैसा कि हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं, वैज्ञानिक और विधिक राय की एक उत्तरदायी संस्था है, जिसका मत है कि फांसी के फन्दे में लटकाना मृत्यु दण्डादेश के निष्पादन का निर्मम तरीका नहीं है। यह पद्धति सभ्य विश्व के अधिकांश भाग में विद्यमान है। संविधान सभा के सामने मृत्यु दण्डादेश के निष्पादन का यही एकमात्र ढंग था और फिर भी उसने इस पद्धति के बारे में कोई असहमति व्यक्त नहीं की, यद्यपि उसने संविधान के अनुच्छेद 72 (1) (ग) के अधीन राष्ट्रपति की क्षमा करने की शक्ति पर विचार करते समय मृत्युदण्ड के प्रश्न पर भी विचार किया था।

81. अन्वेषण के मुख्य बिन्दु पर अत्यन्त गहन चिन्तन करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि ऊपर विस्तारपूर्वक उल्लिखित सामग्री के आधार पर राज्य ने उस भार का निर्वहन कर दिया है जो उस पर यह साबित करने के लिए था कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 354 (5) में विहित फांसी लगाने की पद्धति संविधान के अनुच्छेद 21 में समाविष्ट गारंटी का अतिक्रमण नहीं करती। हमारे समक्ष जो सामग्री है, उससे पता चलता है कि इस समय प्रचलित फांसी लगाने की पद्धति में एक ऐसी यांत्रिकता है जिसे एक जगह जोड़ना आसान है। फांसी लगाने के कृत्य से पहले की आरम्भिक कार्रवाइयां तेज और सरल हैं तथा उनमें से ऐसी कोई बात नहीं है जिससे कैदी की आशंका अनावश्यक रूप से और अधिक तीव्र हो जाए। फांसी लगाने के दौरान होने वाली दुर्घटना के अवसरों से आसानी से बचा जा सकता है। यह पद्धति विधि के सबसे बड़े दण्ड के निष्पादन का एक तेज और निश्चित उपाय है। इसमें मृत्यु लम्बी खिंचने की संभावना नहीं रहती। प्रक्रिया चालू होने के बाद अचेतनता प्रायः तत्काल हो जाती है और गर्दन के टेंटुए के अलग हो जाने के फलस्वरूप कैदी तुरन्त मर जाता है। इस समय प्रचलित फांसी लगाने की पद्धति से गला घुटने की बिलकुल भी सम्भावना नहीं रहती जो बहुत अल्प झटके के परिणामस्वरूप हो जाती है या शिरच्छेदन की कोई संभावना नहीं रहती जो बहुत लम्बे झटके के फलस्वरूप हो जाती है। यह पद्धति यह सुनिश्चित करने की बाध्यता के अनुरूप है कि मृत्युदण्ड की प्रक्रिया पूरे शिष्टाचार और शालीनता से सम्पन्न की जाए और उसमें किसी प्रकार की अवमानना या बर्बरता न हो।

82. प्राण निकलने के अन्तिम समय प्राण निकलने की प्रक्रिया में ही कुछ शारीरिक पीड़ा विवक्षित है। किन्तु फांसी लगाने से कम से कम पीड़ा होती है जो इस तथ्य के फलस्वरूप कल्पनीय है कि मृत्यु तत्काल हो जाएगी। "कल्पनीय" इसलिए कहा गया है, क्योंकि स्वभावतः

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ऐसा कोई नहीं बचता जो मृत्यु दण्डादेश के निष्पादन में भोगी गई पीड़ा का प्रत्यक्ष साक्ष्य दे सके। मृतक कुछ नहीं बोलता। अतः पीड़ा से संबंधित प्रश्न का निर्धारण वैज्ञानिक अन्वेषणों के आधार पर और तर्क की कसौटी पर कसकर ही करना होगा। यह निष्कर्ष कि फांसी लगाने की प्रणाली इतनी पीड़ाहीन है जितना परिस्थितियों में संभव है, इससे मृत्यु दण्डादेश के निष्पादन की किसी भी अन्य विहित पद्धति से अधिक पीड़ा नहीं होती और इसमें कोई बर्बरता, यंत्रणा या अवमानना अन्तर्ग्रस्त नहीं है, तर्क पर आधारित है और विशेषज्ञ साक्ष्य द्वारा समर्थित तथा आधुनिक चिकित्सा के निष्कर्षों से समर्थित है।

83. किसी दण्ड में होने वाली पीड़ा के प्रश्न के बारे में यह देखना विधि का काम है कि किसी भी दण्डादेश के विशेष रूप से मृत्यु दण्डादेश के निष्पादन से संबंधित या के आनुषंगिक विभिन्न कदमों से अपने आप दण्ड गठित न हो। यदि किसी कैदी को मृत्यु दण्डादेश दिया जाए, तो केवल उसी दण्ड का निष्पादन करना विधिपूर्ण होगा। उसे उस दण्डादेश के निष्पादन से पहले, यहां तक कि उस दण्डादेश के निष्पादन के आवश्यक कदमों के रूप में भी मान-भंग, यंत्रणा या अपमान का शिकार नहीं बनाया जा सकता। यह कैदी को ऐसा दण्ड देने के समान होगा जो विधि द्वारा प्राधिकृत नहीं है। मानवीयता सभ्य विधियों का मन्तव्य है। अतः किसी भी प्रकार की यंत्रणा, बर्बरता, निर्ममता, मान-भंग और अपमान किसी भी दण्डादेश के निष्पादन में अनुज्ञेय नहीं है। फांसी लगाने की प्रक्रिया में इनमें से कोई दोष प्रत्यक्षतः, अप्रत्यक्षतः या आनुषंगिक रूप से अन्तर्ग्रस्त नहीं है।

84. तदनुसार हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि मृत्यु दण्डादेश के निष्पादन के लिए दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 354 (5) द्वारा विहित पद्धति से संविधान के अनुच्छेद 21 के उपबन्ध का अतिक्रमण नहीं होता।

85. एक और मुद्दा विचारणीय शेष रहता है और वह मुद्दा श्री आर० के० गर्ग ने उठाया है। उनकी दलील है कि किसी भी परिस्थिति में यहां तक कि किसी न्यायालय के निर्णय के अनुसार भी किसी को मारना अमानवीय है, अतः उचित या अनुचित साधनों द्वारा कोई भी मृत्यु दण्डादेश निष्पादित नहीं किया जा सकता। अतः इस तथ्य से कोई अन्तर नहीं पड़ता कि मृत्यु दण्डादेश के निष्पादन के लिए विधि द्वारा विहित पद्धति मानवीय है, क्योंकि उनके अनुसार, अनुच्छेद 21 मानवीय जीवन समाप्त करने पर पूर्ण निषेध लगता है और मृत्युदण्ड देना भी इसमें शामिल है। यह दलील स्वीकार करना असंभव है। वस्तुतः और सारतः, इस तर्क का उद्देश्य मृत्युदण्ड

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

की विधिमान्यता को ही प्रश्नगत करना है और वस्तुतः श्री गर्ग ने जो कुछ कहा है, उसमें से अधिकांश का मन्तव्य दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 354 (5) की अविधिमान्यता दर्शाने की अपेक्षा भारतीय दण्ड संहिता की धारा 302 की अविधिमान्यता दर्शाना है। हम यह नहीं समझ सके कि विधिपूर्ण आदेश का निष्पादन अमूर्त रूप में और पूर्ण रूप में, विधिविरुद्ध कैसे है। यदि, समुचित मामले में, मृत्युदण्ड देना विधिपूर्ण है तो उस दण्डादेश को समुचित ढंग से निष्पादित करना भी विधिपूर्ण होगा। निस्संदेह, अनुच्छेद 21 दण्डादेश देने से उतना ही सुसंगत है जितना कि उसके निष्पादन के ढंग से। अतः दण्डादेश देने के विषय में दो बातें ध्यान में रखनी होंगी। मूलतः दण्डादेश अनुच्छेद 14 और 21 में विशेष रूप से अन्तर्विष्ट सांविधानिक उपबंध के अनुसार दिया जाएगा। प्रक्रिया की दृष्टि से वह पद्धति जिसके द्वारा दण्डादेश का निष्पादन विधि द्वारा अपेक्षित है, अनुच्छेद 21 के आज्ञापक उपबन्ध के अनुसार होगी। अनुच्छेद 21 की आज्ञा यह नहीं है कि मृत्युदण्डादेश का निष्पादन नहीं किया जाएगा बल्कि यह कि इसका निष्पादन निर्मम, बर्बर या अपमानजनक रीति से नहीं किया जाएगा।

86. यदि हम श्री गर्ग का तर्क स्वीकार कर लें तो मृत्युदण्ड देना निरर्थक हो जाएगा : क्योंकि आप मृत्यु दण्डादेश दे दें, यदि आप दे सकते हैं किन्तु उसका निष्पादन किसी भी रीति से किन्हीं भी परिस्थितियों में नहीं किया जाएगा। हमारे जैसे सारगर्भित सुचिन्तित संविधान का उद्देश्य ऐसा विचित्र परिणाम उत्पन्न करना नहीं हो सकता। वस्तुतः यदि इस तर्क को तार्किक निष्कर्ष की दृष्टि से देखा जाए तो किसी भी दण्डादेश को विशेष रूप से कारावास के दण्डादेश को निष्पादित करना असंभव हो जाएगा क्योंकि कारावास के प्रत्येक दण्ड में अनिवार्यतः कम या अधिक मात्रा में दुख और कष्ट होता है।

87. बचन सिंह वाले मामले[1] की सीमाएं परिरक्षित की जानी चाहिएं। किन्तु उसका अभिप्राय है कि दुर्लभ स्थिति में ही मृत्युदण्ड देना सही और उचित है। यदि यह मान लिया जाए कि मृत्युदण्ड सांविधानिक दृष्टि से विधिमान्य है तो अत्यन्त संवेदनशीलता की दृष्टि से भी यह मांग करना उचित नहीं है कि जिन लोगों को उनके अपराध की गंभीरता के अनुपात में विधि द्वारा सबसे बड़ा दण्ड दिया जाता है, उन्हें उस दण्डादेश का

---

1 [1982] 1 उम० नि० प० 1021=[1983] 1 एस० सी० आर० 145.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

निष्पादन न भुगतना पड़े, जबकि उसमें कोई यंत्रणा या अपमान नहीं किया जाता। यदि व्यष्टिगत हितों के विपरीत समष्टिगत हितों की दृष्टि से यह आवश्यक है कि मृत्युदण्ड आपवादिक मामलों में ही दिया जाए तो उन्हीं समष्टिगत हितों के आधार पर उस दण्डादेश का निष्पादन न्यायोचित होगा हालांकि वह पूरी तरह अनुच्छेद 21 की अपेक्षाओं के अनुरूप होगा।

88. यद्यपि इस मामले का मुख्य मुद्दा अनुच्छेद 21 था, फिर भी प्रायः पिटीशनरों की ओर से हाजिर होने वाले प्रत्येक विद्वान् काउन्सेल ने अमेरिकी संविधान के आठवें संशोधन से प्रेरणा ली। आठवें संशोधन में उपबंधित है "अत्यधिक जमानत नहीं मांगी जाएगी, न ही अत्यधिक जुर्माना लगाया जाएगा और न ही निर्मम और अप्रायिक दण्ड दिया जाएगा"।

89. निर्मम और अप्रायिक दण्ड पर प्रतिषेध मेगना कार्टा के समय से चला आ रहा है यद्यपि आंग्ल विधि में मान्यता 1688 में इंगलिश "डिक्लेरेशन आफ राइट्स" में उसे अंगीकृत करने के बाद मिली। इस अधिनिमिति का प्रयोजन निर्मम दण्डों पर नियंत्रण लगाना था जो कि स्टुअर्ट के शासनकाल में आमतौर पर प्रचलित थी जैसे, टिकठी, आंतें निकालना, शीर्षोच्छेदन करना, घसीटना तथा चार टुकड़े कर देना। आंग्ल सुधार आंदोलन के फलस्वरूप, जिसका सूत्रपात यूरोपीय मानवतावादियों ने 17वीं शताब्दी में किया था, धीरे-धीरे ये दण्ड अत्यन्त अलोकप्रिय हो गए। निर्मम और अप्रायिक दण्डों के प्रतिषेध में निहित मूल सिद्धांत 1791 में अपील आफ राइट्स में समाविष्ट किया गया।

90. अमेरिका में विधि के आरम्भिक विकास से पता चलता है कि निर्मम और अप्रायिक दण्डों पर प्रतिषेध का संबंध अप्रायिक निर्ममता से ही था और विशेष जोर अनावश्यक निर्ममता और कष्ट पर दिया गया था। कैम्लर[1] वाले मामले में बिजली लगाकर मृत्युदण्ड देने को आवश्यक रूप से निर्मम अभिनिर्धारित नहीं किया। शो०नील बनाम बरनाऊंट[2] वाले मामले में जस्टिस फील्ड ने अपने विसम्मत निर्णय में अप्रायिक दण्ड की संकल्पना के अंतर्गत उन शास्तियों को भी शामिल कर लिया जिनसे "न्याय की रूह कांप उठती है।" ट्राप बनाम डेलेस[3] वाले मामले में बहुत सूक्ष्म मतवैभिन्न के साथ न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि नागरिकता छीनना सांवि-

---

[1] [1889-90] 136 यू० एस० 436.
[2] [1892] 144 यू० एस० 323, 339-340.
[3] [1958] 356 यू० एस० 86. 101, 124-127.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

धानिक दृष्टि से निषिद्ध है। तीन न्यायाधिपतियों की ओर से निर्णय देते हुए मुख्य न्यायाधिपति वारेन ने यह मत व्यक्त किया था कि आठवें संशोधन की अन्तर्वस्तु अगतिशील नहीं है और यह कि इसका अर्थान्वयन प्रगतिशील समाज में व्याप्त शिष्टाचार के विकासमान मापदण्डों के अनुसार होगा। विद्वान् मुख्य न्यायाधिपति के अनुसार 8वां संशोधन, जिसकी "आधारभूत संकल्पना मानवीय गरिमा से कम नहीं है" "सभ्य व्यवहार के सिद्धांत" को सुनिश्चित करता है। ट्रॉप[1] वाले मामले में विनिश्चय के बाद अमेरिका उच्चतम न्यायालय ने 18 आधारभूत मामलों के नाम से ज्ञात महत्वपूर्ण मामलों में आठवें संशोधन के खण्ड की एक विस्तृत परिभाषा की रचना की है। उन मामलों का संक्षिप्त विवेचन प्रोफेसर एम० शेरिफ बसीनी कृत "सब्स्टानटिव क्रिमिनल ला" (संस्करण 1978, पृष्ठ 44-45) में मिल सकता है। इससे यह दर्शित होता है कि यह अभिनिर्धारित किया गया कि पहले प्रयास में असफल रहने के बाद दूसरी बार बिजली लगाना भी आठवें संशोधन के उल्लंघन में नहीं है बशर्ते कि अनावश्यक कष्ट देने के आशय से ऐसा न किया जाए (लूईसियाना बनाम रेस्वेबर को देखिए)[2]। उस मामले में यह मत व्यक्त किया गया था—

> "संविधान सिद्धदोष व्यक्ति को नृशंसता से संरक्षण प्रदान करता है किन्तु नृशंसता दण्ड की पद्धति में अन्तर्निहित नृशंसता है, मानवीय रूप से जीवन समाप्त करने की किसी भी पद्धति में अन्तर्वलित आवश्यक कष्ट नहीं होता। इस बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि मृत्यु दण्डादेश के निष्पादन के समय सिद्धदोष व्यक्ति को कुछ न कुछ कष्ट और दुःख अवश्य होता है किन्तु यह कहना पूरी तरह अनुचित नहीं है कि उस कष्ट और दुःख से बचने का अवसर मिलने पर उसने कोई अन्य लाभ प्राप्त करने की खातिर जोखिम का मार्ग अपनाया। उसका न्यूनतम कष्ट वास्तविक है किन्तु हम यह मानते हैं कि उसने जिन व्यक्तियों की हत्या की थी, उन्हें भी कष्ट हुआ था और ऐसा ही उन व्यक्तियों को भी कष्ट होगा जिन्हें अन्य अपराधी मारते हैं, जिनका यह विश्वास है कि वे सापेक्षिक दोषमुक्ति के साथ अत्यधिक अत्याचार के अपराध कर सकते हैं।"

---

1 [1958] 356 यू० एस० 86, 101, 124-127.

2 [0949] 329 यू० एस० 459.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इसी "सापेक्षिक दोषमुक्ति" के फलस्वरूप बचन सिंह वाले मामले[1] का सिद्धांत लागू होता है।

91. इस प्रकार यद्यपि आठवें संशोधन की अन्तर्वस्तु गतिशील है, जिसका विकास समय-समय पर परिवर्तित जन साधारण के नैतिक मापदण्डों के रूप में, कालान्तर में, हुआ है, अनेक सम्मत रायों से प्रकट होता है कि अमेरिका में मृत्युदण्ड को आठवें संशोधन का उल्लंघनकारी नहीं माना जाता। मुख्य न्यायाधिपति, अर्ल वारेन के शब्दों में, "मृत्युदण्ड हमारे इतिहास में सर्वथा दिया जाता रहा है और आजकल भी इसे व्यापक मान्यता प्राप्त है"। यह नहीं कहा जा सकता कि यह नृशंसता की सांविधानिक संकल्पना का अतिक्रमण करता है। जो कुछ आठवां संशोधन प्रतिषिद्ध करता है, वह है "कोई अमानवीय और बर्बर कार्य और साथ ही जीवन समाप्त करने मात्र से कोई चीज" मृत्यु दण्डादेश के निष्पादन में जितना कष्ट होना आवश्यक है, वह आठवें संशोधन द्वारा वर्जित नहीं है, हालांकि निष्पादन का नृशंस रूप वर्जित है।

92. अतः इस तर्क के समर्थन में आठवें संशोधन से कोई समर्थन प्राप्त नहीं किया जा सकता कि यों तो मृत्युदण्ड अथवा फांसी लगाकर उस दण्डादेश को निष्पादित करने की पद्धति से इस आधार पर अनुच्छेद 21 का उल्लंघन होता है कि मृत्युदण्ड बर्बरतापूर्ण है अथवा फांसी लगाने की पद्धति नृशंस, अमानवीय और अपमानजनक है फिर भी प्राणदण्ड देने के तरीके के रूप में फांसी लगाने की गम्भीरता निष्ठुर नहीं है। न्यायाधीश के नाते हमें यह नहीं मान लेना चाहिए कि हम समाज की आवश्यकताओं के अलौकिक अन्तर्दृष्टा हैं। इसके विपरीत, हमें जस्टिस फ्रेंक्फर्टर द्वारा दी गई इस चेतावनी को ध्यान मे रखना होगा : "जैसा कि इतिहास से पर्याप्त सिद्ध है, न्यायपालिका निजी इच्छाओं को सांविधानिक अपेक्षाओं के रूप में समझकर लोककल्याण गलत समझ लेती है"।

93. इन कारणों से दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 354 (5) की सांविधानिकता को जो चुनौती दी गई है, वह असफल होती है और रिट पिटीशन खारिज किए जाते हैं। 1983 के रिट पिटीशन (दाण्डिक) सं० 503 के सिवाय वे आदेश यहां निष्प्रभाव किए जाते हैं, जिनके द्वारा मृत्यु दण्डादेशों का निष्पादन रोक दिया गया था। ये रिट पिटीशन गुणागुण के आधार पर सुनवाई के लिए 27 सितम्बर, 1983 को सूचिबद्ध किए जाएंगे।

---

[1] [1983] 1 उम० नि० प० 1021=[1983] 1 एस० सी० आर० 145.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

न्या० सव्यसाची मुखर्जी—

94. मैं अपने बन्धु मुख्य न्यायाधिपति के निष्कर्षों से ससम्मान सहमत हूँ। फिर भी मैं यह कहना चाहूंगा कि निर्णय में मेरे विद्वान् बन्धु ने यह मत व्यक्त किया है—

> "अतः ज्यों ही यह दर्शित कर दिया जाए कि अमुक अधिनियम अनुच्छेद 21 द्वारा प्रत्याभूत अधिकार का अतिवर्तन करता है, यह पता लगाना आवश्यक है कि क्या राज्य ने यह सिद्ध कर दिया है कि वह व्यक्ति विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार और ऐसी प्रक्रिया द्वारा जोकि न्यायसंगत, ऋजु और युक्तियुक्त है, अपने प्राण या दैहिक स्वाधीनता से वंचित किया गया है।"

मैं ससम्मान सहमत हूं कि ज्यों ही यह दर्शित कर दिया जाए कि किसी प्रश्नगत कानून या अधिनियम से अनुच्छेद 21 द्वारा प्रत्याभूत अधिकार का अतिवर्तन होता है, यह पता लगाना आवश्यक है कि क्या राज्य ने यह सिद्ध कर दिया है कि एक व्यक्ति को विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार उसके प्राण या दैहिक स्वाधीनता से वंचित किया गया है। फिर भी मैं, इस समय, ससम्मान, अपनी यह राय व्यक्त नहीं करूंगा कि क्या ऐसे सभी मामलों में यह साबित करने का भी आरम्भिक भार राज्य पर है कि विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया न्यायसंगत, ऋजु और युक्तियुक्त है। इस मत के साथ मैं अपने बन्धु, विद्वान् मुख्य न्यायाधिपति द्वारा निकाले गए अन्य सभी निष्कर्षों और व्यक्त किए गए मत से ससम्मान सहमत हूं।

रिट पिटीशन खारिज किए गए।

जैन/कृष्ण/श्री

———

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh